भारतीय राजनीति में क्षेत्रीयतावाद
उत्तरांचल पृथक राज्य आन्दोलन के विशेष संदर्भ में

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी०फिल०उपाधि हेतु

शोध-प्रबन्ध

2002-2003
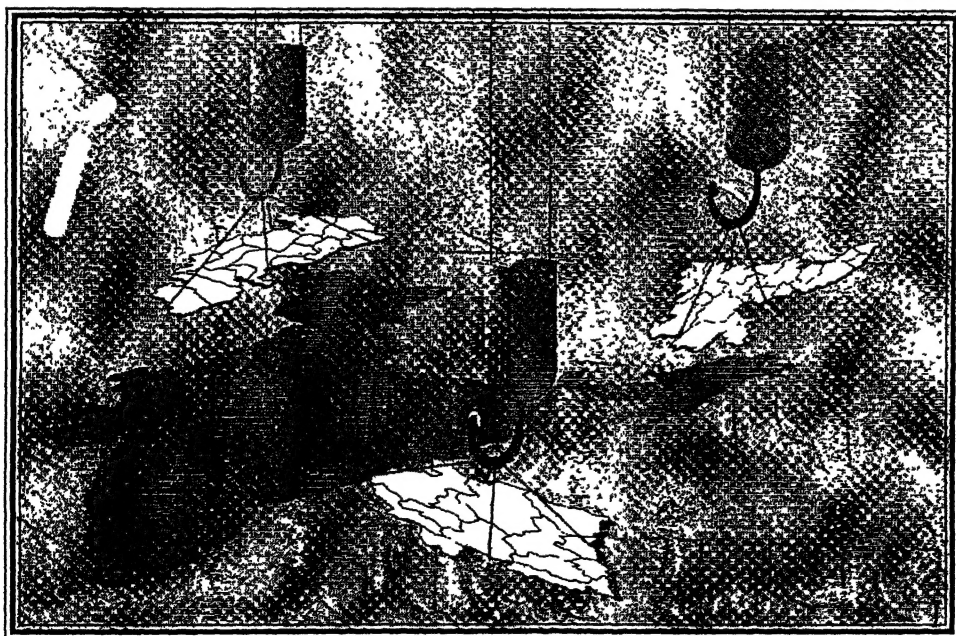
पर्यवेक्षक :
डॉ0 (श्रीमती) कृष्णा गुप्ता
सीनियर रीडर
राजनीति विज्ञान विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

प्रस्तुतकर्ता :
बृजेश कुमार गुप्त
अनुसंधान अध्येता
राजनीति विज्ञान विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

या कुन्देन्दु तुषारहार धवला ,या शुभ्र वस्त्रावृता।

या वीणा वर दण्ड मण्डित करा, या श्वेत पद्मासना।।

या ब्रहमाच्युतशंकर प्रभृतिभि: दैवै: सदा वन्दिता ।

सा मा पातु सरस्वती भगवती नि· शेष जाड्यापहा ।।

Brajesh Kumar Gupta
JRF
Deptt of Pol Science

घोषणा–पत्र

मै घोषणा करता हूँ कि प्रस्तुत शोध प्रबन्ध "भारतीय राजनीति मे क्षेत्रीयतावाद उत्तराचल पृथक राज्य अन्दोलन के विशेष सदर्भ में" डॉ० (श्रीमती) कृष्णा गुप्ता के निर्देशन मे किया गया मेरा स्वय का मौलिक कार्य है।

मै यह भी घोषणा करता हूँ कि मेरे संज्ञान मे इस विश्वविद्यालय या अन्य विश्वविद्यालय में किसी उपाधि हेतु प्रस्तुत किसी कार्य का कोई भाग शोध प्रबन्ध मे सम्मिलित नहीं है।

Dt- 20.7.03

शोधकर्ता
B.K Gupta
(बृजेश कुमार गुप्त)
अनुसधान अध्येता
राजनीति विज्ञान विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद

Dr. Krishna Gupta
Reader

Department of Political Science
Faculty of Social Science
Allahabad University, Allahabad

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **श्री बृजेश कुमार गुप्त** आत्मज **श्री हरिशंकर गुप्त** 27 नवम्बर, 1998 से इलाहाबाद विश्वविद्यालय के राजनीति विज्ञान विभाग मे मेरे निर्देशन मे शोध छात्र के रूप में पजीकृत है। शोध का विषय है *"भारतीय राजनीति में क्षेत्रीयतावाद : उत्तरांचल पृथक राज्य आन्दोलन के विशेष संदर्भ में।"* शोध कार्य पूर्ण हो चुका है जो मेरे निर्देशन मे किया गया एक मौलिक कार्य है। शोध प्रबन्ध का अवलोकन मेरे द्वारा कर लिया गया है। अत इसे प्रस्तुत करने की अनुमति प्रदान की जाती है।

पर्यवेक्षक :
Krishna Gupta 28.7.03
डॉ0 (श्रीमती) कृष्णा गुप्ता
सीनियर रीडर
राजनीति विज्ञान विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
Political Science Department
University of Allahabad

ईमानदारी, स्वाभिमान तथा धैर्य
के प्रतीक पूजनीय पिताजी
श्री हरि शंकर गुप्त
तथा
निर्मल ममतामयी माताजी
श्रीमति सावित्री देबी गुप्ता
ही मेरे आदर्श तथा मेरे जीवन के प्रेरणास्रोत है।
इन्होने ही मुझे कठिन–से–कठिन जीवन मे नयी
ऊंचाइयो को छूने एव निरन्तर सफलता
प्राप्त करने की प्रेरणा दी है।

इस शोध प्रबन्ध के रूप में मेरे लेखन का यह छोटा–सा
प्रयास पिताजी एव माताजी को
सादर समर्पित है

–बृजेश कुमार गुप्त

आभारोक्ति

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के अन्तर्गत किये गये शोध कार्य के कुशल निर्देशन का उत्तरदायित्व मेरी श्रद्धेया डॉ0 (श्रीमती) कृष्णा गुप्ता, सीनियर रीडर, राजनीति विज्ञान विभाग ने रूचि लेकर किया। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के इस कार्य मे मेरे सामने समय–समय पर विभिन्न समस्याओं को लेकर असमंजस की स्थिति उत्पन्न हुई, किन्तु जो मार्गदर्शन, विवेकदृष्टि, साहस एवं प्रेरणा मुझे अपने शोध प्रबन्ध की निर्देशिका डॉ0 (श्रीमती) कृष्णा गुप्ता से मिली, उसके लिये मै उनका ह्रदय से आभारी हूँ तथा पूर्ण विश्वास है कि भविष्य में भी मुझे उनका आर्शीवाद मिलता रहेगा। आपने इस शोध कार्य का न केवल निर्देशन ही किया वरन् समय–समय पर मातृतुल्य स्नेह देकर उत्साहवर्धन भी किया, जिससे मैं इस कार्य को पूर्ण कर सका। आपके सहज एव गम्भीर प्रश्नो तथा सत्सग ने जीवन मे, गहराई मे उतरने की प्रेरणा प्रदान की।

मै विशेष रूप से ऋणी हूँ, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के राजनीति विज्ञान विभाग के विभागाध्यक्ष डॉ0 आलोक पन्त का जिनकी ओर से मिलने वाले प्रोत्साहन और सहयोग को मै उनके अपार स्नेह का प्रतीक समझता हूँ और उस पर मुझे गर्व है।

मै ह्रदय से आभारी हूँ सचिव (नियोजन) उत्तरांचल शासन– श्री अमरेन्द्र सिन्हा का जिन्होने विषयगत सामग्री एवं महत्वपूर्ण तथ्य प्राप्त करने मे सहयोग प्रदान किया।

मैं डॉ0 के0एन0भट्ट, जी0बी0पत सामाजिक विज्ञान सस्थान, इलाहाबाद का भी आभारी हूँ जिन्होने शोध प्रबन्ध के प्रस्तुतीकरण के सदर्भ मे अपना बहुमूल्य मार्गदर्शन प्रदान किया।

मैं अपनी वात्सल्य एवं स्नेहमयी माता श्रीमती सावित्री देवी गुप्ता, पूज्य पिता श्री हरीशंकर गुप्त एव चाचा श्री कृपा शकर गुप्त के प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित करता हूँ जिनका आर्शीवाद एव प्रेरणा मेरे सम्पूर्ण अध्ययन में सहायक सिद्ध हुए। कृतज्ञ हूँ मै अपने भइया श्री अवधेश कुमार गुप्त एव श्वसुर श्री शरद कुमार रूसिया के प्रति जिनके स्नेहिल आशीर्वचन एवं उत्साहवर्धन के परिणामस्वरूप मै अपने इस शोध प्रबन्ध को पूर्ण कर सका। इस कार्य को करने में मेरी जीवन संगिनी श्रीमती रश्मि गुप्ता ने भी मुझे उत्साह एव सम्बल प्रदान किया, जो मेरे लिये अत्यन्त सुख एवं गर्व का विषय है।

अन्तत. मै अपने मित्रों श्री प्रमोद कुमार केसरवानी, शोध छात्र, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, श्री अखिल सिंह (फैजाबाद), श्री घनश्याम (ललितपुर), सर्वश्री दिनेश कुमार धुरिया, के0के0 श्रीवास्तव, के0के0सक्सेना एवं बहन कु0 रेनू सक्सेना (बॉदा) का भी आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होने इस शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने मे समय–समय पर महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया।

पुनश्च· मै पी0डी0कम्प्यूटर्स, सिविल लाइन, बॉदा के कम्प्यूटर आपरेटर श्री बिहारी शरण निगम के अथक प्रयास के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिन्होंने मेरे इस शोध प्रबन्ध को बडी ही तल्लीनता के साथ सुव्यवस्थित ढग से टंकित किया है।

विनयावनत्

B.K. [signature]

(बृजेश कुमार गुप्त)

अनुसंधान अध्येता

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्राक्कथन

भारत में क्षेत्रीयतावाद की समस्या कोई नवीन समस्या नहीं है बल्कि इसकी जडें अतीत मे काफी गहरी है, फिर भी आधुनिक युग में यह समस्या काफी उभरकर हमारे सामने आयी है। इसके पीछे अनेक आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सास्कृतिक, राजनैतिक कारण है जो क्षेत्रीयतावाद की समस्या को दिन–प्रतिदिन गम्भीर ही बनाते जा रहे हैं। प्राय क्षेत्रीयता दो प्रकार की होती है– आत्मपरक व वस्तुपरक। आत्मपरक क्षेत्रीयता के तत्व है रीति–रिवाज, कला के रूप, भाषा और साहित्य, सामाजिक विरासत, विश्वास, अभिवृत्तिया और मूल्य जो किसी समूह से सम्बन्धित होते है। जबकि वस्तुपरक तत्व है उस समूह का क्षेत्र तथा क्षेत्रीय व पर्यावरणीय परिवेश। ये दोनो प्रकार क्षेत्रीयतावाद के सूचक है।

ब्रिटिश शासन के समय से ही भारत मे क्षेत्रीयता उत्पन्न हो गई थी क्योकि अग्रेजो ने भारत पर अपना साम्राज्य बनाये रखने हेतु भारतीयो को राष्ट्रीय एकता की अपेक्षा उनमे अपने क्षेत्र की पृथकता की भावना सुदृढ की। देश की स्वतन्त्रता के पश्चात् ही नेताओं ने उनमें राष्ट्रीय एकता की चेतना उत्पन्न की। सविधान निर्माताओ ने इसी दृष्टि से संविधान में लोगों को एकल नागरिकता प्रदान की और न्यायपालिका की एकता स्थापित की, अखिल भारतीय लोक सेवा लागू की और केन्द्र की सुदृढता का प्रावधान रखा। किन्तु देश की विशालता व सांस्कृतिक विभिन्नता के कारण शीघ्र ही क्षेत्रीयता पनपने लगी।

क्षेत्रीयता का प्रथम प्रकटीकरण भाषायी राज्य बनाने की मांग के रूप मे उभरा जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण तमिलनाडु मे काग्रेस के ऊपर डी0एम0के0 पार्टी की चुनावों में विजय थी। पंजाब में अकाली आन्दोलन तथा जम्मू कश्मीर मे नेशनल कॉफ्रेस पार्टी का गठन भी क्षेत्रीयता के रूप थे।

पंजाब मे प्रारम्भ मे पजाबी सूबे की मांग उठी। कालान्तर मे यह खालिस्तान की स्थापना की मांग में विकसित हो गई। जम्मू–कश्मीर में जहॉ कुछ लोग अधिक स्वायत्तता की मांग करते है, तो कुछ अलगाववादी तत्वो ने स्वतंत्र राज्य की भी माग कर डाली। असम में उल्फा (यूनाइटेड लिबरेशन फ्रट ऑफ असम) ने अपने अलगाववादी उद्देश्यो के लिये हिंसा का खूब सहारा लिया है और यह संगठन अभी भी सक्रिय है। गोरखालैण्ड की स्थापना हेतु भी बहुत खून बहाया जा चुका है। मणीपुर में भी अलगाववादी गुट क्षेत्रीयतावाद की चपेट में है। दक्षिण में भी अनेक क्षेत्र अधिक स्वायत्तता की मांग करते हैं। तमिलनाडु में भी अधिक स्वायत्तता के लिये काफी संघर्ष हो चुका है। भाषा के नाम पर तो उनका दृष्टिकोण कुछ अधिक ही संकुचित है। भाषा के आधार पर प्रांतों/राज्यों के पुनर्गठन ने भी क्षेत्रीयतावाद को जन्म दिया।

देश में नित नवीन राज्यों का जन्म होता जा रहा है, आज 16 से 28 राज्य हो गये हैं फिर भी अनेक नवीन राज्यों की स्थापना की मांगें हो रही है। इन मांगों के पीछे सक्रिय आन्दोलन भी चल रहे है। कुछ लोगों की मांग है कि उत्तर प्रदेश बडा राज्य है, अस्तु इसको पॉच भागों मे (उत्तरांचल सहित) विभाजित कर दिया जाय। कुछ बुन्देलखण्ड का पृथक क्षेत्र मांग रहे हैं, तो कुछ पश्चिमी

उत्तर प्रदेश के हरित क्षेत्र की मांग कर रहे हैं। बात यही समाप्त नहीं हो जाती है बल्कि कुछ जातियों के समुदाय अपने लिये अलग क्षेत्र की मांग कर रहे है जैसे– बोडो समुदाय बोडो राज्य की और नागा समुदाय वृहद नागालैण्ड की माग कर रहे है। उधर तेलंगाना राज्य की माग चल रही है।

आजाद भारत मे राजनीतिक इकाइयो के पुनर्गठन का मसला भारतीय नेताओं को इस शताब्दी के प्रारम्भ से ही परेशान करता रहा है। स्वतन्त्रता संघर्ष के दिनो मे ही काग्रेस इस समस्या से जूझ रही थी। नौरोजी, तिलक, अरविन्द और गॉधी ने उसी दौरान समय–समय पर क्षेत्रीय सस्कृतियो के महत्व को स्वीकार करने पर बल दिया था। गॉधी जी ने देश को राजनीतिक गतिशीलता प्रदान करने के लिये जो प्रयास किये, उनमे उप–क्षेत्रीय पहचानो को भी पर्याप्त महत्व दिया गया था। वस्तुत इस सदी के दूसरे दशक से ही काग्रेस भाषा आधारित प्रान्तो के पक्ष मे थी और इसने अपनी इकाइयों का पुनर्गठन भाषाई आधार पर ही किया। अनेक कारणो से काग्रेस ने सोचा कि इस बहुभाषी देश मे प्रशासनिक इकाइयों के पुनर्गठन का सर्वश्रेष्ठ आधार भाषा ही हो सकती है। 1956 मे राज्य पुनर्गठन आयोग ने भी इसी विचार का अनुसरण किया। लेकिन भाषा के आधार पर राज्यो के पुनर्गठन के पॉच वर्ष के अन्दर ही नेहरू ने बंबई राज्य को मराठी और गुजराती राज्यो मे बॉटे जाने का विरोध किया। इससे नेहरू के मस्तिष्क मे भाषायी आधार पर राज्यों के गठन की जो परिकल्पना थी, उस पर पुनर्विचार के संकेत मिलते हैं। उन्होने एक पजाबी भाषा–भाषी राज्य के तौर पर पजाबी सूबे के गठन का भी विरोध किया। हालांकि 1966 मे जब पंजाब से हरियाणा को अलग किया गया तो वस्तुत· पंजाबी सूबे का गठन हो ही गया। हकीकत यह है कि राज्यो के निर्माण को लेकर आजादी के बाद के वर्षों में छिडे विवादों के कारण देश में राज्यों के पुनर्गठन के मुख्य उद्देश्य अर्थात् शासन योग्य प्रशासकीय इकाइयों के गठन को ही भुला दिया गया।

अखिल भारतीय चरित्र के दलों के अलावा क्षेत्रवाद पर आधारित अनेक राजनीतिक दल भी बन गये है। डी0एम0के0, ए0डी0एम0के0, तेलगूदेशम, केरल कांग्रेस, तमिल मनीला काग्रेस, अकाली दल आदि अनेक क्षेत्रीय दल भी अस्तित्व मे आये। ये सभी दल क्षेत्रीयतावाद के पोषक है। इस परिस्थिति मे यही प्रश्न उठता है कि क्या भारत की राजनीतिक एकता कायम रह सकेगी, क्या भारत पुनः क्षेत्रो में नही बॅट जायेगा और क्या ऐसा होकर उसकी शक्ति में ह्रास नहीं होगा? भारत, जो कि एक बहुत लम्बी अवधि के पश्चात् एक समग्र इकाई के रूप में विश्व मानचित्र पर उभरा है और जो एक महाशक्ति बनने की ओर अग्रसर हैं, क्या क्षेत्रीयता की बीमारी से त्रस्त होकर कमजोर तो नहीं हो जायेगा?

इन सबका यही उत्तर है कि सभी सम्भावनायें मौजूद हैं। किन्तु जो चिन्ता की जा रही है उसमें अधिक बल नही है। भारत के पास शक्ति है। जो क्षेत्र भारत से अलग होकर स्वतंत्र राज्य की मांग करते है उनको सख्ती से कुचलना ही बेहतर होगा। जो क्षेत्र अधिक स्वायत्तता की मांग करते है उन्हें गुण दोष के आधार पर विकेन्द्रीकरण से लाभ पहुँचाना होगा। राष्ट्र को इस प्रकार का नियोजन करना पढेगा कि सभी क्षेत्रों को संतुलित विकास हो। यदि यह रणनीति अपनायी गयी तो भारतीय राजनीति का क्षेत्रीयतावाद वरदान साबित होगा न कि भारत की एकता के लिये खतरा।

प्रयुक्त शब्द संक्षेपाक्षर–

अ जा		अनुसूचित जाति
अ ज जा		अनुसूचित जनजाति
आसू		ऑल असम स्टूडेन्ट यूनियन
भा.ज पा (बी.जे पी)	:	भारतीय जनता पार्टी
भा क.पा.(सी.पी.आई.)	:	भारतीय कम्युनिष्ट पार्टी
मा क पा. (सी.पी.एम)	.	मार्क्सवादी कम्युनिष्ट पार्टी
ब स.पा.(बी एस पी)	·	बहुजन समाज पार्टी
द्र मु क (डी एम के)		द्रविड मुनेत्र कजगम
द्र क (डी.के)	.	द्रविड कजगम
काग्रेस		भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस (आई)
म.प्र	.	मध्य प्रदेश
रा ज ग.		राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन
आर एस पी.		रिवोल्यूशनरी सोशलिस्ट पार्टी
आई टी बी पी	·	भारत तिब्बत सीमा पुलिस
स पा		समाजवादी पार्टी
तेदपा		तेलगू देशम् पार्टी
यू जी सी		यूनीवर्सिटी ग्रान्ट कमीशन
उ.प्र	·	उत्तर प्रदेश
उक्रांद		उत्तराखण्ड क्रान्ति दल

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय
पृष्ठभूमि,
का निरूपण
और
शोध प्रबन्ध की प्रासंगिकता

अध्याय–1

पृष्ठभूमि, शोध समस्या का निरूपण और शोध प्रबन्ध की प्रासंगिकता

भारत एक बहुत बडा देश है। भौगोलिक रूप से इसमे अनेक विभिन्नताये हैं। शून्य डिग्री तापमान से लेकर झुलसाने वाली गर्मी यहाँ पड़ती है। पहाड, नदी, नाले, घाटियाँ, पठार, वन, दलदल, रेगिस्तान आदि सभी प्रकार की भौगोलिक स्थितियां भारत मे मिलती हैं। इन विभिन्नताओ ने सांस्कृतिक विभिन्नताओं को जन्म दिया है। अनेक प्रकार के धर्म, रीति–रिवाज, पहनावा, भाषाये, बोलियाँ, नृत्य सगीत, कला एव साहित्य इस भारत की विशेषताये है। स्वाभाविक है कि इन विभिन्नताओ से जुडे लोगो की अलग–अलग पहचान है और उनकी आशाये और आकाक्षाये भी अलग है। सभी अपनी इस पहचान को बरकरार रखते हुए अपना विकास व उन्नति चाहते है। यही क्षेत्रीयतावाद के मूल मे है। इस क्षेत्रीयतावाद ने राजनीति को भी बहुत प्रभावित किया है और भारतीय राजनीति मे भी इसने अपना स्थान बना लिया है। क्षेत्रवाद एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है परन्तु भारत के सदर्भ मे विशिष्ट बात यह है कि यहाँ एक क्षेत्र की राजनीतिक सीमा उस क्षेत्र की सास्कृतिक और भाषाई सीमा के समानान्तर है। परिणामत· सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक आकाक्षाओ का तथा स्थिति विशेष से असतुष्ट राजनीतिक क्षेत्र में भी प्रकटीकृत होती है। ये आकाक्षाये मुख्य रूप से बेहतर आर्थिक प्रास्थिति, राजनीतिक शक्ति, अपेक्षाकृत अधिक सहभागिता के रूप मे मुखरित होती रही है। यहाँ तक कि राजनीतिक रूप से अपनी पहचान बनाये रखने के लिये अधिक सहभागिता की ये क्षेत्रीय समूह मांग करते है और कभी–कभी तो पूर्ण स्वतन्त्रता की माग पर भी उतर आते है।

किसी भी लोकतन्त्र मे राजनीतिक स्वायत्तता प्राप्ति की लालसा के आगे सवालिया निशान नहीं खडा किया जा सकता। इस चाह के माध्यम से समुदायों के स्वशासन सम्बन्धी अधिकारों के लिये सामाजिक–सास्कृतिक घटको द्वारा राजनीतिक आन्दोलन छेडा जाना अप्रत्याशित नही है। 1956 में राज्यों के पुनर्गठन के समय आशा की गई थी कि यह मसला तय हो गया है, लेकिन उसके बाद भी देश के विभिन्न भागो मे जातीय अथवा क्षेत्रीय आधार पर नये राज्यों के गठन की माग लगातार उठती रही हैं । सातवें दशक के मध्य से तो और तीव्र हो गई, कभी–कभी तो इन्होने हिंसक रूप भी धारण कर लिया।

भारत मे नौवे दशक से ही स्वायत्तता के बारे मे चल रही राजनीतिक बहस मे विकास और पहचान पर खास जोर दिया गया। इसकी अभिव्यक्ति झारखण्ड, बोडोलैण्ड और उत्तराखण्ड जैसे आन्दोलनों के माध्यम से होती रही है। स्वायत्तता सम्बन्धी आन्दोलनों के नेताओ ने लोगो को लामबन्द करने के लिये गहरा असर डालने वाले दो मुद्दों का सहारा लिया। एक मुद्दा तो जातीय समूहो की 'पहचान के लोप' से सम्बन्धित था और दूसरा मुद्दा था किसी 'क्षेत्र विशेष का अविकसित' रह जाना अथवा किसी जातीय समूह को कंगाल बना दिया जाना। अल्प विकास और अन्य आर्थिक शिकायतों को ही पजाब और जम्मू–कश्मीर में आतंकवाद और विद्रोह का मुख्य कारण बताया गया। इन दोनो मुद्दों को जितना समर्थन मिला, उससे यह स्पष्ट है कि आर्थिक शिकायतें केवल अनुमान आधारित नही, बल्कि वास्तविक थीं।

उत्तराचल मे पिछले दशको की उथल–पुथल का अवलोकन करने पर स्पष्ट होता है कि यहॉ की राजनीति अपेक्षाकृत कारणो के अध्ययन की सीमाओ से परे थी जबकि, पिछले कुछ वर्षों में उत्तर प्रदेश राज्य के इन पर्वतीय भागो मे राजनैतिक परिस्थितिया काफी तेजी से बदली। पृथक राज्य की माग को जनता द्वारा जोर देकर उठाया गया। महसूस किया गया कि यह आर्थिक अलगाव तथा सदियों से नेतृत्व के जातिगत तथा शोषण की राजनीति का परिणाम था। इस क्षेत्र के ससाधनो का अनवरत दोहन किया जाता रहा। यहाँ विद्रोह का झण्डा प्रथमत केन्द्रीयता के विरोध मे उठाया गया। यह सही था अथवा गलत लेकिन राजनैतिक विकृति का परिणाम था तथा भारी मात्राओ मे क्षेत्रीय या उप–क्षेत्रीय शिकायतों का सग्रह था।

इन पर्वतो मे उठा यह ताकतवर तथा लोकप्रिय जन आन्दोलन ऐसे अध्ययनो को भी पुकारता है, जो उन प्रश्नो का उत्तर दे जिनके पीछे वे कारण छिपे है, जिन्होने 1990 के तीव्र आन्दोलन को शक्तिशाली बनाया था। मनोवैज्ञानिक राजनैतिक कारण जिन्होंने बडी सख्या मे लोगो को जिसमे औरते भी शामिल थी, सरकारी कर्मचारियो को तथा विद्यार्थियो को जो पर्वतो के दूर–दराज के कोनो मे रहते थे, को इस आन्दोलन मे शामिल कर लिया। इसकी तीव्रता तथा जन समूह के आगमन का कारण इसके विरोध की प्रकृति अराजनैतिक मुद्दों पर होना थी। राजनैतिक दलो को मूलरूप से विरोध से अलग रखा गया तथा हिंसा को कभी भी स्थापित नही किया गया।

केवल इतना ही नहीं, पृथक राज्य की मांग कभी भी केन्द्र विरोधी यहॉ तक की उत्तर प्रदेश विरोधी भावनाओं के रूप में नहीं बदली और न ही कभी किसी कोने से उत्तेजनायें राज्य को कमजोर बनाने के लिये आयीं। उत्तर प्रदेश सरकार का विशेषकर 1994 का दमन जो कि काफी कुख्यात है, ने मैदानो में रहने वाले लोगों की सद्भावनाओं को पर्वतीय उत्तेजनाओ के पक्ष मे ला दिया। यह कुछ अस्वाभाविक सा लक्षण था, जिसने आन्दोलन को इतनी तेजी से मानसिक माग बना दिया। जबकि ज्यादातर ऐसी मागे जिनमें विदर्भ, तेलगना तथा गोरखालैण्ड शामिल है, इसलिये अनिस्तारित पडी हैं क्योंकि संबंधित संरक्षक राज्यों महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश तथा पश्चिम बगाल की जनता का समर्थन इन्हे प्राप्त नही है। इसके विपरीत उत्तर प्रदेश विधान सभा ने कई अवसरों पर उत्तरांचल पृथक राज्य के लिये प्रस्ताव पारित किया। राज्य की परम्परागत अनिवार्यताओ के अलावा लोगों के लिये यह प्रभावशाली हो जाता है कि इस आन्दोलन की उस अस्वाभाविक प्रगति को देखें जो सामान्य दृष्टि और समझ से परे हैं। जिसने सफलतापूर्वक अपेक्षाकृत एक छोटे समय मे सभी तरफ से वांछित समर्थन प्राप्त कर लिया है।

अपनी पहचान सुरक्षित रखने की चाह और शोषण का विरोध–स्वायत्तता प्राप्ति सम्बन्धी हर आन्दोलन के विकास के दो प्रेरक तत्व रहे हैं। इनके माध्यम से इस विश्वास या कम से कम आशा की अभिव्यक्ति होती रही है कि किसी जातीय समूह या क्षेत्रीय समूह को स्वशासन का अधिकार मिल जाने पर विकास हो सकता है। यह विश्वास और आशा न तो पूरी तरह सच है, और न ही पूरी तरह काल्पनिक।

लोकतन्त्र और विकास के बारे मे चल रही बहस का कोई निष्कर्ष नही निकल सका है। इसलिये इससे भारत मे चल रहे उग्र और मुखर स्वायत्तता सम्बन्धी आन्दोलनों का कोई समाधान नही मिल सका है। पूरे देश के मात्रात्मक अध्ययन से जहॉ लोकतन्त्र और विकास के बीच सकारात्मक सम्बन्ध स्थापित होते हैं, वही इतिहास का गुणात्मक अध्ययन करने पर इन दोनो के बीच एक कमजोर रिश्ता दिखता है। इस प्रश्न का हल ढूढने मे भारतीय अनुभवो से भी कोई मदद नहीं मिलती। विकास के बारे मे भारतीय राज्यो के अनुभवो मे भिन्नता रही है। उदाहरण के तौर पर महाराष्ट्र, गुजरात तथा बिहार के विकास के स्तरो मे प्रत्यक्ष अतर से विरोधाभाषी संकेत प्राप्त होते है। भारत मे राज्य तथा उपराज्यीय स्तर पर स्वायत्तता के लिये कोई त्रुटिहीन मानदण्ड प्रस्तुत कर पाना हमेशा ही कठिन रहा है। आजादी के बाद स्थानीय स्वशासन पर भी अयोग्यता और वित्तीय कुप्रबन्ध के आरोप लगते रहे है।

सविधान की पांचवी और छठी सूची के अन्तर्गत स्वायत्त क्षेत्रीय परिषदो का गठन भी विवादो के घेरे में रहा है। पश्चिम बगाल सरकार और दार्जिलिग गोरखा परिषद के बीच वित्तीय मामलो और परिषद के क्षेत्र मे पंचायत चुनावों को लेकर वाद–विवाद होता रहा है। परिषद के नेताओ का तर्क रहा है कि पचायतो के कारण उनके अधिकार क्षेत्र का ह्रास होता है। लगता है कि बोडो स्वायत्त परिषद दम तोड चुकी है। झारखण्ड स्वायत्त क्षेत्र परिषद का भी शायद ऐसा ही हश्र होता, लेकिन भाजपा के नेतृत्व वाली राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबधन सरकार द्वारा उत्तरांचल, झारखण्ड और छत्तीसगढ नामक नये राज्यो के गठन से वहॉ का परिदृश्य इस समय बदल चुका है।

उत्तरांचल, छत्तीसगढ और झारखण्ड राज्य बन जाने के बाद कुछ और नये राज्यों की मांग एक बार फिर तेज होने लगी है। बोडोलैण्ड, गोरखालैण्ड, तेलंगना, सौराष्ट्र, विदर्भ, कुर्ग, हरित प्रदेश, बुन्देलखण्ड यह सूची बहुत लम्बी है। पूर्व लोकसभाध्यक्ष और राष्ट्रवादी कांग्रेस के वरिष्ठ नेता पी0ए0 संगमा का कहना है कि एक नया राज्य पुनर्गठन आयोग बनना चाहिये जो इस मामलें में नये सिरे से गौर करें। वे कहते हैं कि "सांस्कृतिक और विकास की जरूरतो के हिसाब से और नये राज्य बनाने मे हिचकना नहीं चाहिये। नये राज्यो से लोकतन्त्र और मजबूत होगा। यदि नये राज्यो की मांग को दबायेंगे तो इसका नकारात्मक असर ही होगा। जब अमेरिका में 50 राज्य हो सकते है तो भारत जैसे एक अरब आबादी वाले देश में राज्यों की संख्या बढ क्यों नहीं सकती है।"[1]

उत्तर प्रदेश के और हिस्से करने की माग भी तेज हो सकती है। बुन्देलखण्ड व पूर्वांचल की मांग पहले से ही उठती रही है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश को हरित प्रदेश के रूप मे गठित करने की मांग को लेकर राष्ट्रीय लोकदल के प्रमुख अजीत सिह अपना आन्दोलन तेज कर चुके हैं। उनका कहना है कि "उत्तरांचल तो एक शुरूआत भर है। केन्द्र ने सहजता से हमारी बात नहीं सुनी तो लोग हरित प्रदेश के लिये झारखण्ड जैसा झंझावती आन्दोलन भी खडा कर देंगे।"[2] बोडों नेताओं ने घोषणा कर दी है कि अब उन्हें कोई बोडोलैण्ड पाने से रोक नही सकता। बोडो नेता और लोकसभा सदस्य एस0के0 विस्वमूथियरी का कहना है कि केन्द्र सरकार ने बोतल से जिन्न आजाद कर दिया है और अब

1. अमर उजाला, 27.08.2000, रविवासरीय पृ0 1।
2. तदैव।

हम बोडोलैण्ड लेकर रहेगे। सुखद बात यह है कि केन्द्र सरकार ने समय रहते इस समस्या पर ध्यान दिया और इसके समाधान की दिशा मे ठोस कदम उठाते हुए 10 फरवरी, 2003 को असम सरकार और बोडो लिबरेशन टाइगर्स (बी एल टी) के साथ एक त्रिपक्षीय समझौते पर हस्ताक्षर किये। इस समझौते के तहत बोडोलैण्ड क्षेत्रीय परिषद के गठन का रास्ता साफ हो गया है और पृथक बोडोलैण्ड राज्य की माग को लेकर 15 वर्ष से चल रहे सघर्ष के समाप्त हो जाने की उम्मीद बनी है। गोरखा नेशनल लिबरेशन फ्रण्ट के नेता सुभाषा घीसिग ने अलग गोरखालैण्ड की माग उठानी शुरू कर दी है। अगस्त, 2000 मे दिल्ली मे आयोजित एक प्रेस कान्फ्रेस मे बोडो नेताओ ने गोरखालैण्ड, तेलगना, विदर्भ, बुन्देलखण्ड, कुर्ग व सौराष्ट्र समेत 10 नये राज्यो के गठन की बात कही।

महाराष्ट्र मे विदर्भ की माग बहुत पुरानी है। यह आन्दोलन पिछले कुछ वर्षों मे ठण्डा रहा है, लेकिन तीन राज्यो के गठन के बाद विदर्भ मे राजनीतिक गतिविधियॉ तेज होने लगी है। राष्ट्रवादी काग्रेस और काग्रेस के स्थानीय नेताओ ने दबाव बढा दिया है। भाजपा पहले से ही इस माग की समर्थक रही है। विदर्भ के साथ ही अलग आन्ध्र प्रदेश मे तेलगना का आन्दोलन फिर करवट लेने लगा है। हालाकि आन्ध्र के मुख्यमत्री चन्द्र बाबू नायडू इस माग के एकदम खिलाफ है। नायडू नही चाहते कि देश मे अब और नये राज्य बने। वे इन तीन नये राज्यो के गठन के खिलाफ भी रहे है।

अब थोडा इतिहास पर भी नजर डाले कि यह प्रक्रिया शुरू कहा से हुई। जब देश आजाद हुआ तो उस समय देश मे 562 रियासते थी। तत्कालीन गृहमत्री सरदार पटेल ने इन रियासतो को एक सूत्र मे पिरोने का काम किया था। एकीकरण की यह प्रक्रिया तब उल्टी मुडी जब पजाब को तीन हिस्सो– हरियाणा, हिमाचल प्रदेश व पजाब मे, बम्बई को दो हिस्सो– गुजरात व महाराष्ट्र मे और असम को सात हिस्सो–असम, मेघालय, नागालैण्ड, मिजोरम, अरूणाचल प्रदेश, त्रिपुरा व मणिपुर मे बाटा गया। उस समय भी तर्क यही था कि छोटे राज्य होने से वहा के लोगो की आकाक्षाओ को पूरा करने मे मदद मिलेगी और सक्षम प्रशासन दिया जा सकेगा। उत्तराचल, झारखण्ड व छत्तीसगढ के गठन के पीछे भी यही तर्क काम कर रहा है और यही तर्क अब दूसरे नये राज्यो के लिये आन्दोलन का आधार भी बनने जा रहा है। वैसे भी यदि किसी क्षेत्र मे अपने विकास, उन्नति और प्रगति की अपार उत्कठा हो तो उसे इसका अवसर मिलना ही चाहिये। देखे तो क्षेत्रीय आन्दोलनो की पृष्ठभूमि मे एक कारण तो सदैव दिखाई देगा– वह है पहचान की लडाई। यह ऐसा प्राथमिक सवाल है जो कभी–कभी और सम्भवत सदैव भावनाओ को उद्वेलित करता रहा है और तब यह सवाल और भी अहम हो जाता है जब जनता की पहचान की लडाई के साथ आर्थिक स्वावलबन का सवाल भी हो।

क्षेत्रीय विफलता तथा सास्कृतिक अस्मिता की सयुक्त चेतना से भारतीय राष्ट्र की अब तक की केन्द्रोन्मुख परिभाषा को सीमात प्रदेशो,तटीय प्रदेशो तथा मध्य देश के क्षेत्रो मे अस्वीकारा जा चुका है। विराटता को विरक्तिभाव से देखा जा रहा है। अत केन्दीयकरण की प्रवृत्ति को त्यागते हुये एक विकेन्द्रित राज्य सरचना की तरफ कदम बढाने की जरूरत है। भारतीय राष्ट्रीयता की नयी जरूरतो के अनुकूल हमारी प्रशासनिक व्यवस्था के पुनर्गठन के प्रति उन्नत नयी राष्ट्रीय सहमति को क्रियान्वित किये बिना हम राष्ट्रनिर्माण की दिशा मे उत्पन्न अवरोधो का निराकरण नही कर सकते।

आवश्यकता इस बात की है कि एक राज्य पुनर्गठन आयोग की सहायता से आर्थिक विकास, प्रशासकीय सुविधा, स्थानीय सस्कृति और विशेष भौगोलिक परिस्थितियो को लेकर नये व छोटे राज्यो के गठन पर नये सिरे से विचार कर इस अध्याय को आने वाले कुछ समय के लिये बन्द कर दिया जाय। यदि ऐसा नही किया गया तो सम्भव है कि आज का पृथक राज्य आन्दोलन कल देश से अलग होने की माग मे तब्दील हो जाये।

पुनर्पठन

भारतीय सघवाद के विद्वानो ने विभिन्न सामाजिक तथा आर्थिक परिप्रेक्ष्य मे क्षेत्रीयतावाद का अध्ययन किया है। इनमे ज्यादातर लोगो ने उन तत्वो को पहचानने का कार्य किया जो क्षेत्रीय भावनाओ की प्रवृत्तियो को तेज करती है। इकबाल नारायन[3] ने क्षेत्रीय भावनाओ के विकास के परिप्रेक्ष्य मे यह तथ्य स्थापित किया कि ये कुछ विशेष क्षेत्र अथवा हिस्से मे सामाजिक तथा आर्थिक अलगाव का परिणाम है। उनका कहना है कि ऐसे विचार (क्षेत्रीय भावनाये) तब उत्पन्न होते है जब केन्द्रीय भू–तत्व अपने आपको सगठित रखने के लिये उन क्षेत्रो का तिरस्कार करते है। ए0के0वर्मा[4] ने अपने लेख मे यह स्थापित किया है कि किसी भी नवीन राज्य के' गठन मात्र से ही उस क्षेत्र की समस्याओ का समाधान नही होता यद्यपि उस नवीन राज्य मे नूतन चेतना व आशा का सचार अवश्य होता है। एस0एस0भट्ट[5], आर जी नायक[6], हेमलता राय[7] आदि के महत्वपूर्ण ग्रन्थो का सम्बन्ध भारत मे क्षेत्रीय विषमताओ से है।

एस0एम0सईद[8], जे0आर0सिवाच[9], डब्ल्यू0एच0मौरिस जोन्स[10], पाऊल ब्राज आर0[11], रजनी कोठारी[12], विपिन चन्द्र, मृदुला मुखर्जी & आदित्य मुखर्जी[13] के ग्रन्थो मे अन्य मुद्दो के अलावा क्षेत्रवाद, जातिवाद, साम्प्रदायिक हिसा, भूमिपुत्र सिद्धान्त, राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या, क्षेत्रीय राजनीतिक दलो का भारत की राजनीति पर प्रभाव, राज्यो का भाषा के आधार पर पुनर्गठन, भारत मे राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या इत्यादि पर समुचित विचार मिलते है। विपिनचन्द्र एव अन्य ने स्वतन्त्रता प्राप्ति से लेकर बीसवी सदी की समाप्ति तक भारत मे राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्र मे हुये विकास का विश्लेषण अत्यन्त प्रमाणिक ढग से किया है।

---

3 नारायन, इकबाल (1976), *"कल्चरल प्लूयरिज्म, नेशनल इन्टीग्रेशन एण्ड डेमोक्रेसी इन इण्डिया"*, एशियन सर्वे, अक्टूबर।

4 वर्मा, ए०के० (1998), *"छोटे राज्यो की बडी सवेदनाये"*, दैनिक जागरण, अगस्त 14।

5 भट्ट, एल०एस० (1982), *रीजनल इनइक्वल्टीज इन इण्डिया एन इण्टर स्टेट एण्ड इन्टरा स्टेट एनालिसिस,* नई दिल्ली, एस०एस०आर०डी०।

6 नायक, आर०जी० (1981), *रीजनल डिसपॉयरटीज इन इण्डिया,* नई दिल्ली, अगरिका पब्लिकेशन।

7 राय, हेमलता (1984), *रीजनल डिसपॉयरटीज एण्ड डेवलपमेन्ट इन इण्डिया,* नई दिल्ली, आशीष पब्लिकेशन।

8 सईद, एस०एम० (1998), *भारतीय राजनीतिक व्यवस्था,* लखनऊ, सुलभ प्रकाशन।

9 सिवाच, जे०आर० (1990), *डायनामिक्स ऑफ इण्डियन गर्वनमेट एण्ड पॉलिटिक्स,* एव (1992), *भारत की राजनीतिक व्यवस्था,* चढीगढ़, हरियाणा साहित्य अकादमी।

10 जोन्स, डब्ल्यू०एच०मौरिस (1970), *भारतीय शासन एव राजनीति,* दिल्ली, सुरजीत पब्लिकेशन।

11 ब्राज, पाऊल आर० (1992), *द पॉलिटिक्स ऑफ इण्डिया सिन्स इडिपेडेस,* कैम्ब्रिज यूनिव० प्रेस।

12 कोठारी, रजनी (1990), *भारत मे राजनीति,* नई दिल्ली, ओरियट लाग्मैन लि०।

13 चन्द्र, विपिन, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी (2002), *आजादी के बाद का भारत,* 1947–2000, दिल्ली विश्वविद्यालय, हिस्ट्री माध्यम कार्यान्वय निदेशालय।

साम्प्रदायिकता पर विपिन चन्द्र की पुस्तक "आधुनिक भारत मे साम्प्रदायिकता" जो मूलत 1947 के पूर्व भारत मे साम्प्रदायिकता के विश्लेषण तक सीमित है और इसमे साम्प्रदायिकता का अध्ययन इसके विरूद्ध किये जाने वाले सघर्षों के सदर्भ मे किया गया है के अलावा प्रभा दीक्षित[14], रशीद्दुदीन खान[15] और फ्रासिस राबिन्सन[16] की पुस्तको से भी साम्प्रदायिकता के विविध पक्षो पर महत्वपूर्ण सूचनाये प्राप्त होती है। जबकि जातिवाद पर रजनी कोठारी[17] और रावर्ट एल0हार्डग्रेव[18] के ग्रन्थो से महत्वपूर्ण जानकारी प्रमाणित और विश्लेषणात्मक ढग से प्राप्त होती है। रजनी कोठारी ने भारत के विभिन्न प्रान्तो मे जातीय राजनीति का विश्लेषण करते हुए इसे जेनस लाइक मॉडल कहा है और यह मत स्थापित किया है कि भारतीय राजनीति और जाति व्यवस्था के पारस्परिक सबधो के विषय मे यह आशा करना कि जनतत्रीय सस्थाओ की स्थापना के बाद जाति व्यवस्था का लोप हो जाना चाहिए, एक भ्रामक और त्रुटिपूर्ण विचार है। उनका यह दावा है कि कोई भी सामाजिक तत्र कभी भी पूर्णतया समाप्त नही हो सकता, अत यह प्रश्न करना कि क्या भारत मे जाति व्यवस्था का लोप हो रहा है, व्यर्थ है। जबकि हार्डग्रेव ने अपने ग्रन्थ मे दक्षिण भारत मे चलाये गये पृथक द्रविडस्तान की माग का विश्लेषण वस्तुपरक ढग से किया है।

सिक्ख पृथकतावाद पर के0पी0एस0गिल[19], बलदेव राज नायर[20], डी0डी0बसु[21] के ग्रन्थो को काफी महत्वपूर्ण माना जा सकता है। डी0डी0बसु ने सिक्खो के खालिस्तान की स्थापना के प्रयास और आनन्दपुर साहब प्रस्ताव के द्वारा की गयी माग का परीक्षण सवैधानिक प्राविधानो के परिप्रेक्ष्य मे किया है और इस बात पर प्रकाश डाला कि किन परिस्थितियोवश अकाली दल ने अपने राजनैतिक उद्देश्यो की पूर्ति हेतु हिन्दू और सिक्खो के मध्य दरार डालना शुरू किया और आतकी गतिविधियो को समर्थन दिया। गिल का ग्रन्थ पजाब मे विशेषतया नब्बे के दशक के आतकवाद पर केन्द्रित है। जबकि बलदेव नायर ने पजाब के पृथकतावादी आन्दोलन के सदर्भ मे धर्म पर आधारित राजनीति का चित्रण किया है।

भारत मे राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या पर विभिन्न विद्वानो ने काफी अध्ययन किया है, जिसमे उनके द्वारा भारत मे राष्ट्र निर्माण के प्रयत्नो मे बाधक कारणो का पता लगाने के साथ–साथ उनके निदान के उपायो पर भी प्रकाश डाला गया है। इनमे सत्येन्द्र किशोर[22], निर्मल कुमार बोस[23],

---

14 दीक्षित, प्रभा (1974), *कम्यूनलिज्म, अ स्ट्रगल फॉर पावर,* नई दिल्ली।

15 खान, रशीद्दुदीन सपा० (1970), *"सेल्फ व्यू ऑफ मिनॉरिटीज द मुसलिम्स इन इण्डिया"* इण्टरनेशनल सेन्टर, नई दिल्ली द्वारा आयोजित सेमिनार, *"मिनॉरिटीज इन नेशन बिल्डिग"* मे प्रस्तुत मीमियोग्राफ।

16 राबिन्सन, फ्रासिस (1975), *सेपरेटिज्म अमग इडियन मुसलिम्स, द पॉलिटिक्स ऑफ दि यूनाइटेड प्रॉविन्सेज मुस्लिम, 1860–1923,* दिल्ली।

17 कोठारी, रजनी (1970), *कास्ट इन इडियन पॉलिटिक्स,* नई दिल्ली, ओरियन्ट लाग्मैन लि०।

18 हार्डग्रेव, राबर्ट एल० (1965), *द द्रविडियन मूवमेन्ट,* बम्बई।

19 गिल, के०पी०एस० (1997), *द नाइट ऑफ फाल्सहुड,* नई दिल्ली।

20 नायर, बलदेव राज (1966), *सिख सेपरेटिज्म इन पजाब, इन साउथ एशियन पॉलिटिक्स एण्ड रिलीजन,* डोनाल्ड इ स्मिथ द्वारा सपा० प्रिस्टन यूनिव० प्रेस।

21 वसु, डी०डी० (1994), *कमेन्ट्री ऑन दि कान्सटीट्यूनल आस्पेक्टस ऑफ सिक्ख सेपरटिज्म,* नई दिल्ली, प्रेन्टिस हाल ऑफ इण्डिया।

22 किशोर, सत्येन्द्र (1987), *नेशनल इटिग्रेशन इन इण्डिया,* नई दिल्ली, स्टर्लिंग पब्लि०।

23 बोस, निर्मल कुमार (1967), *प्राब्लमा ऑफ नेशनल इन्टीग्रेशन,* शिमला, इण्डियन इस्टीट्यूट ऑफ एडवास्ड स्टडी।

योगेश अटल[24], वी0के0राय[25], जियाद्दुदीन खान[26], एल0आर0सिह[27], एच0नागमणि[28] आदि के विचार उल्लेखनीय है।

यद्यपि उत्तराचल राज्य का मुद्दा उत्तर प्रदेश के पर्वतीय जिलो मे 1938 से उस समय से बना हुआ था, जबकि इसे श्रीनगर मे पहली बार उठाया गया था। तथापि यह विद्वानो को आकर्षित करने मे अधिक सफल नही हो पाया और उत्तराचल आन्दोलन पर ज्यादा कार्य सामने नही आया। ज्यादातर पुस्तके, लेख जो शोध पत्रिकाओ और समाचार पत्रो मे लिखे गये इस क्षेत्र की पर्यावरणीय समस्याओ से जुडे हए थे, विशेषकर चिपको तथा टेहरी बाध विरोधी आन्दोलन। बाकी विरोध के पत्रकारिता के वर्णन थे।

वास्तव मे उत्तराचल का अध्ययन उतना राजनैतिक वैज्ञानिको ने नही किया जितना कि पर्यावरणशास्त्रियो समाजशास्त्रियो तथा जनसख्याशास्त्रियो ने किया। ज्यादातर अध्ययन या तो पलायनवाद की पद्धति तथा नारी के ऊपर कार्यभार या चिपको आन्दोलन, टेहरी बाध विरोधी आन्दोलन तथा मद्य निषेध आन्दोलन से सबधित है। ऐतिहासिक अध्ययन केवल राजाओ तथा महाराजाओ की वशावली ठीक करने से सबधित हैं। लेकिन कुछ प्रगतिशील ऐतिहासिक कार्यो मे राजनीति प्रेरित सुधार आन्दोलनो जैसे 'कुली बेगार' एव 'शिल्पकार आन्दोलन, (कुमाऊँ मे) तथा धद्क्स एव प्रजामडल आन्दोलन (पूरे टेहरी राज्य मे) के अध्ययन पर ध्यान दिया गया। बहुत से समकालीन उत्तराखण्ड के वर्णन सामाजिक तथा आर्थिक ऑकडो को दर्शाने के लिये प्रयोग किये गये। कुछ अध्ययनो मे इस क्षेत्र की सामाजिक तथा आर्थिक प्रवृत्तियो की तुलना 'हिमाचल मॉडल' के रूप मे की गई है, जैसा कि अर्मत्य सेन ने 'केरल मॉडल' के बारे मे की थी। जिसमे आर्थिक प्रथक्करण (सुविधा न देने की प्रवृत्ति) के सिद्धान्त को काफी जोर शोर से सामने लाया गया। इसके लिये जान–बूझकर ऐसे तुलनात्मक ऑकडे दुलर्भ रूप से प्रस्तुत किये गये जो उ0प्र0 राज्य के दृष्टिकोण से भौगोलिक विभिन्नता का परिणाम था।

उत्तराचल के इतिहास पर आधारित बद्रीदत्त पाण्डे[29], हरिकृष्ण रतूडी[30], भजन सिह[31], सन्तान सिह नेगी[32], मनीराम बहुगुणा[33], शिवप्रसाद चरन 'डबराल'[34], गोविन्द चातक[35] और एस0ए0एच0जैदी & रेहाना जैदी[36] के ग्रन्थ है। लेकिन ज्यादातर ग्रन्थ राजनैतिक शासनकाल

---

24 अटल, योगेश (1981), *बिल्डिग ए नेशन , एस्से आन इण्डिया,* नई दिल्ली, अभिनव पब्लिकेशन।

25 राय, बी०के० (1985), *नेशनल इटीग्रेशन सम अनसाल्वड इश्यूज,* बाम्बे, भारतीय विद्या भवन।

26 खान, जियाद्दुदीन (1983), *नेशनल इन्टीग्रेशन इन इण्डिया–इश्यूज एण्ड डायमेन्शनस्,* नई दिल्ली, एशोसियेटेड पब्लिशिग हाऊस।

27 सिह, एल०आर० (1994), *नेशन बिल्डिग एण्ड डवलपमेन्ट प्रॉसेज,* जयपुर, रावत पब्लिकेशन।

28 नागमणि, एच० (1981), *नेशन बिल्डिग एण्ड रीजनल डवलपमेन्ट,* जापान, यूनाइटेड नेशन सेन्टर फॉर रीजनल डवलपमेन्ट।

29 पाण्डे बद्रीदत्त (1990), *कुमाऊँ का इतिहास* अल्मोडा, श्री अल्मोडा बुक डिपो प्रथम प्रकाशन 1937।

30 रतूडी, हरीकृष्ण (1995), *गढवाल का इतिहास,* टेहरी, भागीरथी प्रकाशन, प्रथम प्रकाशन 1928।

31 सिह, भजनसिह (1986), *आर्यो का आदि निवास , मध्य हिमालय,* टेहरी भागीरथी प्रकाशन।

32 नेगी, सतान सिह (1988), *मध्य हिमालय का राजनैतिक एव सास्कृतिक इतिहास,* नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन।

33 बहुगुणा, मनीराम (1995), *गृह राज्य शासन की यादे,* टेहरी, कुसुमलता प्रकाशन।

34 डबराल, शिवप्रसाद "चरन" (n d.), *उत्तराखण्ड का राजनैतिक व सास्कृतिक इतिहास,* खण्ड–1 से 12, डोगड्डा, वीरगाथा प्रकाशन।

35 चातक, गोविन्द (1990), *भारतीय लोक सस्कृति का सदर्भ मध्य हिमालय,* नई दिल्ली, तक्षशिला प्रकाशन।

36 जैदी, एस०ए०एच० & रेहाना जैदी (1985), *गढवाल मुगल सबध (1526–1707),* पौड़ी, हिमालया न्यूज एजेन्सी।

तथा उसकी वशावली से सबधित है। बद्रीदत्त पाण्डे ने कुमॉऊ के सभी राजाओ छोटे या बडे की गणना गम्भीरतापूर्वक की है। इसी प्रकार हरीकृष्ण रतूडी तथा मनीराम बहुगुणा ने गढवाल राज्य की चर्चा की है। डबराल वास्तव मे गढवाली इतिहास के पर्याय माने जाते है, जिनके ग्रन्थ हिन्दी मे कई खण्डो मे उपलब्ध है और उन्हे सूचनाओ का विश्वस्त स्रोत माना जाता है। जैदी एव जैदी ने मध्य युग मे गढवाल मुगल सबधो का अध्ययन किया है और उनका ग्रन्थ क्षेत्रीय इतिहास के पक्ष मे दुर्लभ सामग्री से युक्त है। भजन सिह 'सिह' ने बडे मनोरजक ढग से प्राचीनकाल मे गढवाल हिमालय मे आर्यो के उद्भव का इतिहास लिखा है। जहॉ पर उन्होने यह तर्क दिया है कि वही से आर्य दुनिया के अन्य क्षेत्रो मे फैल गये।

उत्तराचल की पहाडियो के इस पारम्परिक इतिहास के वर्णन के अलावा कुछ समकालीन विद्वानो ने जन आन्दोलन के सबध मे औपनिवेशिक तथा उत्तर औपनिवेशिक काल का वर्णन किया है। शेखर पाठक ने बहुत सारे सामाजिक तथा राजनैतिक आन्दोलनो का विस्तार से अध्ययन किया है। वास्तव मे एक वार्षिक जर्नल 'पहाड' जो नियमित नही है का सपादन पाठक स्वय किया करते है, जिसमे उन्होने उत्तराचल के राजनैतिक, सामाजिक, सास्कृतिक, ऐतिहासिक तथा प्रजातीय (कबीलाई) पक्षो पर बहुत ही लाभकारी विश्लेषणात्मक सामग्री दी है। पाठक एव रामचन्द्र गुहा[37] ने जन इतिहास लिखा जिसमे दमन के विरूद्ध किये गये आन्दोलन जैसे शिल्पकार आन्दोलन, कुली बेगार आन्दोलन तथा बाद मे पर्यावरणविद्ो के पहाडी समाज की सुरक्षा के लिये जगल कटान के विरोध मे किये गये आन्दोन का वर्णन है। कुछ ऐसी ही रोशनी अतुल सकलानी[38] के गढवाल राज्य के राजकुमारो के अध्ययन मे मिलती है। जिसमे गढवाली राष्ट्रीयता की जडे 20वी शताब्दी के आरम्भ मे सुधार आन्दोलनो जैसे– गढवाल यूनियन या गढवाल सभा, सरोला सभा आदि के रूप मे मिलती है। सकलानी ने धढको (विशेषरूप से रावैन धढक) के योगदान का वर्णन किया है जिसने राज्य मे विरोधी आन्दोलन के विकास को जन्म दिया और प्रजामडल आन्दोलन के सगठन मे अग्रणी भूमिका निभायी है।

उत्तराचल के पहाडी समाजो को समझने के लिये ऐतिहासिक प्रयत्नो के अतरिक्त कुछ अच्छे विवेकपूर्ण अध्ययन सामाजिक प्रजातिशास्त्रियो के द्वारा किये गये है। महेश्वर पी0जोशी, एलन सी0 फैन्जर एव चार्ल्स डब्ल्यू0 ब्राऊन[39] ने 1990 मे एक खड प्रकाशित किया जिसमे भोटिया समुदाय, जाति प्रावैगिकता तथा जातीय तरलता, राजपूतो मे स्वामित्व की भावना तथा कुमाऊॅ के शिल्पकार आदि के सबध मे लेख लिखे गये। जैसल्लाग तथा ए0डी0मोदी के ग्रन्थ मे जे0एस0भडारी का लेख कुमाऊॅ के विभिन्न सीमान्त समुदाओ के सबध मे सूचना प्रदान करता है और वो पाठको को उत्तरकाशी, चमोली तथा पिथौरागढ जिले के सीमान्त घाटियो मे बसे भोटियाओ के पास ले जाता है।

---

37 पाठक, शेखर & रामचन्द्र गुहा (1996), *'राष्ट्रीय इतिहास मे उत्तराखण्ड स्थानीय इतिहास, जन इतिहास या राष्ट्रीय इतिहास'*, नैनीताल, पहाड।

38 सकलानी, अतुल (1987), *द हिस्ट्री ऑफ हिमालयन प्रिन्सली स्टेट चेन्ज कान्फलिक्टस एण्ड अवेकनिग (एन० इण्टरप्रेटेटिव हिस्ट्री ऑफ प्रिन्सली स्टेट ऑफ टेहरी गढवाल, यू०पी०, ए०डी० 1815–1949 ए०डी०)*, देलही, दुर्गा पब्लिकेशन।

39 जोशी, महेश्वर पी०, एलन सी० फैन्जर & चार्ल्स डब्ल्यू० ब्राऊन सपा० (1990), *हिमालय पास्ट एण्ड प्रेजेन्ट*, अल्मोडा, श्री अल्मोडा बुक डिपो।

गढवाल तथा कुमाऊँ के कुछ समुदाओ के औपनिवेशिक तथा सामाजिक इतिहास के सबध मे राय बहादुर पतिराम[40] के ग्रन्थ का 1992 मे तथा अटकिन्शन[41] के गजट को जो कुमाऊँ के कमिश्नर थे का 1974 मे पुन प्रकाशन किया गया, को काफी सूचनापूर्ण माना जा सकता है।

जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है कि उत्तराचल की पहाडियो मे विद्वानो का ध्यान भारी मात्रा मे लोगो (ज्यादातर पुरूषो) के पलायन, भौगोलिक असन्तुलन, प्राकृतिक सवेदनशीलता तथा पहाडो से जुडी आर्थिक समस्याओ की ओर आकर्षित किया। परिणामस्वरूप विभिन्न विद्वानो ने अपने अध्ययनो मे क्षेत्र की समस्याओ पर आधारित विविध प्रकार के विकास मॉडल जो पहाड के निवासियो[42] की विशेष समस्याओ के लिये उपयुक्त माने गये लागू किये। इनमे अन्य के अलावा एम0पी0जोशी सपादित ग्रन्थ मे मल्लिकार्जुन जोशी व पी0सी0पाण्डे के लेख तथा सुरेश नौटियाल[43], एस0सी0खडगवाल[44], जी0एस0मेहता[45], आर0एस0बोस[46], जितेन्द्र सिह एव एम0एस0 धस्माना के एल0पी0 विद्यार्थी एव मारवन झा[47] सपादित ग्रन्थ शामिल है।

पाण्डे, मेहता, बोरा तथा धस्माना ने पलायनवाद तथ श्रम से सबधित समस्याओ पर अध्ययन किया। जबकि जोशी और खडगवाल के अध्ययन पहाडो के भौगोलिक, भौतिक तथा सास्कृतिक वातावरण पर केन्द्रित है। सुरेश नौटियाल के ग्रन्थ मे उत्तराचल की सामाजिक, सास्कृतिक, आर्थिक, भौगोलिक एव राजनैतिक समस्याओ और चिन्ताओ का आर्थिक–प्रशासनिक सदर्भ मे एक व्यापक अध्ययन, आकलन और साथ ही उसके भावी स्वरूप का आकल्पम किया गया है। इन विस्तृत अध्ययनो के अलावा ए0एस0रावत[48], एस0एस0नेगी[49], केदारसिह फोनिया[50] तथा अन्य दूसरे लेखको ने भी बहुत सारे ग्रन्थ लिखे है, जो पर्वतीय समाज के विभिन्न पक्षो पर प्रकाश डालते है। ये ग्रन्थ सामान्य पाठको की रूचि के लिये पर्याप्त है, जिसमे पर्वतीय समाज की प्रावैगिकता के सबध मे अपर्याप्त सूचना मिलती है।

---

40 पतिराम, राय बहादुर (1992), *गढवाल एन्सिएन्ट एण्ड मार्डन,* देलही, विन्टेज बुक।

41 अटकिन्शन, एडविन टी० (1974), *कुमाऊ हिल्स इट्स हिस्ट्री, ज्योग्राफी एण्ड एन्थ्रोपालॉजी विद रिफ्रेन्स टू गढवाल एण्ड नेपाल* (ऑफ प्रिन्ट फ्राम दि हिमालयन गजेटियर, खण्ड–2), देलही, कास्मो।

42 जोशी, महेश्वर पी० (1990), *उत्तराचल (कुमाऊँ–गढवाल) हिमालय (एन एस्से इन हिस्टोरिकल एन्थ्रोपालॉजी),* अल्मोडा श्री अल्मोडा बुक डिपो।

43 नौटियाल, सुरेश सपा० (1994), *उत्तराखण्ड एक अध्ययन, आकलन और प्रस्ताव,* नई दिल्ली, अभिकथन पब्लिकेशन्स।

44 खडगवाल, एस०सी० (1993), *फिजिको–कल्चरल इन्वायरमेन्ट एण्ड डवलपमेन्ट इन यू०पी० हिमालय,* कोटद्वारा नूतन पब्लिशर्स।

45 मेहता, जी०एस० (1996), *उत्तराखण्ड प्रास्पेक्ट्स ऑफ डवलपमेन्ट,* नई दिल्ली, इड्स पब्लिशिग कम्पनी।

46 बोरा, आर०एस० (1996), *हिमालयन माइग्रेशन ए स्टडी ऑफ दि हिल रीजन ऑफ उत्तर प्रदेश,* देलही, सेज पब्लिकेशन।

47 विद्यार्थी, एल०पी० & माखन झा सपा० (1986), *इकोलॉजी, इकोनॉमी एण्ड रिलीजन ऑफ हिमालयाज,* देलही, ओरियन्ट।

48 रावत, अजय एस० (1983), *गढवाल हिमालय ए हिस्टोरिकल सर्वे (1815–1947),* देलही, इस्टर्न बुक लिकर्स।

49 नेगी, एस०एस० (1993), *कुमाऊँ द लैण्ड एण्ड पीपुल,* और (1994), *गढवाल द लैण्ड एण्ड पीपुल,* देलही, इड्स पब्लिशिग कम्पनी।

50 फोनिया, केदार सिह (1996), *"उत्तराखण्ड प्राब्लम्स एण्ड रिसोर्सेज",* नौटियाल एण्ड नौटियाल मे सपा०।

उत्तराखण्ड आन्दोलन, उसकी प्रकृति, मानवीय तत्व तथा राजनीति और उसमे शामिल चुनौतियो और मुद्दो पर भी काफी पुस्तके लिखी गई है। पर ज्यादातर साहितय का प्रकाशन विगत दस वर्षो मे प्रकाशित हुआ, जिसका लक्ष्य पृथक राज्य की माग का विश्लेषण करना था। जिसमे कुछ सीमा तक छोटे राज्य की माग को लेकर समर्थन दिया गया जिसने क्षेत्र के लोगो के सपनो को पूरा किया। पी0सी0जोशी[51], बी0आर0त्रिवेदी[52], जे0सी0अग्रवाल तथा एस0पी0अग्रवाल[53], हरीश चन्दोला[54], बी0डी0पाण्डे[55], अविजित पाठक[56], मृणाल पाण्डे[57], अमरेश मिश्रा[58], भरत डोगरा[59] अजीत राय[60] सी0पी0भाम्भरी[61], शकर लाल शाह[62], प्रदीप कुमार[63], नवीन चन्द्र ढौढियाल, विजय ढौढियाल एव सजीव कुमार शर्मा[64], आलोक ए डीमरी[65], भगत सिह कोश्यिारी[66], पूरन बिष्ट[67] एव पीयूष बका, सजय सिह एव कुमार हर्ष[68] आदि के महत्वपूर्ण ग्रन्थ तथा लेख इस आन्दोलन के सबध मे शामिल है।

इनमे से मृणाल पाण्डेय तथा अमरेश मिश्रा के लेख आन्दोलन के पत्रकारिता सबधी वर्णन है, जो पर्वतीय क्षेत्र मे अन्य पिछडे वर्ग के 27 आरक्षण के सदर्भ मे थे, जबकि ये लोग उत्तराचल मे 2 या 3 जनसख्या मे पाये जाते है। भरत डोगरा तथा अजीत राय ने इस आन्दोलन को राजनैतिक

---

51 जोशी, पी०सी० (1995), *उत्तराखण्ड इश्यूज एण्ड चैलेन्जस,* नई दिल्ली, हर आनन्द पब्लिकेशन।

52 त्रिवेदी, वी०आर० (1995), *ऑटोनमी ऑफ उत्तराखण्ड,* नई दिल्ली, मोहित पब्लिकेशन।

53 अग्रवाल, जे०सी० & एस०पी०अग्रवाल (1995), *उत्तराखण्ड पास्ट, प्रेजेन्ट एण्ड फ्यूचर,* नई दिल्ली, कान्सेप्ट पब्लिशिग कम्पनी।

54 चन्दोला, हरीश (1994), *उत्तराखण्ड विद वायलेन्स',* मेनस्ट्रीम अक्टूबर 8 , *' व्हाई उत्तराखण्ड* मेनस्ट्रीम अक्टूबर 15 , *'ए लैण्ड ऑफ फोर्टीफिक्सन",* मेनस्ट्रीम, अक्टूबर 22 और , (1995), *' व्हाट काइन्ड ऑफ उत्तराखण्ड",* मेनस्ट्रीम, अक्टूबर 14 ।

55 पाण्डे, बी०डी० (1995), *"व्हाई उत्तराखण्ड",* मेनस्ट्रीम, फरवरी 18 ।

56 पाठक, अविजित (1994), *"मीनिग ऑफ उत्तराखण्ड नीड टू गो बेयान्ड द पालिटिक्स ऑफ मॉडर्निटी',* मेनस्ट्रीम, अक्टूबर 22 ।

57 पाण्डे, मृणाल (1994), *"बिहाईन्ड ट्रैपिग्स ऑफ सोशल जस्टिस",* मेनस्ट्रीम, सितम्बर 24 , *"स्टार्म इन द माउन्टेन्स",* मेनस्ट्रीम, सितम्बर 17 ।

58 मिश्रा, अमरेश (1994), *"न्यू फोर्स इन उत्तराखण्ड",* इकोनॉमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, जुलाई 17–24 ।

59 डोगरा, भरत (1994), *"उत्तराखण्ड पवन्स इन एचेस गेम",* इकोनॉमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, दिसम्बर 10।

60 राय, अजीत (1994), *"उत्तराखण्ड एण्ड द लेफ्ट इर्रेलेवान्स",* इकोनॉमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, अक्टूबर 1।

61 भाम्भरी, सी०पी० (1997), *"इडियाज इण्टरनल हारमोनी",* द हिन्दुस्तान टाइम्स, सितम्बर 14।

62 शाह, शकर लाल (1995), *पृथक उत्तराखण्ड राज्य का औचित्य* , अल्मोडा, श्री अल्मोडा बुक डिपो।

63 कुमार, प्रदीप (1995), *"डिमाण्ड फॉर उत्तराखण्ड बाइडर डायमेन्सन",* मेनस्ट्रीम, अगस्त 19 , *'जेनेसेज ऑफ उत्तराखण्ड क्राइसिस",* मेनस्ट्रीम, अक्टूबर 14 , (1996), *"डिमाण्ड फॉर ए हिल स्टेट इन यू०पी० न्यू रियल्टीज',* मेनस्ट्रीम, जून 29 , *"इडियन फेडरलिज्म इश्यूज एण्ड चैलेन्ज इन दि कान्टेक्सट ऑफ डिमाण्ड फॉर न्यू स्टेटस ,* आजम कौशर सपा० मे और , (2000), *द उत्तराखण्ड मूवमेन्ट कान्सट्रेक्शन ऑफ ए रीजनल आइडेन्टी,* नई दिल्ली, कनिष्क पब्लि० ।

64 ढौंढियाल, नवीनचन्द्र, विजय ढौंढियाल एव सजीव कुमार शर्मा सपा० (1993), *पृथक पर्वतीय राज्य* खण्ड–1, अल्मोडा, श्री अल्मोडा बुक डिपो।

65 डीमरी, आलोक ए० (1997), *उत्तराखण्ड मूवमेन्ट एण्ड इश्यूज ऑफ मोबलाइजेशन,* एम०फिल० लघु शोध–प्रबन्ध, अप्रकाशित, नई दिल्ली, जे०एन०यू०।

66 कोश्यिारी, भगत सिह (1988), *उत्तराचल प्रदेश क्यो,* अल्मोडा, उत्तराचल उत्थान परिषद , (1993), *फिजिको–कल्चरल इन्वायरमेन्ट एण्ड डेवलपमेन्ट इन यू०पी० हिमालया,* कोटद्वारा नूतन पब्लिशर्स।

67 बिष्ट, पूरन (1998), *"तब प्रयोगशाला नही होगा उत्तराखण्ड",* नैनीताल समाचार, सितम्बर 1 ।

68 बका, पीयूष, सजय सिह और कुमार हर्ष (1998), *"ठोस अनिवार्यताओ और तार्किक मागो से भरा एक भावुक आन्दोलन",* राष्ट्रीय सहारा, सितम्बर 26 ।

दलो से प्रेरित बताया। अजीत राय ने इस आन्दोलन के सबध मे बिल्कुल अलग तरह से प्रतिक्रिया जाहिर की है। उनके दृष्टिकोण मे यह उत्तर आधुनिकता का लक्षण है। उनके लिये विशाल आध ुनिकता के मॉडल के सामने अस्तित्व को बनाये रखने वाला यह एक स्थानीय आन्दोलन था। हरीश चन्दोला के लेख वर्षो से इस क्षेत्र मे होने वाले आर्थिक शोषण का वर्णन करते है और बहुत ही व्यवस्थित ढग से तर्क देते है कि देश के शेष हिस्सो से इस क्षेत्र के आर्थिक सबधो से होने वाले शोषण को रोकने की आवश्यकता है। पर्वतो मे मूलभूत सुविधाओ का आभाव तथा पर्वतवासियो की दयनीय स्थिति को बहुत ही मार्मिक ढग से इस लेख मे लिखा गया है। बी0डी0 पाण्डेय के लेख का सबध हिमाचल प्रदेश की अपेक्षा पर्वतीय क्षेत्र की समस्याओ के राजनैतिक पक्ष को रखता है। प्रदीप कुमार ने अपने लेखो मे उत्तराचल आन्दोलन के विविध पक्षो को सामने रखा है। वही अपने ग्रन्थ मे यह भी विश्लेषित करने का प्रयास किया है कि भारत मे राज्यो के निर्माण की राजनीति मे ऐसी क्या बात थी जिसने वर्षो के बाद राजनैतिक पहचान को बढावा दिया और बाद मे यही तथ्य शक्तिशाली बनकर नये राज्य की माग के बौद्धिकता के रूप मे सामने आया।

के0एन0भट्ट[69] की पुस्तक से उत्तराचल की अर्थव्यवस्था समाज और पर्यावरण के सबध मे ठोस और महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। पी0सी0जोशी जो कि एक सक्षम अर्थशास्त्री है, ने इस क्षेत्र की विभिन्न समस्याओ पर श्रखलाबद्ध तरीके से (कई कडियो मे) लेख लिखे है, जो पिछले दो दशको मे प्रकाशित हुए है। इनमे से एक लेख "उत्तराखण्ड तथा इण्डियन रिनेसेन्स" मे जोशी ने यह स्थापित किया कि जिस प्रकार पुनर्जागरण का नेतृत्व भारत मे विदेशी शासन (अग्रेजो) के विरोध मे था उसी प्रकार वर्तमान उत्तराखण्ड का पृथक राज्य आन्दोलन राष्ट्रीय शासन से स्वायत्तता के लिये माग करता है , जो इस क्षेत्र मे उपनिवेशवाद का परिणाम है, जो सापेक्ष रूप से इस क्षेत्र मे अधिक आर्थिक विकास कर सकती थी।

पी0सी0जोशी की किताब ने इस विषय पर श्रृखलाबद्ध तरीके से इस क्षेत्र के आर्थिक पिछडेपन को लेकर बहुत सारे प्रश्न उत्पन्न किये है। अन्य मुद्दो के अलावा अपने ग्रन्थ मे गुन्नार मिर्डल तथा अन्य की पक्तियो पर वह तर्क करते हुए यह स्थापित करते है कि यहॉ की आर्थिक व्यवस्था जो कोई प्रभाव नही छोडती है या जिसमे पिछडेपन का कुछ असर है मे राजनीति का पक्षपातपूर्ण अपनाया गया रवैय्या है। इस पुस्तक मे इस बात को बताने का प्रयास भी किया गया है कि उत्तर प्रदेश के पर्वतीय क्षेत्रो तथा हिमाचल प्रदेश के पर्वतीय लोगो के मध्य दीनता मे क्या अन्तर है। जोशी ने इस बात की शिनाख्त की है कि वर्षो से यहॉ के राजनैतिक वातावरण ने पृथक उत्तराखण्ड राज्य की माग के लिये बहुत से तुलनात्मक तत्वो को जन्म दिया है।

जबकि, बहुत सारे विस्तृत अध्ययनो का प्रकाशन उत्तराचल के आन्दोलन के सबध मे प्रकाशित नही हुआ है, एक सक्षम प्रयत्न इस बात का किया गया है कि इस क्षेत्र मे विद्वानो ने इस विषय वस्तु पर जो अध्ययन किया है उसे एक जगह सकलित किया गया है। यह सकलन अधिकतर हिन्दी मे है लेकिन कुछ पर्वतीय भाषाओ मे भी है। सबसे विस्तृत तथा व्यापक सग्रह सुरेश नौटियाल[70] एव आचलिक भाषा मे

---

69 भटट, के०एन० (1997), *उत्तराखण्ड इकोलॉजी, इकोनॉमी एण्ड सोसाइटी,* इलाहाबाद, होरिजन पब्लिशर्स।

70 नौटियाल, सुरेश सपा० (1994), *उत्तराखण्ड एक अध्ययन, आकलन और प्रस्ताव,* नई दिल्ली, अभिकथन पब्लिकेशन्स।

के0एस0वाल्दिया[71] का है। शीला रावत[72], पद्मेश बुरकोटी[73], आर0आर0नौटियाल तथा अन्नपूर्णा नौटियाल[74], शिवनन्दा चमोली[75], त्रिलोक चन्द्र भट्ट[76] तथा धीरज सिह नेगी[77] आदि के ग्रन्थ भी महत्वपूर्ण हैं।

इन लेखो के सग्रह मे काफी विस्तार के साथ पृथक राज्य के आन्दोलन के उन सभी पक्षो को शामिल किया गया था जिनका सबध उस क्षेत्र के सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियो से था। इन सभी लेखो का अभिन्न लक्ष्य उस बौद्धिक तत्व को प्रदर्शित करना था जिसमे पृथक राज्य के भौगोलिक लक्षण, मानवीय ससाधन, सास्कृतिक प्रारूप, प्रजातीय कार्यभार तथा स्थूल आन्दोलन एव उसके समर्थन का विस्तार आदि शामिल है। इसके अलावा इनमे तिथिक्रम के अनुसार उन सभी विकासो तथा घटनाओ का ब्यौरा है जिनका लक्ष्य पिछले कुछ दशको मे पृथक राज्य की माग था। ज्यादातर प्रकाशित किये गये ग्रन्थो का सबध मौजूदा आन्दोलन को उन जन आन्दोलनो से जोडना था जो विगत वर्षों से चलाये जा रहे थे– विशेषकर, पर्यावरणशास्त्रियो का चिपको आन्दोलन तथा मद्य विरोधी आन्दोलन जो कि ज्यादातर इस क्षेत्र मे स्त्रियो के नेतृत्व तथा समर्थन मे हुए और बिना किसी राजनैतिक दलो के नेतृत्व मे किये गये थे।

इन लेखो के अतिरिक्त जो बहुत सारे लेख खण्डो मे प्रकाशित हुए, उनके प्रकाशन मे स्थानीय प्रेस ने काफी ज्यादा योगदान दिया क्योकि स्थानीय समाचार पत्रो ने हर छोटी से छोटी घटना को विस्तार के साथ इस उद्देश्य को लेकर प्रकाशित किया। विशेषकर हिन्दी दैनिक पत्र अमर उजाला तथा दैनिक जागरण जिनका व्यापक विस्तार इस क्षेत्र मे है, ने इस क्षेत्र के महत्वपूर्ण लोगो का साक्षात्कार लेकर इसी शीर्षक पर श्रृखलाबद्ध तरीके से लेख प्रकाशित किये। दूसरे समाचार पत्र जिन्होने नियमित रूप से इस शीर्षक पर लिखा, मे नैनीताल समाचार (नैनीताल), हिमालय दर्पण (देहरादून) के अलावा बहुत सारे छोटे–छोटे अखबारो को क्षेत्र के विभिन्न कस्बो से प्रकाशित किया गया। जिन पत्रिकाओ के योगदान को मूल्यवान समझा जा सकता है, उसमे हिमालय टाइम्स (देहरादून), पर्वतवाणी (उत्तरकाशी) तथा पहाड (नैनीताल) शामिल है।

अन्य पृथक राज्य आन्दोलनो के सबध मे हमे नरेन्द्र भारद्वाज[78], प्रभात दत्त[79], अनिल कुमार द्विवेदी[80], सुभाष कश्यप[81], सोमनाथ यादव[82], राजकिशोर[83] आदि के ग्रन्थो एव लेखो से महत्वपूर्ण

---

71 वाल्दिया, के०एस० सपा० (1996), *उत्तराखण्ड टूडे उत्तराखण्ड आज*, अल्मोडा, श्री अल्मोडा बुक डिपो।

72 रावत, शीला सपा० (n d), *उत्तराखण्ड, दृष्टि, दशा और दिशा*, श्रीनगर, गढवाल, अलकनन्दा किनारे पब्लिकेशन।

73 बुरकोटी, पदमेश सपा० (1995), *उत्तराखण्ड आन्दोलन का दस्तावेज (1994–95)*, हिमालय धरोहर आन्दोलन केन्द्र।

74 नौटियाल, आर०आर० & अन्नपूर्णा नौटियाल सपा० (1996), *उत्तराखण्ड इन टुरमाइल*, नई दिल्ली, एम०डी०पब्लिकेशन।

75 चमौली, शिवानन्द (1995), *उत्तराखण्ड राज्य आन्दोलन सघर्षपूर्ण चार महीने का दस्तावेज* देहरादून।

76 भट्ट, त्रिलोकचन्द (2000), *उत्तराखण्ड आन्दोलन पृथक राज्य आन्दोलन का ऐतिहासिक दस्तावेज*, नई दिल्ली, तक्षशिला प्रकाशन।

77 नेगी, धीरज सिह सपा० (n d), *उत्तराखण्ड आन्दोलन*, देहरादून, गढवाल सभा।

78 भरद्वाज, नरेन्द्र (1993), *"बोडो समझौता शान्ति का सूर्योदय"*, सिविल सर्विसेज क्रानिकल, जून , (1996), *"पृथक राज्य आन्दोलन निरन्तर उपेक्षा से उठता ज्वार"*, सिविल सर्विसेज क्रानिकल, फरवरी।

79 दत्ता, प्रभात (1995), *"अनस्टडी स्टेट्स एण्ड स्माल थ्योरीज"*, द टेलीग्राफ, दिसम्बर 4 ।

80 द्विवेदी, अनिल कुमार (1996), *"पृथक राज्य आन्दोलन उत्प्रेरक बना उत्तराखण्ड"*, सिविल सर्विसेज क्रानिकल, नवम्बर।

81 कश्यप, सुभाष (1999), *"नये राज्यो के गठन का सवाल"*, राष्ट्रीय सहारा।

82 यादव, सोमनाथ सपा० (2000), *छत्तीसगढ समग्र*, विलासपुर, विलासा कला मच प्रेस क्लब।

83 राजकिशोर (2000), *"तीन नये राज्यो मे आखिर नया क्या होगा?"*, अमर उजाला, अगस्त 22।

जानकारिया प्राप्त होती है। अनिल कुमार द्विवेदी और नरेन्द्र भारद्वाज के लेखो मे बोडोलैण्ड, गोरखालैण्ड, झारखण्ड, बुन्देलखण्ड के आन्दोलन के सदर्भ मे महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। सोमनाथ यादव के ग्रन्थ से हमे छत्तीसगढ के विषय मे प्रमाणिक जानकारी प्राप्त होती है। जबकि सुभाष कश्यप और प्रभात दत्त के लेखो मे नये राज्यो के माग का विश्लेषण वस्तुपरक ढग से किया गया है।

शोध समस्या का निरूपण

भारत मे क्षेत्रीयतावाद एव उत्तराचल आन्दोलन पर आधारित उप–क्षेत्रीयतावाद पर अध्ययनो की उपरोक्त सूची कभी न समाप्त होने वाली है। ये अध्ययन समस्या के विभिन्न पहलुओ पर सामाजिक वैज्ञानिको के योगदान की तरफ इशारा करते है। उत्तराचल पर ज्यादातर काम प्रकृति के वर्णन मे हुआ, केवल थोडा सा अध्ययन विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से किया गया। इस क्षेत्र के आन्दोलन से सबधित अध्ययन सामान्यतया ऐतिहासिक तथा सामाजिक पृष्ठभूमि तक सीमित रखे गये है। बहुत कम अध्ययन राजनैतिक वैज्ञानिको द्वारा किया गया है, और कुछ ही आलोचको ने इसे राजनैतिक दृष्टिकोण से देखने की कोशिश की और उस माग को दूसरे छोटे राज्यो की माग के समक्ष रखा। इसके विपरीत प्रस्तावित अध्ययन का लक्ष्य उन विभिन्न तत्वो का समग्र रूप से विश्लेषण करना है जो उत्तराचल की क्षेत्रीय भावनाओ को विकसित करने का कारण बने। इसी सबध मे उन सभावित परिणामो का परीक्षण किया जाना चाहिए जो देश के अन्य क्षेत्रो मे ऐसे दृश्य उत्पन्न करते है, विशेषकर हिन्दी भाषी राज्यो मे।

इसी प्रकार क्षेत्रीयतावाद पर महत्वपूर्ण कार्य हुए हैं किन्तु इस विषय पर जो भी कार्य किये गये हैं क्षेत्रीय असतुलन की पृष्ठभूमि पर ही आधारित रहे है। जबकि आर्थिक तत्व के अतिरिक्त ऐसे अतिरिक्त तत्व भी होते है जो उस विशिष्ट क्षेत्र मे लोगो को गतिशील बनाने के लिये नेतृत्व प्रदान कर सके और जो सामाजिक–सास्कृतिक, आर्थिक और क्षेत्रीय राजनीति पर आधारित होते है। इसलिये यह रूचिपूर्ण होगा कि उन तत्वो का पता लगाया जाय जो एक विशेष क्षेत्र अथवा हिस्से के लोगो को क्षेत्रीयता की दृष्टि से गतिशीलता लाने के लिये आवश्यक हो। इसके साथ ही इस विषय पर जो भी पुस्तके उपलब्ध हैं उनमे अधिकाश अध्ययन सीमित और एकागी दृष्टिकोण लिये हुए हैं, अर्थात् उनमे क्षेत्रीयतावाद के नकारात्मक पहलुओ पर विशेष ध्यान दिया गया है। जबकि प्रत्येक वस्तु के नकारात्मक और सकारात्मक दोनो पहलु होते हैं। इसलिये इस शोध प्रबन्ध मे क्षेत्रीयतावाद, उप–क्षेत्रीयतावाद एव सदर्भित सकारात्मक एव नकारात्मक पहलुओ को समग्र रूप मे समाहित करते हुए तत्वो का एकीकृत विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। साथ ही शोध प्रबन्ध मे क्षेत्रीयतावाद के उदाहरण स्वरूप उत्तराखण्ड आन्दोलन एव राज्य गठन पर गहराई से प्रकाश डाला गया है, जो अन्य शोध प्रबन्धो मे नही मिलता है।

उद्देश्य

शोध प्रबन्ध मूलत पृथक राज्य आन्दोलन की माग के पीछे छिपे कारणो और उनको दूर करने हेतु किन प्राविधियो का प्रयोग किया जाय को, उत्तराचल के आन्द्रोलन के सदर्भ मे ज्ञात करने का प्रयास है। यह परीक्षण भी मूल्यवान होगा कि वह आवश्यक तथा पर्याप्त दशाये कौन थी जिनसे

उत्तराचल की माग के जन आन्दोलन को बिना किसी राजनैतिक दल के औपचारिक नेतृत्व द्वारा इतना तीव्र तथा सम्भव बना दिया। आर्थिक अलगाव तथा प्रशासनिक लापरवाही किसी बडे राज्य मे अवश्य होती है, लेकिन यह कभी भी पर्याप्त तत्व नही बनती है जो सत्ता पलट देती हो। आन्दोलन का नेतृत्व करने वाले सामाजिक, आर्थिक, सामरिक–सास्कृतिक तत्वो का सम्मिलित तथा गभीर विश्लेषण दूसरी जगह होने वाले विद्रोहो से तुलना करने मे महत्वपूर्ण होता है। इसलिये यह रूचिपूर्ण होगा कि उन तत्वो का पता लगाया जाय जो (आर्थिक तत्व के अतिरिक्त) एक विशेष क्षेत्र अथवा हिस्से के लोगो को क्षेत्रीयता की दृष्टि से गतिशीलता लाने के लिये आवश्यक है। अन्य शब्दो मे यह स्थापित किया जा सकता है कि आर्थिक तत्व एक आवश्यक तत्व हो सकता है लेकिन यह तत्व आकर्षण को सक्रिय बनाने के लिये पर्याप्त नही है, जब तक कि वहॉ के वस्तुपरक अथवा लक्ष्यपरक उन तत्वो को न समझा जाय जो क्षेत्रीय मुद्दो पर गतिशीलता लाने के लिये आवश्यक है।

जातीय और क्षेत्रीय समुदायो की अधिक स्वायत्तता प्राप्ति की लालसा समकालीन भारतीय राजनीति का एक तथ्य है। यह सवैधानिक प्रावधानो की सीमा और एक लम्बे समय तक राजनीतिक नेतृत्व द्वारा अपनाए गए अस्पष्ट रवैए और अवसरवादी रूख की देन है। इस मसले को राजनीतिक आवश्यकताओ के तहत किसी राज्य के गठन, काम चलाऊ सशोधनो अथवा विशेष सवैधानिक प्रावधानो जैसे तात्कालिक उपायो का सहारा लेकर हल नही किया जा सकता। भारतीय सघ की सत्ता– व्यवस्था के पूरे ताने–बाने पर पुनर्विचार करना होगा। लेकिन यह पुनर्विचार विकेन्द्रीकरण के दृष्टिकोण से नही, बल्कि हर स्तर को स्वायत्तता का हकदार बनाने के नजरिये से करना होगा।

इस बौद्धिक उत्सुकता के कारण निम्नलिखित प्रश्न उठाये जा सकते है, बहस की जा सकती है तथा आशिक रूप से अध्ययन मे उत्तर दिये जा सकते है।

1 उन तत्वो का पता लगाना जो राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया मे बाधक है और उन उपायो का निरूपण करना जिससे राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया को गति प्रदान करने मे सहायता मिले।
2 उन तत्वो का पता लगाना जो सामाजिक, आर्थिक अलगाव के अतिरिक्त है तथा सघीय व्यवस्था मे विकेन्द्रीकृत ताकतो को बढावा देते है। अर्थात् क्षेत्रीयतावाद की अभिवृद्धि के लिये जिम्मेदार सामाजिक–सास्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक जीवन के विविध पहुलओ का निरूपण करना।
3 क्षेत्रीयतावाद की राजनीति को सगठित और प्रोत्साहित करने वाले तत्वो का पता लगाना। साथ ही, उन वर्गों का पता लगाना जहॉ से उन्हे सामाजिक अनुमोदन मिलता है और जिनके हितो की यह रक्षा करता है।
4 ऐसे कौन से तत्व थे जिन्होने एक छोटे समय मे उत्तराचल के जनमानस को पृथक राज्य के लिये आन्दोलित कर दिया।
5 क्षेत्रीय आन्दोलन के सबध मे आम जनता के दृष्टिकोण का परीक्षण करना।
6 उन उपायो का निरूपण करना जिनकी सहायता से उग्र क्षेत्रीयतावाद या नकारात्मक क्षेत्रीयतावाद की भावनाओ को समाप्त किया जा सके।
7 उन तत्वो का विश्लेषण करना जिनसे राष्ट्रीय एकीकरण, विकास के प्रति प्रतिबद्ध स्वायत्तता

तथा सकारात्मक क्षेत्रीयतावाद के मध्य समन्वय स्थापित कर राष्ट्र के सर्वांगीण विकास मे नवीन राज्यो का गठन उपयोगी सिद्ध हो सके। पृथक राज्य आन्दोलनो की माग के परीक्षण के लिये द्वितीय राज्य पुनर्गठन आयोग की औचित्यता का परीक्षण करना , साथ ही नवीन राज्यो की स्थापना मे होने वाले खर्चों की प्रतिपूर्ति के उपायो को जानना।

शोध प्रणाली

शोध कार्य हेतु प्राथमिक एव द्वितीयक स्रोतो तथा आनुभाषिक पद्धति पर आधारित शोध प्रणाली का प्रयोग किया गया है। भारतीय राजनीति एव राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया मे पडने वाले प्रभाव का विश्लेषणात्मक अध्ययन झारखण्ड, छत्तीसगढ, पूर्वांचल, बुन्देलखण्ड बोडोलैण्ड, गोरखालैण्ड, विदर्भ की पृथक राज्य की माग से सबधित आन्दोलनो का सामान्य अध्ययन तथा उत्तराचल पृथक राज्य आन्दोलन का विशिष्ट अध्ययन केस स्टडी पद्धति से करके इसके सैद्धान्तिक एव व्यवहारिक पक्ष के विश्लेषण के आधार पर किया गया है।

पृथक राज्य आन्दोलन एव नये राज्यो के निर्माण के सदर्भ मे प्राथमिक ऑकडो पर आधारित एक अध्ययन भी किया गया है, जिसमे पृथक राज्य आन्दोलन के कारणो, नये राज्यो के निर्माण, राज्य पुनर्गठन आयोग के गठन, नये राज्यो की स्थापना मे पडने वाले प्रशासनिक और वित्तीय बोझ की प्रतिपूर्ति हेतु प्रस्तावित किये जाने वाले दीर्घगामी सुधार कार्यक्रम लागू किये जाने से सबधित प्रश्नो को शामिल किया गया। प्रश्नावली का उत्तर प्राप्त करने के लिए उत्तरदाता के रूप मे उत्तर प्रदेश और उत्तराचल स्थित उन 100 आम मतदाताओ का चयन रेण्डम पद्धति के आधार पर किया गया है, जिन्हे पृथक राज्य आन्दोलन के सबध मे सामान्य जानकारी थी। जिसका अध्ययन विश्लेषण अध्याय पॉच मे किया गया है।

शोध प्रबन्ध पूर्ण करने हेतु दो बडे ग्रथगारो–जी0बी0पन्त सामाजिक विज्ञान सस्थान, इलाहाबाद एव तीन मूर्ति पुस्तकालय नई दिल्ली का प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त बी0पी0मेमोरियल पुस्तकालय एव केन्द्रीय पुस्तकालय इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद तथा राजकीय पुस्तकालय बॉदा का प्रयोग भी शोध कार्य हेतु किया गया है। इसके साथ ही आर्थिक नियोजन एव विकास अनुभाग, उत्तराचल सरकार देहरादून एव पुस्तकालय आर्थिक एव नियोजन विभाग, उ0प्र0 सरकार लखनऊ से भी उत्तराचल पृथक राज्य आन्दोलन एक विशिष्ट अध्ययन अध्याय हेतु परिचयात्मक एव डाटा सग्रहण हेतु कुछ सामग्री एकत्रित की गई है।

उत्तराचल से सम्बन्धित होने के कारण देहरादून और नैनीताल के समाचार पत्रो का उपयोग किया गया है। अखिल भारतीय स्तर पर राजनीति का विश्लेषण करने मे राष्ट्रीय स्तर के दैनिक समाचार पत्र स्टेट्स मैन, द टाइम्स ऑफ इण्डिया, इडियन एक्सप्रेस, द हिन्दुस्तान टाइम्स, राष्ट्रीय सहारा और दैनिक जागरण एव क्षेत्रीय समाचार पत्र नैनीताल समाचार एव हिमालय दर्पण तथा पाक्षिक/साप्ताहिक पत्रिकाये माया, इडिया टूडे, मेनस्ट्रीम और क्षेत्रीय स्तर पर हिमालय टाइम्स, पर्वतवाणी एव पहाड का प्रयोग किया है।

शोध प्रबन्ध की उपादेयता

आशा है कि यह शोध प्रबन्ध राजनीतिज्ञो, नीति–निर्माताओ, पृथक राज्य आन्दोलन के समर्थको, बुद्धिजीवियो और शिक्षाविदो सभी के लिये समान रूप से उपयोगी साबित होगा। देश के सर्वागीण विकास हेतु राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया और क्षेत्रीयतावाद की प्रवृत्ति मे सामजस्य स्थापित करने मे यह चिन्तन सहायक सिद्ध होगा। साथ ही, भविष्य मे अन्य शोधार्थियो को शोध कार्य हेतु यह नये मार्ग प्रशस्त करने मे सहायक सिद्ध होगा।

उम्मीद है कि क्षेत्रीयतावाद का यह विश्लेषण जातिवाद, भाषावाद और साम्प्रदायिकता जैसी अन्य ऐसी ही विभाजनकारी परिघटनाओ पर भी विस्तृत रूप से लागू और प्रमाणिक सिद्ध होगा। यद्यपि इन प्रवृत्तियो के कतिपय भिन्न और विशिष्ट लक्षण है, फिर भी इनकी अनेक विशेषताये और सरचनात्मक लक्षण साथ ही इनके सामाजिक मूल और प्रकार्य ऐसे है जो क्षेत्रीयतावाद मे भी मिलते है। इन क्षेत्रो मे प्राय एक सी सामाजिक प्रवृत्तियॉ दिखाई देती है। इतना ही नही, ये वाद प्राय एक दूसरे का स्थान उसी प्रकार ग्रहण कर लेते है जिस प्रकार कुर्सी बदलने के खेल मे कुर्सियॉ बदल जाती है। इसलिये भी इसे अध्ययन का विषय बनाया गया है।

अध्ययन का प्रस्तुतीकरण

शोध प्रबन्ध आठ अध्यायो और छ परिशिष्टो मे प्रस्तुत किया गया है, जिसकी सक्षिप्त रूपरेखा निम्नवत है–

शोध प्रबन्ध की पृष्ठभूमि, किये गये पूर्व अध्ययन, शोध समस्या का निरूपण, उद्देश्य, अपनाई गयी शोध प्रणाली और शोध प्रबन्ध की उपादेयता अध्याय एक "पृष्ठभूमि, शोध समस्या का निरूपण और शोध प्रबन्ध की प्रासगिकता" मे प्रस्तुत की गई है।

"राष्ट्रीय राजनीति और भारत मे राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या" के अन्तर्गत भारतीय राष्ट्रीय राजनीति के परिप्रेक्ष्य मे भारतीय राष्ट्रीय राज्य के उदय और राष्ट्र राज्य के गठन के लिये अपनायी गयी कार्यनीतियो पर अध्याय दो मे चर्चा की गई है। साथ ही उन शक्तियो पर भी नजर डाली गई है, जिन्होने राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया को चुनौती दी है। इसके पश्चात् राष्ट्रीय एकीकरण से जुडे प्रश्नो पर चर्चा की गई है और बताया गया है कि राष्ट्रीय एकीकरण अनिवार्य रूप से राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया है और किस प्रकार विभिन्न शक्तियॉ यथा– साम्प्रदायिकता एव पथवाद, जातिवाद, भाषावाद, आर्थिक असन्तुलन एव क्षेत्रीय विषमता, राजनीतिक दलो की विघटनकारी भूमिका आदि भारत के राष्ट्रीय एकीकरण को चुनौती देती है।

अध्याय तीन– "भारत मे क्षेत्रीयतावाद" के अन्तर्गत क्षेत्रीय प्रादेशीय राजनीति के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओ की विवेचना की गई है। इसका प्रारम्भ विशेषकर भारतीय राजनीति के सदर्भ मे क्षेत्र और क्षेत्रीयतावाद की अवधारणाओ की व्याख्या से किया गया है। इसके पश्चात् क्षेत्रीयतावाद के विकास का विवेचन स्वतन्त्रता से लेकर अब तक चार महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओ के सदर्भ मे किया है। भारत मे क्षेत्रीयतावाद के भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक तथा प्रशासनिक आधारो का विश्लेषण भी किया गया है। इसमे यह भी बताया गया है कि किस प्रकार

भाषा और आर्थिक वचन क्षेत्रीयतावाद की अभिवृद्धि मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। तत्पश्चात् क्षेत्रीयतावाद की अभिवृद्धि मे सहायक कारको यथा– राष्ट्रीय चेतना की विफलता, सामाजिक और बौद्धिक पिछडापन, नैतिकता का अभाव और सामाजिक अवरोध, राष्ट्रीय नेतृत्व मे केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति और राष्ट्रीय दृष्टिकोण के अभाव का इस दृष्टिकोण से विश्लेषण किया गया है कि किस प्रकार से ये कारक क्षेत्रीयतावाद की अभिवृद्धि मे अपना योगदान करते है।

अध्याय चार– "भारतीय राजनीति मे क्षेत्रीयतावाद के आयाम" के अन्तर्गत भारत मे क्षेत्रीयतावाद के स्वरूपो– प्रदेश स्वायत्तता के लिये माग, बहु प्रदेश क्षेत्रीयतावाद, अन्तर प्रदेश क्षेत्रीयतावाद और अन्त प्रदेश क्षेत्रीय राजनीति अथवा उप क्षेत्रीयतावाद पर सक्षिप्त दृष्टि डालते हुए उप–क्षेत्रीयतावाद के तीनो महत्वपूर्ण पहलूओ (आयामो)– भाषायी क्षेत्रीयतावाद, साम्प्रदायिक क्षेत्रीयतावाद और सरक्षणात्मक या सामाजिक–आर्थिक क्षेत्रीयतावाद की विस्तृत विवेचना की गई है। भाषायी क्षेत्रीयतावाद का प्रारम्भ भारतीय राजनीति के सदर्भ मे भाषावाद की अवधारणा की व्याख्या से किया गया है। इसके पश्चात् भारत मे भाषायी राजनीति के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की विवेचना की गई है। इस बात का भी विवेचन किया गया है कि किस प्रकार इससे जनमानस की भाषायी आकाक्षाओ को तृप्ति मिली साथ ही, इससे किस प्रकार से अपने प्रकार की अनेको समस्याये भी पैदा हुयी।

साम्प्रदायिक क्षेत्रवाद के अन्तर्गत स्वतन्त्र भारत मे चलाया गया इस प्रकार का एक मात्र आन्दोलन जो कि पजाब मे अकाली दल द्वारा आनन्दपुर प्रस्ताव की आड मे चलाया गया खालिस्तान आन्दोलन था का विवेचन किया गया है और देखा कि किस प्रकार पृथक स्वतन्त्र सिक्ख राज्य की स्थापना के लिये पृथकतावादी तत्व क्रियाशील हुये और किस प्रकार उन्हे इस हेतु विदेशो से सहायता मिली। यहाँ पर इस बात की भी विवेचना की गई है कि किस प्रकार दृढ इच्छा शक्ति के बल पर भारतीय राजसत्ता ने राष्ट्र और समाज के समक्ष उपस्थित सबसे शक्तिशाली और वास्तविक खतरे को साफ करने मे सफलता पायी।

सरक्षणात्मक क्षेत्रीयतावाद के अन्तर्गत सर्वप्रथम इस बात की विवेचना की गई है कि किस प्रकार क्षेत्रीय विषमता और इसी के चलते भारत के विभिन्न भागो यथा–महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश और पूर्वोत्तर भारत मे अनेक आन्दोलन चलाये गये और इन आन्दोलनो द्वारा क्षेत्र के मूल निवासियो के साथ विशिष्ट व्यवहार और शिक्षा, नौकरी, व्यवसाय आदि के क्षेत्र मे इन्हे प्राथमिकता देने की माग की गई। इस बात का भी विश्लेषण किया है कि किस प्रकार आर्थिक धरातल पर स्वतन्त्र पूजीवादी विकास ने और राजनीतिक स्तर पर राज्य एव राजनीतिक नेतृत्व द्वारा सत्ता मे बने रहने के लिये क्षेत्रीयतावाद की ऐसी आवोहवा को पनपाने मे मदद की गई।

अध्याय पॉच– "भारत मे क्षेत्रीय आन्दोलन" के अन्तर्गत सर्वप्रथम स्वतन्त्रता पूर्व भारत मे क्षेत्रीय आन्दोलनो का विवेचन कर भारत मे क्षेत्रीय आन्दोलन के उत्स को खोजने का प्रयास किया है। इसके लिये भारत मे जातीय चेतना पर आधारित और धर्म पर आधारित क्षेत्रीय राजनीति का विश्लेषण किया है। तत्पश्चात् स्वाधीन भारत मे देशी रियासतो के एकीकरण पर दृष्टिपात करते हुये भाषा पर आधारित राज्यो के पुनर्गठन की माग की औचित्यता को परखने हेतु विभिन्न आयोगो की

सस्तुतियो को दृष्टिगत रखते हुये 1956 मे किये गये राज्यो के पुनर्गठन एव तत्पश्चात् बनाये गये राज्यो की चर्चा की है। इसके बाद समकालीन भारत मे पृथक राज्य से सम्बन्धित आन्दोलनो– छत्तीसगढ, झारखण्ड, पूर्वांचल, बुन्देलखण्ड, बोडोलैण्ड, गोरखालैण्ड एव विदर्भ का सक्षिप्त एव सारगर्भित अध्ययन उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, भौगोलिक अवस्थिति एव पृथक राज्य की माग के औचित्य के सदर्भ मे किया है और उन कारणो को तलाशने की चेष्टा की जिनकी वजह से सम्बन्धित राज्यो मे पृथक राज्य आन्दोलनो की जडे मजबूत हुयी है।

पृथक राज्यो के निर्माण से सबधित विभिन्न प्रश्नो के सदर्भ मे जनता का क्या मत है, यह जानने के लिये उत्तराचल और उत्तर प्रदेश के आम मतदाताओ जिसमे राजनीतिक और अराजनीतिक कार्यकर्ता जिन्हे पृथक राज्य आन्दोलन के सदर्भ मे सामान्य जानकारी थी का साक्षात्कार एक साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से लिया गया। उपरोक्त साक्षात्कार अनुसूची का सक्षिप्त विश्लेषण भी इस अध्याय के अन्त मे किया गया है।

उत्तराचल पृथक राज्य आन्दोलन का विशिष्ट अध्ययन अध्याय छ मे किया गया है। जिसके अन्तर्गत सर्वप्रथम यह विश्लेषित किया गया है कि उत्तराचल नाम उत्तराखण्ड की अपेक्षा अधिक उपयुक्त क्यो है तत्पश्चात् उत्तराचल की भौगोलिक अवस्थिति एव पारिस्थितिकी का विश्लेषण किया गया है। फिर उत्तराचल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का वर्णन करते हुये उत्तराचल राज्य बनाने हेतु चले दीर्घकालीन आन्दोलन प्रक्रिया मे आये मोडो और प्रमुख घटनाओ को लेखबद्ध करने का कार्य किया गया। यह भी देखा कि वहॉ के नागरिको के द्वारा पृथक पर्वतीय राज्य की माग क्यो की जा रही है। इसके लिये पृथक पर्वतीय राज्य के औचित्य का अध्ययन निम्न शीर्षको एव उप शीर्षको– भौगोलिक एव सामाजिक, सास्कृतिक भिन्नता, आर्थिक पिछडापन तथा अपेक्षित विकास का अभाव, रोजगार के विकल्पो का अभाव और युवको का पलायन, कृषि का पिछडापन, शैक्षणिक पिछडापन, बुनियादी सुविधाओ का अभाव, सडक एव रेल मार्ग का पिछडापन, औद्योगिक पिछडापन, राष्ट्रीय सुरक्षा की दृष्टि से सामाजिक सुदृढता की आवश्यकता तथा हिमालयी आर्थिकी के अनुकूल नियोजन की आवश्यकता के अन्तर्गत किया गया है। यहॉ पर उत्तराचल राज्य का अन्य पर्वतीय राज्यो के सापेक्ष तुलनात्मक अध्ययन भी किया गया है जिससे पृथक पर्वतीय राज्य की माग के औचित्य को सही प्रकार से समझा जा सके। तदुपरान्त नवगठित राज्य उत्तराचल का सामान्य अध्ययन 23 चरो और उनके उपचरो को दृष्टि मे रखकर किया गया है। इसके पश्चात् उत्तराचल राज्य की आर्थिक सक्षमता का विश्लेषण उसकी प्राकृतिक सम्पदा एव अर्थव्यवस्था (जिसमे भू/वन ससाधन, जल ससाधन और खनिज सम्पदा सम्मिलित है), कृषि व औद्योगिक सम्पदा के आधार पर किया गया। इस दिशा मे भी झाकने का प्रयास किया गया है कि उत्तराचल को राज्य बने लगभग डेढ वर्ष व्यतीत हो जाने के बाद भी उत्तराचल का विकास उस तरह क्यो नही हुआ जिसकी अपेक्षा करके वहॉ के लोगो ने इस राज्य के निर्माण के लिये कई दशको तक सघर्ष किया। उत्तराचल की भूगोल जनित सरचना और उसमे उपलब्ध ससाधनो को दृष्टि मे रखते हुए आर्थिक नियोजन की सर्वथा नयी नीति बनाने हेतु उसकी दिशा क्या होना चाहिये, इसका एक प्रारूप भी प्रस्तुत किया ताकि उत्तराचल के

निर्माण के बाद सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन के आकाक्षित परिणाम प्राप्त किये जा सके।

अध्याय सात– "प्रथक राज्य आन्दोलन– पहचान का सकट एक आलोचनात्मक मूल्याकन" के अन्तर्गत सर्वप्रथम क्षेत्रीयता या भाषायी देशभक्ति के मुद्दे का इस आधार पर परीक्षण किया गया है कि जो भाषायी क्षेत्रवाद राष्ट्रीय आन्दोलन मे एक उपकरण के रूप मे कार्य कर रहा था वही अचानक 50वे तथा 60वे दशक मे पृथक राज्य का आधार क्यो हो गया । यहॉ पर यह भी देखा कि ज्यादातर मामलो मे पुनर्गठन का आधार भाषायी उतना नही था जितना आर्थिक । यद्यपि बाद वाले आधार (आर्थिक) को गौड रूप मे उठाया गया था । तत्पश्चात् देश मे पृथक राज्य की मागो का वस्तुनिष्ठ परीक्षण करने मे पाया कि पृथक राज्य आन्दोलन वास्तव मे लोगो की पहचान से जुडे होते है। यद्यपि इसमे आर्थिक एव अन्य कारक भी सम्मिलित रहते है । यहॉ पर यह भी देखा गया कि इस पहचान का निर्माण कैसे होता है और विभिन्न प्रकार के सामाजिक, भाषायी तथा आर्थिक तत्वो का इस तरह की पहचान बनाने या न बनाने मे क्या योगदान रहा है । इस बात का भी आलोचनात्मक दृष्टिकोण से परीक्षण किया गया कि ऐसी क्या बात थी जिसने पहचान के निर्माण के लिए एक शक्तशाली ब्यवहार को सम्भव बनाया ।

अन्तिम अध्याय– "निष्कर्ष एव सुझाव" मे उपरोक्त अध्यायो के अन्तर्गत किये गये विश्लेषणात्मक एव तथ्य परक अध्ययन के द्वारा जो भी निष्कर्ष परिलक्षित होता है उसको लेखबद्ध करने का प्रयास किया गया है और क्षेत्रीयतावाद के दुष्परिणामो से बचाव के लिये कुछ सुझाव भी दिये गये जिनका अनुपालन कर इसके नकारात्मक प्रभावो को काफी कुछ कम किया जा सकता है। इसके साथ ही यह भी बताया गया है कि सकारात्मक क्षेत्रीयतावाद सघीयवाद को अधिक सफल बना सकता है। सकारात्मक क्षेत्रीयतावाद या क्षेत्रीय स्वायत्तता राष्ट्रीय एकीकरण का विरोधी नही है और न ही इसका महत्व केवल विघटनकारी शक्ति के रूप मे ही है। दोनो सृजनात्मक साझेदारी मे रह सकते है। दोनो ही विकास के पक्ष मे है। विकास के प्रति प्रतिबद्ध स्वायत्तता या सकारात्मक क्षेत्रीयतावाद क्षेत्र के विकास पर जोर देता है जबकि राष्ट्रीय एकीकरण पूरे राष्ट्र के विकास पर जोर देता है और सभी क्षेत्रो का विकास राष्ट्र के सर्वागीण विकास के लिये सबसे जरूरी समझा जाता है। क्षेत्रीय स्वायत्तता या सकारात्मक क्षेत्रीयतावाद का आधार यदि क्षेत्र का विकास है, तो वह राष्ट्र के लिये खतरनाक न होकर राष्ट्र भक्ति और राष्ट्र प्रेम के साथ सुसगत होता है। मातृभूमि से प्रेम लोगो को जाति या धार्मिक समुदायो के प्रति खतरनाक वफादारी से अलग हटाकर एक सकारात्मक भूमिका भी निभा सकता है। किसी भी रूप मे ले भारत जैसे विशाल, बहुसास्कृतिक व विविधतापूर्ण देश मे क्षेत्रीयतावाद और उप क्षेत्रीयतावाद से बचा नही जा सकता। बचने की जरूरत केवल इसके नकारात्मक तत्वो से हैं। क्योकि विकास के लिये प्रतिबद्ध क्षेत्रीय स्वायत्तता या सकारात्मक क्षेत्रीयतावाद का अस्तित्व न केवल मूल राष्ट्रीय मनोभाव की अभिव्यक्ति के लिये महत्वपूर्ण व्यवस्था है वरन् राष्ट्रीय राज्य की स्थापना के कारण यह अस्तित्व तर्क पूर्वक पैदा होता है।

द्वितीय अध्याय
और
एकीकरण
की समस्या

राष्ट्रीय राजनीति और भारत में राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या

भारत मे ब्रिटिश शासन के प्रारम्भ से और 1858 मे ब्रिटिश राजशाही का सार्वभौम शासन स्थापित होने से पूर्व अनेक छोटी–बडी राजनीतिक इकाइया थी। इन इकाइयो मे अपनी सत्ता बनाये रखने और अन्य इकाइयो से अपनी रक्षा के लिये आपस मे सघर्ष होता रहता था। ब्रिटिश काल से पूर्व भी हालाकि मौर्य, गुप्त, चोल और पाड्य जैसे बडे साम्राज्य थे, किन्तु ब्रिटिश शासको द्वारा अपना प्रभुत्व कायम करने से पहले यहॉ भारतीय राज्य कहलाने योग्य कोई राष्ट्र नही था, क्योकि इससे पूर्व भारत कभी भी राजनीतिक रूप से किसी शासन के नीचे सगठित नही हुआ था। लेकिन इसका अर्थ यह नही है कि हमारी कोई राष्ट्रीय अस्मिता नही थी। राजनीतिक रूप से एक रूप देने वाली क्षेत्रीय सीमाये न होने के बावजूद ऐसे अनेक तत्व थे जो देश मे एकता की भावना पैदा करते थे। धार्मिक विश्वास, रीति–रिवाज और धार्मिक सस्थाये लोगो को एक होने की ताकत देते थे।[1] लेकिन यह चेतना राजनीतिक प्रभाव क्षेत्र मे पैदा नही हुई और इसीलिये हमारी राष्ट्रीय अस्मिता नही थी, जिन अर्थो मे आज इसकी बात की जाती है। इसे हम ज्यादा से ज्यादा एक राष्ट्र के रूप मे सास्कृतिक समेकता कह सकते है। लेकिन इसे राजनीतिक समेकता नही कहा जा सकता।

भारत में राष्ट्रीयता का विकास और स्वतन्त्र भारत में राजनीति का स्वरूप

ब्रिटिश शासको के विरूद्ध, हिसक, अहिसक, सवैधानिक अथवा असवैधानिक, हर तरह के सघर्षो ने भारत मे विभिन्न समूहो को एकजुट किया। भारत मे ब्रिटिश शासन की स्थापना ने यद्यपि हमे गुलामी दी, लेकिन इसके विरोध की भावना ने लोगो मे आजादी की प्रक्रिया भी शुरू की। इसने हमे न केवल एक सास्कृतिक एकता मे, बल्कि राजनीतिक एकता के सूत्र मे भी बाधा। इस प्रकार ब्रिटिश शासन की समाप्ति के प्रयासो के दौरान भारत मे राष्ट्रीयता का उदय हुआ। भारत मे राष्ट्रीयता के इस उदय मे दो कारणो ने विशेष योगदान किया–

(1) एक सामान्य शत्रु की उपस्थिति अर्थात ब्रिटिश शासन, और

(2) समान सास्कृतिक अस्मिता, जो भारत मे बहुत समय से थी और जिसने भारत को एक राष्ट्र के रूप मे सगठित होने मे सहायता की।

स्वतन्त्रता आन्दोलन का प्रमुख कार्य केवल ब्रिटिश शासको से राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना ही नही था बल्कि एक आधुनिक राष्ट्र का विकास करना भी था। वे यह बात अच्छी तरह जानते थे कि राष्ट्रनिर्माण भी उतना ही जरूरी है जितना कि राजनैतिक स्वतन्त्रता। अत विभिन्नता वाले अधिक से अधिक समूहो को सगठित करना, उनकी प्रमुख राजनैतिक गतिविधि थी। आजादी के बाद की राजनीति मे भी यही बात दिखाई दी।

स्वतन्त्रता के साथ नई समस्याये आयी। साम्प्रदायिक दगो और उपद्रवो के शमन के साथ–साथ पाकिस्तान से उद्वासित लाखो आदमियो को बसाने का कठिन कार्य तथा तेलगना मे कम्युनिष्ट प्रेरित किसानो का बलवा, निजाम हैदराबाद के खिलाफ पुलिस कार्यवाही। सरकार को

1 कोठारी, रजनी (1990), *भारत मे राजनीति,* नई दिल्ली, ओरियट लाग्मैन, पृ0 21 ।

अग्रेजी जमाने के सरकारी नौकरो और सेनाओ का विश्वास और वफादारी प्राप्त करनी थी। इसके अलावा साम्प्रदायिक शक्तियो को भी दबाना था, जो देश के विभाजन के बाद उमड आईं थी। असन्तुष्ट प्रादेशिक और राजनीतिक समूहो को सतुष्ट करना था। सबसे बडा काम था देशी रियासतो को मिलाने का।[2] इसमे राजनीतिक कुशलता और सगठनपटुता की जरूरत थी। सक्षेप मे नेताओ के सामने यह काम था कि देश को विघटित होने से बचाये और उसके विभिन्न भागो और तत्वो को मिलाकर एक राष्ट्र की रचना करे।

नेताओ की समझदारी और दूरदर्शिता की तारीफ है कि उन्होने इन कठिन समस्याओ को काफी जल्दी सुलझा लिया। भारत के प्रथम गृहमत्री बल्लभाई पटेल ने देशी रियासतो को भारत मे मिलाने का काम बडी खूबसूरती से पूरा किया। इससे भी बडी सफलता उन्होने देश मे शान्ति और व्यवस्था स्थापित करने और प्रशासकीय तथा सैनिक सेवाओ की निष्ठा प्राप्त करने मे पाई।

सन् 1950 मे स्वीकृत किया गया सविधान, राष्ट्र निर्माण की दिशा मे पहला कदम था। सामाजिक, सास्कृतिक, आर्थिक और भौगोलिक विभिन्नता एव भारत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को देखते हुये भारतीय सविधान मे सघीय प्रणाली को अपनाया गया ताकि, हाल ही मे नवस्वतन्त्र राष्ट्र मे देशी रियासतो के विषय के पश्चात् नव सगठित राष्ट्र मे जहॉ एक ओर राष्ट्रीय एकता की भावना को पुष्ट किया जा सके वही दूसरी ओर क्षेत्रीय विविधताओ को भी अपनी सम्मुन्नति हेतु उचित अवसर प्राप्त हो सके।

देश की एकता और मजबूती के साथ–साथ नेता वर्ग सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रो मे देश की प्रगति के लिये भी उत्सुक था। अत उन लोगो को, जो राष्ट्रीय राजनीति की मुख्य धारा से अब तक जुड नही सके थे, सगठित करने के उद्देश्य से, भारतीय शासन तन्त्र ने समाजवादी व्यवस्था अपनाकर राष्ट्र निर्माण के लिये एक और प्रयास किया। इस व्यवस्था से भी विघटनकारी प्रवृत्तियो को नियन्त्रित करने मे सहायता मिली। राजनीतिक नेताओ द्वारा उठाया गया दूसरा मुख्य कदम था– देश का आर्थिक पुनरूत्थान। आर्थिक गतिविधियो को नियन्त्रित करने के लिये पचवर्षीय योजनाओ का निर्माण ऐसा ही एक कदम था। इसके लिये भारत सरकार ने योजना आयोग की स्थापना की ताकि देश के विभिन्न क्षेत्रो मे होने वाले सम्भावित असन्तुलन और ससाधनो को देखते हुये योजनाओ को तैयार किया जा सके। बहुत थोडे समय मे ही विकास के आयोजन, मूल्याकन और परामर्श के लिये केन्द्रीय मशीनरी का विकास कर लिया गया।[3] इस तरह सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र की

---

2 भारत का जो भाग अग्रेजो के शासन मे था उसे ब्रिटिश भारत कहा जाता था। इसके अलावा देशी राजाओ के शासन मे करीब 500 छोटी–बडी रियासतें थीं। ये स्वतन्त्र राज्य नहीं, ब्रिटिश अधिपत्य के अन्तर्गत थे। किन्तु अग्रेजों के हटने से भारत और पाकिस्तान को अपने आप इनके ऊपर आधिपत्य नहीं मिला। इसलिए देशी रियासतो को शेष देश मे मिलाने की टेढी समस्या पैदा हुई।

3 सरकार की योजना और तथ्य सकलन की मशीनरी के बारे मे देखिये– विलफ्रेड मेडलबाय, 'हू इज द प्लानिग' और मेरिल आर0गुडल का लेख *"आर्गनाइजेशन आफ एडमिनिस्ट्रेटिव लीडरशिप इन द फाइव ईयर प्लैन्स"*, रिचर्ड एल पार्क और ईरेन टिकर सपा0 (1959), *लीडरशिप ऐड पोलिटिकल इस्टीट्यूशन्स इन इडिया,* प्रिस्टन यूनिय0 प्रेस, पृ0 301–28। राजनीतिक प्रक्रिया के रूप में योजना के विशद अध्ययन के लिये देखे– ए0एच0 हैन्सन (1966), *द प्रोसेस आफ प्लानिग,* लदन ।

तरह आर्थिक क्षेत्र मे भी राष्ट्रीय राजनीति ने विभिन्न क्षेत्रो के बीच मेलजोल रखने और टकराव टालने की नीति अपनायी गयी। इस नीति से उन्हे उपर्युक्त समस्याओ को सुलझाने मे बडी मदद मिली। नेहरू ने सन् 1952 मे इस बात को यो कहा था, "इस नाजुक समय मे मै देश की एकता को सर्वोपरि समझता हूँ। जब तक इस एकता की नीव पक्की न हो जाए, हमे ऐसी कारवाई से बचना चाहिये, जो इसमे बाधक हो।"[4]

भारतीय राष्ट्रीय सरकार ने वितरण के लिये वस्तुओ की उपलब्धता पर ध्यान देने के साथ–साथ वितरण के विषय मे न्याय पर भी ध्यान दिया। साथ ही, नियन्त्रण की दृढ व्यवस्था को समाप्त करने के लिये भी प्रयास शुरू किये गये। इस तरह राष्ट्र निर्माण के हमारे प्रयासो मे केवल विकास के लक्ष्य ही शामिल नही थे बल्कि समानता और सामाजिक न्याय प्राप्ति के लक्ष्य भी शामिल थे। यद्यपि ये कार्य आर्थिक और सामाजिक विकास के उद्देश्य से किये गये, फिर भी इनसे सघर्ष के कुछ ऐसे कारण दूर हुए, जो उग्र होकर देश की एकता को नुकसान पहुचा सकते थे। श्रमिको के हितो की रक्षा के लिये जो कानून बनाये गये तथा काग्रेसजनो ने मजदूर सघो के कार्य मे जो रूचि ली थी, उससे औद्योगिक सघर्षो को रोकने मे मदद मिली। इसी तरह अनुसूचित जातियो और पिछडे वर्गो को शिक्षा और सरकारी नौकरियो मे जो विशेष सरक्षण दिये गये और उनकी सामाजिक स्थिति को सुधारने की जो कारवाइया की गईं, उससे ऊँची जातियो से उनका सघर्ष टला। जमीदारी और सामती अधिकारो के उन्मूलन से भी सघर्ष का एक बडा कारण दूर हुआ।

स्वतन्त्रता के प्रथम दशक मे देश के सूत्रधारो ने एक और महत्वपूर्ण कार्य किया। यह था भाषा के आधार पर राज्यो का पुनर्गठन। अग्रेजो ने सामाजिक और सास्कृतिक आधारो की उपेक्षा करके केवल शासन की सुविधा के ख्याल से प्रान्तो का निर्माण किया था।[5] राष्ट्रवादियो को यह बात पसन्द न थी और राष्ट्रीय आन्दोलन के समय कई बार काग्रेस ने भाषावार प्रान्तो की स्थापना का निश्चय प्रकट किया था।[6]

---

4 *'स्पीचेज ऑफ जवाहर लाल नेहरू 1949–53'* (भारत सरकार, दिल्ली, 1954) सघर्ष बचाने के विषय पर 'सेमिनार' (नई दिल्ली) 63, नवम्बर 1964 मे देखिये जितेन्द्र सिह का लेख *ए न्यू लेजिटिमेसी'*। उद्धत कोठारी, रजनी (1990), पूर्व उद्धत कृति, पृ0 81 ।

5 इस शताब्दी मे अग्रेजो ने प्रान्तो की रचना भाषा और सस्कृति के आधार पर करने के सिद्धान्त के महत्व को स्वीकार किया और बिहार, उडीसा, आसाम और सिध (अब पाकिस्तान मे) के नये प्रान्त इसी प्रकार के थे। 1918 की माटेग्यू–चेम्सफोर्ड रिपोर्ट और 1930 की साइमन कमीशन की रिपोर्ट मे भी भाषावार प्रान्तो की स्थापना की सिफारिश की गयी थी।

6 1921 मे काग्रेस ने अपनी प्रदेश शाखाये इसी आधार पर स्थापित की थी। लेकिन स्वतन्त्रता के बाद जो कठिन समस्याये आयीं उनके कारण काग्रेस राज्यो के इस प्रकार के पुनर्गठन पर ध्यान न दे सकी और कुछ यह भी ऊहापोह होने लगा कि भाषावार राज्य बनाना उचित है या नही। यद्यपि नवम्बर 1947 मे नेहरू ने सविधान सभा मे भाषावार प्रान्तो के सिद्धान्त को स्वीकार किया था, लेकिन सविधान सभा द्वारा नियुक्त भाषावार प्रान्त कमीशन (धर कमीशन) ने भाषा के आधार पर प्रान्तो के पुनर्गठन का कडा विरोध किया, इसलिये सविधान मे ऐसे पुनर्गठन की व्यवस्था नही की गई।

नेताओ और भारत से सहानुभूति रखने वाले राजनीतिक पर्यवेक्षको की आशकाओ के[7] बावजूद पुनर्गठन से भारत का राजनीतिक नक्शा अधिक सुसगत हो गया और राष्ट्र की एकता को भी खास नुकसान नही पहुचा।[8] बल्कि इससे लाभ यह हुआ कि झगडे का एक कारण दूर हुआ और राज्यो का कामकाज ऐसी भाषा मे होना सम्भव हुआ, जिसे जनसाधारण समझ सके। बल्कि बाद के अनुभव से तो यह कहा जा सकता है कि भाषा जोडनेवाली शक्ति सिद्ध हुई।[9] यदि इसमे कोई आशका की बात है तो यही कि उपभाषाओ और स्थानीय सस्कृतियो के आधार पर राज्यो के टुकडे न हो जाएँ।[10]

इस प्रकार पहले दशक मे भारतीय राष्ट्र का सवैधानिक प्रादेशिक और विकास का ढॉचा तैयार किया गया। जहॉ सविधान की व्यवस्था मे सशोधन की जरूरत पडी वहॉ सशोधन किये गये, जैसे राज्यो का पुनर्गठन, योजना आयोग की स्थापना और भूमि सुधार के लिये सम्पत्ति सम्बन्धी अनुच्छेद का सशोधन। अब इन कारको को देखे, जिन्होने राष्ट्र निर्माण के हमारे प्रयासो को चुनौती दी।

राष्ट्र निर्माण के प्रयासो को चुनौती देने वाली शक्तियॉ

राष्ट्र निर्माण और समानता एव सामाजिक न्याय के उद्देश्यो की प्राप्ति के प्रयासो मे रूकावट डालने वाले एक–दूसरे से मिले–जुले अनेक कारण है, जिनमे से तीन शक्तिया प्रमुख है

(1) भारतीय समाज मे समूहो की विभिन्नता,

(2) क्षेत्रीय और सास्कृतिक भिन्नता, और

(3) जातिवाद ।

---

7 मौरिस जान्स जैसे यर्थाथवादी आलोचको को भी इस विषय मे आशका थी। आन्ध्र मे उन्हे जाति और क्षेत्रो के झगडे दिखाई पडे। देखे *पार्लमेंट इन इडिया* (लदन 1957)। लेकिन आन्ध्र उन राज्यो मे है जहा काग्रेस का प्रभाव है, जो उनके झगडो पर अकुश रखता है। तेलगू के उपयोग के कारण आन्ध्र मे किसान वर्ग के नेताओ को उभरने का मौका मिला है। इससे अग्रेजी पढे शासन वर्ग मे घबराहट है जो अग्रेजी को देश की एकता का सूत्र समझता है। इस विचार के प्रतिपादन के लिये देखिये– सेलिग, हैरिसन (1960), *इडिया द मोस्ट डेजरेस डिकेड्स,* प्रिस्टन यूनिय0 प्रेस, पृ0 860 ।

8 भारत के सविधान मे राज्यो की तीन श्रेणियॉ थी– 'ए मे भूतपूर्व अग्रेजी शासन के प्रान्त थे, 'बी' मे भूतपूर्व देशी रियासते तथा 'सी' मे केन्द्र शासित प्रदेश। राज्यो के पुनर्गठन के बाद केवल दो वर्ग रह गये राज्य और सघ शासित क्षेत्र।

9 भाषा के प्रश्न के कुछ और पहलू हैं जो राष्ट्र की एकता के लिये खतरनाक हैं। इनमे सबसे बडा महत्व का प्रश्न है राजभाषा और क्षेत्रीय भाषाओ का द्वन्द और अग्रेजी का स्थान। इस विषय का विवेचन इसी अध्याय मे आगे किया गया है।

10 राज्य पुनर्गठन आयोग ने जनभावना का ध्यान रखते हुये एक भाषा एक राज्य की सिफारिश की थी (हिन्दी भाषी राज्यो को छोडकर)। वास्तव मे इसका कोई कारण नही कि हिन्दी राज्यो की तरह अन्य भाषाई क्षेत्रो मे भी एक से अधिक राज्य क्यो न हो। बाद के अनुभव से पता चला है कि भाषा के अलावा अन्य बाते भी है जो राजनीतिक एकता, प्रशासनिक कुशलता और आर्थिक विकास को प्रभावित करती है। इस विषय पर देखे– श्री निवास (नवम्बर 16, 1967), *"द फ्यूचर आफ फिशन"*, नई दिल्ली, टाइम्स आफ इण्डिया और कोठारी, रजनी, (फरवरी 10, 1968), *"नेशनल यूनिटी इन डेजर, केस फार स्मालर यूनिट्स"*, नई दिल्ली, टाइम्स आफ इण्डिया। इस प्रश्न पर आगे इसी अध्याय मे विचार किया गया है।

भारत एक बहुजातीय समाज है और यह विभिन्न समूहो को लेकर बना है। भारतीय राष्ट्र को सबसे बडा खतरा इसी विभिन्नता से है। भारतीय समाज धर्म, जाति, भाषा और वर्ण के आधार पर बटा हुआ था और आज भी बटा हुआ है। यहाँ तक कि स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान भी, जब विभिन्न समूह प्रत्यक्ष रूप से ब्रिटिश शासन को समाप्त करने के लिये एकजुट हो गये थे, तब भी विभाजक प्रवृत्तिया स्पष्ट रूप से उभरी थी।

भारत मे राष्ट्रीय नेताओ को आज भी इस गम्भीर चुनौती का सामना करना पड रहा है कि विभिन्न समूहो के हितो को किस तरह परस्पर जोडकर रखा जाय। प्रत्येक समूह की अपनी आकाक्षाए, इतिहास और रहन–सहन होता है। परस्पर विरोधी समूहो मे टकराव कम करने के प्रयास हमेशा सफल नही होते। जैसा कि पहले भी देखा गया है, विभिन्न विभाजक प्रवृत्तियो को नियन्त्रित करने की नीति के रूप मे समाज मे समानतावादी आदर्श अपनाना एक महत्वपूर्ण कार्यनीति है। लेकिन साथ ही यह भी जरूरी है कि इन विभिन्न समूहो को देश के लिये खतरा न बनने दिया जाय।

राष्ट्र–निर्माण के कार्य के दौरान क्षेत्रीयता की चुनौती भी सामने आयी। हमारे देश की राजनीति मे अभी भी क्षेत्रीय अस्मिताये उठ खडी होती है। यह भाषा के आधार पर प्रदेशो के गठन से भी स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त विभिन्न अचलो से की जा रही पृथक राज्य की माग से भी क्षेत्रीयता की भावना स्पष्ट होती है। इसका अर्थ यह नही है कि क्षेत्रीय अस्मिता पर ध्यान ही न दिया जाय। कुछ लोग यह कह सकते हैं कि क्षेत्रीयता को पूरी तरह पनपने नही दिया जाना चाहिए, क्योकि यह विघटन को बढावा देती है। राष्ट्र ने पहले भी ऐसी समस्याओ का सामना किया है और समाधान की प्रक्रिया ने शासन–तत्र मे क्षेत्रीयता को अपने मे समेटे रहने की क्षमता दी है। समाधान की राजनीति ने जहाँ एक ओर अनेक समूहो के विभिन्न हितो को राष्ट्रीय ढॉचे मे शामिल कर लिया है वही दूसरी ओर राष्ट्रीय राज्य की सफलता के बावजूद विभिन्न सस्कृतियो ने अपनी अलग अस्मिता को बनाये रखा।

वास्तव मे, राष्ट्रीय स्तर की राजनीति ने क्षेत्रीय और सास्कृतिक अस्मिता को मान्यता दी और यहा तक केन्द्र सरकार ने उन्हे कानूनी स्वीकृति भी दी। भारत ने अठारह भाषाओ को राष्ट्रीय भाषा के रूप मे मान्यता दी है। इसकी प्रत्येक राज्य सरकार को अपनी क्षेत्रीय भाषा मे कामकाज करने का अधिकार दिया है। यह अल्पसख्यको की धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक गतिविधियो मे हस्तक्षेप नही करती। कुछ लोगो को ऐसा लगता है कि यह अल्पसख्यको को अधिक सुविधाये देती है। ऐसा विचार रखने वालो की सख्या बहुत कम नही है। लेकिन कुछ ऐसे भी लोग हैं जो अल्पसख्यको के अधिकारो की रक्षा को राष्ट्र की एक प्रमुख उपलब्धि मानते है। इससे राष्ट्रीय राज्य सगठित रहता है और राजनीतिक एकता बनती है।

जाति भारतीय समाज की एक अन्य महत्वपूर्ण सस्था है। राजनीतिक क्षेत्र मे इसकी विशेष भूमिका की उत्पत्ति हाल ही मे हुई है। आज राजनीतिक जोड–तोड मे जाति प्रमुख आधार बन गयी है। जाति लोगो को सगठित करने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यही कारण है कि राजनीति मे इसने अपनी जगह बना ली है। जाति की सस्था के राजनीतिकरण होने से भारत की राजनीतिक प्रक्रिया ने एक नया रूप अपना लिया है। भारत मे राजनीतिक दलो का गठन जाति के आधार पर

हुआ और जाति के आधार पर ही भारत के निर्वाचक मण्डल को आधार बनाया जा सकता है। समानता पर आधारित समाजवादी सिद्धान्त से मेल न खाने के कारण इसकी भूमिका को राष्ट्रीय राजनीति मे एक बुराई और राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया को चुनौती देने वाला एक प्रमुख कारण समझा जाता है। इसके बावजूद लोगो को एकजुट करने के किसी अन्य विकल्प के अभाव मे जाति भारत की राष्ट्रीय राजनीति मे निश्चित भूमिका निभाती है।

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि राष्ट्र–निर्माण का कार्य कोई आसान कार्य नही है और राजनीतिक अस्मिता बनाने के लिये राष्ट्रीय एकीकरण जरूरी है, अर्थात नये राजनैतिक केन्द्र बिन्दु की स्थापना और दृढीकरण, उसका बर्हिमुख प्रस्तर, विभिन्न सस्थाओ का पल्लवन और विविधता को एक सूत्र मे सग्रहण कर एक राष्ट्र का निर्माण।[11]

भारत मे एकीकरण की समस्या केवल बहुमत और अल्पसख्यको के बीच सामजस्य स्थापित करने तक सीमित नही है। समस्या अन्तरधर्मी, अन्तराधर्मी, अन्तरजातीय, अन्तराजातीय, अन्तरराज्यीय और अन्तराराज्यीय दोनो ही प्रकार की है।[12] भारतीय समाज के परम्परागत स्वरूप के कारण लोगो की स्थानीय प्रतिबद्धता अत्यधिक प्रबल है। इस कारण लोगो की राजनीतिक सस्कृति विखण्डित है। विभिन्न सामाजिक घटक एक–दूसरे को विपरीत दिशाओ मे खीच रहे हैं और वृहद् पैमाने पर एक–दूसरे के विरूद्ध हिसारत हैं। इन परस्पर विरोधी हितो के बीच समन्वय स्थापित करना भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की सबसे गम्भीर रामस्या है। जैसा कि नेहरू ने कहा था, "मेरे जीवन का मुख्य ध्येय भारत का एकीकरण है।" यह स्वाभाविक भी है, क्योकि भारत एक राष्ट्र बनने की प्रक्रिया से गुजर रहा है। मगर मुख्य बात यह है कि एकीकरण के लिये तरीका क्या अपनाया जाय। इस तरीके मे दो बाते हैं– एक सरकार और सरकारी या शासन दल की गतिविधियो के द्वारा देश मे एकता की स्थापना और उसका दृढीकरण। दूसरे, देश के विभिन्न तत्वो के अधिकारो और हितो का सरक्षण और मान्यता एव उनको राष्ट्रीय जीवन और राजनीतिक व्यवस्था मे शामिल करना। भारत की राजनीतिक एकता मे राष्ट्रीय सरकार की प्रधानता और अन्य हितो व अल्पसख्यको के प्रति समझौते और निभाव की भावना, इन दो प्रवृत्तियो का मुख्य योग है।[13]

राष्ट्रीय एकीकरण का अर्थ

समाज के विभिन्न भागो के समन्वित विकास की प्रक्रिया को राष्ट्रीय एकीकरण कहते है। एकीकृत समाज मे सामाजिक सस्थाओ और उनसे जुडे मूल्यो को ऊँचे दर्जे की सामाजिक मान्यता प्राप्त होती है। किन्तु इसका अर्थ यह नही कि विविधताओ का अन्त करके पूरे देश मे एक धर्म या एक भाषा लागू कर दी जाये। एकीकरण से तात्पर्य विलय नही है, वरन् विविधताओ को इस तरह बनाये रखना है कि उनसे देश का अस्तित्व खतरे मे न पडने पाये। इसका अर्थ है कि प्रत्येक वर्ग या समूह स्वतन्त्र और न्यायपूर्ण ढग से अपने हितो को सुरक्षित और विस्तृत कर सके, लेकिन इस तरह से कि दूसरे समूहो के हितो का अपहरण भी न हो। साथ ही, यह भी देखना है कि कोई भी व्यक्ति या समूह अपने लाभ या हित के लिये राष्ट्रीय हितो की उपेक्षा न करने पाये। एकीकरण की

11 कोठारी, रजनी (1990), पूर्व उद्धत कृति, पृ0 201 ।

12 सईद, एस0एम0 (1998), *भारतीय राजनीतिक व्यवस्था,* लखनऊ, सुलभ प्रकाशन, पृ0 366 ।

13 कोठारी, रजनी (1990), पूर्व उद्धत कृति,, पृ0 201।

अवधारणा इस बात पर आधारित है कि राष्ट्र का हित व्यक्ति, समूह अथवा क्षेत्रीय हितो से ऊपर है। राष्ट्रीय एकीकरण का अर्थ है कि व्यक्तिगत हितो और राष्ट्रीय हितो के बीच सामन्जस्य स्थापित करना और ऐसे वातावरण का सृजन करना जिसमे कोई व्यक्ति या समूह केवल अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिये राष्ट्रीय हितो की उपेक्षा न करने पाये तथा किसी अन्य वर्ग या समूह का शोषण भी न करे।

राष्ट्रीय एकीकरण सम्मेलन द्वारा राष्ट्रीय एकीकरण को इस प्रकार परिभाषित किया गया है "यह एक मनोवैज्ञानिक और शैक्षणिक प्रक्रिया है जिसमे लोगो के भीतर एकता, सामजस्यता, तारतम्यता की भावना का विकास सामान्य नागरिकता और राष्ट्र के प्रति विश्वसनीयता सम्मिलित है।"[14] राष्ट्रीय एकता या एकीकरण वह मकान नही है जो चूने व ईटो से बनाया जाता है। यह एक औद्योगिक योजना भी नही है जिस पर विशेषज्ञ विचार–विमर्श करे और उसे क्रियान्वित करे। एकीकरण, इसके विपरीत, एक विचार है जो लोगो के मस्तिष्क मे विकसित होना चाहिए। यह वह चेतना है जो व्यापक स्तर पर लोगो को जागृत करती है। राष्ट्रीय एकीकरण मे निहित है परस्पर लगाव एव एक साथ रहने की व एकता की भावना। इसका अर्थ है देश मे एक ऐसा सामाजिक व धार्मिक वातावरण का निर्माण करना जिसमे सभी नागरिक जो धर्म व सामाजिक प्रतिष्ठा के भेदभाव रहित शान्तिपूर्ण जीवन बिता सके, जो एक सुदृढ व एकीकृत देश बनाने के लिये समान्य उद्देश्य के प्रति समर्पित हो। राष्ट्रीय एकीकरण से विभिन्नता मे एकता अभिव्यक्त होती है जिसमे सभी तत्वो को समान महत्व का माना जाता है और वे अन्त निर्भर होते है। राष्ट्रीय एकीकरण से सम्बन्धित किसी भी विचार–विमर्श मे एकता व विभिन्नता दोनो का सम्मान किया जाता है क्योकि यदि केवल एकता होगी तो एकीकरण की आवश्यकता नही होगी और यदि केवल विभिन्नता होगी तो एकीकरण सम्भव नही होगा। एकीकरण का अर्थ विभिन्नता को समानता मे बदलना नही है, बल्कि राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया का अर्थ है विभिन्नताओ को एकता मे सहायक होना जिसमे सभी विभिन्नताए और विचित्रताये सुरक्षित रहती है।

वस्तुत राष्ट्रीय एकीकरण मे राष्ट्र निर्माण और राज्य निर्माण सम्मिलित है, जिसका आशय एक ओर उन सीमाओ को दूर करने से है, जो समाज को जातीय, जनजातीय, साम्प्रदायिक, प्रजातीय, भाषायी अथवा क्षेत्रीय आधारो पर विभाजित करती है और दूसरी ओर इसका अभिप्राय क्षेत्रीय अखण्डता से है। इसे एक प्रक्रिया के रूप मे परिभाषित किया जा सकता है जिसमे विभिन्न समूहो व उपसमूहो मे देशभक्ति की चेतना और राष्ट्रनिर्माण की भावना हो, जिससे सभी का हित, एकजुटता, पहिचान और सहभागिता उपलब्ध हो सके। राष्ट्रीय एकीकरण का निहितार्थ उन पृथकतावादी गतिविधियो का त्याग करना है जिनसे देश खण्डित हो और समाज मे उन प्रवृत्तियो को ग्रहण करना है जो निहित स्वार्थों की अपेक्षा राष्ट्रीय हितो को प्राथमिकता देती हो। उक्त से स्पष्ट है कि राष्ट्रीय एकीकरण मे निम्नाकित तीन बाते निहित होती है–

(क) यह सास्कृतिक और सामाजिक दृष्टि से विभिन्न समूहो को एक क्षेत्रीय इकाई के रूप मे गठित करने और एक राष्ट्रीय पहचान के निर्माण की प्रक्रिया है।

---

14. उद्धत, लाल, नन्द (जून 1993), *"भारत मे राष्ट्रीय एकीकरण स्वरूप, समस्याये एव सम्भावनाये"*, प्रतियोगिता दर्पण, आगरा, उपकार प्रकाशन, पृ0 1421 ।

(ख) इस प्रक्रिया मे उन अधीन राजनैतिक इकाइयो व क्षेत्रो पर राष्ट्रीय केन्द्रीय सत्ता स्थापित की जाती है जो अपने निजी सास्कृतिक व सामाजिक समूहो मे बटकर एकता रखने मे समर्थ या असमर्थ हो।

(ग) यह एक सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने के लिये न्यूनतम् मूल्य सहमति निर्माण की प्रक्रिया है, चाहे इसका सम्बन्ध मूल्यो की स्वीकृति से हो अथवा उद्देश्यो की प्राप्ति से।

राष्ट्रीय एकीकरण में बाधक तत्व

भारत मे स्वतन्त्रता के बाद जिस राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना की गयी उसकी प्रमुख विशेषता राजनीतिक तन्त्र मे जनसाधारण का सक्रिय रूप से भागीदार होना है। किन्तु उस प्रतियोगी राजनीति ने व्यक्तिगत स्वार्थ को बढावा दिया और समूह चेतना को विकसित किया। राजनीतिक आधुनिकीकरण के फलस्वरूप एक ओर, धर्मनिरपेक्ष राजनीतिक व्यवस्था स्थापित हुई और दूसरी ओर धार्मिक और जातीय जागरूकता को प्रोत्साहन मिला। परिणाम यह हुआ कि विभिन्न धार्मिक भाषायी, जातीय और क्षेत्रीय समूहो के बीच ही टकराव प्रारम्भ हो गया और इसने एक गम्भीर राष्ट्रीय समस्या का रूप धारण कर लिया। भारत मे भाषावाद, साम्प्रदायिकता, सामाजिक असमानता, क्षेत्रीय विषमताये, आदि कुछ ऐसे कारण है, जो राष्ट्रीय एकीकरण के आदर्श के लिये खतरा है और जिनसे समाज के विभिन्न वर्गों के बीच खाई बढती जा रही है। राष्ट्रीय एकीकरण की इस समस्या को जन्म देने मे निम्नलिखित तत्व मुख्यरूप से उत्तरदायी रहे है–

(क) भाषावाद– भारतीय समाज के विभाजन का एक महत्वपूर्ण कारण भाषा है। हमारे देश मे सैकडो भाषाये बोली जाती है[15], जो कि राजनीतिक जोड–तोड करने के लिये एक महत्वपूर्ण माध्यम सिद्ध हुई। उदाहरण के लिये दक्षिण भारत विशेषकर तमिलनाडू मे इसे सत्ता प्राप्ति के साधन के रूप मे अपनाया गया। भाषा समाज मे एकीकरण और विखण्डन दोनो की ही भूमिका निभा सकती है। भारत मे इसकी विखण्डनकारी भूमिका ही अधिक रही है। कनाडा, बेल्जियम, स्विट्जरलैण्ड या सोवियत रूस का उदाहरण यहाँ लागू नही होता। 19वी सदी मे यूरोप मे भाषा के आधार पर जिस प्रकार जर्मनी इटली आदि राष्ट्रीय राज्यो का उदय हुआ, वह भी भारत पर लागू नही हो सकती।[16] इस समय भी भाषा सम्बन्धी नीति मे जो अनिश्चितता देखने मे आ रही है उसका कारण यह है कि सबकी सहमति से भाषा समस्या का समाधान करना आसान नही है।[17] भारत मे भाषा की समस्या के मुख्यत दो पहलू है–

(क) विद्यालय, महाविद्यालय और लोक सेवा परीक्षा मे शिक्षा का माध्यम, और

(ख) हिन्दी भाषी एव गैर हिन्दी भाषी कट्टरपथियो की मागो को पूरा करना।

---

15 1927 मे भारत की भाषाओ की पडताल (लिग्विस्टिक सर्वे) का विवरण प्रकाशित हुआ था इसमे 179 भाषाओ और 544 उपभाषाओं सहित 1652 मातृभाषाये (बोलिया) गिनाई गयी थी।

16 केदूरी, एली (1960), *नेशनलिज्म,* लदन एव कोठारी, रजनी, (1990), पूर्व उद्धत कृति, पृ0 219 ।

17 गडकर, गजेन्द्र (अक्टूबर एव 14 09 1967), *"ए प्ली टू कसीडर प्राब्लम रेसनली डिसाइड वाइजली एण्ड हेसेन स्लोली'* (कन्वोकेशन भाषड, बडोदा एव मीडियम ऑफ एजूकेशन बम्बई यूनि0)।

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत के लिये राजभाषा के विषय को लेकर प्रमुख मतभेद उत्पन्न हुआ। सविधान मे विचार किया गया कि हिन्दी को सघ की राजभाषा बनाया जाए। इसके साथ ही यह भी कहा गया कि हिन्दी को केन्द्र और प्रदेशो के बीच और एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश के बीच सम्प्रेषण के लिये अपनाया जाए। भारतीय सघ के प्रदेश विधान मण्डलो को यह भी अधिकार दिया गया कि प्रदेश की भाषा के रूप मे प्रयोग करने के लिये हिन्दी सहित एक अथवा अधिक भाषाओ को अपना सकते है। सविधान मे यह प्रावधान किया गया कि सविधान की घोषणा से लेकर पन्द्रह वर्ष के अन्दर सघ की राजभाषा हिन्दी देवनागरी लिपि मे तथा अन्तर्राष्ट्रीय अको सहित होनी चाहिये। परन्तु ससद, कानून द्वारा अग्रेजी को सम्पर्क भाषा के रूप मे प्रयोग करने की अवधि बढा सकती है। राजभाषा से सम्बन्धित निर्देश को लागू करने के प्रयत्न ने एकता के स्थान पर अधिक गहरी भाषाई प्रतिद्वन्दिता उत्पन्न कर दी।

दक्षिण प्रदेशो मे हिन्दी का विरोध प्रबल राजनीतिक अभिव्यक्ति के रूप मे देखा गया। इन प्रदेशो के अधिकाश लोगो के साथ–साथ पूर्वी भारत के गैर हिन्दी भाषी क्षेत्रो के लोगो ने भी हिन्दी को थोपने का विरोध किया। लोगो को यह डर था कि उनकी भाषा का स्थान हिन्दी के द्वारा ले लिया जाएगा, जिसे वे घटिया भाषा समझते थे। राजभाषा के रूप मे हिन्दी को अपनाने और स्कूलो मे अनिवार्य विषय के रूप मे लागू करने को उन्होने इस अर्थ मे लिया कि हजारो वर्षो से उनकी समृद्ध भाषा के ऊपर एक अपेक्षाकृत कम विकसित भाषा को थोपा जा रहा है।

1950 के दशक मे हिन्दी थोपने के विरोध मे बहुत से आन्दोलन चले। 1956 मे तमिल सस्कृति की सस्था ने मद्रास मे सघीय भाषा सम्मेलन बुलाया जिसने अपने प्रस्ताव मे कहा कि यह बहुत बडा अन्याय होगा कि कोई भी अन्य भाषा (हिन्दी) अग्रेजी का स्थान ले जबकि 10 करोड की जनसख्या इस भाषा से पूर्णतया अपरिचित है। यदि महत्व की दृष्टि से देखा जाय तो इस सम्मेलन मे विभिन्न राजनीतिक सगठनो के प्रतिनिधि जैसे–सी0 राजगोपालचारी (स्वतन्त्र), ई0वी0 रामास्वामी नायकर (द्र क), पी0टी0राजन (न्याय पार्टी), सी0एन0 अन्नादुराई (द्र मु क) आदि शामिल थे। 8 मार्च 1958 को हुये राष्ट्रीय सम्मेलन मे सी0 राजगोपालचारी ने घोषित किया कि "गैर हिन्दी भाषी लोगो के लिये हिन्दी उतनी ही विदेशी है जितनी हिन्दी समर्थको के लिये अग्रेजी।"

दक्षिण भारत मे हिन्दी के प्रति बढते हुये विरोध को देखते हुये 1959 मे जवाहर लाल नेहरू ने दक्षिण भारत के लोगो को यह आश्वासन दिया कि (क) उन पर हिन्दी को नही थोपा जायेगा और (ख) अग्रेजी को सहायक क्षेत्रीय भाषा के रूप मे सरकारी उद्देश्यो के लिये तब तक प्रयोग मे लाया जायेगा जब तक लोग इसे चाहेगे। इसका निर्णय हिन्दी भाषी लोगो की अपेक्षा गैर हिन्दी भाषी लोगो पर छोड दिया जायेगा। 1964 के उत्तरार्द्ध मे बहुत सी बातो से "हिन्दी साम्राज्यवाद" का भय दक्षिण भारत के लोगो मे फिर से जाग उठा। जवाहर लाल नेहरू की मृत्यु के बाद हिन्दी थोपे जाने का भय दक्षिण भारत मे फिर पैदा हुआ था। पन्द्रह साल की अवधि समाप्त होने के कारण यह भय और अधिक बढ गया। क्योकि अब अग्रेजी के स्थान पर हिन्दी का प्रयोग राजभाषा के रूप मे होना था। दक्षिण के गैर हिन्दी भाषी राज्यो का भय, 1963 के राजभाषा अधिनियम से भी खत्म नही हुआ,

जबकि इस अधिनियम ने केन्द्र और प्रदेशो दोनो मे अग्रेजी का निरन्तर प्रयोग सम्भव बना दिया था।

26 जनवरी 1956 के गणतन्त्र दिवस पर भारतीय सविधान के अधिनियम 343 के अनुसरण मे हिन्दी को भारत की राजभाषा बना दिया गया। दक्षिणी प्रदेशो ने इसका जोरदार प्रतिरोध किया। द्रविड मुनेत्र कजगम ने 26 जनवरी, 1956 का दिन शोक दिवस के रूप मे निर्दिष्ट किया। विद्यार्थी समुदाय ने हिन्दी थोपने के विरूद्ध मे आन्दोलन शुरू कर दिया। द्रविड मुनेत्र कजगम ने इस आन्दोलन का पथ प्रदर्शन करके बहुत सम्मान प्राप्त किया और दो वर्ष पश्चात् हुए चुनाव मे शासक दल के रूप मे भी स्थान हासिल किया।

द्रविड मुनेत्र कजगम ने यह आग्रह किया कि सभी चौदह भाषाये अपने–अपने प्रदेशो मे राजभाषा के रूप मे अपनायी जाय और अग्रेजी को प्रदेशो और केन्द्र के बीच सम्पर्क भाषा के रूप मे अपनाया जाय। साम्यवादियो के साथ–साथ कामराज ने त्रिभाषा सूत्र (अग्रेजी, हिन्दी और मातृभाषा) का पक्ष लिया। जून 1965 मे यह घोषणा की गयी कि कामराज (काग्रेस अध्यक्ष) के द्वारा दिये गये प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया गया है। इस प्रकार भाषा समस्या के पहले पहलू को देखते हुए सरकार ने 'त्रिभाषा फार्मूला' अपनाया और दूसरे पहलू अर्थात् हिन्दी और गैर हिन्दी भाषी कट्टरपथियो की माग के सदर्भ मे राजभाषा अधिनियम (सशोधन) 1967 पारित किया और गैर हिन्दी भाषी राज्यो को जब तक वे राजभाषा के रूप मे हिन्दी नही अपनाना चाहते, अग्रेजी को राजभाषा बनाये रखने की अनुमति प्रदान कर दी।[18] इस प्रकार सरकार को भाषायी टकराव रोकने मे सहायता मिली। ऊपर वर्णित घटनाये यह भी दिखाती है कि किस प्रकार भाषा एक महत्वपूर्ण विवाद का विषय बन गयी जिसके आस–पास बहु प्रदेश क्षेत्रीयतावाद विकसित हुआ।

तमिलनाडू के अलावा अन्य राज्य भी भाषायी वैमनस्यता से पूर्ण मुक्त नही है। उदाहरण के लिये कर्नाटक मे कन्नड और तमिल, उत्तर प्रदेश और बिहार मे हिन्दी और उर्दू, पजाब मे हिन्दी और पजाबी, गोवा मे मराठी और कोकणी, असम मे असमी और बगाली, त्रिपुरा मे कोक, बोरोक और त्रिपुरी के मध्य द्वन्द है। इन भाषाई विभेदो ने भी सामाजिक तनावो को जन्म दिया है।

(ख) साम्प्रदायिकता एवं पथवाद– साम्प्रदायिकता की बढती हुई प्रवृत्ति और उसके साथ जुडी हुई हिसा ने धार्मिक अल्पसख्यको और नृजातीय समूहो मे असुरक्षा की भावना जागृत कर दी है, जिससे राष्ट्रीय एकीकरण की भावना को धक्का पहुचा है। 1960 के बाद से कश्मीर, पजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, गुजरात, असम और आन्ध्र प्रदेश मे हुई घटनाये साम्प्रदायिक विष के विविध रूपो का प्रचुर प्रमाण देती है और उसके विनाशकारी परिणाम का अनुभव कराती है। आतकवादियो पर नजर रखने और उन्हे धार्मिक स्थलो मे रहने से रोकने के लिये पुलिस की गुरूद्वारो, दरगाहो, मस्जिदो या अन्य पुण्य स्थानो (जैसे, अमृतसर मे 1984 मे या श्रीनगर (कश्मीर) मे नवम्बर 1993 मे) के पास उपस्थिति को धार्मिक मामलो मे हस्तक्षेप माना जाता है। इसलिये राष्ट्र की शान्ति एव एकता की क्षति को रोकने के लिये साम्प्रदायिकता का विश्लेषण करना और उस पर विचार करना आवश्यक है और यह मालूम करना भी उतना ही सगत है कि 'साम्प्रदायिक' कौन है।

---

18 किशोर, सत्येन्द्र (1987), *नेशनल इटिग्रेशन इन इडिया,* नई दिल्ली, स्टर्लिग पब्लि0, पृ0 41।

साम्प्रदायिकता को एक विचारधारा माना जा सकता है जो कि यह बताती है कि समाज धार्मिक समुदायो मे बटा हुआ है, जिनके स्वार्थ एक दूसरे से भिन्न है और कभी–कभी उनमे पारस्परिक विरोध भी होता है। व्यापक अर्थों मे साम्प्रदायिकता उस प्रवृत्ति को कहते है जब कोई सामाजिक–धार्मिक समूह दूसरे समूहो की कीमत पर अपनी आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक ताकत बढाने का प्रयास करता है। एक समुदाय के सदस्य जो दूसरे समुदाय के सदस्यो और धर्म के विरूद्ध प्रतिरोध करते है उन्हे 'साम्प्रदायिक' कहा जा सकता है। यह विरोध किसी विशेष समुदाय पर झूठे आरोप लगाना, क्षति पहुचाना और जान–बूझकर अपमानित करने का रूप लेता है। इससे भी अधिक यह लूटना, असहाय और निर्बल व्यक्तियो के घरो और दुकानो मे आग लगाना, उनकी स्त्रियो को अपमानित करना और आदमी–औरतो को जान से मार देने का वीभत्स रूप धारण कर लेता है।

यह प्रवृत्ति धर्म निरपेक्ष राष्ट्र की धारणा के विपरीत है। भारत ने सर्वधर्मसमभाव के आदर्श को स्वीकार किया है। भारतीय सदर्भ मे धर्म निरपेक्षता उसे कहते है जिसमे सभी धर्मों के शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्व की बात हो। किन्तु लोकतन्त्र और समाजवाद के लक्ष्यो की प्राप्ति के लिये सोच–समझकर कदम उठाने के बावजूद भारतीय राष्ट्र साम्प्रदायिक सघर्षों से मुक्त नही है।[19]

साम्प्रदायिक व्यक्ति वे है जो राजनीति को धर्म के माध्यम से चलाते है। ऐसे व्यक्तियो को खतरनाक राजनीतिक कचरा कहा जा सकता है। उनके लिये भगवान और धर्म उपकरण मात्र है जिनका उपयोग वे समाज के 'शाही पराश्रयी' के रूप मे विलासमय जीवन बिताने और अपने राजनीतिक लक्ष्यो की प्राप्ति के लिये करते है।[20]

साम्प्रदायिकता का आचरण कई प्रकार से किया जाता है, उदाहरण के लिये, राजनीतिक साम्प्रदायिकता, धार्मिक साम्प्रदायिकता और आर्थिक साम्प्रदायिकता। राजनीतिक साम्प्रदायिकता चिरस्थायी या टिकाऊ राजनीतिक स्वार्थपरायणता की उपज है और इसको इस प्रकार विकसित और सुरक्षित किया जाता है कि जिससे अपने कुकर्म छिप जाये और दूसरे व्यक्तियो का ध्यान इस ओर से हट जाये। इस राजनीतिक खेल योजना के अन्तर्गत कई मनगढन्त घटनाओ का पर्दाफास करने का नाटक रचा जाता है जिससे ऐसा लगे कि साम्प्रदायिकता अपराध के लिये प्रतिद्वन्द्वी ही दोषी है। इस राजनीतिक खेल योजना मे सदैव नेता वह कहते है जो कहना नही चाहते और वह नही कहते जो कहना चाहते है।

टी0के0ऊमन ने साम्प्रदायिकता के छह आयाम– आत्मसातीकरण, कल्याणकारी, पलायनवादी, प्रतिशोधवादी, अलगाववादी और पार्थक्यवादी बतलाये है।[21] आत्मसातीकरण साम्प्रदायिकता वह है जिसमे छोटे धार्मिक समूहो का बडे धार्मिक समूह मे समावेश/एकीकरण कर लिया जाता है। कल्याणकारी साम्प्रदायिकता का लक्ष्य किसी विशेष समुदाय का कल्याण होता है। पलायनवादी साम्प्रदायिकता वह है जिसमे एक छोटा धार्मिक समुदाय अपने को राजनीति से अलग रखता है। प्रतिशोध पूर्ण साम्प्रदायिकता दूसरे धार्मिक समुदाय के सदस्यो को हानि और चोट पहुचाने का प्रयत्न

19 तदैव ।

20 डे आफ्टर, जून, 1990, पृ0 35–36 ।

21 ऊमन, टी0के0, (1989), *द हिन्दुस्तान टाइम्स,* अगस्त 8 ।

करती है। पृथकतावादी या अलगाववादी साम्प्रदायिकता वह है जिसमे एक धार्मिक समुदाय अपनी सस्कृति की विशेषता बनाये रखना चाहता है और देश मे एक अलग राज्य की माग करता है , उदाहरणार्थ, उत्तर–पूर्वी भारत मे कुछ मिजो और नागाओ की माग, असम मे बोडो की माग और बिहार मे झारखण्ड जनजातियो की माग। अन्त मे, पार्थक्यवादी साम्प्रदायिकता वह है जिसमे एक धार्मिक समुदाय अपनी अलग राजनीतिक पहचान चाहता है और एक स्वतन्त्र देश की माग करता है। खालिस्तान की माग कर रहा सिक्खो का एक बहुत ही छोटा उग्रवादी समूह इस प्रकार की साम्प्रदायिकता को अपना रहा है। इन छ प्रकार की साम्प्रदायिकता मे से पिछले तीन रूप समस्याये खडी करते है और जिनके कारण आन्दोलन, साम्प्रदायिक झगडे, आतकवाद और बगावत उत्पन्न होते है।

भारत के अनेकवादी समाज मे केवल धार्मिक समुदाय ही नही है, जैसे– हिन्दू (82 63), मुसलमान (11 36), ईसाई (2 43), सिक्ख (1 96), बौद्ध (0 717), जैन (0 48) आदि। हिन्दू कई सम्प्रदायो मे बटे हुये है, जैसे आर्य समाजी, शैव, सनातनी और वैष्णव। इसी प्रकार जहॉ एक ओर मुसलमान शिया और सुन्नी मे बटे हुए है वहॉ दूसरी ओर उनमे अशरफ (कुलीन), अजलफ (जुलाहे, कसाई, खाती, तेली) और अरजल भी सम्मिलित है। हिन्दुओ और मुसलमानो के पारस्परिक सम्बन्धा एक अन्तराल से तनावपूर्ण रहे है जबकि हिन्दुओ और सिक्खो ने एक–दूसरो को कुछ वर्षो के लिये (विशेषकर 1984 से 1990 के बीच) सदेह की दृष्टि से देखना शुरू किया था। यद्यपि दक्षिण भारत के एक राज्य मे हिन्दुओ और ईसाइयो और मुसलमानो और ईसाइयो मे और अब गुजरात और दक्षिण मे दो राज्यो मे हिन्दुओ और ईसाइयो के झगडो के बारे मे सुना जाता है, परन्तु सब मिलाकर भारत मे ईसाई यह नही सोचते कि दूसरे समुदाय उनकी वचना या शोषण करते है। यहॉ हम मुख्यत हिन्दू–मुसलमान सम्बन्धो का विश्लेषण करेगे। हिन्दू–सिक्ख सम्बन्धो का विश्लेषण अध्याय चार मे किया गया है।

हिन्दू–मुस्लिम साम्प्रदायिकता भारत को ऐतिहासिक विरासत मे मिली है।[22] 1920 एव 1930 के दशको मे साम्प्रदायिकता को प्रतिष्ठा प्रदान करने और कुल मिलाकर राष्ट्रवादियो द्वारा और 1941–46 के दौरान साम्यवादियो द्वारा बुरे को बुरा न कहने की कीमत देश के बटवारे और 1946–47 मे भीषण साम्प्रदायिक दगो और हत्याओ के रूप मे चुकानी पडी थी।[23] स्वतन्त्र भारत मे राष्ट्रवादी शक्तियॉ क्रमश दुर्बल होती गयी और इनके स्थान पर धार्मिक कट्टरता और साम्प्रदायिक धर्मान्धता की प्रवृत्तिया बलवती होती गई है। भारत का कोई भी हिस्सा उन्माद से मुक्त नही है, फिर भी 1980 के दशक के प्रारम्भ तक साम्प्रदायिक

---

22 साम्प्रदायिक समस्या की शुरूआत मुस्लिम युग से हुई। लेकिन पिछले कई सौ वर्षो मे हिन्दू और मुसलमान साथ–साथ रहते आये थे और उनमे काफी सामाजिक और सास्कृतिक आदान–प्रदान और एकता पैदा हो गयी थी ब्रिटिश शासन से एक नुकसान यह हुआ कि उनसे साम्प्रदायिक द्वेष को उत्तेजना मिली। इसमे ब्रिटिश राज्य काग्रेस और मुस्लिम राजनीतिक नेता सब का दोष है। यह भी एक विचित्र विडम्बना है कि प्रतिनिधि और धर्म निरपेक्ष शासन के जिस सिद्धान्त ने भारत मे आधुनिकता का परिचय किया, उसी ने साम्प्रदायिक समस्या को भी उभाडा।– कोठारी, रजनी (1990), पूर्व उद्धत कृति,, पृ0 46–47 ।

23 चन्द्र, विपिन (1996), पूर्व उद्धत कृति,, पृ0 254 ।

राजनीतिक पार्टियो का प्रभाव सीमित था। सन् 1984 तक किसी भी चुनाव मे उन्हे 10प्रतिशत से अधिक वोट नही मिले थे।[24] लेकिन पिछले कुछ वर्षों मे साम्प्रदायिकता खतरनाक सीमाओ तक फैल चुकी है। अब यह एक ऐसी समस्या समझी जाती है जो देश की विकास प्रक्रिया मे बाधा और विरोध उत्पन्न करती है। 1980 के दशक मे सिक्ख साम्प्रदायिकता ने आतकवाद और अलगाववाद को आगे बढाया था, अब मुस्लिम सम्प्रदायवाद अधिक जहरीला बन चुका है और इसने इस खतरनाक स्थिति को जन्म दिया है कि सभी मुसलमान एकमत होकर (चुनावो मे) वोट दे।[25] अधिकाश धर्म निरपेक्ष पार्टियो की अवसरवादिता तथा धर्मनिरपेक्षता के प्रति उनकी क्षीण होती हुई आस्था एव साम्प्रदायिक पार्टियो की वैधानिकता ने अल्पसख्यक साम्प्रदायिकता का तुष्टीकरण एव तत्जन्य बहुसख्यक साम्प्रदायिकता की अभिवृद्धि मे योगदान दिया है।[26]

सूक्ष्म अवलोकन से स्पष्ट है कि 16 शहर जो हिन्दू–मुस्लिम दगो के लिये अति सवेदनशील हैं वे है उत्तर प्रदेश मे मुरादाबाद, मेरठ, आगरा और वाराणसी, महाराष्ट्र मे औरगाबाद, गुजरात मे अहमदाबाद, आन्ध्र प्रदेश मे हैदराबाद, बिहार मे जमशेदपुर और पटना, असम मे सिलचर और गौहाटी, पश्चिम बगाल मे कलकत्ता, मध्य प्रदेश मे भोपाल, जम्मू और कश्मीर मे श्रीनगर, और उडीसा मे कटक। इन शहरो मे ग्यारह भारत के उत्तरी क्षेत्र मे आते हैं, तीन पूर्वी क्षेत्र मे और दो दक्षिण के क्षेत्र मे।

हिन्दू–मुस्लिम विद्वेष अनेक पेचीदा कारको के घालमेल के कारण हो सकता है। ये कारक है (1) मुस्लिम आक्रमण जिनमे आक्रमणकारी धन लूटते थे और हिन्दू मन्दिरो पर/के समीप मस्जिदे बनाते थे। (2) अग्रेजो का अपने शाही शासन के दौरान अपने स्वार्थों के लिये मुस्लिम अलगाववाद को प्रोत्साहन। (3) विभाजन के पश्चात भारत मे कुछ मुसलमानो का व्यवहार जिन्होने क्रिकेट मैच मे पाकिस्तान टीम की जीत के बाद पाकिस्तानी झण्डा फहराया और कुछ मुसलमानो के आह्वान पर राष्ट्रीय स्वतन्त्रता दिवस को 'काले दिन' के रूप मे मनाया जाना जिसके परिणाम स्वरूप बहुसख्यक समुदाय मे यह भावना उत्पन्न हुई कि मुसलमान देशभक्त नही है। (4) मुसलमान की एक रूढिवादी छवि जो भारतीय मानस मे घर किये हएे है, वह एक धर्मान्ध, अन्तर्मुखी बाह्य समुदाय की है। इसी प्रकार मुसलमान एक हिन्दू को चालाक, शक्तिशाली और अवसरवादी समझता है, जो उसे उत्पीडित करता है और अपने को मुख्यधारा से विमुख समझता है। (5) देश मे अपना स्थान बनाने के लिये मुस्लिम राजनीतिक दलो मे एक नई आक्रमकता। इसकी कई चर्चाए है कि कुछ मुसलमान उग्रवादी 'विदेशी पैसा' प्राप्त कर रहे है, विदेशी एजेन्ट बने हुए है, एक सुव्यवस्थित योजना के द्वारा देश के धर्मनिरपेक्षता के आदर्श को कलकित करने मे लगे हुए है, और मुसलमानो को भडकाने की कोशिश कर रहे है। (6) मुसलमानो मे एकता लाने और उनकी समस्याओ को सुलझाने मे मुस्लिम नेता कदाचित इस कारण असफल हुए क्योकि पश्चिम एशिया और पाकिस्तान मे व्याप्त मुस्लिम कट्टरवादिता ने उन्हे प्रभावित किया है और इस कारण उनमे कुठाए उत्पन्न हो गई है। (7) सरकार

---

24 तदैव, पृ० IX ।
25 तदैव ।
26 तदैव ।

भी मुसलमानो की उपेक्षा करने की जिम्मेदार है। इनका बहुत बडा भाग अपने को अलग–थलग मानता है और इस कारण वे मतलबी नेताओ के सहज शिकार हो जाते है। सत्ता प्राप्त अभिजन केवल धार्मिक मैत्री का पाठ पढाते है और उन्हे मुसलमानो की समस्याओ की कोई जानकारी नही है। हिन्दू नेतृत्व केवल उन मुसलमान नेताओ से सम्पर्क रखता है जो कि उनकी बात मानते हैं। (8) हिन्दू उग्रवादी यह कहते है कि इस देश मे मुसलमानो की ओर ध्यान दिया जा रहा है।

हाल के वर्षों मे इस स्थिति मे एक नया कारक जुड गया है। वह है हिन्दू सम्प्रदायवादियो द्वारा धर्म तथा राष्ट्रवाद को साम्प्रदायिकता के साथ जोडकर खुद धर्मनिरपेक्ष होने का दावा करना। उन्होने राम जन्म भूमि तथा बाबरी मस्जिद के सवाल को धार्मिक उन्माद बढाने और साम्प्रदायिकता की प्रचण्ड लपटे फैलाने के लिये इस्तेमाल किया है।[27] साम्प्रदायिकता को राष्ट्रवाद की चासनी मे परोसने की इसी प्रकार की प्रवृत्तियो ने ही 1947 के पहले राष्ट्रीय आन्दोलन का विरोध करके उसे कमजारे किया था, जिसके फलस्वरूप भारत का विभाजन हुआ। आजादी के बाद अब यह राष्ट्रीय एकता और राष्ट्र निर्माण के लिये कम खतरनाक नही है, जैसा कि जवाहरलाल नेहरू ने 1951 मे ही इन शब्दो मे चेतावनी दी थी, "साम्प्रदायिकता की गतिविधिया भारत की राजनैतिक व्यवस्था मे खजर घोपने के समान होगी।"[28] यदि साम्प्रदायिकता को खुली छूट दी गयी तो यह "भारत के टुकडे करेगा।"[29] इसलिये साम्प्रदायिकता के खिलाफ लडने की दीर्घकालीन रणनीति के अग के रूप मे साम्प्रदायिकता के राष्ट्रविरोधी, विभाजनकारी और देश को खण्डित करने वाले बुनियादी चरित्र का खुलासा करना होगा। आमतौर पर धर्म का सकीर्ण राजनीतिक लाभ के लिये दुरूपयोग किये जाने के सवाल का जवाब निहित है– धर्म को राज्य तथा राजनीति से अलग रखने के धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण विकसित करने मे। जैसा कि गाधी जी ने भी कहा था, "धर्म प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तिगत मामला है। इसे राजनीतिक या राष्ट्रीय मामलो मे नही मिलाना चाहिए।"[30]

भारत की स्वतन्त्रता से लेकर अब तक कुल मिलाकर दस हजार से भी अधिक साम्प्रदायिक सघर्ष हो चुके है। पिछले 55 वर्षों मे देश मे हुए बडे साम्प्रदायिक सघर्षों के अध्ययनो ने यह उद्घाटित किया है कि (1) साम्प्रदायिक दगे धर्म की तुलना मे राजनीति से अधिक प्रेरित होते है। मदान कमीशन ने भी, जिसने मई 1970 मे महाराष्ट्र मे हुए साम्प्रदायिक दगो की छानबीन की, इस पर बल दिया था कि "साम्प्रदायिक तनावो के वास्तुकार और निर्माता सम्प्रदायवादी और राजनीतिज्ञो का एक वर्ग होता है– वे अखिल भारतीय और स्थानीय नेता जो अपनी राजनीतिक स्थिति को सुदृढ बनाने, अपनी प्रतिष्ठा को बढाने और अपनी सार्वजनिक छवि को समृद्ध बनाने के लिये हर अवसर का लाभ उठाना चाहते है और इसके लिये वे हर घटना को साम्प्रदायिक रग देते है और इस प्रकार जनता के आगे वे अपने आपको अपने समुदाय के धर्म और अधिकारो के हिमायती के रूप मे प्रस्तुत करते है।" (2) राजनीतिक स्वार्थों के अलावा आर्थिक स्वार्थ भी साम्प्रदायिक झगडो को भडकाने मे

27 तदैव ।
28 गुप्ता, एन0एल0 (सपादित), (1965), *नेहरू आन कम्यूनलिज्म,* नई दिल्ली, पृ0 219 ।
29 नेहरू, जवाहरलाल (1986), *लेटर्स टू चीफ मिनिस्टर्स, 1947–1964,* भाग–2, नई दिल्ली।
30 गाधी, एम0के0 (1963), *द वे टू कम्यूनल हारमनी,* अहमदाबाद, पृ0–39, 398 ।

प्रबल भूमिका अदा करते है। (3) साम्प्रदायिक दगे दक्षिण और पूर्वी भारत की अपेक्षा उत्तर भारत मे अधिक आम है। (4) ऐसे शहरो, जिनमे साम्प्रदायिक दगे एक या दो बार हो चुके है, मे इनके पुन होने की सम्भावना ऐसे शहरो की अपेक्षा जहा कभी दगे नही हुए अधिक प्रबल होती है। (5) अधिकाश साम्प्रदायिक दगे धार्मिक त्योहारो के अवसर पर होते है। (6) दगो मे घातक हथियारो का उपयोग बढ रहा है। (7) दगे आमतौर पर शहरो मे ही होते है तथा गाव इनसे मुक्त रहते है।

भारत मे साम्प्रदायिक उन्माद 1946–48 के दौरान अपनी पराकाष्ठा पर पहुच गया था। 1950–1963 के काल को साम्प्रदायिक शान्ति का काल कहा जा सकता है। दगो के प्रभाव क्षेत्र 1963 के बाद एकाएक बढ गये। देश मे 1954–55 और 1988–89 के बीच हुये साम्प्रदायिक दगो की कुल सख्या को सूचीबद्ध किया गया है 1954–55 125, 1956–57 100, 1958–59 60, 1960–61 100, 1962–63 100, 1964–65 675, 1966–67 310, 1968–69 800, 1970–71 775, 1972–73 425, 1974–75 400, 1976–77 315, 1978–79 400, 1980–81 710, 1981–82 830, 1982–83 950, 1983–84 1090, 1984–85 1200, 1985–86 1300, 1986–87 764, 1987–88 711, 1988–89 611 ।[31] 1998 मे देश मे 626 दगे हुए थे जिनमे 207 व्यक्ति मारे गये और 2065 जख्मी हुए थे।[32] प्रो0 वार्ष्णेय के अनुसार 1950 से 1995 के बीच भारत मे बडे स्तर के 1238 दगे हुए जिनमे कुल 7,173 लोगो की मृत्यु हुयी। अध्ययन रिपोर्ट के अनुसार जिन शहरो मे अधिक दगे हुए है वे है अहमदाबाद, मुम्बई, अलीगढ, हैदराबाद, मेरठ, बडोदरा, कलकत्ता और दिल्ली।[33] दिसम्बर 6, 1992 मे अयोध्या मे विवादित स्थान के गिराने के बाद अनेक राज्यो मे साम्प्रदायिक दगो मे पॉच दिन मे 1060 व्यक्ति मारे गये थे। उत्तर प्रदेश मे 236, असम मे 76, कर्नाटक मे 64, राजस्थान मे 30 और बगाल मे 20 व्यक्ति मारे गये थे। बम्बई मे अप्रैल 1993 मे हुए बम विस्फोटो और उसके बाद कलकत्ता मे बम विस्फोटो के उपरान्त जो साम्प्रदायिक दगे हुए थे, उनमे 200 से अधिक हिन्दुओ और मुसलमानो के मारे जाने के समाचार थे। बम्बई बम विस्फोट के कुछ ही दिनो बाद दिल्ली के एक मशहूर इमाम ने वक्तव्य दिया था कि "अब हमारे जीवित रहने का मूल मुद्दा है। हम जिन्दा रहने के लिये हथियार उठाने की सम्भावना को भी नकार नही सकते।" सघ परिवार नेताओ ने यह दावा किया कि "भारत हिन्दू राष्ट्र है , हिन्दू सस्कृति ही प्रामाणिक भारतीय सस्कृति है, मुसलमान वास्तव मे महमदी हिन्दू है , तथा सभी हिन्दुस्तानी परिभाषा से ही हिन्दू है।" हिन्दू और मुस्लिम धर्मान्धजनो के इसी आक्रमणकारी दृष्टिकोण के कारण साम्प्रदायिक तनाव पैदा होता है और दगे भडकते है। जब साम्प्रदायिक तनाव–टकराव राजनेताओ का निहित स्वार्थ बन जाता है तो हालात और बिगडते हैं।

साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से, जबकि 1961 मे भारत के 350 जिलो मे से 61 जिले सवेदनशील माने गये, 1979 मे 216, 1986 मे 186, 1987 मे 254 और 1989 मे 186 जिले सवेदनशील जिलो

---

31 सरोलिया, शकर (1987), *इडियन पुलिस इश्यूज एण्ड पर्सपेक्टिव*, जयपुर गौरव पब्लिशर्स, पृ0–60 और द हिन्दुस्तान टाइम्स, अप्रैल 2, 1990 ।

32 द हिन्दुस्तान टाइम्स, मार्च 11, 1999 ।

33 द हिन्दुस्तान टाइम्स, मार्च, 2000 ।

की परिभाषा मे आये। जान की क्षति के अतिरिक्त इनका आर्थिक गतिविधियो पर भी दुष्प्रभाव पडता है। उदाहरणार्थ, 1983 और 1986 के बीच 14 करोड रू0 के माल का नुकसान हुआ।[34] 1986 और 1988 के बीच तीन वर्षों मे साम्प्रदायिक दगो की 2,086 घटनाओ मे 1,024 व्यक्ति मारे गये और 12,352 जख्मी हुए।

विभिन्न विद्वानो ने साम्प्रदायिक हिसा की समस्या का विभिन्न परिप्रेक्ष्य से अध्ययन किया है और उसके होने के विभिन्न कारण बताये है और उसे रोकने के लिये विभिन्न उपाय सुझाये है। मार्क्सवादी विचारधारा साम्प्रदायिकता का सम्बन्ध आर्थिक वचन और बाजार की ताकतो पर एकाधिकार नियन्त्रण को प्राप्त करने के लिये धनवान और निर्धन के बीच वर्ग सघर्ष को बतलाती है। कुछ राजनीतिज्ञ इसे सत्ता का सघर्ष मानते है। समाजशास्त्री इसे सामाजिक तनावो और सापेक्षिक वचनो से उत्पन्न हुई घटना कहते है। धार्मिक विशेषज्ञ इसे हिसक कट्टरवादियो और अनुचरो की शक्ति का प्रतीक कहकर पुकारते है।

बहुकारक उपागम मे दस प्रमुख कारक साम्प्रदायिकता के कारणो के बताये गये है।[35] ये है सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, कानूनी, मनोवैज्ञानिक, प्रशासनिक, ऐतिहासिक, स्थानीय और अन्तर्राष्ट्रीय। सामाजिक कारको मे सामाजिक परम्पराये, जाति एव वर्ग–अहम, असमानता और धर्म पर आधारित सामाजिक स्तरीकरण सम्मिलित है , धार्मिक कारको मे धार्मिक नियमाचारो और धर्म निरपेक्ष मूल्यो मे गिरावट, सकीर्ण और मतान्ध धार्मिक मूल्य, राजनीतिक लाभो के लिये धर्म का उपयोग और धार्मिक नेताओ की साम्प्रदायिक विचारधारा सम्मिलित है , राजनीतिक कारको मे धर्म पर आधारित राजनीति, धर्म–शासित राजनीतिक सस्थाये, राजनीतिक हस्तक्षेप, साम्प्रदायिक हिसा का राजनीतिक औचित्य और राजनीतिक नेतृत्व की असफलता सम्मिलित है , आर्थिक कारको मे आर्थिक शोषण और पक्षपात, असन्तुलित आर्थिक विकास, प्रतिस्पर्धा का बाजार, अप्रसरणशील आर्थिक व्यवस्था, श्रमिको का विस्थापन और असमावेशन और गल्फ से आये हुए पैसे का प्रभाव सम्मिलित है , कानूनी कारको मे सम्मिलित है समान कानूनी सहिता, सविधान मे कुछ समुदायो के लिये प्रावधान और रियायते, कुछ राज्यो को (जैसे काश्मीर) विशेष दर्जा, आरक्षण नीति और विभिन्न समुदायो के लिये विशेष कानून , मनोवैज्ञानिक कारको मे सम्मिलित है– सामाजिक पूर्वाग्रह, रूढिवद्ध अभिवृत्तिया, अविश्वास, दूसरे समुदाय के प्रति विद्वेष और भाव शून्यता, अफवाहे, भय का मानस और जन सम्पर्क के साधनो द्वारा गलत जानकारी देना/गलत अर्थ लगाना/अयर्थाथ रूप प्रस्तत करना, प्रशासनिक कारको मे शामिल है– पुलिस और दूसरी प्रशासनिक इकाइयो मे समन्वय का अभाव, कुसज्जित और कुप्रशिक्षित पुलिस कर्मचारी, गुप्तचर विभागो की अकुशल कार्यप्रणाली, पक्षपाती पुलिस के सिपाही, पुलिस की ज्यादतिया और निष्क्रियता और अकुशल पी0ए0सी0 , ऐतिहासिक कारको मे शामिल है– विदेशी आक्रमण, धार्मिक सस्थाओ को क्षति, धर्म परिवर्तन के लिये प्रयत्न, उपनिवेशीय शासको की फूट डालो और राज करो की नीति, विभाजन का मानसिक आघात, पिछले साम्प्रदायिक दगे, जमीन, मन्दिर और मस्जिद के पुराने झगडे , स्थानीय कारको मे सम्मिलित हैं– धार्मिक जुलूस, नारेबाजी, अफवाहे, जमीन के झगडे, स्थानीय असामाजिक तत्व और गुटो मे प्रतिद्वन्दिता , और अर्न्तराष्ट्रीय कारको मे सम्मिलित है– दूसरे देशो द्वारा दिये जा रहे प्रशिक्षण और

---

34 द टाइम्स आफ इण्डिया, जुलाई 25, 1986 ।
35 सरोलिया, शकर (1987), पूर्व उद्धत कृति, पृ0–62 ।

वित्तीय सहायता, भारत की एकता को भग करने और कमजोर बनाने के लिये दूसरे देशो द्वारा षडयन्त्र रचना और फिर साम्प्रदायिक सगठनो को समर्थन देना।

आरेख–1

साम्प्रदायिक दंगों के भड़काने की प्रक्रिया

दगा प्रवृत्त (Riot-Prone) संरचना

↓

अफवाहो का फैलना
(दूसरे दगा प्रभावित क्षेत्रो से)

↓

दगा ग्रस्त ध्रुवीय विभाजन और परिणामिक फूट से ग्रसित
जनसख्या की पहचान
(फूट की घटना को गति देने मे साम्प्रदायिक सगठन की भूमिका)

↓

वैर–भाव को महसूस करने के लिये दो ध्रुवीय गुटो मे विद्वेष
1 अति सामीप्य, 2 सामूहिक सभा स्थल, 3 पुलिस नियन्त्रण का अभाव

↓

साम्प्रदायिक दगे का प्रारम्भ

↓

दगे मे जन सहयोग
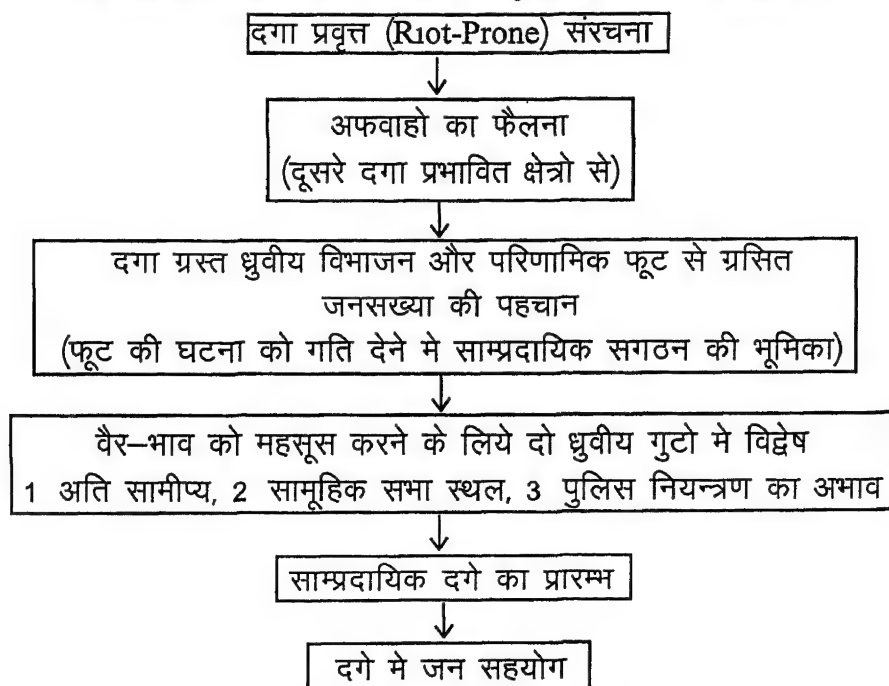
साम्प्रदायिक सघर्षो के कारण हिन्दुओ और मुसलमानो के बीच परस्पर विश्वास के स्थान पर आपसी सन्देह की भावना तेजी से विकसित हुई है। बहुमत सम्प्रदाय के सदस्य मुसलमानो को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं और उन पर राज्य क्षेत्रातीत निष्ठा का आरोप लगाते है। जबकि मुसलमानो के एक वर्ग की ओर से यह आरोप लगाया जाता रहा है कि सरकार जान–बूझकर साम्प्रदायिक सघर्ष कराती है। उनके साथ विभिन्न क्षेत्रो मे भेदभाव किया जा रहा है और उनकी भाषा तथा सस्कृति को नष्ट किया जा रहा है।[36] मुसलमान सम्प्रदायवादी बराबर 'हिन्दू प्रभुत्व' और 'अल्पसख्यको की अपनी पहचान खो देने'[37] की आशका व्यक्त करते हैं। इसी प्रकार हिन्दू सम्प्रदायवादियो ने भी हिन्दुओ के मन मे मुसलमानो द्वारा दमन और प्रभुत्व का भय उत्पन्न करने का प्रयास किया। लेफ्टीनेन्ट कर्नल यु0 एन0 मुखर्जी ने 'अ डाइग रेस' शीर्षक से प्रकाशित पुस्तक मे निष्कर्ष निकाला है कि "उनकी (मुसलमानो की) सख्या बढ रही है, शक्ति बढ रही है, स्वास्थ्य बढ रहा है, एकजुटता बढ रही है, और हम बिखर कर टुकडे–टुकडे हो रहे हैं। वे तो एक सयुक्त मुस्लिम विश्व के निर्माण की ओर अग्रसर हैं और हम अपने समाप्त हो जाने की प्रतिक्षा कर रहे हैं।[38] यदि हिन्दू अभी नही जागे तो समाप्त हो जायेगे।[39]

---

36 सरकार द्वारा "पर्सनल लॉ" मे सशोधन करने का प्रयास तथा अलीगढ विश्वविद्यालय के मूल चरित्र मे परिवर्तन करने का प्रयत्न, जैसी घटनाओ ने मुसलमानो के इस सन्देह को बल दिया है कि बहुमत समुदाय सरकार की सहायता से मुसलमानो का शोषण कर रही है। – सईद, एस0एम0 (1998), पूर्व उद्धत कृति, पृ0 297 ।

37 सुबेरी, जेड0ए0 (1946), *माई लीडर,*तीसरा सस्करण, पृ0 11 ।

38 उद्धत, प्रकाश, इन्द्र (1938), *ए रिव्यू ऑफ दि हिस्ट्री एण्ड वर्क ऑफ दि हिन्दू महासभा एण्ड हिन्दू सगठन मूवमेन्ट,* नई दिल्ली, पृ0 12 ।

39 दीक्षित, प्रभा (1974), *कम्यूनलिज्म– ए स्ट्रगल फॉर पॉवर,*नई दिल्ली पृ0 159 पर (1921 मे लाहौर के दैनिक प्रताप के सम्पादक द्वारा दी गयी चेतावनी) उद्धत ।

वस्तुत साम्प्रदायिकता मे शुद्धत धार्मिक अथवा धर्म मीमासात्मक तत्व कम ही रहता है।[40] सम्प्रदायवादी शायद ही कभी धर्म मीमासा का सहारा लेत है। के0वी0कृष्णा मुसलमान साहूकारो का दृष्टान्त देते है जो अपने धर्म के विरूद्ध ब्याज का धधा करते है और हिन्दू साहूकारो के विरूद्ध लडने के लिये धर्म का सहारा लेते है।[41] दूसरी ओर हिन्दू सम्प्रदायवादियो ने हिन्दू धर्म को समझाने के लिये हिन्दूत्व की धारणा का प्रयोग किया है।[42]

सम्प्रदायवादी धर्म का इस्तेमाल इसलिये करते है कि धार्मिक विभाजन की पहले से विद्यमान चेतना को उत्पन्न किया जा सके। उन्होने धर्म को केवल अपने राजनीतिक लक्ष्यो के लिये एक समूह एव विभाजक सिद्धान्त के रूप मे प्रयुक्त किया।[43]

सम्प्रदायवादी ही नही गैर सम्प्रदायवादी भी पहले नही आज भी, एक साम्प्रदायिकता के उदय का कारण दूसरी साम्प्रदायिकता को मानते है। इस दृष्टिकोण का एक दृष्टान्त प्रभा दीक्षित ने दिया है। उनका कहना है कि "मुस्लिम सम्प्रदायवाद तो सत्ता के लिये सघर्ष के रूप मे विकसित हुआ है, हिन्दू सम्प्रदायवाद की प्रतिक्रिया के रूप मे नही। दूसरी ओर, हिन्दू सम्प्रदाय मुस्लिम सम्प्रदायवाद की प्रतिक्रिया के रूप मे विकसित हुआ है।[44] नि सदेह एक बार विकसित हो जाने पर साम्प्रदायिकता की ये दोनो धारणाये एक–दूसरे की मदद से फलती–फूलती रही, एक–दूसरे को खारिज करने के स्थान पर एक–दूसरे को ज्यामितीय अनुपात मे बढावा देती रही।[45] प्रत्येक धारा दूसरे को वह औचित्य और उत्प्रेरण उपलब्ध कराती रही जो उनके लिये आवश्यक था। साम्प्रदायिकता की इस प्रबलता के लिये इतिहास की गलत व्याख्या भी उत्तरदायी है। मध्ययुगीन लोगो का भोगा हुआ इतिहास या उस समय की ऐतिहासिक प्रक्रिया ने नही अपितु उनकी साम्प्रदायिक व्याख्या ने ही साम्प्रदायिकता को जन्म दिया है।[46]

---

40 जैसा कि लुई ड्यूमो का कथन है, "जो धार्मिक तत्व इसके (साम्प्रदायिकता के) निर्माण मे सहायक होता है वह धर्म की छाया मात्र होता है। अर्थात, धर्म को जीवन के सभी पक्षों का मार्गदर्शन करने वाले सार के रूप में न देखकर एक मानव समूह कम से कम राजनीतिक विभेद के चिन्ह के रूप मे देखा जाता है", (1970), *"रिलिजन पॉलिटिक्स एण्ड हिस्ट्री इन इण्डिया"*, इन हिज कलेक्ट्रेड पेपर्स इन इडियन सोशियोलॉजी, पेरिस, पृ0 90–91, उद्धत चन्द्र, विपिन (1996), पूर्व उद्धत कृति,, पृ0 126, 306। इसी प्रकार आज जातिवाद या क्षेत्रवाद का शायद ही कोई आचारात्मक पक्ष हो।

41 उद्धत चन्द्र, विपिन (1996), पूर्व उद्धत कृति, पृ0 125 ।

42 वे हिन्दू धर्म का पालन करने वाले को नहीं अपितु उसे हिन्दू कहते थे जो भारत को मातृभूमि, पुण्यभूमि मानता हो। ऐसा वे जान–बूझकर करते थे क्योकि वे यह अच्छी तरह जानते थे कि हिन्दुत्व अथवा राष्ट्रीयता की परिभाषा मे धर्म के रूप मे हिन्दू धर्म का प्रयोग करने से हिन्दू बट जायेगे।

43 चन्द्र, विपिन (1996), पूर्व उद्धत कृति, पृ0 128 ।

44 दीक्षित, प्रभा (1974), *कम्युनिलिज्म अस्ट्रगल फॉर पावर,* नई दिल्ली, पृ0 9 ।

45 चन्द्र, विपिन (1996)", पूर्व उद्धत कृति, पृ0 153 ।

46 अतीत की दुहाई देकर या उसे वापस लाने और पुरानी विचारधाराओ और सस्थाओ को पुन स्थापित करने की बात कहकर नई सस्थाओ के पक्ष पोषण और नई विचारधाराओ और सस्थाओ को पुन स्थापित करने की बात रही है। जैसा कि मार्क्स ने कहा है," "मृत पीढी की परम्परा जीवित पीढी के मन पर दु स्वप्न के बोझ की भाति छायी रहती है। जब लोग अपने आपको अपने भौतिक परिवेश के क्रान्तिकारी रूपान्तरण के लिये तैयार कर रहे होते हैं, एक ऐसी चीज को बनाने मे लगे होते हैं जो अब तक नही है, ठीक ऐसे क्रान्तिकारी परिवर्तन के क्षण वे अपनी सहायता के लिये अतीत की आत्माओ का आवाह्न करने लगते हैं, वे उनके नाम, नारे, छद्मवेश और उधार ली गई भाषा के माध्यम से मचित कर सकें"– (1973), *द एटीन्थ ब्रूमिये ऑफ लुई बोनापार्ट, इन सर्वेज फ्राम एक्साइल,* मे उद्धत नई दिल्ली, पेग्विंन बुक्स, पृ0 146–47 ।

दक्षिण मे हरिजनो का इस्लाम धर्म मे और उत्तर पूर्व मे हिन्दुओ का ईसाई धर्म मे धर्मान्तरण भी चिन्ता का विषय है।[47] उदाहरण के लिये मध्य प्रदेश मे हिन्दुओ की ओर से यह आवाज उठायी गयी कि ईसाई मिशनरी हिन्दुओ को लालच देकर अथवा बल के द्वारा ईसाई बना रहे है। यह आन्दोलन इतना गम्भीर था कि 14 अप्रैल 1954 को मध्य प्रदेश सरकार ने इन आरोपो की जॉच के लिये नियोगी कमेटी की नियुक्ति की।[48] पजाब मे हिन्दुओ और सिक्खो के बीच जो टकराव है उसमे साम्प्रदायिकता अपने उग्र रूप मे सामने आई है। देश के कुछ भागो मे स्थित धार्मिक स्थलो मे यथा– पजाब मे स्वर्ण मन्दिर एव अन्य धर्म स्थलो का प्रयोग राजनीतिक उद्देश्यो के लिये किया जा रहा है[49] जो दुर्भाग्यपूर्ण है।

यह उल्लेखनीय है कि कुछ धर्मों मे आन्तरिक रूप से भी विभाजन दिखाई देता है। उदाहरण के लिये मुसलमान दो प्रमुख सम्प्रदाओ– शिया और सुन्नी के बीच विभाजित है और देश के कुछ भागो मे उनके बीच काफी तनाव रहता है। इसी प्रकार निरकारी और अकाली सिक्खो के बीच हिसात्मक झगडे हुये है। लखनऊ मे सिया और सुन्नी के मध्य एव अमृतसर और कानपुर मे निरकारी और अकाली सिक्खो के मध्य हमेशा सघर्ष होते रहे है। सक्षेप मे, राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या केवल दो धार्मिक समूहो के बीच एकता और सद्भावना उत्पन्न करने तक सीमित नही है, समस्या एक धर्म विशेष के अन्दर पाये जाने वाले अनेक उप समूहो को एकता के सूत्र मे बाधने की है।

(ग) जातिवाद– भारत मे जाति एक अन्य महत्वपूर्ण तत्व है, जिसने भारतीय समाज को असख्य समूहो मे विभाजित कर दिया है। हर जाति की अपनी अलग दुनिया है और प्रत्येक मे असख्य उपजातिया विद्यमान है। सघर्ष केवल ब्राह्मण और शूद्र अर्थात बडी जाति और छोटी जाति के बीच ही नही है, टकराव प्रत्येक जाति के अन्दर भी पाया जाता है। जाति ने समाज को छोटे–छोटे समूहो मे विभाजित कर दिया है और इन सबमे इस बात के लिये सघर्ष है कि वे वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था मे से कितना लाभ उठा सकते है। अपने हितो को सुरक्षित रखने और उन्हे ज्यादा से ज्यादा विकसित करने की आकाक्षा विभिन्न जातियो के बीच प्रतिस्पर्धा और टकराव उत्पन्न करती है। यह सोचनीय स्थिति है कि आजादी के 55 वर्ष बीत जाने के बाद भी भारतीय समाज मे ऊच–नीच का भेद विद्यमान है। यह कहना गलत न होगा कि उच्च जातियो ने राजनीतिक आधुनिकीकरण के कुछ मूल्यो को बडी हद तक परिस्थितियो से मजबूर होकर ग्रहण किया ओर शायद इसी कारण भारतीय राजनीति मे दिखावापन के तत्व ने प्रवेश किया जिसकी व्याख्या मौरिस जोन्स ने "राजनीति की विभिन्न भाषाये" शीर्षक के अन्तर्गत की है।[50] इसका अर्थ यह है कि उच्च जातियो ने समानता के सिद्धान्त को व्यवहारिक कारणो और राजनीतिक व्यवस्था से स्वीकार किया यद्यपि आन्तरिक रूप से

---

47 उत्तर–पूर्व भारत विशेषकर नागालैण्ड व उडीसा मे ईसाई मिशनरियो द्वारा एक बडी सख्या मे हिन्दुओ को ईसाई बनाने का अभियान गत दो दशको मे बहुत तेजी से रहा है। ईसाई मिशनरियो की इस प्रकार की गतिविधि का हिन्दुओ की ओर से घोर विरोध किया गया। हाल के वर्षों मे उडीसा मे ग्राहम स्टेन्स व एक अन्य पादरी की हत्या एव चर्चों पर होने वाले हमले इसी तनाव का परिणाम है।

48 वाधवा, कमलेश (1975), *माइनरिटीज सेफगार्ड्स इन इण्डिया*, नई दिल्ली, थामसन प्रेस इण्डिया, पृ0 161 ।

49 सईद, एस0एम0 (1998), पूर्व उद्धत कृति, पृ0 304 ।

50 जौन्स, मौरिस (1967), *गवर्नमेन्ट एण्ड पोलिटिक्स*, लदन, हचिसन एण्ड क0, पृ0 52–60 ।

परम्परावादी मूल्यो को वे अपने दिल से पूरी तरह निकाल न सके।[51] इसीलिये मौरिस जौन्स का यह कहना है कि भारतीय राजनीति के सहभागियो की कथनी और करनी मे अन्तर है। ऐसा ठीक ही कहा जाता है कि भारत मे प्रत्येक व्यक्ति जाति को छोडकर सब कुछ परिवर्तित कर सकता है। दुर्भाग्यवश भारतीय सविधान निर्माताओ द्वारा अनुसूचित जातियो[52] और जनजातियो[53] तथा समाज के कमजोर वर्ग के हित मे सकारात्मक विवेध की व्यवस्था को स्वीकार करके जाति को मान्यता प्रदान की गयी है। जातिवाद की भावना के क्रियाशील होने का व्यवहारिक परिणाम उपलब्धियो के आधार पर पद तथा स्थिति प्राप्ति के सिद्धान्त के स्थान पर जन्म के द्वारा स्थिति के निर्धारण के सिद्धान्त को बढावा मिला है, जो आधुनिकीकरण के विरूद्ध एक परम्परावादी समाज की विशेषता मानी जाती है।[54] रजनी कोठारी ने इस स्थिति का वर्णन करते हुये भारत को 'जेनस लाइक माडल' कहा है।[55] इसके अतिरिक्त जाति का राजनीतिकरण हो गया है। वास्तव मे जिसे राजनीति मे जातिवाद कहा जाता है वह जातियो के राजनीतिकरण से अधिक और कुछ नही है।[56] आशा यह थी कि इन साविध ाानिक उपबधो[52-53] से जातिवाद का प्रभाव कम होगा, लेकिन जाति समूहो के सगठित होने से जातिवाद सगठित रूप से राजनीतिक क्षेत्र मे दाखिल हुआ। परिणामस्वरूप, समानता के स्थान पर विषमता और सामाजिक अन्याय, धर्म निरपेक्षता के स्थान पर साम्प्रदायिकता, व्यक्तिगत क्षमता के बजाय जाति के आधार पर पदो का वितरण, सर्वसाधारण के हितो के बजाय समूह हितो की प्रधानता आदि का उदय होता है। इस प्रकार, जाति जागरूकता और फलस्वरूप जातीय समुदायो का निर्माण राजनीतिक आधुनिकीकरण मे ही नही राजनीतिक एकीकरण मे भी बाधक सिद्ध हुयी है। इसी कारण प्रो0 एस0एम0सईद, रजनी कोठारी के इस दावे को कि "भारतीय राजनीति मे कथित जातिवाद वास्तव मे जातियो के राजनीतीकरण से अधिक या कम कोई चीज नही है", पूर्णत सत्य नही मानते है।[57] हैरीसन का कहना है कि पहले व्यावसायिक आधार पर, ग्रामो के स्तर पर जाति का सामाजिक नियन्त्रण था , अब जाति ने आर्थिक और राजनैतिक प्रतिद्वन्दिता का जो अधिकाशत एक ही भाषात्मक, क्षेत्रीय सीमाओ के अन्दर घटित होता है, प्रोत्साहित किया है। इस प्रकार नये तथा विस्तृत जाति–सम्बन्धो का उदय हुआ है। हैरिसन का कहना है कि देश मे होने वाले आर्थिक परिवर्तनो के प्रभावस्वरूप जातिवाद का लोप होना तो दूर रहा वह (जातिवाद) पहले से ज्यादा सबल बन गया है।[58] एम0एन0 श्रीवास्तव का कहना है कि परम्परावादी जाति व्यवस्था ने प्रगतिशील और आधुनिक राज व्यवस्था को इस तरह प्रभावित किया है कि ये राजनैतिक सस्थाये अपने मूल रूप मे कार्य करने मे समर्थ नही रही है।[59] डी0आर0 गाडगिल ने भी जातिवाद को राष्ट्रीय एकीकरण के

---

51 तदैव, पृ0 52 ।
52 भारतीय सविधान, अनु0 15, 16(4), 17, 23, 25, 33, 38, 39(अ) (ब) (स), 46, 164, 330, 332, 334 335 ।
53 भारतीय सविधान, अनु0 16(4) 33, 46, 150, 154, 164 244, 244(5) 275, 330, 332, 334, 338 339, 340 342 365 ।
54 सईद, एस0एम0 (1998), पूर्व उद्धत कृति, पृ0 345 ।
55 कोठारी, रजनी (1970), *कास्ट इन इडियन पोलिटिक्स* नई दिल्ली, ओरियट लाग्मैन लि0 पृ0 92 ।
56 कोठारी, रजनी (1990), पूर्व उद्धत कृति, पृ0 154 ।
57 सईद, एस0एम0 (1998), पूर्व उद्धत कृति, पृ0 223, 289 ।
58 हेरीसन, सेलिग एम0 (1960), *इण्डिया दि मोस्ट डेजरस डिकेड्स,* प्रिस्टन यूनियन प्रेस, पृ0 101 ।
59 श्रीवास्तव, एम0एन0 (जून 1965), "सेमिनार", दिल्ली पृ0 2, उद्धत सईद, एस0एम0, (1998), पूर्व उद्धत कृति पृ0 290।

लिये हानिकारक मानते हुये कहा है कि क्षेत्रीय दबावो से कही ज्यादा खतरनाक बात यह है कि वर्तमान काल मे जाति व्यक्तियो को एकता के सूत्र मे बाधने मे बाधक सिद्ध हुयी है।[60] जातिवादी मानसिकता के विकास मे अभिवृद्धि होने से हमारी सामाजिक एकता के समक्ष खतरा पैदा हो गया है। आज स्थिति यह है कि न्यूनाधिक रूप से भारत मे निर्वाचक मण्डल जातिगत आधार पर विभाजित है। उदाहरण के लिये तमिलनाडू और महाराष्ट्र मे यह विभाजन ब्राह्मण बनाम गैर ब्राह्मण, आन्ध्र प्रदेश मे कम्मा बनाम रेड्डी, राजस्थान मे जाट बनाम राजपूत, गुजरात मे वन्या बनाम पट्टीदार, केरल मे एजवा बनाम नायर, कर्नाटक मे लिगायत बनाम बोकालिगा, बिहार मे यादव बनाम ठाकुर, हरियाणा मे जाट बनाम ब्राह्मण तथा उत्तर प्रदेश मे सवर्ण बनाम पिछडे वर्ग के रूप मे देखने को मिलता है। इस प्रकार जातीयता की भावना ने राजनीतिक प्रतिद्वन्छिता का रूप धारण कर लिया है। जातिगत आधार पर समाज का यह वैमनस्यपूर्ण विभाजन राष्ट्रीय एकता की भावना को दुर्बल करता है।

प्रो० एस०एम० सईद के मत मे भारत के विभिन्न राज्यो मे जाति और राजनीति के मध्य अन्त क्रिया के चार विभिन्न रूप विकसित हुये है।[61] इस अन्त क्रिया का पहला स्वरूप दक्षिण भारत विशेषकर तमिलनाडू मे देखने को मिलता है, जहॉ ब्राह्मणो और अनेक निम्न जातियो के मध्य प्रतिद्वन्दिता का सुदीर्घ इतिहास रहा है।[62] जाति और राजनीति के मध्य क्रिया का दूसरा रूप महाराष्ट्र मे देखने को मिलता है। महाराष्ट्र की स्थिति तमिलनाडू से कुछ भिन्न रही, यद्यपि यहा भी ब्राह्मण बनाम मराठा का सघर्ष निरन्तर चलता रहा और अन्तत मराठो का यह सघर्ष सन् 1960 मे अपनी पूर्णता को प्राप्त हो गया जब महाराष्ट्र नामक एक नये राज्य की स्थापना हुयी। ए0जे0दस्तूर के शब्दो मे "जिस दिन से महाराष्ट्र का निर्माण हुआ उस दिन से इस राज्य के विशिष्ट वर्ग और राजनीतिक नेतृत्व मे अत्यधिक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुये।[63]

गुजरात, आन्ध्र प्रदेश और कर्नाटक मे इस अन्त क्रिया का तीसरा रूप देखने को मिलता है। इन तीनो राज्यो मे तीन मध्यवर्गीय जातिया राजनीतिक सघर्ष मे रत दिखाई पडती है। महत्वपूर्ण बात यह है कि इन राज्यो मे राजनीतिक क्षेत्र मे केवल दो जातियो का प्रभुत्व है, जो अपनी प्रथाओ, सामाजिक स्थिति और आर्थिक साधनो की दृष्टि से एक दूसरे से पर्याप्त साम्य रखती है। दूसरे शब्दो मे तमिलनाडू और महाराष्ट्र के विपरीत, जहॉ असमान जातियो के मध्य राजनीतिक प्रतिद्वन्दिता पायी जाती है, इन राज्यो मे लगभग दो समान जातियो मे प्रतिस्पर्धा पायी जाती है।[64]

इस अन्त क्रिया का चौथा स्वरूप, बिहार, राजस्थान और उत्तर प्रदेश मे परिलक्षित होता है। इन राज्यो मे परम्परागत रूप से ब्राह्मण और क्षत्रिय राजनीतिक शक्ति के धारक रहे है, जबकि इनके राजनीतिक वर्चस्व को दलित और पिछडी जातियो द्वारा चुनौती दी जा रही है। उच्च जातियो के प्रतिक्षेप के रूप मे हिन्दू कट्टरतावाद के अभ्युदय और भाजपा के पक्ष मे अन्य सभी राजनीतिक दलो

---

60 गाडगिल, डी0आर0–उद्धत, हेरीसन सेलिग एम० (1960) पूर्व उद्धत कृति पृ0 188।

61 सईद, एस0एम0 (1998), पूर्व उद्धत कृति पृ0 286–87 ।

62 कोठारी, रजनी (1990),पूर्व उद्धत कृति, पृ0 225, इस विषय पर इस शोध ग्रन्थ के अध्याय चार को भी देखे।

63 दस्तूर, ए0के0 (1967) *"दि पैटेन ऑफ महाराष्ट्र पोलिटिक्स"*, इकबाल नारायण (स0) *स्टेट पोलिटिक्स इन इडिया,* मेरठ, मीनाक्षी प्रकाशन, पृ0 188 ।

64 सईद, एस0एम0 (1998), पूर्व उद्धत कृति, पृ0 287 ।

के उच्च जातियो के समर्थन–आधार के ध्वश ने सामाजिक रूप से अपेक्षा दीन स्थिति मे विद्यमान सभी सामाजिक समूहो को गतिशील बना दिया।[65]

राजनीतिक दृष्टि से, विभिन्न मामलो मे राजनीतिज्ञो द्वारा जान–बूझकर जाति को अहम मुद्दा बना दिया जाता है। विशेषरूप से, चुनावो के दौरान तो जाति राजनीतिक शक्ति के खतरनाक खेल का माध्यम बन जाती है। प्रत्येक स्तर पर राजनीतिज्ञो द्वारा अपने विरोधियो को अवरोधित करने के लिये जातिगत सघर्ष का माहौल तैयार किया जाता है। जिसका अन्तिम परिणाम हिसा की राजनीति के रूप मे निकलता है। शायद यह कहना अतिश्योक्ति न होगा कि भारतीय राजनीति मे जाति एक 'उपलाभ पदावली' बन गयी है।[66]

जातिवाद की इस राजनीति का प्रस्फुटन विभिन्न जातियो के लिये विभिन्न स्तरो पर आरक्षण की राजनीति के रूप मे हुआ। सामाजिक न्याय की स्थापना की आड मे सत्ता के आकाक्षी राजनीतिक दलो द्वारा राजनीतिक उद्देश्यो से जातिगत आरक्षण का प्रयोग किया जाता रहा है। हमारा देश पहले से ही विभिन्न गुटो मे बटा हुआ था। आरक्षण, जनसख्या, को कृतिम रूप से और भी बाट देगा। पहले आरक्षण विशेष परिस्थितियो मे केवल पन्द्रह वर्ष के लिये स्वीकृत किये गये थे परन्तु उन्हे हमेशा के लिये जारी रखने से निहित स्वार्थ और अलगाववाद उत्पन्न हो जायेगे। इससे जाति युद्ध होगे और देश के टुकडे–टुकडे हो जायेगे। स्वतन्त्रता के बाद जब आरक्षण नीति का क्रियान्वयन हुआ तो उस समय प्रशासनिक व्यवस्था मे कुछ ही अनुसूचित जाति और जनजाति के व्यक्ति थे। बाद मे जब श्री जगजीवनराम रेल मत्री थे तब उन्होने पदोन्नतियो मे भी आरक्षण कर दिया जिससे कि वरिष्ठ व्यक्तियो के ऊपर उनके मातहत व्यक्तियो को जो अनुसूचित जाति और जनजाति के थे लगा दिया गया। इससे सरकारी नौकरियो का न केवल राजनीतिकरण हो गया परन्तु, प्रशासन की कार्यकुशलता भी प्रभावित हुयी। जिस प्रकार देश के विभाजन के समय प्रशासनिक सेवाओ मे कार्यरत मुस्लिम सदस्य पाकिस्तान के पक्ष मे काम कर रहे थे और गैर–मुस्लिम भारत के लिये, इसी प्रकार आरक्षण नीति के कारण अफसर अब जाति और धर्म के आधार पर काम कर सकते है। यदि यह 15–20 वर्ष भी और चला तो पूर्ण रूप से समाज का विघटन हो जायेगा।

पिछले 52 वर्षो के अनुभव ने यह बतलाया है कि आरक्षण नीति ने वाछित परिणाम नही दिये हैं। नौकरियो और शिक्षा सस्थाओ मे आरक्षण से कुछ ही जनजातियो (जैसे मीणा) और कुछ जातियो (जैसे बैरवा) को ही लाभ मिला है। जबकि आरक्षण से झगडे और तनाव ज्यादा उत्पन्न हुये हैं। यह एक मूल प्रश्न है कि पिछडेपन की जातिगत पहचान कैसे सम्भव है , विशेष रूप से उस देश मे जहॉ सरकारी ऑकडो के अनुसार ही लगभग 40प्रतिशत लोग गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे है।

राजनीति मे जाति जैसी अतार्किक इकाई को इस प्रकार महत्व दिया जाना किसी भी विकासशील लोकतान्त्रिक व्यवस्था के लिये चिन्ता का विषय है। जातिगत आधार पर आम चुनाव मे प्रत्याशियो का चयन सरकारी सेवाओ मे नियुक्ति एव पदोन्नति आदि इस तथ्य के सकेतक हैं कि एक जाति विहीन सामाजिक व्यवस्था मात्र एक चमकीला आदर्श है। जबकि, वास्तविकता यह है कि भारतीय राजनीतिक व्यवस्था आज पूर्णतया जातिगत आधारो पर आधारित है। जनसख्या के शोषित और पीडित वर्ग के लोगो को आगें बढाना, यद्यपि जरूरी था, लेकिन जाति व्यवस्था पर जरूरत से

---

65 लाल, नन्द (जून, 1995), *"भारतीय राजनीति मे जाति की भूमिका"*, प्रतियोगिता दर्पण, आगरा, उपकार प्रकाशन, पृ0 1713 ।

66 तदैव।

ज्यादा जोर देने से राष्ट्र–निर्माण की प्रक्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव पडा। प्रो0 एन्द्रेबेते का यह मत उचित प्रतीत होता है कि राजनीति ने जाति की चेतना को आम आदमी के मन मे पुर्नस्थापित कर दिया है।[67] यह स्थिति का व्यग्य ही है कि सामाजिक प्रक्रिया मे जाति का महत्व स्वाभाविक रूप से घट रहा है, परन्तु राजनीतिक प्रक्रिया के निर्धारक तत्व के रूप मे इसका महत्व बढता जा रहा है।[68]

(घ) आर्थिक असन्तुलन और क्षेत्रीय विषमता– देश के विभिन्न भागो के बीच पाया जाने वाला आर्थिक असन्तुलन और आर्थिक शोषण पारस्परिक मतभेदो को बढावा देने मे प्रभावशाली कारक रहा है। भारत के विभिन्न क्षेत्रो के असमान विकास का राष्ट्रीय एकीकरण पर प्रतिकूल प्रभाव पडा। देश के कुछ राज्यो की आर्थिक स्थिति ज्यादा अच्छी है जबकि बिहार और उ0प्र0 जैसे राज्य आर्थिक दृष्टि से अत्यधिक पिछडे हुये है। राजनीतिक कारणो से विभिन्न राज्यो के सासदो मे इस बात कि होड लगी रहती है कि ज्यादा से ज्यादा औद्योगिक विकास और अन्य सार्थक योजनाये उनके राज्य मे हो, उनके चुनाव क्षेत्र मे लायी जाये, भले ही राष्ट्रीय दृष्टि से ऐसा करना अनुपयुक्त ही क्यो न हो। यदि यह कहा जाय कि आजादी के बाद हुये अनेक सामाजिक आन्दोलनो का मुख्य कारण यही असमान विकास था तो कोई अतिश्योक्ति नही होगी। उदाहरण के लिये बिहार, मध्य प्रदेश, पश्चिम बगाल और उडीसा के जनजातीय समूहो ने झारखण्ड आन्दोलन मे अन्य प्रश्नो के अलावा क्षेत्र के पिछडेपन का प्रश्न भी उठाया। पृथक राज्य की माग करते हुये, इस आन्दोलन से जुडे हुये लोगो का कहना है कि इस क्षेत्र के समृद्ध प्राकृतिक ससाधनो का शोषण कर उन्हे दूसरो के लाभ के लिए भेजा जा रहा है। इन लोगो मे सम्भावित या वास्तविक भय, कि वे सुख–सुविधाओ से वचित है, असतोष पैदा करता है। बिहार मे बिहार बचाव मोर्चा, इस बात की माग कर रहा है कि बिहार मे जो भी सार्वजनिक या निजी उपक्रम खनिज उत्पादन (मिनरल प्रोडक्टस) का व्यापार कर रहे है उनके मुख्य कार्यालय बिहार राज्य के अन्तर्गत होना चाहिए।[69] क्योकि राज्य के बाहर इनके मुख्यालय होने से बिहार वालो के लिये रोजगार का अवसर खत्म हो जाता है। इसी प्रकार हिमाचल प्रदेश मे पहाडी नामक सगठन विदेशियो के (अन्य प्रदेश के लोगो को) विरूद्ध आन्दोलन कर रहा है। उनका कहना है कि स्थानीय निवासियो को विदेशियो के हाथो कोई सम्पत्ति नही बेचनी चाहिये।[70]

इस प्रकार, एक राज्य विशेष के आर्थिक ससाधनो पर दूसरे राज्य के लोगो के अधिपत्य का घोर विरोध किया जा रहा है। वे सोचने लगे है कि भारत का अग बने रहने पर उनके क्षेत्र का सामाजिक और आर्थिक विकास नही होगा। अत सामाजिक–आर्थिक विकास के परिप्रेक्ष्य मे क्षेत्रीय असन्तुलन समय–समय पर सगठित राष्ट्र की धारणा के लिये खतरा बन जाता है।

(ड) राजनीतिक दलों की विघटनकारी भूमिका– राजनीतिक एकीकरण की प्रक्रिया मे राजनीति दलो की भी श्लाघनीय भूमिका होती है। क्योकि राष्ट्रीय एकीकरण एक ओर तो सघर्ष प्रबन्धन और दूसरी ओर भावनात्मक एकीकरण से जुडा हुआ है। चूकि राजनीतिक दल समाजीकरण और हित सकुलन का महत्वपूर्ण साधन है। अतएव ये "सीमित प्रतिबद्धताओ" को राष्ट्रीय सस्कृति के अनुकूल करने मे महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकते है, परन्तु दुर्भाग्यवश राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया मे भारतीय राजनीतिक दलो की भूमिका विघटनकारी और नकारात्मक रही है। हिन्दू महासभा, भारतीय जनता पार्टी, इत्तेहादुल मुसलमीन, मुस्लिम यूनाइटेड फ्रन्ट

---

67 बेते, एन्द्रे (1994), *"मार्क्स ऑफ आइडेन्टिटी पॉलिटिक्स रेनफोर्सिंग कास्ट"*, टाइम्स ऑफ इण्डिया, फरवरी 26।
68 श्री निवास, प्रो0 एम0एन0 (1966) *सोशल चेन्ज इन मार्डन इण्डिया,* एलायड पब्लिशर्स, दिल्ली।
69 सईद, एस0एम0 (1998), पूर्व उद्धत कृति, पृ0 370 ।
70 तदैव ।

मुस्लिम लीग, जमाएत ए इस्लामी, अकाली दल, गोरखा लीग और केरल काग्रेस जैसे राजनीतिक दल साम्प्रदायिक है जबकि द्रविड मुनेत्र कजगम, आल इण्डिया द्रविड मुनेत्र कजगम, रिपब्लिकन पार्टी, नेशनल पार्टी और बहुजन समाज पार्टी जैसे राजनीतिक दल जातिवादी है। इन राजनीतिक दलो ने देश मे साम्प्रदायिकता और जातिवाद का विषाणु फैलाकर राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया को अवरोधित कर रखा है।[71] यहाँ तक कि चुनावो के दौरान काग्रेस जैसी राष्ट्रीय पार्टी की भूमिका भी सदेहास्पद रही है। क्योकि यह केरल, पजाब और त्रिपुरा मे क्रमश मुस्लिम लीग एव अकाली दल जैसे साम्प्रदायिक दल[72] और त्रिपुरा उपजाति युवा समिति जैसे पृथकतावादी राजनीतिक दलो से गठबन्धन करता रहा है। जातिवादी दलो और समूहो के साथ उनके समझौतो का रिकार्ड कदाचित और भी बुरा है।[73] इसने साम्प्रदायिकता, जातिवाद और दल बदल को प्रश्रय देकर राष्ट्रीय हितो पर दलीय हितो को प्राथमिकता दी है। वास्तविकता तो यह है, कि भारत मे हर स्तर के राजनीतिक नेताओ मे धार्मिकता, जातिवाद, क्षेत्रवाद, सकीर्णता आदि तत्व विद्यमान रहे है।[74]

(च) क्षेत्रीयतावाद, जनजातीयवाद और प्रादेशिक विघटन का खतरा– क्षेत्रीयतावाद राष्ट्रीय एकीकरण के समक्ष एक और चुनौती है। समाज के वे वर्ग जिनकी अपनी पृथक सास्कृतिक पहचान है, इसे राजनीतिक धरातल पर भी सुरक्षित रखना चाहते है। उदाहरण के लिये बिहार, उडीसा और पश्चिम बगाल के आदिवासी पृथक झारखण्ड राज्य की माग कर रहे है।[75] प0 बगाल मे पृथक गोरखा लैण्ड, असम मे बोडोलैण्उ और उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश के कुछ हिस्सो को मिलाकर पृथक बुन्देलखण्ड राज्य की माग की जा रही है। देश को पृथक सास्कृतिक पहचानो की पक्ति पर विभाजित करने की ये मागे राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग मे प्रमुख बाधा है। यही नही कुछ सामाजिक घटक भाषायी समानता के आधार पर पडोसी राज्यो का हिस्सा बनना चाहते है और इस तथ्य ने बेलगाम के कन्नाडिगा और महाराष्ट्रियो के मध्य तनाव पैदा किया है। सीमा और अन्तर्राज्यीय जल विवादो ने कुछ राज्यो मे हिसा को जन्म दिया है जैसे कि असम एव नागालैण्ड व तमिलनाडू एव कर्नाटक मे। इस प्रकार इसने भी राष्ट्रीय एकीकरण को विपरीत ढग से प्रभावित किया है।

भूमिपुत्र के सिद्धान्त ने भी क्षेत्रीयतावादी प्रवृत्तियो को अत्यधिक बढावा दिया है। इस सिद्धान्त का अर्थ यह है कि प्रत्येक राज्य या क्षेत्र के लोग दूसरे राज्य के लोगो को जो उस भूमि पर पैदा नही हुये है, उन्हे विदेशी मानकर, अपने राज्य मे उनके प्रवेश को रोकना चाहते है और जो लोग इन राज्यो मे सरकारी सेवा तथा विभिन्न व्यवसायो मे लगे हुये है, उन्हे अपने राज्य से बाहर निकाल देना चाहते है। बगाल केवल बगालियो के लिये, महाराष्ट्र महाराष्ट्रियो के लिये और असम, असम वालो के लिये है, इस प्रकार के नारे स्वाभाविक रूप से राष्ट्रीय एकता के लिये घातक है। भूमिपुत्र सिद्धान्त सामाजिक सकीर्णता को जन्म देता है और देश के विभिन्न भागो मे रहने वालो के बीच वैमनस्य तथा द्वेष उत्पन्न करता है। इस प्रकार भूमिपुत्र की अवधारणा राष्ट्रवाद के बिल्कुल प्रतिकूल है।

---

71 लाल, नन्द (जून, 1993), पूर्व उद्धत कृति, पृ0 1421 ।

72 चन्द्र, विपिन (1996), पूर्व उद्धत कृति, पृ0 235 ।

73 तदैव।

74 सईद, एस0एम0 (1998), पूर्व उद्धत कृति,, पृ0 324 ।

75 बिहार के आदिवासी इलाकों को मिलाकर 9 नवम्बर 2000 को वनाचल राज्य का गठन कर आशिक रूप में पृथक झारखण्ड की माग पूरी कर दी गयी है। इसी प्रकार म0प्र0 के आदिवासी बहुल क्षेत्रो को मिलाकर 1 नवम्बर 2000 को छत्तीसगढ और 15 नवम्बर 2000 को उत्तराचल राज्य की स्थापना की गयी है।

असम मे विदेशियो के विरूद्ध जो आन्दोलन हुआ उसका आधार यह भय था कि यदि बडी सख्या मे असम से बाहर के लोगो को असम मे रहने की सुविधा उपलब्ध रही तो कुछ ही दिनो के बाद असमवासी अल्पसख्यक हो जायेगे। इस स्थिति से उत्तेजित होकर असम मे "आल आसामीज स्टूडेन्ट्स यूनियन" और "असम गण सग्राम परिषद" ने कुछ इस प्रकार के नारे दिये– "भारत माता को भूल जाओ, असम माता को प्यार करो", "यदि तुम एक साप और बगाली को देखो तो साप को मारने के बजाय पहले बगाली को मार दो।"[76]

त्रिपुरा मे भी बगालियो की सख्या बढ गयी है, जिससे वहा भी विदेशियो के विरूद्ध घोर असन्तोष पाया जाता है। अपने हितो को सुरक्षित रखने के लिये लगभग एक दशक पूर्व त्रिपुरा मे 'त्रिपुरा उपजाति युवा समिति' का निर्माण किया गया है। इस सगठन ने 1948 के बाद से त्रिपुरा मे आये हुये विदेशियो को निकालने का नारा दिया है। त्रिपुरा सरकार ने यह आश्वासन दिया है कि 1971 के उपरान्त बाग्लादेश से त्रिपुरा मे आये हुये व्यक्तियो को राज्य से निकाल दिया जायेगा। विदेशियो के विरूद्ध इसी प्रकार का घोर विरोध अरूणाचल, मिजोरम तथा मणिपुर मे भी पाया जाता हैं मेघालय मे गैर कबायली लोगो के विरूद्ध आन्दोलन चल रहा है और इस बात की माग की जा रही है कि 1951 के बाद से जो नेपाली और बगालवासी मेघालय मे आकर बस गये है, उनको निकाल दिया जाये।

क्षेत्रीयतावाद का उग्ररूप पृथकतावादी आन्दोलन है। तमिलनाडू मे द्रविडस्तान, तमिलस्तान और पजाब मे खालिस्तान की माग ने न केवल समाज के विभिन्न वर्गो के बीच तनाव पैदा कर दिया है, बल्कि यह माग देश की अखण्डता के लिये भी बहुत घातक है। बीसवी सदी के छठे दशक के प्रारम्भ मे कबायली नेता फिजो ने भारत से अलग एक पृथक प्रभुत्व सम्पन्न राज्य नागालैण्ड बनाने की माग की थी। आज वृहत्तर नागालैण्ड की माग की जा रही है। आठवे दशक मे लाल डेगा ने इसी प्रकार की माग मिजो के लिये की। तमिलनाडू मे डी0एम0के0 ने भारतीय सघ से अलग द्रविणस्तान नाम से एक पृथक राज्य बनाने की माग की[77] जो बाद मे राज्यो की अधिकतम् स्वायत्तता मे बदल गयी।[78] दो दशक पहले पजाब मे खालिस्तान बनाने की माग की गयी एव इस आन्दोलन के नेताओ ने अपना अलग झण्डा और कुछ नोट मुद्रा भी खालिस्तान देश के नाम से जारी किये।[79]

इससे देश के सामने एक खतरा राज्यो के सघ से अलग हो जाने का पैदा हो गया था। कुछ लोगो ने आशका प्रकट की थी कि प्रान्तीयता की भावना या प्रदेश के लिये अधिक अधिकार या स्वायत्तता की माग बढती गयी तो देश छोटे–छोटे अनेक स्वतन्त्र राज्यो मे बट जायेगा या यहॉ तानाशाही कायम हो जायेगी।[80] किन्तु पहले भी देश मे ऐसे आन्दोलन हुये है और वर्तमान मे भी हो

---

76 सईद एस0एम0 (1998), पूर्व उद्धत कृति, पृ0 369 ।

77 हार्डग्रेव, राबर्ट एल0 (1965), *द द्रविडियन मूवमेन्ट*, बम्बई, पृ० 48 ।

78 देश के दूसरे भागों के जनमत ने भी द्रमुक के रूख पर प्रभाव डाला। पृथकता की प्रवृत्ति को रोकने के लिये राष्ट्रीय एकता परिषद की उपसमिति की सिफारिश पर सविधान मे सशोधन किया गया। इसका उद्देश्य प्रान्तीयता और भाषा की कट्टरता से देश की एकता, अखण्डता और प्रभुता की रक्षा करना था। इस सशोधन ने भी द्रमुक को अपनी नीति बदलने को बाध्य किया, जिससे वह सविधान के दायरे मे रहकर काम कर सके।

79 सईद, एस0एम0 (1998), पूर्व उद्धत कृति, पृ0 369, इसी शोध ग्रन्थ का अध्याय तीन "भारतीय राजनीति मे क्षेत्रीयतावाद के आयाम" भी देखे ।

80 हेरीसन, सेलिग एम0 (1960), पूर्व उद्धत कृति, पृ० 178 ।

रहे है– कुछ हद तक पुरानी कथाओ के आधार पर और कुछ उत्तर–दक्षिण, ब्राह्मण–अब्राह्मण, आर्य–द्रविण के भेदभाव के आधार पर। परन्तु पृथकता की भावना उनमे ज्यादा बलवान और खतरनाक है जहा ऐसी आर्येत्तर जातिया है जो भारतीय सस्कृति की धारा मे पूरी तरह मिल नही पायी है जैसे– उत्तर–पूर्व की आदिम जातियो का इलाका।[81] राष्ट्रीय एकीकरण के समक्ष सबसे पहला खतरा उत्तर–पूर्व की नागा जाति द्वारा ही उपस्थित किया गया था।[82] इस क्षेत्र मे ब्रिटिश सरकार ने आदिवासियो को अपने प्रति विश्वस्त बनाये रखने के उद्देश्य से दोहरी नीति का अनुसरण किया। पहली बात तो यह है कि अन्य लोगो को इनसे घुलने मिलने नही दिया गया और दूसरी बात यह है कि जनजातियो के विशिष्ट सदस्यो को विभिन्न पद प्रदान कर दिये गये ताकि वे राष्ट्रीय आन्दोलन मे सम्मिलित न हो। अग्रेजो की यह नीति काफी हद तक सफल भी रही। नागालैण्ड से मिलती–जुलती समस्या कुछ वर्षों के बाद पूर्वोत्तर के मीजो स्वायत्त जिले मे खडी हो गई।[83]

---

81 अधिक विस्तार के लिये देखे डोनोवन, आर्थर जे0 (10 अक्टूबर, 1967) का लेख, *'सेप्टोटिस्ट, टेडेसीज इन ईस्टर्न इण्डिया'*, एशियन सर्वे–सातवॉ सस्करण। इस शोध ग्रन्थ का अध्याय चार 'भारत मे क्षेत्रीय आन्दोलन' भी देखे।

82 आजादी के बाद भारत सरकार ने, नागाओ को आसाम राज्य और सम्पूर्ण भारत के साथ एकबद्ध करने के लिये, एक नीति का पालन शुरू किया। परन्तु नागा नेतृत्व के एक तबके ने इस एकीकरण का विरोध किया और ए0जेड0 फीजो के नेतृत्व मे बगावत कर दिया। उन्होने भारत से अलग होकर पूरी स्वतत्रा की माग रखी। उन्हे इस कार्रवाई मे कुछ अग्रेज अधिकारी और मिशनरियो का योगदान भी प्राप्त हुआ। 1955 मे इन अलगाववादी नागाओ ने स्वतत्र सरकार के गठन की घोषणा कर दी और हिसक विद्रोह आरम्भ कर दिया। परिणामस्वरूप भारत सरकार ने जवाब मे वहॉ शान्ति और व्यवस्था बहाल करने के लिये 1956 के आरम्भ मे सेना भेज दी। 1957 के मध्य मे जब सशस्त्र विद्रोह की कमर एक बार तोड़ दी गई, तो अपेक्षाकृत नरमपथी नागा नेतागण डा0 इमकोनग्लिबा ओ के नेतृत्व मे सामने आये। उन्होने भारतीय सघ के अन्दर नागालैण्ड राज्य के निर्माण के लिये समझौता किया। भारत सरकार ने उनकी माग को एक के बाद एक कई कदम उठाकर स्वीकार कर लिया और अन्तत 1963 मे नागालैण्ड राज्य अस्तित्व मे आया। इस प्रकार भारतीय राष्ट्र के एकीकरण की दिशा मे एक और कदम उठाया गया। नागालैण्ड का राज्य के रूप मे गठन होते ही विद्रोह की कमर टूट गई और विद्रोहियो के प्रति आम जनता का समर्थन भी समाप्त हो गया। विद्रोह पर तो काबू पा लिया गया, लेकिन छिटपुट गुरिल्ला गतिविधि और उग्रवादी हिसा अब भी कभी–कभी भडकती रहती है।– चन्द्र, विपिन, मृदुला मुखर्जी, आदित्य, मुखर्जी (2002), *आजादी के बाद का भारत, 1947–2000*, दिल्ली विश्वविद्यालय, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, पृ0 157–158 ।

83 कुछ अग्रेज अधिकारियों की शह पर अलग होने की माग एक बार पहले भी 1947 मे यहा उठ चुकी थी, परन्तु तब इसे कोई खास समर्थन नहीं मिल पाया था। लेकिन, 1959 के अकाल के दौरान, आसाम सरकार के राहत कार्यो से उत्पन्न भयानक असतुष्टि ओर 1961 में आसाम राजभाषा विधेयक का अनुमोदन किये जाने के कारण वहा लालडेगा की अध्यक्षता मे मीजो नेशनल फ्रण्ट का गठन हुआ। चुनावी राजनीति मे भाग लेते हुये भी फ्रण्ट ने अपना सैन्य दस्ता विकसित किया जिसे हथियार और प्रशिक्षण पूर्वी पाकिस्तान और चीन से मिलने लगा। 1 मार्च 1966 को मीजों नेशनल फ्रण्ट ने भारत से अलग होकर अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। सैनिक विद्रोह की घोषणा करते हुयें उन्होंने नागरिक और सैनिक ठिकानो पर हमला करना शुरू कर दिया। भारतीय सरकार और सेना ने इसके जवाब मे शीघ्रता से विद्रोह विरोधी कदम उठाये और विद्रोह को कुचलकर नियन्त्रण स्थापित कर लिया। ज्यादातर कट्टर मीजो नेता भागकर पूर्वी पाकिस्तान चले गये। परन्तु उसके बाद भी छिटपुट गुरिल्ला गतिविधिया वहा चलती रही हैं। 1973 मे अपेक्षाकृत कम उग्रवादी मिजो नेताओ ने जब अपनी मागो मे भारी कटौती कर दी, उसके बाद भारत सघ के अन्दर अलग मिजोरम राज्य की उनकी माग स्वीकार कर ली गई और मिजो जिलो को आसाम से अलग कर मिजोरम को केन्द्र शासित प्रदेश का दर्जा दे दिया गया। 1970 के दशक के अन्तिम दिनो मे मीजो उग्रवाद मे एक बार फिर उफान आया लेकिन उसे भी भारतीय सेना द्वारा प्रभावशाली तरीके से निपटा दिया गया। बचे हुये विद्रोहियों को बहुत उदार शर्तो पर आम माफी और शान्ति स्थापित करने के लिये सधिवार्ता का अवसर प्रदान किया गया। अन्तत 1986 मे एक समझौता हो गया। लाल डेगा और मीजो नेशनल फ्रण्ट अपनी भूमिगत हिसक गतिविधियों को त्याग देने के लिये तैयार हो गये तथा हथियार एव गोला–बारूद समर्पित कर वे सवैधानिक राजनीति की मुख्य धारा मे फिर शामिल हो गये। मिजोरम को फरवरी 1987 मे पूर्ण राज्य का दर्जा प्रदान कर सधि के हिस्से के रूप मे लाल डेगा को मुख्यमत्री बनाकर एक सरकार स्थापित की गई। जिसके साथ ही, उन्हे अपनी परम्परा, सस्कृति और भूमि कानून बनाये रखने की छूट दे दी गई।– तदैव,, पृ0 159–160 ।

वस्तुत पहले आर्थिक और बाद मे सामाजिक और सास्कृतिक शोषण ने जनजातियो के नेताओ को उत्तेजित कर दिया और उन्होने जन–जातियो के लोगो को सगठित कर आन्दोलन आरम्भ किया। वचना की भावनाओ के बढने से जन आन्दोलन और सघर्ष भी बढे। प्रारम्भ मे वे शोषण करने वालो और उनके अधिकारो को हडपने वालो के विरूद्ध थे, परन्तु अन्त मे वे सरकार और शासको के विरूद्ध हो गये। वास्तव मे जनजातीय अशान्ति और असतोष कई उत्तरदायी कारको का सचित परिणाम है। इसके प्रमुख कारण है –

* अकर्मण्यता, उदासीनता और प्रशासको और अफसरो मे जनजाति लोगो की शिकायतो को दूर करने मे सहानुभूति का अभाव।
* जगल के कानूनो और नियमो का कठोरपन।
* जनजाति के लोगो की जमीनो को अजनजाति के व्यक्तियो के कब्जे मे जाने की रोक के लिये कोई कानून नही होना।
* ऋण की सुविधाओ का अभाव।
* जनजाति के लोगो के पुर्नवास के लिये सरकारी कार्यवाही मे अकुशलता।
* अधिकाश आदिवासी बहुत कम जनसख्या वाली पहाडियो पर रहते है और आदिवासी क्षेत्रो मे सचार और यातायात बहुत कठिन होते है।
* जनजाति समस्याओ को हल करने मे राजनीतिक अभिजनो मे अभिरूचि और सक्रियता का अभाव।
* उच्चस्तरीय समितियो की सिफारिशो को कार्यान्वित करने मे विलम्ब।
* सुधारक उपायो की कार्यान्वित मे पक्षपात।

सक्षेप मे जनजाति अशान्ति के कारणो को आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक कहा जा सकता है।

आदिवासियो और गैर–आदिवासियो के बीच सम्बन्ध बिगड रहे है और गैर–आदिवासी अपनी सुरक्षा हेतु अधिकाधिक रूप से अर्द्ध सैनिक बलो पर निर्भर हो रहे है। इसलिये इनको सम्भालने के लिये विशेष व्यवस्था की आवश्यकता है और इस प्रकार की व्यवस्था की भी गयी है। भारत के सविधान के अन्तर्गत जनजातियो के हितो की सुरक्षा करने का प्रयास, व्यवस्थापिका द्वारा नौकरियो, शैक्षणिक सस्थाओ मे उनके लिये स्थान आरक्षित करने[84] तथा जनजातीय परिषद की स्थापना[85] आदि के माध्यम से (डी ट्राइब्लाइजेशन की प्रक्रिया) आरम्भ हुयी वही दूसरी ओर इससे पृथकतावाद को भी बढावा मिला , क्योकि शैक्षणिक सुविधाओ के प्रसार के कारण शिक्षित जनजातीय युवको मे बेरोजगारी बढने लगी। इसके अतिरिक्त जनजातीय क्षेत्रो मे गैर जनजातीय लोगो के बहुतायत से आगमन के कारण उनका शोषण बढता गया और क्रमश उनमे विशिष्ट जनजातीय पहचान खोने का मनोभाव उभरने लगा। इसके परिणामस्वरूप उन्होने अपनी पृथक पहचान का मार्ग अपना लिया।

---

84 भारतीय सविधान, अनु0 365 (भाग–4) ।
85 भारतीय सविधान, अनु0 244 (भाग–1) से सम्बन्धित पॉचवी अनुसूची ।

चूकि जनजातियो की कुछ आबादी पडोसी राज्यो मे भी निवास करती है। अतएव वे पृथक जनजातीय होमलैण्ड के विषय मे भी सोचने लगे।

राजनैतिक गतिविधि बढने और शिक्षा तथा आर्थिक विकास के फलस्वरूप छोटे समूह जो अब तक पिछडे हुये थे, मे अधिकार और स्वायत्तता की आकाक्षा उठना स्वाभाविक है समस्या इस बात से उलझ गयी है कि कुछ आदिवासी इलाके चीन और पाकिस्तान से लगे हुये है और उनके द्वारा वहॉ के असन्तुष्ट तत्वो को छापामार युद्ध की ट्रेनिग देने की कोशिश की गयी है यह खतरा काफी दिनो तक रहने वाला है, अत सीमान्त इलाको की राजनैतिक समस्या के समाधान के लिये विशेष प्रयत्न करने होगे। यह समसया, सीमान्त इलाको मे असतोष और सीमा पार से इस असतोष को प्रोत्साहन कोई ऐसी बात नही है जिसका हल आनन–फानन मे निकल आये।

तृतीय अध्याय
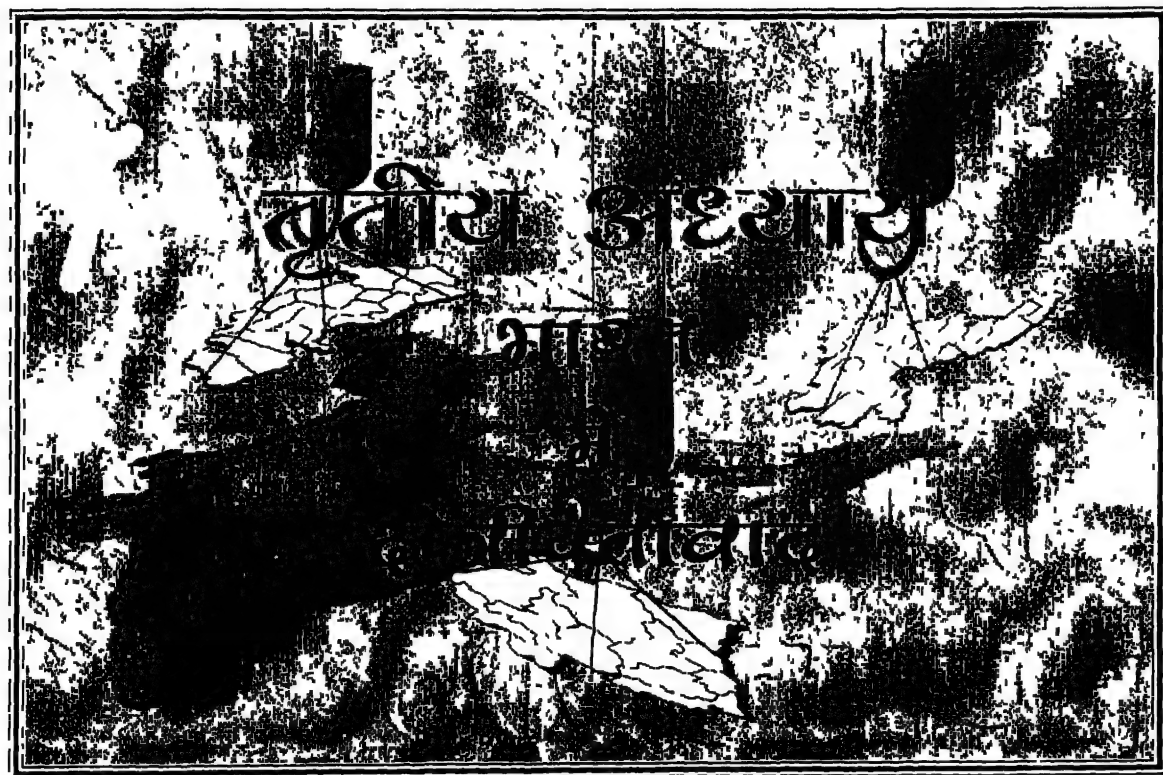
भारत में क्षेत्रीयतावाद

भारत एक महाद्वीपीय आकार का जनसख्या की दृष्टि से दूसरा तथा क्षेत्रफल की दृष्टि मे विश्व का सातवॉ सबसे बडा राष्ट्र है। भौगोलिक दृष्टि से इसके चिन्हाकित प्राकृतिक भाग और सामाजिक दृष्टि से यहॉ के लोग भिन्न–भिन्न प्रजातियो, धर्मो, भाषा–भाषी जातियो और पथो के है। आर्थिक विकास, शिक्षा के स्तर और राजनीतिक सस्कृति के स्वरूप के आधार पर भिन्न–भिन्न क्षेत्रो के लोगो मे पर्याप्त भिन्नता पायी जाती है।

क्षेत्र की विशिष्टता लोगो के बीच फैली हुयी विस्तृत एकात्मकता की भावना से व्यक्त होती है। एकता की यह भावना तरह–तरह के स्रोतो से आती है जैसे–भूगोल, स्थलाकृति, धर्म, भाषा, रीति–रिवाज और लोकाचार, राजनीतिक और आर्थिक विकास की आस्था, जीवन यापन का ढग, ऐतिहासिक अनुभवो मे समान रूप से भागी होना इत्यादि। क्षेत्रीय एकात्मकता का उदय क्षेत्र की अस्मिता के आधार से होता है। अपने क्षेत्र के प्रति हरेक मे निष्ठा होती है और क्रमश यही निष्ठा क्षेत्रीयतावाद का स्वरूप और आकार प्राप्त कर लेती है। यह भावना क्षेत्रीय राजनीति के लिये मार्ग प्रशस्त करती है।

भारत के कतिपय जातीय, धार्मिक और भाषायी समूह जो कुछ क्षेत्र विशेष मे सकेन्द्रित है , वे उन क्षेत्रो को अपना मानते है और अपनी सास्कृतिक पहचान को कायम रखना चाहते है। साथ ही, भारतीय समाज के परम्परागत स्वरूप के कारण यहॉं आदिकालीन निष्ठा बहुत प्रबल है, जिसके परिणामस्वरूप भारत की राजनीतिक सस्कृति विखण्डित है। इससे राज्य निर्माण की प्रक्रिया मे बाधाये पैदा होती है। विभिन्न सामाजिक घटक जो इसे विपरीत दिशाओ मे खीचते है के चलते भारत मे क्षेत्रीयतावाद की राजनीति का आविर्भाव हुआ है।

भारत मे क्षेत्रीयतावाद की राजनीति के सकारात्मक और नकारात्मक दोनो पहलू है। सकारात्मक शब्दो मे कहा जा सकता है कि हर क्षेत्र मे नृजाति, भाषा, धर्म इत्यादि हितो पर आधारित स्पष्ट अस्मिता की तीव्र इच्छा होती है1 उदाहरण के लिये झारखण्ड आन्दोलन को ही लिया जा सकता है जो कि उडीसा, पश्चिम बगाल और बिहार के विस्तृत क्षेत्र मे फैला हुआ है और अपने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक हितो के सरक्षण और उन्नति के लिये एक एकीकृत समूह के रूप मे बढ रहा है। यह प्रक्रिया झारखण्ड क्षेत्र के जनजातीय समूहो की एकात्मकता के पुन सुदृढीकरण को दिखाती है।

क्षेत्रीयतावाद का नकारात्मक पहलू यह है कि यह राष्ट्र निर्माण के प्रयत्नो मे बाधा डाल सकता है, जैसे–पजाब मे खालिस्तान की माग जो पजाब के अन्दर और बाहर आतकवाद और हिसा को बढावा दे रही है। भारतीय राजनीतिक स्थिति के अधिकाश विश्लेषको ने सकारात्मक पहलू पर ध्यान नही दिया है। क्षेत्रीयतावाद के विश्लेषको ने दिखाया है कि यह तथ्य एक क्षेत्र के लोगो मे बसी आपेक्षिक वचन की मनोवृत्ति को प्रतिविम्बित करता है। उनका अभिप्राय है कि जो सत्ता मे होते है वे जान–बूझकर लोगो पर वचन का आघात पहुचाते हैं। ऐसा विशेषकर स्पष्ट है कि विभिन्न क्षेत्रो

के बीच सामाजिक–आर्थिक कार्यक्रमो के फलस्वरूप हमे व्यापक आर्थिक असमानताये दृष्टिगत होती है। इन असमानताओ के कारण देश के पिछडे और कम विकसित क्षेत्रो मे असतोष और उत्तेजना फैली है।

दक्षिण, दक्षिण–पूर्व, उत्तर–पूर्व, उत्तरी एव उत्तर–पश्चिम क्षेत्र का प्रत्येक राज्य किसी न किसी अन्तर्राष्ट्रीय सीमा विवाद अथवा जल बटवारे या पृथक राज्य की माग मे उलझा हुआ है। प्रत्येक क्षेत्रीय दल अपने राज्य की सीमाओ तक ही सीमित है, जो स्थानीय, जातीय अथवा वर्ग हितो का प्रतिनिधित्व करते है। अर्थात, क्षेत्रीयतावाद से तात्पर्य किसी क्षेत्र के लोगो की उस भावना एव प्रयत्नो से है, जिनके द्वारा वे अपने क्षेत्र विशेष के लिये आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक शक्तियो मे वृद्धि चाहते है। इस प्रकार, क्षेत्रीयता राष्ट्रीयता की भावना का विलोम है जिसका उद्देश्य होता है–सकीर्ण क्षेत्रीय स्वार्थों की पूर्ति। भारतीय राजनीतिक परिवेश मे यह एक ऐसी धारणा है जो भाषा, धर्म, क्षेत्र आदि पर आधारित है। यह राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग को ध्वस्त करते हुये विखण्डन और पृथकतावादी प्रवृत्तियो को प्रोत्साहन प्रदान करती है।

क्षेत्रीयतावाद की राजनीति वैभिन्नता का उत्पाद है। भारत जैसे विशाल देश मे अनेक प्रादेशिक सस्कृतियॉ विद्यमान है। अत यहॉ क्षेत्रीयतावाद एक सामाजिक वास्तविकता है। अतएव, भारत मे राष्ट्रवाद के उदय को एक प्राकृतिक विकास के रूप मे देखा जाना चाहिये। यह आधुनिकीकरण तथा जनसहभागिता की प्रवृत्तियो के मध्य अन्त क्रिया का परिणाम है।[1] क्षेत्रवाद एक सार्वभौम प्रक्रिया है, परन्तु भारत के सदर्भ मे विशिष्ट बात यह है कि यहॉ एक क्षेत्र की राजनीतिक सीमा उस क्षेत्र की सास्कृतिक और भाषायी सीमा के समानान्तर है। परिणामत सास्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक आकाक्षाओ का तथा स्थिति विशेष से असन्तुष्ट राजनीतिक क्षेत्र मे भी प्रकटीकृत होती है। प्रत्येक क्षेत्रीय आन्दोलन, आर्थिक, सास्कृतिक और राजनीतिक कारको का उत्पाद होता है। ये आकाक्षाये मुख्य रूप से बेहतर आर्थिक प्रस्थिति, राजनीतिक शक्ति, अपेक्षाकृत अधिक सहभागिता, अधिक क्षेत्रीय स्वायत्तता तथा कभी–कभी पृथक राज्य के रूप मे मुखरित होती रही है। परन्तु इनमे से क्षेत्रीयतावाद का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष पृथक राज्य की माग है। पृथक राज्य की यह माग आर्थिक पिछडेपन, जाति, भाषा, धर्म आदि को लेकर विभिन्न क्षेत्रो के द्वारा की जा रही है।

असन्तुलित आर्थिक और राजनीतिक विकास जो विकास प्रक्रिया के प्रारम्भिक चरण मे स्वाभाविक ही है ने क्षेत्रीय असन्तुलन को जन्म दिया है। जिसके परिणामस्वरूप उप–राष्ट्रीय प्रवृत्तियो को बल मिला है। इन असमानताओ के कारण देश के पिछडे और कम विकसित क्षेत्रो मे असन्तोष और उत्तेजना फैली है।

---

1 भारत मे क्षेत्रवाद की राजनीति अनेक जटिल कारको का सम्मिश्रण है। प्रत्येक क्षेत्रीय आन्दोलन आर्थिक, सास्कृतिक और राजनीतिक कारको का उत्पाद होता है। उदाहरणार्थ– आन्ध्र प्रदेश मे तेलगूदेशम पार्टी का उद्भव एक क्षेत्रीय राजनीतिक दल के रूप मे हुआ, परन्तु यर्थाथ मे यह राज्य के अभिजन वर्गों के मध्य प्रतिद्वन्दिता का परिणाम थी। आन्ध्र प्रदेश मे रेड्डी और कामा दो प्रभु जातिया है। राजनीतिक क्षेत्र मे इनकी प्रतिद्वन्तिता का प्रतिनिधित्व क्रमश काग्रेस और तेलगूदेशम द्वारा किया जाता है। तेलगूदेश के नेता एन0टी0रामाराव ने "तेलगू आत्मसम्मान" के नाम पर लोगों को सगठित किया। इस प्रकार रामाराव ने क्षेत्रवाद की राजनीति का प्रयोग काग्रेस का वर्चस्व तोडने के लिये किया और इसमे उन्हे काफी सीमा तक सफलता भी मिली।

क्षेत्र एव क्षेत्रीयतावाद से अभिप्राय

क्षेत्र शब्द एक बहुअर्थी शब्द है, जिसकी परिभाषा देना कठिन है। इसे विभिन्न सदर्भो मे अलग–अलग तरह से समझा जाता है। फिर भी इसकी परिभाषा आमतौर पर इस तरह की जाती है कि हर क्षेत्र अपनी भौतिक और सास्कृतिक विशेषताओ के कारण अपने पडोसी से भिन्न होता है।[2] कभी–कभी एक क्षेत्र मे बहुत से राष्ट्रो को सम्मिलित किया जा सकता है, जैसे आर्कटिक क्षेत्र, दक्षिण पूर्व एशिया का क्षेत्र, सुदूर पूर्वी क्षेत्र इत्यादि। क्षेत्र का प्रयोग राष्ट्र के लिये भी किया जा सकता है जैसे भारत का उप–महाद्वीप क्षेत्र। भारत मे इस शब्द का प्रयोग पूर्वी क्षेत्र, पश्चिमी क्षेत्र, उत्तरी क्षेत्र या दक्षिणी क्षेत्र के लिये किया जा सकता है । भारत मे राजनीतिक सीमा वाले प्रदेश भी विभिन्न क्षेत्रो को बनाते है। इसके अतिरिक्त एक प्रदेश की सभी सीमा के अन्दर उप–क्षेत्र भी हो सकते है, जैसे–आन्ध्र प्रदेश मे तेलगना क्षेत्र, गुजरात मे विदर्भ क्षेत्र इत्यादि। एक ग्रामीण सीमा को भी क्षेत्र की तरह माना जा सकता है। इस प्रकार क्षेत्र एक सापेक्ष शब्द है जिसका अर्थ इसके प्रयोग के साथ बदल जाता है। यहा क्षेत्र के विषय मे विवेचन करते हुये सामान्यत उसका यह अर्थ लिया गया है कि हर क्षेत्र मे सामाजिक सास्कृतिक भिन्नता है और अपने रीति–रिवाजो, परम्पराओ, मूल्यो और आदर्शों के प्रति चेतनता रखते हुये हर क्षेत्र पर्याप्त मात्रा मे एक अस्मित्वान इकाई के रूप मे पहचाना जाता है। इस चेतना के कारण क्षेत्र के लोग एक होने का भाव रखते है, जो कि बाकी क्षेत्रो से भिन्न होता है, चाहे वह प्रान्त, राष्ट्र, महाद्वीप अथवा पृथ्वी ही क्यो न हो। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि क्षत्र की अवधारणा मे 'साह्चर्य' और अन्य क्षेत्रो से 'अलगाव' का भाव अनिवार्यत निहित होता है। इसके अतिरिक्त क्षेत्र का विशिष्ट तत्व अधिकतम् समरूपता होती है। जिसका आधार भाषा, सामाजिक सगठन, जनाकिकीय गठन, सास्कृतिक प्रतिमान, आर्थिक जीवन, ऐतिहासिक अनुभव अथवा राजनीतिक पृष्ठभूमि हो सकती है।

क्षेत्रीयतावाद की अवधारणा का प्रयोग सकुचित और वृहत् दोनो सदर्भो मे किया जाता है। सकुचित सन्दर्भ मे इसका आशय होता है ' स्थानीय हितो के प्रति विशेश लगाव, जबकि वृहत् सदर्भ मे इसका प्रयोग केन्द्र के प्रति आन्दोलन को इगित करने के लिये किया जाता है। एन्साइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइन्सेज मे इसे परिभाषित करते हुये हेडविग हिट्ज ने लिखा है "सामान्य रूप से क्षेत्रवाद को उग्र केन्द्रीयकरण के विरूद्ध प्रतिक्रियात्मक आन्दोलन के रूप मे परिभाषित किया जा सकता है। क्षेत्रीय आन्दोलन, भौगोलिक अलगाव, स्वतन्त्र ऐतिहासिक परम्परा, प्रजातीय, जातीय अथवा धार्मिक विशिष्टिता तथा स्थानीय हितो जैसे तत्वो या इनमे से दो या दो से अधिक के मिश्रण का परिणाम होता है।[3] वास्तव मे क्षेत्रवाद एकागी क्षेत्रीय निष्ठा है जो एक विशेष क्षेत्र के व्यक्तियो मे पायी जाती है। एक विशेष क्षेत्र के निवासी अपने भू–भाग से ही प्रेम नही करते वरन् वह उस क्षेत्र की सस्कृति, सभ्यता, भाषा, रीति–रिवाज तथा अन्य क्षेत्रीय विषमताओ से भी अत्यधिक लगाव रखते

---

2 आई0ई0एस0एस0 (1972), *इटरनेशल इन्साइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइसिज,* डेविड, 1 सिलस (सम्पादित) नई दिल्ली, मेकमिलन, पृ0 377 ।

3 "In a general way, regionalism may be defined as a counter movement to any aggressive form of centralization, regionalist problem arise when these is a combination of two or more such factors as geographical isolation, independent historical tradition, racial, ethnic or religious pecularities and local interests "- Hedwing Hintze

है। इस लगाव के फलस्वरूप यह अपने क्षेत्र की उन्नति के लिये निरन्तर प्रयास करते है, तथा अन्य निकट क्षेत्र की उपेक्षा करते है। इस प्रकार, क्षेत्रीयतावाद को एक घटना के रूप मे परिभाषित किया जा सकता है जिसमे लोगो की राजनीतिक निष्ठाए एक क्षेत्र पर केन्द्रित हो जाती हैं। यह क्षेत्रीय इकाइयो को स्वायत्त राज्यो के रूप मे सगठित करने का समर्थन करता है ताकि प्रत्येक क्षेत्र के विकास पर समुचित ध्यान दिया जा सके। दूसरे शब्दो मे वह प्रवृत्ति या दृष्टिकोण जिसमे अपने क्षेत्र की उन्नति को महत्व दिया जाता है और अपने क्षेत्र के लोगो, वहॉ की भाषा और सस्कृति के साथ अधिक निकटता अनुभव की जाती है, सम्पूर्ण देश या राष्ट्र के साथ वैसी निकटता अनुभव नही की जाती। अत क्षेत्रीयतावाद के विचार का अस्तित्व क्षेत्र की अवधारणा के आस–पास ही केन्द्रित होता है।

क्षेत्रीयतावाद भारतीय राजनीति के स्वरूप और रचना को बनाने वाली प्रमुख शक्तियो मे से एक है। यह अन्य राजनीतिक शक्तियो के साथ सक्रिय है। विशुद्ध क्षेत्रीयतावाद के उदाहरण बहुत कम मिलते है। वास्तविक जीवन मे भाषावाद और साम्प्रदायिकता का विविध मिश्रण देखने को मिलता है। ऐसे उदाहरण भी है जहा क्षेत्रीयतावाद और जातिवाद साथ–साथ पाये जाते है। ऐसी स्थिति मे यह र्निणय लेना कठिन हो जाता है कि किसी राजनीतिक घटना को क्षेत्रींयतावाद कहा जाय या अन्य राजनीतिक सम्बद्ध सामाजिक शक्ति जैसे कि भाषावाद।[4] अत प्रश्न यह उठता है कि क्षेत्रीयतावाद का क्या स्वरूप है अथवा क्षेत्रीयतावाद की क्या विशेषताए है जो भाषावाद अथवा साम्प्रदायिकता जैसी राजनीतिक शक्तियो से यह आगे बढ गयी है।

क्षेत्रीयतावाद का विकास

अतीत मे विभिन्न क्षेत्रो का विकास विभिन्न कारणो अथवा तथ्यो के आधार पर हुआ है। विशिष्ट जनसमुदाय जहॉ रहने लगा वही का आदी होता गया। उसी निश्चित भू–भाग पर भाषा, सस्कृति, रीति–रिवाज आदि का जन्म हुआ। इन सबके कारण उनमे एक सामुदायिक क्षेत्रीय भावना का विकास हुआ। विभिन्न क्षेत्रो का विकास बहुत कुछ भौगोलिक परिस्थितियो के फलस्वरूप हुआ। विकास का यह क्रम चलता रहा। इस विकास के प्रभाव से शहर, राजधानी या मुख्यालय के समीप स्थित क्षेत्रो मे उन्नति होती गयी और जो दूर थे, उनमे किसी भी प्रकार की उन्नति नही हो पायी। उनकी उन्नति के लिये सरकार की ओर से भी, किसी प्रकार का विशेष ध्यान नही दिया गया। समय के साथ व्यक्ति की चेतना जागृत होने से अपने क्षेत्र के लिये उसने सघर्ष करना प्रारम्भ कर दिया। सरकार से उस क्षेत्र के लोग यह माग करने लगे कि हमारा क्षेत्र हमे दिया जाय ताकि उसकी उन्नति हम स्वय कर सके। क्योकि सरकार ने उनके क्षेत्र के विकास की ओर कोई ध्यान नही दिया है। स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत के अनेक राज्यो के अनेक छोटे–बडे क्षेत्रो मे इस धारणा का विकास हुआ है कि उनका क्षेत्र जो अभी तक पिछडा हुआ है उन्हे दे दिया जाय ताकि उसकी उन्नति वे स्वय कर सके। इस भावना और चेतना के प्रसार से विकास के प्रति प्रतिबद्ध क्षेत्रीयतावाद का निरन्तर विकास हुआ है। भारत मे स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् क्षेत्रीय राजनीति के इस फैलाव के निम्न चार महत्वपूर्ण ऐतिहासिक बिन्दु रहे हैं–

4, माथुर, पी0सी0 (1990), *"रिजनलिज्म इन इण्डिया एन एस्से इन डायमेशनलाइजेशन ऑफ स्टेट पोलिटिक्स इन इण्डिया'* इन वीरेन्द्र ग्रोवर, (सपा0), *सोशियोलोजिकल एस्पेक्ट्स ऑफ इण्डियन पोलिटिकल सिस्टम,* नई दिल्ली, दीप एव दीप पब्लि0, पृ0 120–167

(1) स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् प्रजातान्त्रिक सरकार स्थापित की गई। इसका मुख्य उद्देश्य प्रजातन्त्र, धर्मनिरपेक्षता, राष्ट्रीय एकता और सामाजिक न्याय के सिद्धान्तो पर राष्ट्र का निर्माण करना था। देश के सभी भाग राष्ट्र–निर्माण मे निष्पक्ष व्यवहार चाहते थे। परन्तु विकास के लिये सभी भाग आपस मे प्रतिस्पर्धा करने लगे। किसी भी काम का आशा से कम होना उनमे अभ्रान्ति फैलाता था और उसके फलस्वरूप ही क्षेत्रीय राजनीति का आविर्भाव हुआ।

(2) देशी रियासतो का एकीकरण किया गया। छोटी रियासतो को बडी रियासतो मे मिला दिया गया। परन्तु लोग अभी भी निष्ठा से पुरानी राज्य क्षेत्रीय इकाइयो की निरन्तर सेवा मे लगे हुये थे। निर्वाचन मे राजाओ आदि की सफलता का यह एक महत्वपूर्ण कारक था। कभी–कभी राजा नये गठित प्रदेशो की तुलना मे अपने पुराने राज्य क्षेत्रो से अधिक समर्थन प्राप्त कर पाते थे और उसी प्रदेश के अन्य भागो मे अपेक्षाकृत कम समर्थन प्राप्त कर पाते थे।

(3) भाषा के आधार पर प्रदेशो के पुनर्गठन ने क्षेत्रीय राजनीति के विकास मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। 28 प्रदेशो को पुर्नगठित किया गया और केन्द्रीय प्रशासनिक राज्य क्षेत्रो सहित इन्हे घटाकर 14 कर दिया गया। इसके बाद फिर से नये प्रदेश बनाये गये। उदाहरण के लिये बम्बई को गुजरात और महाराष्ट्र तथा पजाब को पजाब और हरियाणा मे बाट दिया गया। परन्तु इन प्रदेशो को पूरी तरह भाषा के आधार पर नही बनाया गया था।

अन्य बहुत से कारको जैसे कि नृजातीय तथा आर्थिक विचारधाराये (नागालैण्ड, मेघालय, मणिपुर और त्रिपुरा, हरियाणा और पजाब) , भाषा (महाराष्ट्र और गुजरात) तथा ऐतिहासिक और राजनीतिक कारण (उत्तर प्रदेश और बिहार) , देशी रियासतो का एकीकरण और व्यव्हार्य समूहीकरण के लिये इसकी आवश्यकता (मध्य प्रदेश और राजस्थान) , भाषा और सामाजिक भिन्नता (तमिलनाडू, केरल, मैसूर, बगाल और उडीसा) ने भारतीय सघ की सरचना मे महत्वपूर्ण और निर्णायक भूमिका निभायी है।

इन सब विचारो के अतिरिक्त भाषा, प्रदेशो के पुनर्गठन मे एक महत्वपूर्ण कारक रही है। क्षेत्रीयतावाद के सदर्भ मे यह एक ऐसी महत्वपूर्ण शक्ति बन गयी है जिससे भाषायी क्षेत्रीयतावाद ने भारतीय राजनीति मे अपना स्थान बना लिया है।

(4) देश मे क्षेत्रीय और सकीर्ण प्रवृत्तियो को जन्म देने वाले अन्य कारक थे, राजनीतिज्ञो के व्यक्तिगत और स्वार्थी उद्देश्य। स्वतन्त्रता के पश्चात् शीघ्र ही कुछ दलो के बीच राजसत्ता के लिये सघर्ष शुरू हो गया। अपने सत्ताधिकार और सम्मान बढाने के लिये कुछ क्षेत्रीय और प्रादेशीय नेता केन्द्र और प्रदेशो को कमजोर करने मे भी नही हिचकिचाये। क्योकि अधिक प्रदेशो को बनाने का अभिप्राय है– राज्यपालो, मुख्यमत्रियो विधान सभा सदस्यो इत्यादि का अधिक होना। पेशेवर राजनीतिज्ञो ने अपने व्यक्तिगत और स्वार्थी उद्देश्यो की पूर्ति के लिये अनभिज्ञ जनसमूहो की सकीर्ण और साम्प्रदायिक भावनाओ को बढाकर अपना स्वार्थ सिद्ध किया।

भारत मे क्षेत्रीयतावाद के दो पहलू है– (1) नकारात्मक जो सकीर्ण, स्वार्थ प्रेरित मनोवृत्ति का परिचायक है जिसमे विघटनकारी तत्व निहित होते है , (2) सकारात्मक जिसमे क्षेत्र विशेष का सतुलित विकास निहित है।

नकारात्मक क्षेत्रीयतावाद एक ऐसी सकीण खण्डित मानसिकता का प्रतीक है जो राजनीतिक एव प्रशासकीय अभिजनो द्वारा निजी स्वार्थ एव राजनीतिक लाभो के लिये भडकाई जाती है। जबकि सकारात्मक क्षेत्रीयतावाद किसी क्षेत्र विशेष के लोगो की आकाक्षाये, आवश्यकताओ एव मागो को अभिव्यक्त करने का प्रयास और आन्दोलन है। अक्सर इन मागो की राष्ट्रीय एकता के नाम पर उपेक्षा कर दी जाती है। क्षेत्रीयतावाद के समर्थक निम्नलिखित उद्देश्यो के आधार पर इसके समर्थन की बात कहते हैं–

1 क्षेत्रीय स्वायत्तता की भावना पर आधारित पृथक राज्य आन्दोलन के पीछे सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य क्षेत्रीय आर्थिक उन्नति–प्रगति एव सम्पन्नता है। वे क्षेत्र जो अभी तक बुरी तरह पिछडे हुये है, जिनका आर्थिक ढॉचा सदियो से जैसा था लगभग वैसा ही है की ओर हमारी सरकार ने कोई विशेष ध्यान नही दिया है। इसका परिणाम यह हुआ कि उनके जीवन मे प्रगति का वह अश नही आ सका जैसा कि अन्य क्षेत्रो ने प्रगति की। इसलिये इन पिछडे हुये क्षेत्रो के व्यक्ति यह बीडा उठाते है कि वे अपने क्षेत्र का विकास स्वय करेगे। इसका अधिकार एव उत्तरदायित्व उन्हे दिया जाय। इससे सबसे बडा लाभ यह होगा कि वे क्षेत्र जो अभी भी उपेक्षित, आर्थिक दृष्टि से हेय और पिछडे हुये है, वे भी शीघ्र उन्नति करने लगेगे।

2 जब तक कोई छोटा क्षेत्र बहुत बडे क्षेत्र अथवा राज्य से मिला रहता है, तब तक छोटे क्षेत्र के व्यक्तियो की भावनाओ की ओर सरकार का ध्यान ही नही जाता है। क्षेत्र का व्यक्ति ही क्षेत्रीय व्यक्तियो की भावनाओ को भली–भॉति समझ सकता है और उनका आदर कर सकता है। वह उनकी भावनाओ के अनुरूप योजनाओ का प्रारूप बना सकता है। जब कभी क्षेत्रीय भावनाओ के अनुरूप योजनाये आदि बनायी जाती है तो उसे सफलता प्राप्त होती है क्योकि वहॉ का व्यक्ति अपनी ही समस्याओ का हल उन योजनाओ मे देखता है, जिसका निराकरण भी वही कर सकता है। क्षेत्रीय स्वायत्तता से क्षेत्रीय व्यक्तियो की भावनाओ का सम्मान ही नही होने लगता है वरन् उन भावनाओ के अनुरूप ही योजनाये एव कार्यक्रम बनाये जाते है जिस दिशा मे वे प्रगति करना चाहते है जिससे व्यक्तियो की भावनाओ को सतोष प्राप्त हो सके।

3 क्षेत्रीय सस्कृति समय के साथ कुछ परवर्तित होती जा रही है। सस्कृति तभी सुदृढ रूप से रह सकती है जबकि इससे सम्बन्धी अनेक क्षेत्रीय सगठनो की स्थापना हो जो अपनी सस्कृति की सुरक्षा के लिये कार्य कर सके। इस प्रकार के सास्कृतिक सुदृढता की स्थापना तभी भली–भॉति हो सकती है जबकि क्षेत्रीय व्यक्तियो के हाथो मे स्वशासन की बागडोर आ जाय।

4 जब एक क्षेत्र के व्यक्तियो को अपने क्षेत्र की उन्नति, प्रगति आदि का अधिकार प्राप्त हो जाता है तो वे अपने क्षेत्र की सभी जर्जर सस्थाओ एव सगठनो का पुनर्निर्माण करते है, उनको नवीन जीवन देने का प्रयास करते है। जिससे कि वे समस्या की आवश्यकता के अनुरूप अपने को ढाल सके ओर क्षेत्र की प्रगति मे सक्रिय रूप से भाग ले सके।

5 केन्द्र ने कुछ प्रभावशाली नेताओ से प्रभावित होकर कुछ क्षेत्रो को अधिक सहायता प्रदान की है और कुछ की उपेक्षा की है। इस पक्षपातयुक्त रवैये को क्षेत्रीय आन्दोलनो के द्वारा ही दूर किया जा सकता है और इसीलिये विभिन्न क्षेत्र के व्यक्तियो ने आन्दोलनो को प्रारम्भ भी कर दिया है।

क्षेत्रीय नेताओ की यह माग है कि "अब बहलाने, फुसलाने और पुचकारने मे नही आयेगे। हमे अपने क्षेत्र के विकास के लिये सहायता चाहिये और उचित सहायता चाहिये"।

6 इन आन्दोलनकर्त्ताओ का मुख्य उद्देश्य यह है कि वे अपने क्षेत्र मे सामाजिक–आर्थिक क्रान्ति को जन्म देना चाहते है। इसका उद्देश्य व्यक्ति के अन्दर इस भावना का प्रचार करना है कि जब तक वे सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियो को परिवर्तित नही करेगे तब तक उनका क्षेत्र पिछडा ही बना रहेगा।

7 पृथक राज्य आन्दोलन या उप–क्षेत्रीयतावाद का उद्देश्य अपने क्षेत्र का सर्वागीण विकास है। यह तभी हो सकता है जब कि क्षेत्र के अन्दर जितने भी साधन हो, उनका समुचित प्रयोग किया जाय तथा मानवीय शक्ति जिसका कोई प्रयोग नही हो पाता है उसका उत्पादन कार्यों मे प्रयोग किया जाए। उन्हे स्वावलम्बी बनने की प्रेरणा भी दी जाए, जिससे कि क्षेत्र का विकास किसी एक तरीके का न होकर सर्वागीण रूप से हो सके।

8 विकास के प्रति प्रतिबद्ध क्षेत्रीयतावाद का एक तरफ तो यह उद्देश्य है कि वह अपने परम्परागत ढाचे को सगठित और शक्तिशाली बनाये और दूसरी तरफ इसका यह भी उद्देश्य है कि वह अपने क्षेत्र को आधुनिक से आधुनिक बनाये जिससे कि वहा के व्यक्ति समय के सग आगे बढ सके।

क्षेत्रीय और प्रादेशीय राजनीति अथवा क्षेत्रीयतावाद के आधार

क्षेत्रीयतावाद एक बहुआयामी घटना है। इसके विभिन्न आधार है। यहॉ हम क्षेत्रीयतावाद के भौगोलिक, ऐतिहासिक और सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक–प्रशासनिक आधारो का सक्षिप्त विवेचन करेगे।

(क) भौगोलिक आधार

प्राय लोग अपनी क्षेत्रीय अस्मिता को विशिष्ट भौगोलिक सीमाओ से सम्बद्ध करते हैं। स्वतन्त्रता प्राप्त के पश्चात देशी रियासतो का एकीकरण किया गया और इन छोटी–छोटी रियासतो को मिलाकर नये बडे प्रदेश बनाये गये। इससे नागरिको की निष्ठा पुरानी राज्य क्षेत्रीय सीमा और नई राज्य क्षेत्रीय सरचना के बीच मे बट गयी थी। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि निर्वाचनो मे राजाओ की सफलता के लिये यह एक महत्वपूर्ण कारक बना। विशेषकर ऐसा तब होता था जब वे नये गठित प्रदेश मे अपने पूर्व राज्य क्षेत्र से चुनाव लडते थे। परन्तु भौगोलिक सीमाओ के महत्व का जरूरत से ज्यादा मूल्याकन करना गलत होगा। यह सत्य है कि देशी रियासतो की पुरानी भौगोलिक सीमाओ की यादे अभी भी लोगो को विचलित करती रहती है और राजनीतिक नेता ऐसी स्थिति से लाभ उठाते है। इस बात से भी इन्कार नही किया जा सकता कि ऐसी पुरानी भौगोलिक सीमाये नये और बडे राज्य क्षेत्रो की अस्मिताओ मे अपना स्थान बना रही है, जैसे कि राजस्थान, मध्य प्रदेश और उडीसा आदि।

(ख) ऐतिहासिक और सामाजिक आधार

ऐतिहासिक और सामाजिक आधार क्षेत्रीय राजनीति के सुदृढ आधार है। इस श्रेणी मे विभिन्न घटक यथा– इतिहास, भाषा, जाति, धर्म आदि न केवल व्यक्तिगत तौर पर बल्कि एक साथ मिलकर भी महत्वपूर्ण होते हैं।

(i) इतिहास– इतिहास ने सास्कृतिक परम्परा, लोक साहित्य, पौराणिक और प्रतीकवाद आदि से क्षेत्रीयतावाद को समर्थन दिया। परन्तु इतिहास को क्षेत्रीयतावाद का सबसे महत्वपूर्ण आधार नही माना जा सकता है। आर्थिक और राजनीतिक कारको ने इतिहास के साथ जुडकर क्षेत्रीयतावाद की उत्पत्ति की है। उदाहरण के लिये द्रविड मुनेत्र कजगम ने पहले पृथक प्रदेश की माग की परन्तु बाद मे स्थिति बदलकर सविधान के सघीय ढॉचे मे स्वायत्तता स्वीकार कर ली।

(ii) भाषा– भाषा समूह अस्मिता का शायद सबसे महत्वपूर्ण लक्षण है। इसमे लोगो को सगठित करने एव उनसे काम करवाकर उनके सामूहिक जीवन को बेहतर बनाने की क्षमता होती है। इस अर्थ मे भाषा की एकरूपता सकारात्मक आन्दोलन को सुदृढ करती है।

1920 से ही काग्रेस ने यह सिद्धान्त स्वीकार कर लिया कि प्रान्तीय इकाइयो की राज्य क्षेत्रीय सीमाये बनाने के लिये भाषा को एक मापदण्ड के रूप मे अपनाना चाहिये। 1955 मे राज्य पुनर्गठन आयोग की स्थापना, भाषाई क्षेत्रीयतावाद पर आधारित क्षेत्रीय इकाइयो के गठन के माग के फलस्वरूप हुयी थी। लेकिन राज्य पुनर्गठन आयोग 'एक भाषा एक राज्य' के सिद्धान्त का पूरी तरह अनुसरण नही कर सका। इस सिद्धान्त को भी प्रदेश सीमाओ के निर्धारण की एक मात्र कसौटी नही माना जा सकता था। पहले द्विभाषी प्रदेश गठित किये गये जैसे कि बम्बई पजाब और आसाम इत्यादि। परन्तु 1960 मे बम्बई 1966 मे पजाब और 1960–70 के दशक मे असम को विभाजित करके एकभाषी समरूप राज्य बनाये गये। इससे भारतीय राजनीति मे भाषाई क्षेत्रीयतावाद को और अधिक प्रोत्साहन मिला। इसके साथ ही विस्तृत हिन्दी भाषायी समूह के अन्तर्गत भी भाषाओ और स्थानीय भाषाओ के आधार पर अलग प्रदेश बनाने की माग उठी। कभी–कभी ऐसी मागे भी की गयी है जैसे कि मैथली, राजस्थानी अथवा हरियाणवी इत्यादि को सविधान की अनुसूचित भाषाओ के रूप मे मान्यता दिलवाना।

क्षेत्रीयतावाद का भाषा के साथ गहरा सम्बन्ध है। परन्तु इसे भाषावाद के समकक्ष नही समझा जा सकता । क्षेत्रीयतावाद एक भाषाई प्रदेश मे भी हो सकता है। उदाहरण के लिये मराठी बोलने वाले महाराष्ट्र की रचना, उत्तर–पूर्वी भारत के सात प्रदेश अपने आपको सात बहने समझते है।[5] इन प्रदेशो ने विकास की समस्याओ के आधार पर सामूहिक सम्बन्ध बनाने की कोशिश की और इसके साथ ही क्षेत्रीय एकात्मकता विकसित करने की भी कोशिश की है। अन्य शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि भाषा क्षेत्रीयतावाद का एकमात्र जन्मदाता नही है। भारत मे क्षेत्रीयतावाद के बहुत से आधारो मे से एक आधार है। भाषाई क्षेत्रीयतावाद की बहुत सी स्थितियो मे एक दूसरे से सम्बन्धित बहुत से कारक सामन्यत साथ–साथ पाए जाते हैं।

(iii) जाति– भाषाई क्षेत्रीयतावाद का जाति के कारक से प्रोत्साहित होने वाला एक महत्वपूर्ण उदाहरण तमिलनाडू मे देखा जा सकता है। तमिल क्षेत्रीयतावाद ने गैर ब्राह्मण आन्दोलन के फलस्वरूप लाभ उठाया। तमिल भाषी क्षेत्र की गैर ब्राह्मण जातियॉ ब्राह्मणो के विरूद्ध शक्तिशाली सगठित प्रहार कर सकी थी जो अर्थव्यवस्था, समाज और राजनीति मे निर्विवाद प्रभुता का उपयोग करते थे।

---

5 इन सात राज्यो मे असम, अरूणाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैण्ड और त्रिपुरा सम्मिलित है।

(iv) धर्म– क्षेत्रीयतावाद मे धर्म जाति की तरह महत्वपूर्ण भूमिका नही निभाता है, केवल उस समय कि जब धर्म को प्रभुत्व और भाषाई एकरूपता के साथ जोडा जाता है, जैसे कि पजाब मे अथवा जिस प्रकार जम्मू और कश्मीर मे धार्मिक रूढिवाद और आर्थिक वचन के मिलाप से धर्म का कारक क्षेत्रीयतावाद मे महत्वपूर्ण बन गया है। पजाबी सूबे के गठन की माग को यद्यपि भाषाई रूप मे प्रस्तुत किया गया तो भी इनमे काफी धार्मिक तत्व थे। मातृभाषा के प्रति लगाव पैदा करने की अपेक्षा वे मुख्यत विस्तृत पैमाने पर लोगो की राजनीतिक निष्ठा को उकसाने के लिये उत्तरदायी थे। अत इस विशिष्ट विषय मे साम्प्रदायिकता और भाषावाद के मिश्रण को परिभाषित करना मुश्किल है। परन्तु कुछ अध्ययन इसे बिल्कुल स्पष्ट कर देते है कि पजाबी भाषायी प्रदेश की माग निश्चित रूप से पजाबी बोलने वाले लोगो की सिक्ख धर्म के प्रति निष्ठा के निश्चित आवाह्न से और प्रबल हुयी है।[6]

इन तीन कारको (भाषा, जाति और धर्म) को ध्यान मे रखते हुये कोई भी यह कह सकता है कि पजाब और तमिलनाडू मे क्षेत्रीय राजनीति का अध्ययन यह बिल्कुल स्पष्ट करता है कि क्षेत्रीय मागो के लिये राजनीतिक आन्दोलन औपचारिक रूप से भाषा के नाम पर चलाये गये परन्तु वास्तव मे उनके पर्याप्त गैर भाषाई मूल आधार भी थे।

(ग) आर्थिक आधार

आर्थिक कारक क्षेत्रीय राजनीति का मूल आधार है। भारत एक विकासशील देश है और यहा सीमित ससाधन है, जबकि विभिन्न क्षेत्रो मे विकास के लिये ससाधनो की माग इनकी तुलना मे असीमित अथवा असन्तुलित है। विभिन्न क्षेत्रो के बीच आर्थिक नीतियो ने क्षेत्रीय असन्तुलनो और व्यापक आर्थिक असमानताओ को बढाया है जिसके फलस्वरूप उनके बीच असन्तोष पैदा हो गया। इसे फिर से दोहराया जा सकता है कि बहुभाषाई राज्यो मे नये प्रदेशो को बनाने के लिये अधिकतर माग मुख्यत तथाकथित अनुचित और असमान विकास लाभो के वितरण और व्यय पर आधारित थी। इन क्षेत्रो मे, पृथक प्रदेशो के लिये माग मुख्यतया इस विश्वास पर आधारित है कि ये क्षेत्र अपने प्रदेशो द्वारा आर्थिक रूप से वचित रखे गये है। आर्थिक कारक सामान्यत क्षेत्रीय राजनीति मे प्रमुख महत्व रखते है।

(घ) राजनीतिक–प्रशासनिक आधार

क्षेत्रीयतावाद का राजनीतिक–प्रशासनिक आधार भी महत्वपूर्ण है परन्तु स्वय राजनीति क्षेत्रीयतावाद को जन्म नही देती है। यह केवल क्षेत्रीयतावाद को अभिव्यक्त करती है। राजनीतिज्ञ क्षेत्रीय असतोष और अशाति की स्थिति का लाभ उठाते है। वे अपने व्यक्तिगत और गुटबन्दी को देने वाले आधारो को सुदृढ करने के लिये इसे आन्दोलनो मे बदल देते है। यह सब जानते है कि काग्रेस की अन्दरूनी लडाई ने तेलगाना आन्दोलन को जन्म दिया। काग्रेस नेताओ के समर्थन से ही महाराष्ट्र मे शिवसेना सक्रिय हुयी। क्षेत्रीय राजनीतिक दल जैसे द्रविड मुनेत्र कजगम (तमिलनाडू), अकाली दल (पजाब), झारखण्ड मोर्चा (बिहार) केवल क्षेत्रीय भावनाओ के आधार पर चल रहे है। महाराष्ट्र और कर्नाटक के बीच सीमा विवाद भी क्षेत्रीय भावनाओ पर आधारित है। क्षेत्रीयतावाद की

---

6 मजीद, ए0 (1984), *रीजनलिज्म डिवेलपमेन्टल टेशन्स इन इण्डिया,* नई दिल्ली, कॉस्मो पब्लिकेशन पृ० 64।

राजनीति का अन्य महत्वपूर्ण तथ्य केन्द्रीय सत्ता के सर्वश्रेष्ठ जनो के द्वारा विभिन्न क्षेत्रो के साथ किये गये वास्तविक अथवा राजनीतिक भेदभाव के आरोपो पर आधारित है।

उपरोक्त के अलावा क्षेत्रीयतावाद के उदय और उसकी वृद्धि मे अनेक विचारधारात्मक, सामाजिक और सास्कृतिक तत्वो का भी योगदान रहा है। इन तत्वो के रूप मे प्राय क्षेत्रीयता मे वृद्धि करने वाली प्रक्रियाओ और अनुकूल परिस्थितियो का हाथ रहा है। इनमे से कुछ क्षेत्रीयतावाद के प्रचार प्रसार के साधन के रूप मे प्रयुक्त हुये है तो कुछ अन्य अलगाववादी विचारधारा के मूल तत्व रहे है। क्षेत्रीय चेतना या इसके विभिन्न तत्वो के आधार पर क्षेत्रीयतावाद की व्याख्या नही की जा सकती, जो कि अलगाववाद का प्रथम चरण है। ये तत्व इसके कारण नही है बल्कि स्वय मे क्षेत्रीयतावाद ही है और इसी की खुद यानी क्षेत्रीयतावाद की पहचान की जानी है न कि उसके किन्ही तत्वो की।

यह कहना कि सामाजिक, सास्कृतिक और विचारधारात्मक घटको का स्वरूप कारण परक नही होता , क्षेत्रीयतावाद के उद्‌भव और उसकी वृद्धि मे इन तत्वो की महत्वपूर्ण भूमिका से इन्कार करना नही है। इसका तात्पर्य केवल इतना है कि सामाजिक कारणो के अभाव मे ये घटक पृथकतावाद या क्षेत्रीयतावाद को अस्तित्व प्रदान कर सकते है। दूसरे, जहा ये घटक अपने आप क्षेत्रीयता की भावना को उत्पन्न करने मे अक्षम होते है, वही क्षेत्रीयतावाद की सामाजिक जडो के चलते उनकी भूमिका महत्वपूर्ण या निर्णायक सिद्ध हो सकती है। अत इन घटको का अध्ययन कर उनके स्पष्ट रूप तथा विकृत सम्बन्धो का निरूपण अति आवश्यक है। यहा हम इन घटको का अध्ययन निम्न शीर्षको– (1) राष्ट्रीय चेतना की विफलता, (2) सामाजिक पिछडापन, (3) बौद्धिक पिछडापन तथा सामाजिक और नैतिक अवरोध, (4) राष्ट्रीय नेतृत्व मे केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति और क्षेत्रीय दलो का उद्‌भव तथा (5) राष्ट्रवादी नजरिये और वैचारिक सघर्ष का अभाव, के अन्तर्गत करेगे।

(1) राष्ट्रीय चेतना की विफलता

भारतीय जनगण को एक राष्ट्र के रूप मे ढालने की लम्बी और ऐतिहासिक प्रक्रिया उन्नीसवी सदी मे आरम्भ हुयी थी। राष्ट्रवादी और साम्राज्यवाद विरोधी आन्दोलन राष्ट्र निर्माण की इस प्रक्रिया मे योगदान करने वाला एक सशक्त कारक भी था। तथापि, राष्ट्रीयता अथवा एक राष्ट्र होने की यह भावना किसी वस्तुगत यथार्थ से अपने आप ही उत्पन्न नही हो गयी। यद्यपि इसे राजनीतिक और विचारधारात्मक आत्मशोधन की एक कठिन श्रम साध्य प्रक्रिया का रूप लेना चाहिये किन्तु अपने विशिष्ट स्वरूप के कारण यह प्रक्रिया अत्यन्त विभेदात्मक बन गयी।[7] इसके अतिरिक्त नये सामाजिक वर्गों और सस्तरो का असर भी विभेदात्मक ढग से हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि देश और काल दोनो की दृष्टि से विभिन्न वर्गों और सस्तरो तथा विभिन्न धर्मों, जातियो और भाषायी क्षेत्रो से सम्बन्धित लोगो के बीच राष्ट्रीय चेतना का विकास एक सा नही हो गया। कुल मिलाकर राष्ट्रवादियो

---

7 चन्द्र, विपिन (1996), *आधुनिक भारत मे साम्प्रदायिकता*, दिल्ली विश्वविद्यालय, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, पृ0 95।

ने क्षेत्रीयतावाद के विरूद्ध कोई सशक्त और विचारधारात्मक सघर्ष सगठित नही किया।[8] इस दिशा मे असफल होने वाले राष्ट्रीय नेता कोई अकेले नही थे। नवोदित ट्रेड यूनियने, किसान सभाये और अन्य जन सगठन, वामपथी दल और समूह भी इस विफलता मे उनके भागीदार थे। इसके लिये उत्तरदायी थी एक खास यन्त्रीकृत और सरलीकृत धारणा जिसके अनुसार यह माना जाता है कि आधुनिक अर्थव्यवस्था का विकास स्वत ही राष्ट्रीय चेतना और वर्गीकृत चेतना को विकसित कर देगा।[9] किन्तु नई पहचानो और चेतना की उपलब्धि को तो एक सायास प्रक्रिया का अग होना ही पडता है जो अधिक व्यापक और तीव्र विचारधारात्मक प्रक्रियाओ का एक भाग होती है। लोग सामाजिक यथार्थ को यो ही सीधे–सीधे ग्रहण नही कर लेते। विचारधारा के क्षेत्र मे जाकर ही वे वस्तुगत सामाजिक यथार्थ और सामाजिक सम्बन्धो के प्रति सचेत होते है। दरअसल "लोग जो मानते है और जो वे अनायास करते है, वह राजनीतिक और विचारधारात्मक सघर्षो के परिणामस्वरूप ही अन्तत दरारो या फूट का रूप धारण कर लेते है।[10] आधुनिक अर्थव्यवस्था और राजनीति यदि लोगो की विस्तृत और सामूहिक पहचानो के आधारो पर नही होती तो वह अपने लिये धर्म, पथ, भाषा, क्षेत्र, प्रजाति, कौम यहा तक कि पेशे व कार्य के प्रकार जैसे आधार भी ढूढ लेती हैं।

भारतीय समाज के कतिपय विशिष्ट क्षेत्रो और भागो मे क्षेत्रीयता की प्रवृत्ति इसलिये विकसित हुयी, क्योकि राष्ट्रीय नेतृत्व उनमे नई राष्ट्रीय और वर्गीय चेतना विकसित करने मे असफल रहा और राजनीतिक एव सामाजिक परिवर्तन की स्थिति मे पुरानी पहचानो और सामाजिक समूह के अपर्याप्त होने के कारण एक प्रकार का शून्य उत्पन्न हो गया। व्यापक समूहन और तीव्र गति से हो रहे राजनीतीकरण की चेतना के चलते इस शून्य को भरने के लिये राष्ट्रीय चेतना उपलब्ध न हो पाने के कारण क्षेत्रीय, जातीय, भाषायी और साम्प्रदायिक पहचान ने ही इस शून्य को भरा। इसके लिये पुराने परिचित और आसानी से समझ मे आने वाले भाषायी, धार्मिक, जातीय व क्षेत्रीय सम्बन्धो को अपना आधार बनाया, विशेष रूप से जनता के राजनीतिक रूप से पिछडे हुये वर्गों के बीच। लोगो को राष्ट्र, राष्ट्रीयता और वर्ग की व्यापक एकता एव नई पहचान की आवश्यकता थी जिसके द्वारा वे बदलती हुयी परिस्थितियो मे दुनिया को समझ सके। किन्तु वास्तविक एकता अथवा सामूहिक पहचान या राष्ट्र और वर्ग के आधार पर सगठन के सिद्धान्त प्राय समय रहते लोगो तक नही पहुँचे। अत लोगो ने पुरानी चेतना के ही कतिपय पहलुओ का सहारा लिया जो पुरान सास्कृतिक सम्बन्धो पर आधारित थे। उन्होने नवजागृत राजनीतिक जीवन के लिये भी सामाजिक और सास्कृतिक जीवन के विभक्तिकरण तथा सगठन के पहले से विद्यमान

---

8 रशीद्दीन खान लिखते हैं, किसी भी बहुलवादी समाज के महत्वपूर्ण भागो के बीच क्षेत्रीय, भाषायी, साम्प्रदायिक या राजनीतिक टकराव और तनाव होना न केवल अपरिहार्य है, जैसा कि किसी भी गतिशील परिवर्तन की स्थिति मे स्पष्ट है। महत्वपूर्ण बात यह है कि इन तत्वो और टकरावो को दबाव और सौदेबाजी के नकारात्मक तरीको की अपेक्षा सकारात्मक तरीके अपनाकर वैध राजनीतिक व्यवस्था के भीतर नियन्त्रित किया जा सकता है। वही, कामत, ए0आर0 का *नेशनल इटीग्रेशन ऐड नेशनल लॉयल्टीज* भी देखिये। मेरी राय मे क्षेत्रीयतावाद को साम्प्रदायिक, भाषायी, जातीय, सास्कृतिक या राजनीतिक निष्ठाओ की श्रेणी मे रखना गलत है।

9 चन्द्र, विपिन (1996), पूर्व उद्धत कृति, पृ0 96 ।

10 ज्यूरर्स, एडम प्रेजवस्की (1976), *द प्रोसेस ऑफ क्लास फोर्मेशन फ्राम कार्ल कौटस्कीज स्ट्रगल टू रिसैट काटोवर्सीज मीमियोग्राफी*, यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो, पृ0 27–28 ।

सिद्धान्तो को ही अपनाया।[11] किन्तु यह बात लोगो को किसी पुरानी एकजुटता या पहचान की ओर नही ले गयी, अपितु इससे समाज मे एक नई क्षेत्रीय चेतना फैली जिसका बाह्य आचरण पुरानी चेतना जैसा था और जो उसके कतिपय पक्षो को छूती थी। इस प्रकार राष्ट्रीय और वर्गीय चेतना फैलाने के लिये एक सतत् और सही विचारधारात्मक राजनीतिक सघर्ष की असफलता के फलस्वरूप ही क्षेत्रीयतावाद की प्रवृत्ति मुखरित व विस्तारित हुयी।

ध्यान देने योग्य तथ्य है कि जहॉ काग्रेसी और वामपथी नेता हिन्दू–मुस्लिम एकता के लिये सक्रिय रूप से एकताबद्ध थे वही उन्होने क्षेत्रीयतावाद के विरूद्ध कभी कोई एकताबद्ध सक्रिय जन राजनीतिक और विचारधारात्मक आन्दोलन या अभियान नही चलाया। उन्हे आशा थी कि राष्ट्रीय चेतना और वर्ग चेतना विकसित होने के साथ ही क्षेत्रीयतावाद अपने अन्तर्निहित छद्म झूठेपन और सकीर्ण सामाजिक आधार के कारण स्वत समाप्त हो जायेगी , विशेष रूप से तब जबकि आर्थिक मुद्दे जनता के सामने रहेगे।[12]

(2) सामाजिक पिछड़ापन

अनेक सामाजिक एव ऐतिहासिक कारणो से सिक्ख, मुसलमान, आदिवासी, मध्यवर्गों और निम्न–मध्य वर्गों मे आधुनिक शिक्षा, व्यापार और उद्योग का उतना प्रचार–प्रसार नही हुआ जितना कि उसी वर्ग के अन्य भारतीयो के बीच हुआ।[13] यह तबका उद्योग, व्यापार, पेशो एव उच्च शिक्षा के क्षेत्रो मे अन्य देशवासियो से दशाब्दियो पीछे था।[14] इसका परिणाम यह हुआ कि आधुनिक बुद्धिजीवी वर्ग, आधुनिक मध्य वर्गों एव आधुनिक बुर्जुआ वर्ग (पूजीपति वर्ग) सक्षेप मे, आधुनिक सभ्यता के क्षेत्र मे ये लोग लगभग आधी सदी पीछे रह गये। इस पिछडेपन ने भी क्षेत्रीयतावाद की जडो को पोषित करने का कार्य किया।

(3) बौद्धिक पिछडापन तथा सामाजिक और नैतिक अवरोध

भारतीय जनता का बौद्धिक पिछडापन भी क्षेत्रीयतावाद की वृद्धि मे सहायक हुआ। इस पिछडेपन से क्षेत्रीय या पृथकतावादी नेताओ को इस बात का मौका मिला कि वे जनता की सामाजिक–राजनीतिक स्थिति की गलत तस्वीर पेश करके उसे सुधारने के सघर्ष को पृथकतावादी दिशा अथवा क्षेत्रीयतावाद या इसी प्रकार की अन्य नकारात्मक परिघटनाओ की ओर मोड सके।[15] इसी पिछडेपन के चलते कामगारो और किसानो के वर्ग सघर्ष को अथवा निम्न–मध्य वर्ग की हताशाओ को क्षेत्रीयतावाद की दिशा मे मोडा जा सका।

---

11 चन्द्र, विपिन (1996), पूर्व उद्धत कृति, पृ0 97 ।

12 उदाहरण के लिये देखिये 1931 और 1936 मे जवाहरलाल नेहरू का दृष्टिकोण 'मेरी दृष्टि मे असफल चीज है आर्थिक कारण। यदि हम इस पर बल दे और लोगो का ध्यान इसकी ओर आकर्षित कर दे, विभिन्न समूह एक साझे बन्धन मे बध जायेगे। आर्थिक बन्धन राष्ट्रीय बधन से भी अधिक शक्तिशाली होता है। तो उनमे बहुत कम मतभेद होगा।"– *सिलेक्टेड वर्क्स, खण्ड–5*, पृ0 203 ।

13 गरीब और निचले वर्गों के साथ ही जमीदारो एव भू स्वामियो के पारम्परिक उच्च वर्ग भी, मुसलमान और गैर मुसलमान दोनो ही शैक्षिक एव आर्थिक रूप से पिछडे हुये थे।– वासू, अपर्णा (1974), *द ग्रोथ ऑफ एजूकेशन एण्ड पॉलिटिकल डवलेपमेन्ट इन इण्डिया, 1889–1920*, दिल्ली, पृ0 152 ।

14 राबिन्सन, फ्रासिस (1975), *सेपरेटिज्म अमग इण्डियन मुसलिम्स , द पॉलिटिक्स ऑफ द यूनाइटेड प्रॉविन्सेस मुस्लिम, 1860–1923*, दिल्ली, पृ0 46 ।

15 उदाहरण के लिये हिन्दू जमीदारो, पूजीपतियो के विरूद्ध माफिया काश्तकारो के वर्ग सघर्ष एव साम्राज्यवाद विरोधी भावनाओ को उनके सास्कृतिक पिछडेपन, निरक्षरता एव कट्टर धर्मिकता के कारण क्षेत्रीयतावाद या पृथकतावाद की दिशा मे मोडा जा सका।

प्राचीन सामाजिक मूल्यो के विघटन एव सकटो के विद्यमान रहते पारम्परिक नैतिक मूल्यो के क्रमश क्षीण होते जाने और टूटते जाने से एक प्रकार का नैतिक शून्य और आधारहीनता की स्थिति उत्पन्न होने लगी। जिसके परिणामस्वरूप फासीवादी और अनैतिकता[16] अतार्किकता, घृणा, भय, टकराव और हिसा पर आधारित चितन और कार्य प्रणालियो को बढावा मिला। इसी प्रकार, अल्प विकसित पूजीवाद ने बडे पैमाने पर सग्रहशील प्रतियोगिता और नग्न स्वार्थ को जन्म दिया। किन्तु पूर्ण विकसित पूजीवाद और आर्थिक विकास के अभाव मे इनकी पूर्ति नही हो सकती है। यह अल्प विकसित पूजीवाद का मूल लक्षण है और इसका सर्वाधिक नकारात्मक पक्ष भी। इसके अतिरिक्त पारम्परिक सामाजिक बधन और परिवार, सगे सम्बन्धियो एव घर गाव के प्रति निष्ठाये धीरे–धीरे समाप्त होती जा रही है, विशेषकर शहरो मे। किन्तु इसके स्थान पर कोई नये और दृढ सम्बन्ध स्थापित नही हो रहे है। यही मूल्यहीन, भौतिक, सामाजिक एव मनोवैज्ञानिक हताशाओ से भरा हुआ सामाजिक परिवेश, तर्क, बुद्धिहीन दार्शनिक चिन्तन और विचारधाराओ के साथ घृणा और भय के आन्दोलनो, घोर स्वार्थपरता और एक समूह को दूसरे के विरूद्ध खडा करने के लिये घृणित स्वार्थों की पूर्ति के अनुकूल होने के कारण[17] राष्ट्रीय एकता या राष्ट्रीय एकीकरण के विरूद्ध क्षेत्रीयतावाद या इसी जैसी अन्य प्रवृत्तियो के पोषण का माध्यम बन जाती है।

इस अवस्था मे क्षेत्रीय, भाषायी, साम्प्रदायिक, साम्राज्यवादी व पृथकतावादी शक्तियो के विरूद्ध सघर्ष के लिये इन सामाजिक निषेधो, अलगाव और सकीर्ण मानसिकता विशेष रूप से अनेक भेदभावात्मक पहलुओ के विरूद्ध सघर्ष करके उन पर विजय पाना आवश्यक है। ऐसा सघर्ष करने मे नाकामी विशेष रूप से आश्चर्यचकित है क्योकि स्त्रियो, हरिजनो और दलितो के साथ होने वाले ऐसे ही भेदभाव के विरूद्ध सघर्ष हो रहे है।[18] इतना तो माना ही जा सकता है कि आशिक रूप से ही सही इस असफलता का कारण राष्ट्रवादी तबके मे आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से प्रतिक्रियावादी विचारधाराओ का व्यापक रूप से प्रचलित होना भी है। जेसा कि, अनेक विचारशील भारतीय भी इस बात को स्वीकार करते थे और करते है कि राष्ट्र निर्माण अथवा राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया को गति देने के लिये समाज मे सक्रिय आमूल परिवर्तन किया जाना आवश्यक है। उदाहरण के लिये, 1920 के दशक के आरम्भ मे रवीन्द्र नाथ टैगोर ने लिखा था आदर्शों की बात करते समय हमारे राष्ट्रवादी भूल जाते है कि यहा तो राष्ट्रीयता के आधार का ही अभाव है। इन आदर्शों का झण्डा लेकर चलने वाले ही सामाजिक व्यवहार मे बडे रूढिवादी और दकियानूस है। उदाहरण के लिये राष्ट्रवादी लोग स्वीट्जरलैण्ड का हवाला देते हैं कि वहा जातीय भेदभाव के बावजूद लोग एक राष्ट्र

---

16 निर्दोष लोगो को अन्धेरे मे छुरा घोपने और पागल भीड़ द्वारा थोड से लोगो को बोटी–बोटी कर देने से बढ़कर अनैतिक और कायरतापूर्ण कार्य और क्या हो सकता है।

17 अथवा जैसा कि के0वी0 कृष्णा ने कहा है, "पारम्परिक नैतिक आदर्शों एव यथार्थ आवश्यकताओ के बीच इस सघर्ष ने एक ऐसे पतनशील वर्ग को जन्म दिया है जिसकी सामाजिक भावनायें मर चुकी है, जिसके लिये निजी स्वार्थ ही सबकुछ है और जो राजनीतिक पुरोधाओ का भाडे का टट्टू बन चुका है। ये कमजोर वर्ग अपनी भावनाओ की पूर्ति चोरी छिपे करते है, अन्धेरे मे नैतिक आदर्शों की अवहेलना करते हैं । यह इन कमजोर पतनशील वर्ग की विशेषता है"– कृष्णा, के0वी0 (1939), *द प्राब्लम ऑफ माइनॉरिटीज,* लदन, पृ0 284 ।

18 चन्द्र, विपिन (1996), पूर्व उद्धत कृति, पृ0 152 ।

के रूप मे सगठित है । किन्तु स्मरण रखना चाहिये कि स्वीट्जरलैण्ड मे विभिन्न समुदाय आपस मे शादी–ब्याह कर सकती है, क्योकि उनका खून एक ही है , किन्तु भारत मे कोई ऐसी साझी विरासत या कोई ऐसा साझा जन्मसिद्ध अधिकार नही है।[19]

(4) राष्ट्रीय नेतृत्व में केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति और क्षेत्रीय दलो का उद्भव

भारत एक ऐसा देश नही है जैसा यूरोप या पश्चिम के तमाम देश है, यूरोपीय राष्ट्रवाद की नीव जिन देशो के आधार पर पडी है वे भौगोलिक ही नही, भाषायी, जातीय, सास्कृतिक, धार्मिक और आर्थिक धरातल पर मूलत एकात्म राष्ट्र है।[20] हमारा देश इनसे अलग एक बहुभाषी, बहुजातीय और बहु सास्कृतिक देश है जिसके एक क्षेत्र की जनता और दूसरे क्षेत्र की जनता के बीच सिर्फ विषम भौगोलिक दूरिया ही नही बल्कि भाषा, सस्कृति और आर्थिक सरचना भी उन्हे एक–दूसरे से अलग करती है, एक–दूसरे से भिन्न ठहराती है। इस देश मे विभिन्न जातीय समुदाय, क्षेत्रीय भाषा समूह और इलाकाई सास्कृतिक इकाईयॉ शताब्दियो से अपनी पहचान और अपनी अस्मिता को सुरक्षित रखते आये है। अपनी पहचान को समाप्त करने की कोशिश करने वाली हर बाहरी या भीतरी ताकत के विरूद्ध उनमे जीवित जन आक्रोश रहा है और उन्होने हमेशा इसका प्रतिरोध किया है।

यह कहा जाता है कि क्षेत्रीय दलो के उभरने की प्रक्रिया राष्ट्रीय 'इथॉस' और राष्ट्रीयता की भावना को क्षति पहुचाने वाली एक नकारात्मक प्रवृत्ति है। जबकि सच्चाई यह है कि ये क्षेत्रीय दल देश के उन्ही क्षेत्रो मे अस्तित्व मे आये जिन क्षेत्रो की जनता को यह अहसास हुआ कि राष्ट्रीय राजनीतिक दल उनकी अपेक्षाओ और आकाक्षाओ को पूरा करने मे नाकामयाब रहे है। साथ ही साथ उन क्षेत्रीय मतदाताओ के हितो की रक्षा करने मे नाकामयाब रहे हैं जिन्होने अपना मत देकर उन पर उसकी जिम्मेदारी सौपी थी।[21] दरअसल जो बडे राष्ट्रीय दल है उनकी राज्य इकाइया छोटे मोटे काम और फैसलो के लिये भी अपने केन्द्रीय सगठन का मुह ताकती रहती है और किसी अत्यधिक क्षेत्रीय महत्व के मसले पर भी पूरी इच्छा के बावजूद कोई स्वतन्त्र निर्णय नही ले सकती और किसी तरह की पहलकदमी नही कर पाती।[22] इन राष्ट्रीय पार्टियो के नेता जिनके नियन्त्रण मे पूरा पार्टी तन्त्र होता है उनकी मुख्य चिन्ता पार्टी आलाकमान मे ही शक्तियो को केन्द्रित करते जाने की रहती है, बजाय इसके कि वे इस शक्ति का विकेन्द्रीकरण करे और क्षेत्रीय नेतृत्व को क्षेत्रीय जनाकाक्षाओ के अनुरूप कार्य करने की सीमित ही सही मगर स्वायत्तता दे। एक लेखक श्री सी0एस0 पडित के शब्दो मे, "जब व्यवहारिक रूप से लगभग सभी राज्यो मे काग्रेस दल के हाथो मे सत्ता रही, केन्द्र सरकार ने एक पितृ सत्ता के रूप मे विकसित होकर अधीनस्थ इकाइयो को अपने दल के मुख्यमत्री के माध्यम से नियन्त्रित किया।[23] ऐसी स्थिति मे दिल्ली से दूर प्रान्तो मे विकास घटने लगा एव क्षेत्रीय प्रवृत्तिया उभरने लगी।

---

19 तदैव ।

20 पकज, घनश्याम (1997), *"छोटे क्षेत्रीय दलो की बडी केन्द्रीय भूमिका"*, लखनऊ, राष्ट्रीय सहारा, अप्रैल 20, पृ0 9।

21 तदैव ।

22 सईद, एस0एम0 (1998), *भारतीय राजनीतिक व्यवस्था*, लखनऊ, सुलभ प्रकाशन, पृ0 186 ।

23 इडियन एक्सप्रेस, मार्च 30, 1969 ।

वस्तुत हमारे राष्ट्रीय अर्थतन्त्र की सबसे गम्भीर बीमारी है– क्षेत्रीय असन्तुलन और इसे सफलतापूर्वक तभी दूर किया जा सकता है जब राज्यो मे ऐसी सरकारे हो जिसकी जडे अपनी धरती मे गहराई तक धसी हो। यह क्षेत्रीय असन्तुलन ही उस जन आक्रोश की बुनियादी वजह है जो कभी पुनरूत्थानवादी और कभी अलगाववादी प्रवृत्तियो के रूप मे फूट पडती है। यद्यपि क्षेत्रीय शक्तियो को ठीक से पलने दिया जाय तो उससे देश की भी उन्नति होती है तथापि, क्षेत्रीय शक्तियो की उन्नति एक दोधारी तलवार है जो देश के लिये लाभदायक एव हानिकारक दोनो ही हो सकती है।

फिर भी, इस देश का राष्ट्रीय मुद्दा क्षेत्रीय और आचलिक आकाक्षाओ की उपेक्षा करके नही बन सकता, क्योकि भारत मूलत कई छोटी–छोटी इकाइयो का मिलाजुला रूप है। इन सब इकाइयो की अलग–अलग भाषा, क्षेत्रीय सस्कृतिया, मान्यताये, रस्म, रिवाज व आस्थाये है। किन्तु यह सब होते हुये, बहुधर्मालम्बी होते हुये, अलग–अलग होने की समृद्धता , विपन्नता की अवधारणा नही है। हमारे राष्ट्रीय उत्कर्ष, जय–पराजय, लास–उल्लास का स्वरूप एक है। हम इन क्षेत्रीय हितो की स्वायत्तता मे विश्वास रखते है। जितनी स्वतन्त्र और निर्भीक यह आचलिक पार्टिया होगी उतनी ही सुदृढ और शक्ति सम्पन्न एव जीवन्त राष्ट्रीय मुद्दे भी होगे। हमारा देश एक जटिल देश है। अत हमारी कोशिश एकता की तो जरूर होनी चाहिये मगर एकात्मकता की नहीं। सघवाद की मूल आत्मा दरअसल एकता मे अनेकता का सम्मान करते हुये ही सुरक्षित रखी जा सकती है, अनेकताओ को मिटाकर एक सपाट पहचान बनाने से नही। अगर हम ऐसा नही करेगे तो इतिहास की शक्तियो के साथ व्यर्थ ही झगडा करेगे और ऐसा करना केवल मूर्खता की ही बात होगी।

(5) राष्ट्रवादी नजरियें और वैचारिक संघर्ष का अभाव

आजादी के समय नेहरू नेहरूवादी विचार और व्यवस्था का विकल्प भारत मे सरदार पटेल के रूप मे विद्यमान था, किन्तु वह बहुत दिनो तक नही टिका। सरदार पटेल ने जिस राजनीतिक और राष्ट्रीय इच्छा शक्ति या दृढता का परिचय दिया था वह अभूतपूर्व था। देशी रियासतो के एकीकरण के मुद्दे पर नेहरू और पटेल मे विवाद हुआ तो पटेल ने नेहरू जी की एक भी नही मानी थी। उनको पता था कि लोक लुभावन नारे और लोकप्रियतावाद राष्ट्र को मजबूत नही बना सकते। परन्तु पटेल की मृत्यु ने काग्रेस की राष्ट्रीय राजनीतिक माग को सूना कर दिया। सास्कृतिक राष्ट्रवाद के प्रमुख अध्येता जर्मनी के श्री हर्डर ने कहा था कि "जब शासक दुर्बलता दिखाता है तो राष्ट्रवाद के रहते हुये भी राष्ट्र का भविष्य असुरक्षित हो जाता है।"[24] गत पचास वर्षों की भारत की राजनीति और शासन मे यही होता आ रहा है। दुर्भाग्यवश, राष्ट्रीय एकता अथवा राष्ट्रवाद के विचारो को जो प्रोत्साहन राष्ट्रीय आन्दोलन से मिला था, 1942 के पश्चात् धीरे–धीरे चुकता गया और 1950 के पश्चात् अवहेलना करने की प्रवृत्ति भी इसमे आ गयी। लोग सोचने लगे थे कि गाधी जी की शहादत और देश की बागडोर नेहरू, पटेल के हाथो मे होने के कारण तथा इसके साथ ही आर्थिक विकास, शिक्षा, विज्ञान और तकनीक के प्रसार एव जल विद्युत बाधो, इस्पात कारखानो और विज्ञान

24 उद्धत, शुक्ल, भानुप्रताप (1998) का आलेख, *'राष्ट्रवादी दृष्टिकोण से ही सम्भव है राष्ट्र निर्माण'* दैनिक जागरण, मई 4।

की प्रयोगशाला जैसे नये मन्दिरो के निर्माण, मिश्रित अर्थव्यवस्था और लोकतान्त्रिक समाजवाद विकसित करने जैसे सकल्प स्वत ही साम्प्रदायिक, भाषायी, जातिवादी और क्षेत्रवादी सोच को कमजोर करके समाप्त कर देगे। फलत अर्तबुद्धिवाद, विपथगामी व पृथकतावादी क्षेत्रीयता के प्रसारण अथवा विस्तार पर रोक लगाने हेतु सामान्य वैज्ञानिक सोच एव धर्मनिरपेक्ष, राष्ट्रीय एकता एव राष्ट्रीय एकीकरण की भावना से ओत–प्रोत राष्ट्रवादी दृष्टिकोण को प्रोत्साहित करने का अधिक प्रयास नही किया गया जो कि किया जाना चाहिये था।

दुर्भाग्य की बात है कि हमारी प्रवृत्ति क्षेत्रीयतावाद की नकारात्मक भावना अथवा पृथकतावादी विचारधारा की भूमिका की अनदेखी करने की रही है। पृथकतवाद का तब तक सफलतापूर्वक विरोध नही किया जा सकता जब तक कि पृथकतावादी नकारात्मक विचारधारा की उस विरासत को नष्ट नही किया जाता जो कि सौ से अधिक सालो से हम लोगो मे घुली मिली है। विचारधारा के स्तर पर इस प्रकार की नकारात्मक परिघटनाओ से किसी प्रकार का समझौता नही किया जा सकता। जैसा कि नेहरू ने दिसम्बर 1958 मे कहा था "अपने नागरिको के मामले मे कोई भी सरकार पूरी तरह असमझौतावादी नही हो सकती है वह यथासम्भव अधिक से अधिक लोगो को अपने पक्ष मे करने की कोशिश करती है और ऐसा करना भी चाहिये। फिर भी किसी निश्चित रूप से बुरी बात के साथ समझौता करना सदैव खतरनाक होता है।[25]

अत विचारधारा के स्तर पर इस प्रकार की नकारात्मक परिघटनाओ से सघर्ष करने के लिये आवश्यक है कि वास्तविक सघर्षों को सामने लाकर सभी प्रकार के नकारात्मक झूठ का पर्दाफाश किया जाय और न केवल वास्तविक राष्ट्रीय सघर्ष एव वर्ग सघर्ष को सामने लाया जाय अपितु धैर्य पूर्वक विचारधारा के स्तर पर शैक्षणिक कार्य किया जाय, चेतना का विकास केवल इसलिये किसी स्वत स्फूर्त प्रक्रिया के रूप मे नही होने वाला कि भारत वस्तुगत रूप से एक राष्ट्र बन रहा है। अत एक भारतीय या राष्ट्रीय अस्मिता अथवा राष्ट्रीयता की भावना के उदय को पूर्व–स्थापित तथ्य नही माना जा सकता। इस भावना को भी उत्पन्न और विकसित किया जाना चाहिय। इस केन्द्रीय प्रश्न पर दीर्घकालीन एव धैर्यपूर्वक किये जाने वाला राजनीतिक विचारधारात्मक कार्य भारत को राष्ट्र बनाने की सचेत प्रक्रिया का एक आवश्यक अग है। भारतीय इस नई राष्ट्रीय पहचान को सायास राजनीतिक एव विचारधारात्मक गतिविधि द्वारा ही प्राप्त कर सकते है। इसके अलावा क्षेत्रीयतावाद की नकारात्मक विचारधारा के विरूद्ध सफलतापूर्वक सघर्ष करने के लिये इसे इसकी सम्पूर्ण जटिलता और अस्पष्टता, इसकी विचारधारा, इसके स्रोतो एव मूल्यो, इसके सामाजिक आधार, इसकी बुद्धि एव राष्ट्रवादी विरोध के बावजूद इसके बने रहने के कारणो को गहराई से समझे जाने की आवश्यकता है।

इस बात पर बल देना इसलिये आवश्यक है कि इस सदी के आरम्भ से ही यह देखने मे आया है कि जब भी क्षेत्रीय अथवा पृथकतावादी ताकते सर उठाती है तो अनेक राजनीतिक दल नेता और बुद्धिजीवी उसके दबाव मे आ जाते है और किसी न किसी रूप मे ऐसी विचारधारा से समझौता या समझौते की सिफारिश करने लगते है या कम से कम इस विचारधारा मे निहित शब्दावली,

25 (1985), *लेटर्स टू चीफ मिनिस्टर्स 1947–1964, खण्ड–I*, नई दिल्ली, भारत सरकार।

सकल्पनाओ और विचारो की आलोचना करने से इकार तो करते ही है। उदाहरण के लिये 1984 के आरम्भ मे भारत के 150 से अधिक प्रमुख बुद्धिजीवियो ने सरकार ओर लोगो से अपील की थी कि वे अपनी इतिहास के प्रति गर्व महसूस करने वाली सिक्खो की साम्प्रदायिक धारणा और "समान रूप राजनीतिक सत्ता अधिकार का प्रयोग" तथा पजाब मे साझीदारी करने जैसी अत्यन्त साम्प्रदायिक सकल्पनाओ को स्वीकार करे और इन सकल्पनाओ का आदर करे।[26] वस्तुत क्षेत्रीयता की भावना या इसी प्रकार की अन्य परिघटनाओ का यह मूलभूत पक्ष रहा है। सोचना होगा कि क्षेत्रीयता की भावना को तोडकर लोगो को राष्ट्रीय, भाषायी और वर्गीय आधार पर अर्थात राष्ट्रीय मुद्दो, कार्यक्रमो और विचारधारा के आधार पर किस प्रकार जोडा जाय।

इस सदर्भ मे विचारधारात्मक स्तर पर सघर्ष करने के लिये वैज्ञानिक ज्ञान, वैज्ञानिक विचारधारा के प्रसार मे वृद्धि और लोगो मे वैज्ञानिक दृष्टिकोण का समावेश करना आवश्यक है। इस दृष्टि से शिक्षा और प्रेस की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आशा की जाती थी कि साक्षरता एव शिक्षा का प्रसार लोगो को इस प्रकार की नकारात्मक परिघटनाओ से दूर रखने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभायेगा। किन्तु शिक्षा व्यवस्था (स्कूल और कॉलेज दोनो ही स्तर पर) और प्रेस इत्यादि के माध्यम से छपने वाली सामग्री का इस्तेमाल साम्प्रदायिकता, जातिवाद एव कट्टर क्षेत्रीयता की भावना उत्पन्न करने और फैलाने के लिये किया जा रहा है।[27] शिक्षा के प्रसार का परिणाम यह हुआ कि प्रगति विरोधी एव अतार्किक विचार और विचारधाराये अब अधिक लोगो तक पहुच रही है। अत वैज्ञानिक आधार पर शिक्षा के विशेष रूप से इसके सामाजिक अध्ययन से सम्बन्धित पक्ष का, पुनर्गठन करने की अत्यन्त आवश्यकता है। सामान्य रूप से यह आवश्यक है कि समस्त मूल परिवर्तनवादी और उदार राष्ट्रीय एव धर्मनिरपेक्ष शक्तिया दल समूह और व्यक्ति मिलकर भारतीय समाज मे एक वास्तविक सास्कृतिक क्रान्ति लाये।[28]

---

26 चन्द्र, विपिन (1996) पूर्व उद्धत कृति, पृ0 245 ।

27 तदैव, पृ0 250–251 ।

28 किसी भी सास्कृतिक क्रान्ति में उस देश और समाज की विगत सास्कृतिक उपलब्धियो के सभी स्वस्थ तत्वो को सम्मिलित करना आवश्यक होता है। यह इसलिये भी आवश्यक है कि इससे पुनरूत्थानवाद, क्षेत्रवाद और प्रगति विरोध के लोकप्रिय कारणो को दूर किया जा सकता है। यही बात साक्षरता के प्रसार एव प्रेस और अन्य सचार साधनो पर भी लागू होती है। सास्कृतिक एव विचारधारात्मक सामजस्य के अभाव मे आधुनिक प्रेस और इश्तिहारबाजी क्षेत्रीयतावाद के दुष्प्रचार को फैलाने मे ही सहायक हुये हैं।

चतुर्थ अध्याय
भारतीय राजनीति

भारतीय राजनीति में क्षेत्रीयतावाद के आयाम

भारतीय राजनीति मे क्षेत्रीयतावाद की प्रवृत्ति ने मुख्यत निम्नलिखित चार प्रकार के स्वरूप धारण किये है–

1. प्रदेश स्वायत्तता के लिये मांग

क्षेत्रीय राजनीति का प्रथम और सबसे अधिक चुनौतीपूर्ण स्वरूप लोगो मे कुछ प्रदेशो और क्षेत्रो को भारतीय सघ से अलग करने की माग के रूप मे था। वे स्वतन्त्र प्रभुसत्ता वाले प्रदेश बनाना चाहते थे। ऐसी मागे स्वतन्त्रता के बाद शीघ्र ही उठने लगी परन्तु अब वे विद्यमान नही है। इसके महत्वपूर्ण उदाहरण है जनमत सग्रह मोर्चा (कश्मीर), पजाब मे अकाली दल (वर्तमान दल नही), मिजो राष्ट्रीय मोर्चा (असम की लुसेही पहाडिया), नागालैण्ड समाजवादी सम्मेलन (असम के नागा पहाडी जिले इत्यादि) ।

2. बहु प्रदेश क्षेत्रीयतावाद

बहु प्रदेश क्षेत्रीयतावाद के मुद्दे मे एक से अधिक प्रदेश शामिल होते है। यह कुछ प्रदेशो की सामूहिक अस्मिता की अभिव्यक्ति है। एक समूह आपसी हितो के मुद्दो को लेकर दूसरे प्रदेशो के समूह के सदर्भ मे एकजुट हो जाते हैं। समूह अस्मिता प्राय कुछ विशिष्ट मुद्दो के सम्बन्ध मे होती है। इसका किसी भी तरह से यह अभिप्राय नही हैं कि प्रदेशो की अस्मिता पूर्ण तथा स्थाई रूप से समूह की अस्मिता मे घुल जाय। किसी समूह के कुछ प्रदेशो के बीच मे प्रतिद्वन्द्विता तनाव और सघर्ष प्राय उत्पन्न हो जाते है। दक्षिण और उत्तर भारत के बीच भाषा और इस्पात उद्योगो के स्थान निर्धारण के मुद्दो को लेकर उत्पन्न प्रतिद्वन्द्विता का उदाहरण इस विषय को अधिक स्पष्ट करता है। आर्थिक विकास की अधिक सफलता के लिये उत्तर–पूर्वी प्रदेशो द्वारा एक समूह बनाना इसका दूसरा उदाहरण है।

3. अन्तर–प्रदेश क्षेत्रीयतावाद

यह विचार प्रदेश सीमाओ के साथ सम्बन्धित है। इसमे एक या अधिक प्रदेशो की अस्मिताये एक दूसरे पर छा जाती है। इससे उनके हितो को भी खतरा पैदा हो जाता है। सामान्यत नदी जल विवादो और दूसरे मुद्दो, विशेषतया महाराष्ट्र, कर्नाटक सीमा विवाद को उदाहरण के रूप मे लिया जा सकता है।

4. अन्तः प्रदेश क्षेत्रीय राजनीति या उप क्षेत्रीयतावाद

इस प्रकार का क्षेत्रीयतावाद प्रदेश की सीमा के अन्दर ही होता है। यह एक प्रदेश के किसी भाग की स्व–अस्मिता और स्व–विकास की भावना मे निहित होता है। यह प्रदेश के एक भाग का दूसरे भाग पर वचन व शोषण की धारणा को भी दिखाता है। इस प्रकार का क्षेत्रीयतावाद भारत के बहुत से भागो मे पाया जाता है। भारतीय सदर्भ मे इस प्रकार के क्षेत्रीयतावाद (उप–क्षेत्रीयतावाद) के निम्न तीन महत्वपूर्ण आयाम– (i) भाषाई क्षेत्रीयतावाद, (ii) साम्प्रदायिक क्षेत्रीयतावाद, और (iii) सरक्षणात्मक या सामाजिक–आर्थिक क्षेत्रीयतावाद है।[1]

---

1 सिवाच, जे0आर0 (1990), *डायनामिक्स ऑफ इण्डियन गर्वनमेन्ट एण्ड पालिटिक्स* ।

(क) भाषायी क्षेत्रीयतावाद

भाषा को प्राय राष्ट्रीयता का एक पहचान चिन्ह माना जाता है। विश्व का कोई भी राष्ट्र भाषायी बिन्दु पर समरूप नही है। इसके बावजूद यह निर्विवाद है कि राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया मे भाषा अति महत्वपूर्ण कारको मे से एक है । यह सामाजिक और सास्कृतिक स्मृतियो का साझा भण्डार होती है। स्टालिन के सारगर्भित शब्दो मे, "एक सामान्य भाषा के अभाव मे एक राष्ट्रीय समुदाय की परिकल्पना ही नही की जा सकती।" कभी–कभी भाषा द्वारा ही सस्कृति, प्रजाति, धर्म इतिहास, तथा राष्ट्रत्व का प्रतिनिधित्व किया जाता है।

क्षेत्रीयतावाद के एक आयाम के रूप मे भाषावाद किसी भी राजनीतिक व्यवस्था के राष्ट्रीय एकीकरण की दृष्टि से एक ऋणात्मक प्रवृत्ति है। अपनी भाषा के प्रति लगाव भाषावाद नही है। किन्तु राजनीतिक जब भाषायी समरूपता के आधार पर किसी भाषा–भाषी वर्ग को अन्य भाषा–भाषी वर्ग के हितो से अलग समझने लगे अथवा उसका प्रतिपादन अपने राजनीतिक और आर्थिक हित के लिये करे तो उसे भाषावाद कहते है। इस प्रकार भाषावाद किसी भी राजनीतिक व्यवस्था के राष्ट्रीय एकीकरण की दृष्टि से एक ऋणात्मक प्रवृत्ति है। भारत मे भाषाई क्षेत्रवाद के दो स्वरूप रहे है, इसने–

(1) केन्द्र को राज्यो का भाषा के आधार पर पुर्नगठन करने के लिये विवश कर दिया,

(2) सविधान द्वारा निर्धारित पन्द्रह वर्ष की अवधि के समाप्त हो जाने पर भी हिन्दी को देश की एक मात्र शासकीय भाषा होने से रोक दिया।[2]

भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन

आजादी मिलते ही देश के सामने भाषा के आधार पर राज्यो के पुनर्गठन का सवाल आ खडा हुआ। यह राष्ट्र की एकता और उसके समेकन का एक महत्वपूर्ण पहलू था। चूकि अग्रेजो का भारत विजय अभियान करीब 100 वर्षो तक चलने के बाद ही सम्पन्न हो पाया इसलिये 20वी शताब्दी मे अग्रेजो ने देश का गठन सैनिक, प्रशासनिक तथा राजनैतिक सुविधाओ को ध्यान मे रखते हुये किया था। इसलिये उस समय बगाल प्रेसीडेन्सी मे बगाल, बिहार, असम तथा उडीसा सभी शामिल थे। लेकिन जब 1905 मे बगाल प्रेसीडेन्सी से पृथक कर पूर्वी बगाल का निर्माण किया गया तो मध्य प्रान्त से कुछ उडिया भाषी क्षेत्रो को बगाल मे सम्मिलित करने के समर्थन मे भाषायी सिद्धान्त का प्रयोग किया गया था क्योकि उडीसा उस समय बगाल प्रेसीडेन्सी मे सम्मिलित था। सन् 1911 मे बगाल का विभाजन निरस्त करते समय भी आबद्धकारी शक्ति के रूप मे भाषा का महत्व स्वीकार किया गया था। परन्तु जब 1912 मे बिहार, उडीसा और असम को बगाल से पृथक किया गया तो उनकी सीमाओ के निर्धारण मे पुन भाषायी सिद्धान्त का अनुसरण किया गया।[3] 1913 मे स्थापित आन्ध्र महासभा की स्थापना का भी एक मात्र उद्देश्य मद्रास प्रेसीडेन्सी का विभाजन कर तेलगू भाषी राज्य की स्थापना था।

---

2 इस विषय पर द्वितीय अध्याय मे विस्तार से अध्ययन किया जा चुका है।

3 सिवाच, जे0आर0 (1992), *भारत की राजनीतिक व्यवस्था,* चढीगढ, हरियाणा साहित्य अकादमी, पृ0 401 ।

भाषाई पुनर्गठन तथा माण्टेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट

माण्टेग्यू–चेम्सफोर्ड सुधार के दौरान भी भाषायी आधार पर राज्यो के पुनर्गठन पर विचार किया गया था। इस रिपोर्ट मे इस तथ्य को स्वीकार किया गया था कि प्रान्तो का भाषा के आधार पर गठन करने के अनेक तर्क है और उनमे से सबसे महत्वपूर्ण तर्क यह है कि जिन व्यक्तियो को अग्रेजी भाषा नही आती है वे भी प्रशासन मे भाग ले सकेगे। इसके अतिरिक्त इस तथ्य को भी माना गया था कि प्रान्त की एक ही भाषा होने के कारण प्रशासन मे भी सुविधा मिलेगी। परन्तु राजनैतिक कारणो से भाषा के आधार पर प्रान्तो के गठन को इसलिये रद्द कर दिया गया था क्योकि साम्राज्य का प्रशासन भारतीय भाषाओ मे नही चलाया जा सकता था।

भाषाई पुनर्गठन तथा कांग्रेस पार्टी

जहॉ तक भाषायी आधार पर राज्यो के पुनर्गठन के विचार के प्रति काग्रेस के रूख का प्रश्न है, यह अस्थिर और मिश्रित रहा है। 1905 के बगाल विभाजन का विरोध और 1911 मे विभाजन की समाप्ति का समर्थन करके पहले तो काग्रेस ने भाषायी सिद्धान्त के प्रति सहमति व्यक्त की। परन्तु 1913 मे जब आन्ध्र महासभा ने तेलगू भाषी प्रान्त के गठन की माग की तो काग्रेस ने इसका विरोध किया था। औपचारिक रूप से इस प्रश्न पर कलकत्ता अधिवेशन (1917) मे विचार के समय काग्रेस की तत्कालीन अध्यक्षा एनीबेसेण्ट तथा महात्मा गाधी ने इस विचार का खुला विरोध किया, जबकि बाल गगाधर तिलक ने भाषायी आधार पर राज्यो के पुनर्गठन का समर्थन किया था। 1918 मे गाधी जी ने अपने दृष्टिकोण मे परिवर्तन किया और उन्होने भी भाषाई आधार पर पुनर्गठन की नीति को स्वीकार कर लिया। काग्रेस के सगठन के लिये देश को 21 भाषाई प्रान्तो मे बाट दिया गया, ऐसा काग्रेस ने भाषाई क्षेत्रीय इकाईयो के दबाव मे आकर किया था।[4]

नेहरू समिति रिपोर्ट

1928 मे नेहरू समिति रिपोर्ट मे भी प्रान्तो के भाषाई आधार पर पुनर्गठन को स्वीकार किया गया था और 1928 मे ही सर्वदलीय कान्फ्रेन्स ने भी इसका समर्थन किया था। इस रिपोर्ट मे यह सिफारिश की गई थी कि सिन्ध को बम्बई से और उडीसा को बगाल से पृथक करके उन्हे अलग–अलग प्रान्त बना दिया जाये। 1936 मे ऐसा कर भी दिया गया था परन्तु ऐसा करने के कई कारण थे। इन प्रान्तो की सीमाये निश्चित करते समय 'ओडोनियल कमीशन' द्वरा भाषा को ही आधार मानकर गजाम तथा विशाखापट्टनम जिले के उडिया भाषी क्षेत्रो को उडीसा मे शामिल कर दिया गया था।[5]

1945–46 का चुनाव घोषणा पत्र

1945–46 के चुनावो मे काग्रेस पार्टी ने अपने चुनाव घोषणा–पत्र मे यह वायदा किया था कि यदि वह चुनाव जीत गई तो राज्यो का भाषा के आधार पर पुनर्गठन कर दिया जायेगा। चुनावो मे काग्रेस की भारी बहुमत से विजय हुयी थी और स्वतन्त्रा के पश्चात् 562 भारतीय रियासतो का भी भारत मे विलय कर दिया गया था। इसके तुरन्त पश्चात् भाषायी आधार पर राज्यो के पुनर्गठन

---

4 तदैव, पृ0 402 ।

5 तदैव ।

की माग फिर से उठाई गयी क्योकि उस समय सैण्ट्रल प्रान्त मे हिन्दी तथा मराठी भाषा जनता मे, बरार मे महाविदर्भा तथा सयुक्त महाराष्ट्र के समर्थको मे, बम्बई, महाराष्ट्र तथा कर्नाटक के समर्थको के बीच तथा दूसरी तरफ तमिलनाडू और केरल के समर्थको के बीच भी तनाव था।

इन झगडो को ध्यान मे रखते हुये जयप्रकाश नारायण, के0एम0मुशी, सरदार पटेल, नेहरू, राजा जी तथा गाधी जी जैसे नेता यह चाहते थे कि अभी भाषाई आधार पर राज्यो के पुनर्गठन की समस्या को कुछ समय के लिये टाल दिया जाए। डाक्टर बी0आर0 अम्बेदकर भी इस विचार से सहमत थे। नेतृत्व का विचार यह था कि अभी कुछ समय के लिये पहला काम राष्ट्रीय एकता को मजबूत करना होना चाहिये क्योकि देश की आन्तरिक सीमाओ के पुनर्निधारण के जटिल कार्य को अभी हाथ मे लेने का कोई भी प्रयास, प्रशासनिक और आर्थिक विकास को ठप्प कर सकता था। साथ ही यह क्षेत्रीय एव भाषाई दुश्मनी को हवा दे सकता था या विभाजनकारी शक्तियो को उभार सकता था, देश की एकता मे दरार डाल सकता था और राष्ट्रीय एकीकरण का मार्ग अवरूद्ध कर सकता था भाषाई सवाल पर बोलते हुये नेहरू ने 27 नवम्बर 1947 को अपनी स्थिति साफ–साफ सामने रख दी, "पहली चीज सबसे पहले और पहली चीज है भारत की सुरक्षा और स्थायित्व।"[6] इसलिये भाषाई राज्यो के लिये प्रतिबद्ध होते हुये भी नेहरू एव अन्य नेताओ ने भारत के नये प्रशासनिक मानचित्र के खीचने के काम को निम्न प्राथमिकता दी। उन्होने महसूस किया कि यह काम आने वाले कुछ सालो तक इतजार कर सकता है। परन्तु जनता की इस माग को और अधिक समय तक दबाया नही जा सका।

डार आयोग (1948)

ऐसी स्थिति मे, क्रमानुसार आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक तथा महाराष्ट्र के भाषायी आधार पर पुनर्गठन के समर्थको के दबाव बढने से अन्तत पडित जवाहर लाल नेहरू ने 27 नवम्बर, 1947 को प्रान्तो को भाषाई आधार पर गठित करने के सिद्धान्त को मान लिया। 17 जून, 1948 को डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद ने (जो कि सविधान सभा के सभापति थे) चार सदस्यो का एक भाषायी आयोग नियुक्त किया जिसके अध्यक्ष इलाहाबाद उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश एस0डी0डार थे।[7] इस आयोग से यह कहा गयाा था कि वह आन्ध्र, कर्नाटक, केरल तथा महाराष्ट्र के प्रान्तो के गठन के बारे मे अपनी रिपोर्ट दे। इस आयोग ने यह रिपोर्ट दी कि केवल भाषा के आधार पर प्रान्तो का पुनर्गठन नही किया जाना चाहिये[8] और जब इस रिपोर्ट के बारे मे भाषाई आधार पर प्रान्तो के गठन के समर्थको को यह मालूम हुआ तब उनमे नारजगी की एक लहर फैल गयी।

---

6 उद्धत, चन्द्र, विपिन, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी (2002), *आजादी के बाद का भारत, 1947–2000,* दिल्ली विश्वविद्यालय, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, पृ0 134 ।

7 इस आयोग के अन्य सदस्य थे– सर्व श्री डॉ0 पन्नालाल (अवकाश प्राप्त आई0सी0एस0 अधिकारी) तथा जगत नारायण लाल (सदस्य सविधान सभा), जबकि श्री बी0सी0बनर्जी (महालेखा परीक्षक, बिहार) को आयोग का सचिव बनाया गया। आयोग के 9 सहयोगी सदस्य भी बनाये गये– सर्वश्री रामकृष्ण राजू, टी0ए0रामलिगम, नरायण मेनन, टी0 सुब्रह्यमण्यम, के0एम0मुशी, आर0आर0दिवाकर, एच0वी0पाटस्कर, टी0एल0सियोड़े तथा गोपाल श्री वत्स।

8 "पूर्णत या अशत भाषायी आधार पर राज्यो का गठन भारत राष्ट्र के दीर्घकालीन हित मे नही हैं, अतएव इसे क्रियान्वित नही किया जाना चाहिये। नये प्रान्तो की स्थापना मे भाषा को समरूपता के अन्य कारणो की भाति एक कारक के रूप मे मान्यता दी जा सकती है, परन्तु इसे निर्णायक अथवा मुख्य तत्व नहीं माना जा सकता है। यदि भारत का अस्तित्व ही कायम नहीं रहता तो भारत की भाषायी समस्या के निराकरण से कुछ नहीं प्राप्त होगा।"– भाषायी पुनर्गठन पर धर आयोग ।

जे0वी0पी0समिति (1948)

चूकि भाषा के आधार पर प्रान्तो के गठन किये जाने के समर्थक डार आयोग की रिपोर्ट से सन्तुष्ट नही थे। ऐसी स्थिति मे, दक्षिण भारत के काग्रेसी जनो ने कार्य समिति से इस विषय पर पुनर्विचार करने का आग्रह किया। फलस्वरूप, अपने जयपुर अधिवेशन मे काग्रेस ने इस विषय पर विचार हेतु उच्च स्तरीय जे0वी0पी0 समिति की नियुक्ति की। इस समिति ने भी विस्तृत विचार विमर्श के उपरान्त भाषायी आधार पर पुनर्गठन की माग को निरस्त कर दिया। इस समिति ने यह सिफारिश की कि इस समस्या को कुछ समय तक के लिये टाल देना चाहिये। लेकिन निजलिगगप्पा तथा सजीव रेड्डी जैसे नेता इस सुझाव को मानने के लिये तैयार नही थे।

चूकि सविधान निर्माता इस बात को जानते थे कि भाषा के आधार पर राज्यो के पुनर्गठन की समस्या को अधिक समय तक नही दबाया जा सकता था। इसलिये सविधान मे ससद को राज्यो का पुनर्गठन करने का अधिकार दे दिया गया।[9]

विशाल आन्ध्र आन्दोलन

सरकार के नकारात्मक दृष्टिकोण के बावजूद पृथक आन्ध्र की स्थापना के लिये आन्दोलन जोर पकडने लगा। 1952 के अन्तिम महीनो मे पृथक आन्ध्र की स्थापना की माग को लेकर पोट्टी श्री रामुलु की 58 दिन के अनशन के पश्चात् मृत्यु हो गयी तो इसके पश्चात् इस आन्दोलन ने हिसात्मक रूप धारण कर लिया। इन परिस्थितियो से विवश होकर तत्कालीन प्रधानमत्री प0 जवाहर लाल नेहरू ने 19 दिसम्बर 1952 को पृथक आन्ध्र राज्य की स्थापना की घोषणा कर दी और 1 अक्टूबर 1953 को आन्ध्र प्रदेश औपचारिक रूप से नया प्रदेश बन गया। यह भाषायी आधार पर राज्यो के पुनर्गठन का पहला चरण था।

राज्य पुनर्गठन आयोग (1953)

आन्ध्र प्रदेश की स्थापना से, जैसा कि स्वाभाविक था भाषायी आधार पर पृथक राज्यो की स्थापना की माग करने वालो को पर्याप्त प्रेरणा प्राप्त हुयी। देश के कई भागो से इस तरह की मागे आने लगी। भाषाई प्रान्तो पर आधारित प्रशासनिक इकाइयो के पक्ष मे काफी दमदार तर्क थे। चूकि भाषा सस्कृति से बहुत गहरे तौर से जुडी होती है, इसलिये जनता के रीति रिवाजो पर भी इसका गहरा असर होता है। आम जनता के लिये जनवाद भी तभी यथार्थ बन सकता है जबकि राजनीति और प्रशासन उस भाषा के माध्यम से सचालित हो जिसे वे ठीक से समझ सकते हो। प्रशासन किस भाषा के माध्यम से चलाया जा रहा है, यह भी निर्धारित करता है कि आम आदमी की प्रशासन, राजनीति, सत्ता और रोजगार तक कोई पैठ है भी या नही। परन्तु शिक्षा,प्रशासन और अदालतो की भाषा कोई मातृभाषा तब तक नही बन सकती जब तक कि प्रदेशो का गठन उसकी प्रमुख भाषा के आधार पर न किया जाए। यही कारण था कि इन मागो की औचित्यता को परखने और नये राज्यो की सीमा–निर्धारण के लिये केन्द्र सरकार द्वारा 22 दिसम्बर 1953 को राज्य पुनर्गठन आयोग की नियुक्ति की घोषणा की गयी।[10] अपने कार्यकाल के पूरे दो वर्षो के दौरान इस आयोग को प्रदर्शन,

9 भारतीय सविधान, अनुच्छेद 3 ।

10 न्यायाधीश फजल अली इस आयोग के अध्यक्ष थे और सरदार के0एम0पणिक्कर तथा पण्डित हृदयनाथ कुजरू इस आयोग के दो अन्य सदस्य थे। आयोग ने अपनी सस्तुतियो के निर्धारण हेतु पूरे देश की यात्रा की , लगभग 9000 व्यक्तियो का साक्षात्कार लिया , 1,52,250 याचिकाओं, सदेशो तथा स्मृति पत्रो का परीक्षण किया। 1 वर्ष 9 माह और 3 दिन के अन्तराल (30 सितम्बर, 1955) पर प्रस्तुत आयोग की रिपोर्ट 267 मुद्रित पृष्ठो मे थी।

घटना और भूख हडतालो का सामना करते रहना पडा। विभिन्न भाषायी समूह एक—दूसरे से कभी बहस मे तो कभी सशरीर टकराते रहे। जैसा कि आयोग के सदस्यो ने दुखपूर्वक रिपोर्ट किया "हमे यह देखकर बहुत दु ख हुआ कि कुछ इलाको मे स्वतन्त्रता सघर्ष के पुराने साथियो ने एक दूसरे के खिलाफ कटु विवादो मे उलझकर सीमा पर चलने वाले युद्ध की स्थिति बना दी है साम्प्रदायिक और सकीर्ण नारे उठाकर आम जनता मे उन्माद भडकाने की कोशिश की जा रही है, बडे पैमाने पर पलायन का खतरा दिखाया जा रहा है, यह दावा तक किया जा रहा है कि यदि खास भाषायी समूह को अपनी अलग प्रशासनिक इकाई नही दी गयी तो उसका नैतिक और भौतिक पतन यहा तक कि अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा , ये सब यही दिखाते है कि उनमे सतुलन और परिप्रेक्ष्य का भारी अभाव है।"[11] आयोग ने अपनी सस्तुतियॉ निम्न तत्वो को ध्यान मे रखते हुये की–

(i) भारत की एकता और सुरक्षा का परिरक्षण ,

(ii) भाषायी और सास्कृतिक समरूपता ,

(iii) वित्तीय, आर्थिक तथा प्रशासकीय सुविधा , तथा

(iv) पचवर्षीय योजनाओ का सफल क्रियान्वयन ।

इस रिपोर्ट मे आयोग ने यह कहा कि केवल भाषा तथा सस्कृति के आधार पर राज्यो का पुनर्गठन नही किया जाना चाहिये। परन्तु ऐसी सिफारिश करते हुये भी व्यवहार मे आयोग ने जितने भी राज्यो की सस्तुति की, उसम पजाब और बम्बई को छोडकर सभी राज्य भाषायी दृष्टि से 'समरूप' थे। आयोग की सस्तुति 16 राज्य और तीन सघ शासित प्रदेशो की स्थापना की थी और इसके अतिरिक्त भाग (क), भाग (ख) तथा भाग (ग), राज्यो की भिन्नता तथा राज प्रमुख का पद समाप्त करने की भी सिफारिश की थी।[12]

राज्य पुनर्गठन आयोग की सिफारिश मतैक्य से नही की गई थी क्योकि के0एम0पणिक्कर इन सिफारिशो से सहमत नही थे। के0एम0पणिक्कर ने यह सिफारिश की थी कि हिमाचल को पजाब मे शामिल न किया जाए तथा उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और विध्य प्रदेश के कुछ भागो को मिलाकर आगरा का अलग राज्य बनाया जाए।

सरकार ने इस आयोग की सिफारिशो को पूर्णतया स्वीकार नही किया और आयोग की सिफारिश के अनुरूप 16 राज्य तथा 3 केन्द्र प्रशासित क्षेत्र गठित करने के स्थान पर 14 राज्य[13] तथा 6 सघ शासित[14] क्षेत्रो की स्थापना की। हैदराबाद रियासत का तेलगाना क्षेत्र आन्ध्र प्रदेश को दे दिया गया। ट्रावनकोर—कोचीन मे पुराने मद्रास प्रेसीडेसी के मालाबार जिले को मिलाकर केरल बनाया गया। बबई, मद्रास, हैदराबाद और कुर्ग के कुछ कन्नड भाषी इलाको को मैसूर रियासत मे जोड

---

11 गोपाल, एस0 सपा0 (1962), *जवाहरलाल नेहरू ए बायोग्राफी,* जिल्द II, पृ0 259–60 ।

12 सिवाच, जे0आर0 (1992), पूर्व उद्धृत कृति,, पृ0 404–405।

13 ये राज्य हैं– आन्ध्र प्रदेश, असम, बबई, जम्मू कश्मीर, केरल, मध्य प्रदेश, मद्रास, मैसूर, उडीसा, पजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश तथा पश्चिम बगाल।

14 ये सघ शासित प्रदेश हैं– अण्डमान और निकोबार द्वीप समूह, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, त्रिपुरा, लक्षद्वीप, मिनीकाय तथा अमीनदिवी द्वीप ।

दिया गया। कच्छ और सौराष्ट्र रियासतो के अलावा हैदराबाद रियासत के मराठी भाषी इलाको को बबई राज्य मे मिलाकर विस्तार किया गया।

सिफारिशो का आलोचनात्मक विश्लेषण

राज्य पुनर्गठन आयोग की सिफारिशो के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि आयोग की सिफारिशे निम्न दृष्टियो से उचित नही थी।

1 इस आयोग ने एक तरफ तो कुछ क्षेत्रो को पृथक राज्य बनाने की सिफारिश इसलिये नही की क्योकि उनका क्षेत्र छोटा था, परन्तु दूसरी तरफ इसने विदर्भ जैसे छोटे राज्य स्थापित करने की सिफारिश की।

2 हालाकि आयोग ने केवल भाषा के आधार पर राज्यो का पुनर्गठन का विरोध किया, परन्तु फिर भी सिवाय पजाब और बम्बई को छोडकर, अन्य राज्यो का केवल भाषा के आधार पर गठन करने की सिफारिश की।

3 जब अन्य राज्यो की स्थापना की सिफारिश भाषा के आधार पर की थी तब उस सिद्धान्त को पजाब तथा बम्बई मे लागू न करना उनके साथ एक प्रकार का भेदभाव था जिसे न्यायसगत नही कहा जा सकता।

4 बम्बई मे विदर्भ के विलय की इसलिये मुखालफत की गई थी क्योकि विदर्भ की जनता को यह डर था कि ऐसा होने पर पुणे के महाराष्ट्रीयन उन पर हावी हो जायेगे परन्तु मैसूर का कर्नाटक मे विलय करने की सिफारिश करते समय इस तर्क को ध्यान मे नही रखा गया।

5 मध्य प्रदेश जैसे बडे राज्य की स्थापना का कोई औचित्य नही था।

1960 और उसके पश्चात् राज्यों का भाषायी आधार पर पुनर्गठन

हालाकि भाषा के आधार पर राज्यो का पुनर्गठन 1956 मे कर दिया गया था परन्तु इस निर्णय से कुछ लोग– विशेषकर बम्बई मे मराठी तथा पजाब मे सिक्ख सन्तुष्ट नही थे क्योकि जब अन्य राज्यो का भाषा के आधार पर गठन कर दिया गया तो इन दो प्रान्तो को द्विभाषी बनाये रखने का कोई भी औचित्य नही था। जब महाराष्ट्र को पृथक राज्य नही बनाया गया तो तत्कालीन वित्त मत्री सी0डी0देशमुख ने 'प्रॉटेक्ट' के रूप मे मन्त्रि मण्डल से त्याग पत्र दे दिया। इसके पश्चात् समय–समय पर राज्यो के पुनर्गठन से सम्बन्धित आन्दोलन होते रहे और परिस्थितियो से मजबूर होकर केन्द्रीय सरकार भी विभिन्न वर्गो को सन्तुष्ट करने के लिये राज्यो का पुनर्गठन करती चली गई।

सबसे पहले 1960 मे बम्बई, महाराष्ट और गुजरात मे विभाजित कर दिया गया। क्योकि राज्य पुनर्गठन आयोग और विधेयक के खिलाफ सबसे ज्यादा विरोध महाराष्ट्र मे हुआ था। वहा बडे पैमाने पर दगे भडक उठे थे और जनवरी 1956 मे पुलिस फायरिंग के दौरान अकेले बबई शहर मे 80 लोग मारे गये थे। महाराष्ट्र के लोगो को यह गुस्सा था कि इतनी विशाल आबादी की आवाज अनसुनी की जा रही है। आखिरकर दबाव के सामने झुककर भारत सरकार ने जून 1956 मे यह निर्णय लिया कि बबई राज्य को दो हिस्सो मे बाटकर दो भाषाई राज्य महाराष्ट्र और गुजरात बनाये जायेगे तथा बबई शहर केन्द्र शासित प्रदेश बनेगा। महाराष्ट्र द्वारा इस कदम का घोर विरोध किया

गया। नेहरू अब डगमगा गये। उन्होने जुलाई मे अपने निर्णय को बदलते हुये ग्रेटर बबई नामक द्विभाषी राज्य फिर से बना दिया। फिर इस कदम का विरोध महाराष्ट्र और गुजरात दोनो ही जगह हुआ। व्यापक आधार वाली सयुक्त महाराष्ट्र समिति और महा गुजरात जनता परिषद राज्य के दो हिस्सो मे अलग–अलग आदोलनो का नेतृत्व कर रही थी। केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल मे वित्त मत्री सी0डी0 देशमुख ने इस सवाल पर अपने पद से इस्तीफा दे दिया। पाच वर्षों तक व्यापक आदोलन चलते रहे। आखिरकार 1960 मे सरकार बबई राज्य को महाराष्ट्र और गुजरात मे बाटने के लिये तैयार हो गई, जिसमे बबई सिटी महाराष्ट्र को मिला तथा गुजरात की राजधानी अहमदाबाद हो गई। 1962 मे असम से अलग करके नागालैण्ड की स्थापना की गई। पजाब एक अन्य राज्य था जहा भाषाई आधार लागू नही किया गया था। 1956 मे पेप्सू राज्य को पजाब मे मिला दिया गया था, जिसमे पहले से ही तीन भाषाई समूह– पजाबी, हिन्दी और पहाडी रहते थे। राज्य के पजाबी भाषा बहुल इलाके मे अलग पजाबी भाषी राज्य की माग काफी जोर पर थी। दुर्भाग्य से यह माग साम्प्रदायिकता के साथ मिल गई। राज्य पुनर्गठन आयोग ने एक अलग पजाबी भाषी राज्य के निर्माण की माग को इस आधार पर अस्वीकार कर दिया था कि इससे न तो पजाब की भाषा समस्या का समाधान होगा, न ही साम्प्रदायिक समस्या का। किन्तु सत फतेह सिह की धमकी के कारण सन् 1966 मे पजाब का पजाब (पजाबी भाषी राज्य) तथा हरियाणा (हिन्दी भाषी राज्य) मे विभाजन कर दिया गया एव चण्डीगढ को सघ शासित क्षेत्र बना दिया गया। साथ ही कागडा के पहाडी भाषी क्षेत्र और होशियारपुर जिले का कुछ हिस्सा हिमाचल प्रदेश मे मिला दिया गया। इस प्रकार सन् 1966 के अन्त तक सविधान की आठवी अनुसूची मे सम्मिलित 14 भाषाओ मे से 12 भाषाओ (उर्दू और सस्कृत को छोडकर) मे से प्रत्येक पर आधारित एक राज्य–आसाम (असमिया भाषा किन्तु काफी बगाली ओर आदिवासी अल्पसख्यक भी है), आन्ध्र प्रदेश (तेलगू), बिहार (मुख्यत हिन्दी), गुजरात (गुजराती), जम्मू और कश्मीर (मुख्यत कश्मीरी)[15], केरल (मलयालम), मध्य प्रदेश (मुख्यत हिन्दी), मद्रास (तमिल), महाराष्ट्र (मराठी), मैसूर (कन्नड), नागालैण्ड, उडीसा (उडिया, आदिवासी भी है), पजाब (पजाबी और कुछ हिन्दी), पश्चिम बगाल (बगाली) बन चुका था। इस प्रकार यह माना जा सकता है कि 1966 तक भाषायी आधार पर भारत का पुनर्गठन काफी हद तक पूरा हो गया। इसने आम जनता की राजनीतिक भागीदारी और शासक एव शासितो के बीच सवाद के लिये एक अधिक व्यापक और अधिक तर्क सगत ढाचा मुहैया करवाया।

1956 से ही यह बात बिल्कुल साफ थी कि भाषा के प्रति वफादारी देश के प्रति वफादारी का हिस्सा और यहॉ तक कि उसका पूरक थी। भाषायी आधार पर राज्यो के पुनर्गठन का कार्य सम्पन्न कर राष्ट्रीय नेतृत्व ने एक बहुत बडी शिकायत को दूर कर दिया था, जो सभवत विघटनकारी प्रवृत्तियो को बढावा दे सकता था। अत राज्यो का पुनर्गठन एक तरह से 'राष्ट्रीय एकीकरण के लिये जमीन साफ करना माना गया है। इसके अलावा यह भी महत्वपूर्ण है कि भाषायी राज्यो के पुनर्गठन ने देश के सघीय ढाचे को प्रभावित नही किया, न ही उसने केन्द्र को कमजोर

15 ध्यातव्य है कि कश्मीर मे भूतपूर्व रियासत का सिर्फ वहीं इलाका है, जो 1949 मे बनायी गई युद्ध विराम रेखा के भारत की ओर था और इन इलाको के सम्बन्ध में भी पाकिस्तान के साथ विवाद है।

या शिथिल किया जैसा कि बहुत से लोगो को पहले डर था।[16] इस तरह इसने प्रलय के भविष्य वक्ताओ को बेहद निराश और दोस्तो के डर को दूर किया। राजनीतिशास्त्री रजनी कोठारी को यदि उद्धत किया जाय तो

नेतृत्व की आरम्भिक हिचको और सहानुभूतिपूर्ण प्रेक्षको की अपशकुन भरी भविष्यवाणी के बावजूद राज्यो के पुनर्गठन का परिणाम भारत के राजनीतिक मानचित्र को बिना इसकी एकता को गम्भीरता से कमजोर किये तर्क सगत बना देने के रूप मे हुआ। यदि इसका कोई असर पडा भी, तो यही कि झगडे की एक जड ही समाप्त हो गयी और ऐसी समरूप राजनीतिक इकाइयो का निर्माण हुआ जिन पर बहुसख्यक जनता को समझ मे आने वाली भाषा के माध्यम से प्रशासन चलाया जा सकता था। अतीत का मूल्याकन करते हुये अब यह निश्चित ही कहा जा सकता है कि विभाजन वाली शक्ति साबित होने की बजाय यह एकता और समन्वय की शक्ति साबित हुयी है।[17]

राज्यो के पुनर्गठन के राजनैतिक परिणाम

राज्य पुनर्गठन आयोग की सिफारिशो के विश्लेषण से दो नतीजे निकलते हैं– पहला यह कि यद्यपि आयोग ने बढती हुयी क्षेत्रीय चेतना को पहचान लिया फिर भी आयोग उन आयामो को पहचानने मे नाकाम रहा जिनके कारण अलग–अलग क्षेत्रीय आन्दोलन पैदा हुये। दूसरी बात यह है कि पिछली सदी (20वी सदी) के दूसरे दशक के मध्य से राज्यो के भाषायी आधार पर पुनर्गठन करने की माग करके काग्रेस भी उसकी तमाम शाखाओ, प्रशाखाओ के विस्तार को आकने मे नाकाम रही।

भारत मे भाषा और राजनीति के मध्य अन्त क्रिया का पूरी व्यवस्था पर निश्चित प्रभाव पडा है। इससे जनमानस की भाषायी आकाक्षाओ को तो तृप्ति मिली, परन्तु अपने प्रकार की निम्न समस्याये भी भाषायी राजनीति से पैदा हुयी है[18]–

1 भाषाई आधार पर राज्यो का पुनर्गठन करने के कारण प्रत्येक राज्य मे भाषाई अल्पसख्यको की नई समस्या पैदा हुयी है। एक विश्लेषण के अनुसार औसतन राज्यो की 18–20प्रतिशत जनसख्या राज्य की सरकारी भाषा से भिन्न भाषा का प्रयोग करती है। 1971 की जनगणना के अनुसार यह प्रतिशत पृथक–पृथक राज्यो मे 4 (केरल) से लेकर 34 5 (कर्नाटक) तक तथा 3 9 (आसाम) से लेकर 44 5 (जम्मू कश्मीर) तक है।[19] भाषायी आधार पर राज्यो के गठन के उपरान्त इन अल्पसख्यको को विदेशी जैसा माना जाता है और भाषायी बहुसख्यको द्वारा इनके साथ उपेक्षापूर्ण व्यवहार किया जाता है। भाषायी अल्पसख्यको को राज्य मे कमजोर करने की दृष्टि से अनेक राज्यो मे भूमिपुत्र का सिद्धान्त विकसित हुआ है।

2 इस सम्बन्ध मे जो दूसरी समस्या उत्पन्न हुयी है, उसका सम्बन्ध सीमा विवाद से है। पजाब तथा हरियाणा, महाराष्ट्र तथा कर्नाटक, कर्नाटक तथा केरल, अरूणाचल तथा असम के राज्यो के बीच सीमा–विवाद इसके उदाहरण है।

---

16 चन्द्र, विपिन, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी (2002), पूर्व उद्धत कृति, पृ0 139 ।

17 कोठारी, रजनी (1986), *पॉलिटिक्स इन इडिया,* नई दिल्ली, ओरियट लाग्मैन लि0, पृ0 100 ।

18 भाषायी राजनीति की समस्या चुनाव के दिनो में और अधिक प्रज्जवलित हो जाती है , क्योकि विभिन्न राजनीतिक दल जनमानस की भाषायी भावनाओ को उत्तेजित करके अपना स्वार्थ पूरा करने का प्रयास करते हैं।

19 चन्द्र, विपिन, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी (2002), पूर्व उद्धत कृति, पृ0 140 ।

3 इससे सम्बन्धित तीसरी समस्या पानी के विवाद की है। किस बाध से कितना पानी और कितनी बिजली किस राज्य को मिलेगी, इस विषय को लेकर भी राज्यो के बीच झगडे है।

4 भाषायी राजनीति ने क्षेत्रीय असन्तुलन जैसी समस्या को भी जन्म दिया है। चूकि एक ही भाषा बोलने वाले क्षेत्रो को मिलाकर भाषायी राज्यो का गठन किया गया है परन्तु इस प्रकार से बनाये गये राज्यो के अनेक क्षेत्रो की राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक उन्नति समान नही थी, उनमे से कुछ क्षेत्र उन्नत थे तथा अन्य पिछडे हुये। अनेक राज्यो मे इन पिछडे हुये क्षेत्रो का विकास नही किया गया जिसके कारण इन क्षेत्रो मे रहने वाले लोगो ने अपना एक पृथक राज्य बनाने की माग उठानी शुरू कर दी। उदाहरणतया आन्ध्र मे तेलागना की, महाराष्ट्र मे विदर्भ की, गुजरात मे सौराष्ट्र की, बिहार, मध्य प्रदेश, उडीसा और पश्चिम बगाल मे झारखण्ड की, असम मे बोडोलैण्ड, कर्वी अगलोग तथा उत्तरी कचार की, उत्तर प्रदेश मे भोजपुर, बुन्देलखण्ड तथा हरित प्रदेश की, पश्चिम बगाल मे गोरखालैण्ड की, मध्य प्रदेश मे छत्तीसगढ, महाकौशल तथा मध्य भारत की और जम्मू तथा कश्मीर मे जम्मू एव लद्दाख की मागे इसका उदाहरण है।

5 इसने राज्यो के स्वायत्तता आन्दोलन को भी प्रेरित किया है। इस दिशा मे तमिलनाडू मे द्रमुक, केरल और पश्चिम बगाल मे मार्क्सवादी पार्टी तथा पजाब मे अकाली दल सर्वाधिक प्रखर रहे है।

6 इसने आन्दोलनो और हिसा को जन्म दिया है। भाषायी समूहो ने केन्द्र से अपनी माग मनवाने क लिये आन्दोलनो का सहारा लिया। इन आन्दोलनो मे विद्यार्थियो ने विशेष रूप से भाग लिया और अब इस प्रकार की विचारधारा उत्पन्न हो गई है कि जब तक हिसा का प्रयोग नही किया जायेगा तब तक सघीय सरकार किसी भी माग को नही मानेगी जो कि बहुत ही खतरनाक है।

7 इसने सामाजिक तनावो को भी जन्म दिया है। चूकि राज्यो का भाषा के आधार पर गठन किये जाने के पश्चात् क्षेत्रीय भावनाये अधिक शक्तिशाली हो गयी है जिसके परिणामस्वरूप भिन्न–भिन्न भाषा बोलने वाले व्यक्तियो के सामाजिक, सास्कृतिक तथा राजनैतिक मतभेद और अधिक बढ गये हैं इसके कारण राष्ट्रीय एकता की भावना पर भी बुरा प्रभाव पडा है और जनता मे सकीर्ण विचारधारा उत्पन्न हो गयी है। शिव सेना, लाचित सेना, दलित सेना जैसे सगठनो की भूमिका के कारण यह सामाजिक तनाव दिन–प्रतिदिन बढते जा रहे हैं।

उपर्युक्त से यह सिद्ध हो जाता है कि राज्यो का भाषा के आधार पर पुनर्गठन किये जाने के पश्चात् सामाजिक तनाव, अन्तर्राज्यिक वाद–विवाद और अधिक बढ गये है।

वस्तुत भारतीय राजनीति मे धर्म, जाति व भाषा के आधार पर उभार इसलिये भी हुआ कि देश मे राष्ट्रीय नेतृत्व शक्तिशाली नही है। उनमे भारत की एकता व अखण्डता की भावना कम और सत्ता प्राप्ति की आकाक्षा अत्यधिक प्रबल है। इसी कारण वह इन समस्याओ को चुनाव के समय मुखरित करते है। हमे यह नही भूलना चाहिये कि हिन्दी का विरोध तमिलनाडू मे सर्वाधिक है, जबकि स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय चक्रवर्ती राजगोपालचारी ने हिन्दी को लोकप्रिय बनाने का सफल प्रयास किया था।

(ख) साम्प्रदायिक क्षेत्रीयतावाद

यह क्षेत्रवाद का वह आयाम है जिसमे क्षेत्रीयतावादी आन्दोलन एक विशेष सम्प्रदाय के लोगो द्वारा चलाया जाता है। इस श्रेणी के क्षेत्रवाद मे भाषा का तत्व भी सहायक हो सकता है। परन्तु इसके बावजूद इस श्रेणी के क्षेत्रीयतावाद मे सम्प्रदाय का तत्व भाषा के तत्व पर हावी रहता है। अकाली दल द्वारा पजाब मे चलाया गया आन्दोलन इसका एकमात्र उदाहरण है।

इस समस्या की जड 20वी शताब्दी के दौरान और खासतौर पर 1947 के बाद से पजाब मे साम्प्रदायिकता के विकास मे छुपी हुयी है जो अलगाववाद, उग्रवाद और आतकवाद के रूप मे 1980 के बाद फूट पडी। 1947 के पहले पजाब मे साम्प्रदायिकता मुसलमान, हिन्दू और सिक्ख सम्प्रदायवादियो के त्रिकोण के बीच चलती रही थी जिसमे एक के खिलाफ बाकी दो मिलकर लडते, बाद मे फिर दोनो अलग होकर दूसरे के साथ मिलकर तीसरे के साथ लडते।[20] अगस्त 1947 के बाद पजाब मे मुस्लिम साम्प्रदायिकता के गायब हो जाने के बाद हिन्दू और सिक्ख सम्प्रदायवाद एक–दूसरे के खिलाफ खडे हो गये।

आरम्भ से ही अकाली नेतृत्व ने कुछ साम्प्रदायिक मुद्दो को अगीकार कर लिया था, जो सिक्ख सम्प्रदायवाद के हर चरण मे इसका एक सघटक अग बन गया। धर्मनिरपेक्ष राजनीतिक व्यवस्था के आदर्श से इन्कार करते हुये अकालियो ने इस बात पर बल दिया कि धर्म और राजनीति को अलग–अलग नही किया जा सकता क्योकि सिक्ख धर्म मे दोनो अनिर्वायता मिले–जुले है। अकालियो द्वारा एक दूसरा मुद्दा यह सामने रखा गया कि सिक्खो को लगातार भेदभाव, शोषण, अपमान, दण्ड और उत्पीडन का शिकार बनाया जाता रहा है एव उनके खिलाफ हर तरीके के षडयन्त्र किये गये है। इसके अतिरिक्त 1940 के दशक के मुस्लिम लीग के सिद्धान्तो को प्रतिध्वनित करते हुये अकालियो ने भी यह नारा बुलन्द किया कि सिक्ख धर्म खतरे मे है।

हालाकि अतिवादी अकाली नेता अधिक जहर उगल रहे थे, लेकिन अपेक्षाकृत नरमपथी नेता भी इन साम्प्रदायिक शिकायतो की अभिव्यक्ति मे किसी से पीछे नही थे। इसके अलावा, समय गुजरने के साथ–साथ उग्रवादियो का प्रभाव बढता चला गया और चाहे जो भी हो, नरमपथी अकालियो की तरफ से उनकी बहुत ही कम आलोचना अथवा अस्वीकृति की गई। हम यहा सक्षेप मे 1966 के पहले हुये उनके विकास की चर्चा कर सकते है जब मौजूदा पजाबी भाषी राज्य पजाब का निर्माण किया गया।

यहॉ (पजाब मे) सिर्फ भाषा का सीधा–सादा मामला नही था , पजाबी एक बोली जाने वाली भाषा के रूप मे हिन्दी के बहुत नजदीक है, लेकिन यह सिक्खो की भाषा है जिनका धर्मग्रन्थ एक पृथक गुरूमुखी लिपि मे है। इसके अतिरिक्त सिक्खो को जो किसी जमाने मे पजाब के शासक थे और ब्रिटिश शासनकाल मे भी राज्य के जीवन मे जिनको प्रमुख स्थान प्राप्त था, भय था कि अब उनका असर और उनका पृथक अस्तित्व नष्ट हो जायेगा। अग्रेजो और मुसलमानो के जाने के बाद अब हिन्दुओ के साथ उनकी सीधी टक्कर थी। सिक्खो का अपना राजनैतिक सगठन–अकाली दल

20 देखे इसी शोध ग्रन्थ का अध्याय चार 'भारत में क्षेत्रीय आन्दोलन' ।

काफी पुराना है और बिट्रिश कैबिनेट मिशन (1946) के समय भी सिक्खिस्तान की बात उठी थी। विशेष मान्यता न मिलने की वजह से उनमे जो निराशा थी, उसमे पाकिस्तानी इलाके से भाग कर भारत आने की मुसीबतो और बदले की भावना के कारण कटुता पैदा हो गई थी। 1950–60 के शुरू के सालो मे अलग पजाबी सूबे की माग फिर पेश की गई, लेकिन राज्य पुनर्गठन आयोग और सरकार दोनो पर इसका कोई प्रभाव नही पडा। मास्टर तारा सिह कभी बहुत गर्म हो जाते थे और कभी बिल्कुल ढुलमुल। पहले भी कई बार वह ऐसा करते रहे थे, और उनका यह व्यवहार इस मामले मे इस समुदाय की इस अस्थिरता का प्रतीक था कि उन्हे सर्वाधिक लाभ अडे रहने से होगा या समझौता करने से होगा।[21] उदाहरण के लिये आल इण्डिया अकाली काग्रेस को सम्बोधित करते हुये 1953 मे मास्टर तारा सिह, जिन्होने अकाली दल के साथ सिक्ख गुरूद्वारा प्रबन्धक कमेटी (एस जी पी सी) पर भी अपना प्रभुत्व बनाये रखा था, उस समय कहा, "अग्रेज चले गये, लेकिन हमारी आजादी नही आई है। हमारे लिये तथाकथित आजादी मात्र मालिको का बदलाव है, गोरे के बदले काला। लोकतन्त्र और धर्म निरपेक्षता की आड मे हमारे पथ, हमारी आजादी और हमारे धर्म को कुचला जा रहा है।"[22]

मजेदार तथ्य यह है कि शिकायतो की इस लम्बी फेरहिस्त मे पजाबी सूबा की माग को मानने से इकार करने के अलावा और कोई दूसरा प्रमाण प्रस्तुत नही किया गया। सरकारी नौकरियो मे सिक्खो के खिलाफ भेदभाव बरते जाने के एक मात्र ठोस आरोप को 1961 मे नेहरू द्वारा नियुक्त एक समिति द्वारा आधारहीन पाया गया। राजनीतिशास्त्री बदलेव राज नायर ने 1966 मे इस बात की तरफ इशारा किया कि हालाकि सिक्ख "भारतीय जनसख्या के 2 प्रतिशत से भी कम है, परन्तु भारतीय सेना मे उनका हिस्सा 20 प्रतिशत से अधिक है, भारतीय प्रशासनिक सेवाओ मे अपने आनुपातिक हिस्से से दो गुना और पजाब मे सरकारी नौकरियो, विधायिका, मन्त्रिमडल और काग्रेस पार्टी के सगठनो मे राज्य की आबादी मे अपने अनुपात से कही ज्यादा है।"[23]

इस काल के दौरान अकाली राजनीति की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता सिक्ख धर्म के प्रतीको और सस्थाओ का उपयोग धार्मिक भावनाओ का फायदा उठाने और साम्प्रदायिक अपील मे सरगर्मी लाने के लिये किया जाना था। इस सदर्भ मे सबसे महत्वपूर्ण अकालियो द्वारा एस जी पी सी का उपयोग था, जो 700 से अधिक गुरूद्वारो का नियन्त्रण करता था ताकि अकाली राजनीति को प्रोत्साहन दिया जा सके। खासतौर से अमृतसर के स्वर्ण मन्दिर का नियमिति रूप से उपयोग किया गया।

1947 के बाद साम्प्रदायिकता की जड़ें

1966 तक पजाब की राजनीति मे दो ऐसे महत्वपूर्ण मुद्दे हावी थे, जो अपने आप मे तो धर्म निरपेक्ष थे, परन्तु उसका सिक्ख एव हिन्दू सम्प्रदायवादियो द्वारा सम्प्रदायीकरण कर दिया गया था। पहला मुद्दा राज्य की भाषा से सम्बन्धित था एव दूसरा मुद्दा पजाबी सूबा का था, जो कही

21 जौन्स, डब्ल्यू0एच0मौरिस (1970), *भारतीय शासन एव राजनीति*, दिल्ली, सुरजीत पब्लिकेशस, पृ0 97–98।

22 गिल, के0पी0एस0 (1997), *द नाइट ऑफ फाल्सहुड*, नई दिल्ली, पृ0 35 ।

23 नायर, बलदेव राज (1966), *सिख सेपरेटिज्म इन पजाब, इन साउथ एशियन पालिटिक्स एण्ड रिलिजन*, डोनाल्ड इ0स्मिथ द्वारा सपादित, प्रिसटन, पृ0 168 ।

अधिक भावनात्मक और विभाजनकारी साबित हुआ। 1955 मे राज्य पुनर्गठन आयोग ने इस माग को इस आधार पर अस्वीकार कर दिया कि हिन्दी और पजाबी के बीच बहुत अन्तर नही है और पजाब के लोगो के अन्दर इस परिवर्तन की आवश्यकता पर सहमति की न्यूनतम मात्रा मौजूद नही है। काफी जोर जबरदस्ती के बाद 1956 मे अकाली दल और भारत सरकार के बीच एक समझौता हुआ जिसके तहत पजाब और पेप्सू का विलय हो गया।

1957 के चुनाव मे सिक्खो के प्रमुख नेता काग्रेस को समर्थन देने के लिये सहमत थे, परन्तु बिल्कुल ऐन वक्त पर मास्टर तारा सिह ने फैसले को उलटने की कोशिश की। इसके फलस्वरूप पजाब राज्य की भाषा नीति के बारे मे एक ऐसा फार्मूला स्वीकार किया गया, जो दोनो पक्षो को स्वीकार था।[24] लेकिन जल्दी ही असतोष और अविश्वास उभरकर सामने आने लगा। एक नया आन्दोलन शुरू हो गया और बडे पैमाने पर लोग गिरफ्तार किये गये। अपनी माग को खुल्लम खुल्ला साम्प्रदायिक चरित्र देते हुये अकाली दल ने आरोप लगाया कि इस माग को स्वीकार न करना सिक्खो के खिलाफ भेदभाव की कार्यवाई है। इन्होने यह तर्क दिया कि सिक्खो को अपने एक प्रदेश की आवश्यकता है, जहॉ वे एक धर्म तथा राजनीतिक समुदाय के रूप मे जनसख्या के बहुमत के आधार पर वर्चस्व बना सके। 1961 मे आन्दोलन के अन्तिम दौर मे अपने पक्के समर्थको के दबाव मे आकर तारा सिह ने पजाबी सूबे की माग पूरी कराने के लिये आमरण अनशन व्रत रखा, लेकिन उस समय केन्द्र सरकार ने इस माग को रद्द कर दिया।[25]

यहॉ यह भी ध्यान देने योग्य एक तथ्य है कि हरिजन सिक्ख, जिन्हे मजहबी सिक्ख के नाम से जाना जाता है और जो अधिकतर भूमिहीन, खेतिहर मजदूर थे, उन्होने भी पजाबी सूबे की माग का विरोध किया, क्योकि वे इस बात से भयभीत थे कि नये राज्य मे उनके वर्गीय विरोधी, उन धनी किसानो का वर्चस्व स्थापित हो जायेगा, जो जाट सिक्खो के रूप मे अकाली दल के मुख्य समर्थक थे।

नेहरू पजाबी सूबे की माग को मुख्यत इसके साम्प्रदायिक आधार के कारण मानने से इकार कर रहे थे।[26] वह यह महसूस करते थे कि इस साम्प्रदायिक माग को मानने से राजसत्ता और समाज के धर्मनिरपेक्ष ताने–बाने को खतरा हो जायेगा। प्रदेश के अन्दर भी इस माग पर कोई व्यापक सहमति मौजूद नही थी। हिन्दुओ के एक बडे हिस्से के अलावा काग्रेस के दो कद्दावर सिक्ख नेताओ प्रताप सिह कैरो और दरबारा सिह इस माग के भीषण रूप से खिलाफ थे।

इस माग को 1965 मे फिर उठाया गया और सत फतेह सिह ने यह धमकी दी कि उनकी माग को 15 दिन के भीतर स्वीकार नही किया गया तो वे अपने आपको जिन्दा जला देगे और तब ही पाकिस्तान के साथ 1965 का युद्ध भी आरम्भ हो गया। इन परिस्थितियो से विवश होकर भारत

24 जौन्स, डब्ल्यू0एच0मौरिस (1970), पूर्व उद्धत कृति, पृ0 98 ।

25 सरकार ने वायदा किया कि सिक्खो की शिकायतो की जॉच करने के लिये एक आयोग बैठाया जायेगा। इस वायदे पर तारासिह ने अपना अनशन तोड दिया, जिसके कारण उनकी प्रतिष्ठा को बहुत धक्का लगा अखबारो मे ऐसे फोटो छापे गये, जिनमे उन्हे मरने के डर से अपना अनशन तोडने के प्रायश्चित के रूप में जूते साफ करते दिखाया गया।– तदैव, पृ0 98 ।

26 हालाकि नेहरू को इस माग को मान लेना चाहिये था कि क्योकि यह अतर्निहित रूप से एक उचित माग थी और विशेष रूप से इसलिये भी कि इसे धर्मनिरपेक्ष आधार पर सीपीआई, पीएसपी तथा बडी सख्या मे बुद्धिजीवियों का समर्थन प्राप्त था। साथ ही साथ इसलिये भी कि 1960 तक शेष भारत का भाषाई आधार पर पुनर्गठन किया जा रहा था।

सरकार ने सत फतेहसिह से यह अपील की कि वह राष्ट्रीय हितो को ध्यान मे रखते हुये मरणव्रत न रखे। सरकार ने सत फतेहसिह को यह विश्वास दिलाया कि वह उनकी माग पर पुन विचार करेगी। जब पाकिस्तान के साथ युद्ध समाप्त हो गया तो सरकार ने ससदीय समिति की सिफारिश पर पजाब का पुनर्गठन करके पजाब और हरियाणा राज्य बना दिया तथा चण्डीगढ को पजाब के साथ सम्मिलित न करके केन्द्र शासित प्रदेश बना दिया गया।[27]

अकाली राजनीति और उग्रवाद

पजाबी सूबे के निर्माण के साथ ही अकाली दल ने जितनी भी ठोस, महत्वपूर्ण मागे उठायी थी और कई वर्षों से जिनके लिये आन्दोलन किया था, उन्हे स्वीकार और लागू कर दिया गया। कोई वास्तविक और अर्थपूर्ण माग अब नही बची थी, जो इसके समर्थको को लम्बे समय तक उत्साहित करती रहे और उन्हे इस प्रकार दीर्घकालीन रूप से बनाये रखे। अत इसके सामने यह समस्या खडी हो गयी कि वह अब राजनीतिक रूप से कहॉ जाय। साम्प्रदायिक राजनीति छोडने और एक पूर्णतया धार्मिक और सामाजिक सगठन बनने अथवा सभी पजाबियो को आकर्षित करने वाली धर्मनिरपेक्ष पार्टी के रूप मे बदलाव को अकाली नेताओ द्वारा राजनीतिक आत्महत्या के रूप मे देखा गया। इस प्रकार अकाली साम्प्रदायिकता अनिवार्य रूप से अलगाववाद की तरफ बढने लगी, जैसा कि 1937 के बाद मुस्लिम लीग के मामले मे हुआ था। इसलिये सिक्खो के बीच अपने समर्थन आधार को व्यापक बनाने के लिये अकालियो ने अपनी राजनीति के साम्प्रदायिक सारतत्व को बढाना तथा अपनी मागो को लगातार ऊँचा करते जाना शुरू कर दिया था। यह इस बात से भी स्पष्ट हो गया जब अकाली दल की कार्यकारिणी समिति द्वारा सरदार कपूर सिह के नेतृत्व मे अकालियो की मुख्य मागो के सुसजित निर्माण के लिये गठित उपसमिति की सस्तुतियो को 'आनन्दपुर साहब प्रस्ताव' के रूप मे 17 अक्टूबर 1973 को स्वीकार कर लिया गया।[28] इस सकल्प मे चण्डीगढ के अतिरिक्त हरियाणा, राजस्थान,

27 पजाबी सूबे की माग की स्वीकृति एक सही कदम था, किन्तु इसे पजाब समस्या के समाधान के रूप मे नहीं देखा जाना चाहिये था। इस समस्या की मूल जड साम्प्रदायिकता थी और जब तक इस समस्या का उन्मूलन नहीं किया जाता, वह वैसे ही बनी रहेगी, हालाकि यह हर बार नये–नये रूप लेकर सामने आ सकती है।

28 निर्विरोध रूप से स्वीकृत आनन्दपुर साहब प्रस्ताव की मुख्य बाते इस प्रकार है–
सामान्य उद्देश्य – (i) सिक्ख जीवन शैली का प्रचार एव प्रसार करना , (ii) ऐसे वातावरण का सृजन करना जिसमे सिक्खो की सतोषजनक राष्ट्रीय अभिव्यक्ति हो सके, तथा (iii) निरक्षरता, छुआछूत तथा सामाजिक असमानताओ को दूर करना ।
धार्मिक उद्देश्य– (i) एक नये अखिल भारतीय गुरूद्वारा कानून की स्थापना करना , (ii) विश्व के समस्त गुरूद्वारो को एक सगठन मे समाहित करना, तथा (iii) श्री ननकाना साहिब सहित अन्य पवित्र सिक्ख स्थलो मे खुला प्रवेश तथा नियन्त्रण प्राप्त करना ।
राजनीतिक उद्देश्य– (i) खालसा की प्रभुता के उद्देश्य को प्राप्त करना , (ii) जिन क्षेत्रो को जान–बूझकर पजाब के बाहर रखा गया है उन्हे पजाब मे सम्मिलित किया जाना चाहिये ताकि सिक्ख हितो की रक्षा की जा सके। इस प्रकार के कुछ प्रमुख क्षेत्र है– डलहौजी, चण्डीगढ पिन्जौर, कालका, अबाला, नलगढ क्षेत्र, शाहबाद सिरसा, हिसार आदि , (iii) केन्द्र का अधिकार क्षेत्र मात्र प्रतिरक्षा, पर राष्ट्र सम्बन्ध, सचार रेल व्यवस्था तथा मुद्रा जैसे विषयो तक सीमित रहना चाहिये। अन्य सभी शक्तियॉ राज्य सरकार को हस्तान्तरित कर दी जानी चाहिये। सघीय वित्त मे राज्य सरकार का योगदान लोकसभा मे इसके सदस्यो के अनुपात मे होना चाहिये, (iv) भारत का सविधान वास्तविक रूप से सघीय होना चाहिये तथा ससद मे प्रत्येक राज्य को समान प्रतिनिधित्व मिलना चाहिये , (v) अकाली दल भारत सरकार की वर्तमान वैदेशिक नीति को दोषपूर्ण मानता है , (vi) सिक्ख तथा केन्द्र एव राज्य सरकारो के अन्य कर्मचारियो को इस दिशा मे प्रयास करना , (vii) दल सिक्खो के परम्परागत स्थान को कायम रखने के लिये कार्य करना, तथा (viii) सभी स्त्रियों तथा पुरूषों को, जो नैतिक अपराध के लिये दण्डित न किये गये हो, छोटे हथियार रखने की स्वतन्त्रता दी जानी चाहिये।

हिमाचल प्रदेशो के सिक्ख आबादी वाले क्षेत्रो को पजाब मे मिलाने की माग की गई थी। इसमे केन्द्र की भूमिका को रक्षा, विदेश नीति, डाक व दूरसचार, मुद्रा व नोट और रेलवे तक सीमित रखते हुये केन्द्र राज्य सम्बन्धो मे आमूल परिवर्तन की माग भी की गई थी। नवम्बर 1982 मे जारी किये गये सकल्प मे ऐसी प्रशासनिक इकाई बनाने पर जोर दिया गया जहा सिक्ख और सिक्ख धर्म के हितो को विशेष सरक्षण मिल सके। क्योकि उनका मुख्य दृष्टिकोण यह था कि चूकि पजाब एक सिक्ख राज्य है और अकाली दल चूकि एक 'सिक्ख' पार्टी है, इसलिये वह देश के राजनीतिक तौर–तरीको और ढॉचो अथवा अन्य पडोसी राज्यो के हितो अथवा अन्तर्राज्यीय विवादो के समाधान के लिये जनवादी और सघीय मशीनरी के दायरे से बिल्कुल ऊपर है।[29]

अकाली दल ने अपना आन्दोलन जारी रखने और सिक्खो को राजनीतिक उद्देश्य से भडकाने के लिये जनवरी 1984 मे एक नई माग जोड दी– यह माग थी कि सविधान के अनुच्छेद 25(2) (ख) को रद्द किया जाय जिसके तहत मजहबी सिक्खो को अनेक सुविधाये प्राप्त है।[30] भारत सरकार ने अकालियो को बहुत समझाया कि उनकी इस माग से सिक्खो के हितो को हानि पहुचेगी। स्वय तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिह ने सत हरचन्द्र सिह लौगोवाल को इस हेतु पॉच बार फोन किया परन्तु अकाली दल ने एक न सुनी और सरकार के कडे प्रबन्ध के बावजूद गुरूद्वारा रकाबगज नई दिल्ली और पजाब के अन्य नगरो के गुरूद्वारो मे सविधान के इस अनुच्छेद की कापिया जलाई गई।[31] क्योकि अकाली दल का एक मात्र उद्देश्य राजनीतिक लाभ और सत्ता हथियाने के लिये हिन्दुओ और सिक्खो मे दरार डालना था। सन्त भिडरावाले ने तो यहा तक कहना शुरू कर दिया कि सिक्ख हिन्दू नही है।[32]

पजाब में आतंकवाद

अकाली उग्रवाद के समानातर मे आतकवाद ने 1981 मे पजाब मे अपनी उपस्थिति दर्ज की, जो आशिक रूप से 1947 से चली आ रही साम्प्रदायिक राजनीति का परिणाम और काग्रेस के नेतृत्व के द्वारा विशेषत 1970 के दशक के काल से साम्प्रदायिक तत्वो को खुश करने की नीति का परिणाम

---

29 चन्द्र, विपिन, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी (2002), पूर्व उद्धत कृति पृ0 437 ।

30 इस अनुच्छेद के अनुसार सिक्खो को हिन्दुओ का एक सम्प्रदाय ही माना गया है और अकाली दल के सबसे प्रसिद्ध नेता स्वर्गीय मास्टर तारा सिह के अनुरोध पर सरदार पटेल ने सविधान में डाला था क्योकि हिन्दु अनुसूचित जातियो को सविधान मे नौकरियो और ससद तथा विधान मण्डलो मे स्थानो का आरक्षण प्रदान किया गया था। परन्तु मजहबी सिक्खो को ऐसा कोई सरक्षण प्रदान नहीं किया गया था। सरदार पटेल ने कहा कि सिक्ख सम्प्रदाय छुआछूत को नही मानता है, अत इस धारा की कोई आवश्यकता नहीं हे परन्तु जब मास्टर तारा सिह ने कहा यह सिक्खो की सर्वसम्मत माग है, तो सरदार पटेल को उनकी बात माननी पडी और उन्होने सविधान सभा से इस बात को मनवा लिया– अग्रवाल आर0सी0 (2000), "भारतीय सविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आन्दोलन', नई दिल्ली, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, पृ0 369 ।

31 तदैव।

32 हालाकि गुरू गोविन्द सिह के पूज्य पिता गुरू तेग बहादुर एव उनके (गुरू गोविन्द सिह) बच्चो ने हिन्दू धर्म की रक्षा के लिये अपना बलिदान दिया था उन्होने स्वय भी खालसा पथ की स्थापना इस हेतु की थी जो उनकी वाणी से स्पष्ट होता है।

"सफल जगत मे, खालसा पथ गाजे । जागे धर्म हिन्दू, सफल भन्ड भाजे ।।"

अर्थात् सारे ससार मे खालसा पथ की गूज हो या यह चमके, हिन्दू धर्म जाग जाये और सारा पाखण्ड भाग जाये।

थी। आतकवाद की शुरूआत करने वाले सत जनरैल सिह भिडरावाले थे, जो 1970 के दशक के अन्तिम दिनो मे सिक्ख कट्टरवाद के एक शक्तिशाली अभियानकर्ता के रूप मे उभरे थे। अपने इस अभियान मे उन्हे ज्ञानी जैल सिह के नेतृत्व मे पजाब काग्रेस का मौन समर्थन प्राप्त था। जो यह आशा करते थे कि अकालियो की जड काटने के लिये भिडरावाले का इस्तेमाल किया जा सकता है। परन्तु भिडरावाले शीघ्र ही एक ऐसा भस्मासुर साबित हुये जो अपने सरक्षको के खिलाफ ही मुड गये ।[33]

भिडरावाले तथा अमरीक सिह के नेतृत्व मे आल इण्डिया सिक्ख स्टूडेन्ट फेडरेशन द्वारा आतकवादी अभियान 24 अप्रैल 1980 को निरकारी समुदाय के प्रमुख की राजनीतिक हत्या के साथ शुरू हुआ। इसके बाद अनेक निरकारियो, विक्षुब्ध अधिकारियो और काग्रेस कार्यकर्ताओ की हत्याये हुयी। सितम्बर 1981 मे लाला जगत नारायण की हत्या कर दी गयी, जो एक लोकप्रिय अखबार के सपादक और भिडरावाले के प्रमुख आलोचक थे। ज्ञानी जैल सिह ने भिडरावाले को सरकारी कार्रवाइयो से बचाया जो 1980 मे केन्द्र सरकार मे गृहमत्री हो गये थे। अपने को सुरक्षित करने के लिये भिडरावाले जुलाई 1982 मे स्वर्ण मन्दिर अहाते के अन्दर स्थित एक भवन गुरू नानक निवास मे चले लगे और वहॉ से पजाब मे आतकवादी अभियान का निर्देशन करने लगे। अब वह पजाब की राजनीति मे केन्द्रीय व्यक्तित्व के रूप मे उभरे ।[34]

सितबर 1983 तक आतकवादी हत्याये निरकारियो, छोटे सरकारी अधिकारियो और उन सिक्खो तक सीमित थी, जो भिडरावाले के साथ मतभेद रखते थे। परन्तु इस आतकवादी गतिविधि को एक नया आयाम तब मिला, जब सितबर 1983 से उन्होने बढते हुये पैमाने पर हिन्दुओ को अपना निशाना बनाना शुरू किया और हिन्दुओं की बेपनाह हत्याये होने लगीं। भिडरावाले ने स्थानीय बैंको, जेवरो की दुकानो, होमगार्डों के शस्त्रागार आदि की लूट को भी सगठित किया और साथ–साथ निरकारियो तथा सरकारी अधिकारियो की हत्याये और कभी–कभार बम विस्फोट भी किये जाते रहे।[35] 29 दिसम्बर 1981 को इण्डियन एयरलाइन्स के किये गये विमान अपहरण के बाद अप्रैल 1983 मे एक सिक्ख पुलिस उप महानिदेशक ए0एस0 अटवाल की स्वर्ण मन्दिर से प्रार्थना कर बाहर आते समय हत्या कर दी गयी। यहॉ से एक स्पष्ट परिवर्तन आया और आतकवादी कार्रवाइया लगातार बढने लगी और साथ–साथ सिक्खो और हिन्दुओ के बीच साम्प्रदायिक भावनाये उबलने लगी।[36] हिन्दुओ की हत्या के अतरिक्त जिन सिक्खो ने अकाली दल की नीति के विरूद्ध आवाज उठायी उनकी भी हत्या कर दी गई। उदाहरण स्वरूप दिल्ली सिक्ख गुरूद्वारा कमेटी के अध्यक्ष श्री एम0एस0 मनचन्दा की 28 मार्च 1984 को[37] तथा अकाल तख्व के भूतपूर्व प्रमुख ज्ञानी प्रताप सिह की 10 मई, 1984 को[38] हत्या कर दी गई।

33 चन्द्र, विपिन, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी (2002), पूर्व उद्धत कृति,, पृ0 437 ।

34 तदैव ।

35 4 अगस्त 1982 से जब अकाली मोर्चा शुरू हुआ था और 2 जून 1984 तक 1200 से अधिक हिसक घटनाये हुयी। जिनमे 410 व्यक्ति मारे गये और 1180 से अधिक घायल हुए। इस दौरान 24 बैंको को लूटा गया एव 15 अप्रैल 1984 को पजाब मे भिडरावाले के अकाली आतकवादियो ने 31 रेलवे स्टेशनों को जला दिया।–अग्रवाल, आर0सी0 (2000), पूर्व उद्धत कृति, पृ0 370 ।

36 चन्द्र, विपिन, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी (2002), पूर्व उद्धत कृति, पृ0 437–38 ।

37 स्टेट्समैन, 29 मार्च, 1984 ।

38 स्टेट्समैन, 11 मई, 1984 ।

पृथक स्वतन्त्र सिक्ख राज्य 'खालिस्तान' की स्थापना का प्रयास और विदेशों से सहायता

खालिस्तान की स्थापना के लिये जहॉ भिण्डरावाले भारत मे प्रयत्नशील थे और इस हेतु पाकिस्तान से निरन्तर गुप्त रूप से सहायता प्राप्त कर रहे थे वही विदेशो मे– नेशनल कौसिल ऑफ खालिस्तान, दल खालसा, बब्बर खालसा और अखण्ड कीर्तिनी जत्था जैसे पृथकतावादी सगठन खालिस्तान की स्थापना हेतु क्रियाशील थे।

1977 मे अनिवासी सिक्ख एव नेशनल कौंसिल ऑफ खालिस्तान के स्वयभू नेता डॉ0 जगजीत सिह चौहान ने यूनाइटेड किगडम मे सर्वप्रथम स्पष्ट रूप से भारत से पृथक स्वतन्त्र खालिस्तान राज्य की माग की थी– जिसका पृथक झण्डा, सयुक्त राष्ट्र सघ की सदस्यता सहित पृथक अन्तर्राष्ट्रीय पहचान हो।[39] इस हेतु इसके नेताओ द्वारा अमेरिका[40], कनाडा[41], पाकिस्तान[42], एव कश्मीर[43] मे सम्मेलन आयोजित किये गये। वे विदेशो मे भारत विरोधी भावनाये भडकाने, प्रदर्शन आयोजित करने, भारतीय राष्ट्रीय ध्वज को जलाने और भडकाने वाले वक्तव्य देने का काम करते रहे। यहॉ तक कि 1980–81 मे आनन्दपुर और 1983 मे स्वर्ण मन्दिर मे खालिस्तान के नारो के साथ एक ध्वज फहराया गया जिसे उन्होने खालिस्तान का झण्डा बतलाया।[44] डॉ0 चौहान मुख्य रूप से अमेरिका मे नेताओ के साथ खालिस्तान की लाबी बनाते रहे है। उन्होने खालिस्तानी पासपोर्ट, डाक टिकटे और करेसी नोट जारी करने जैसे देश विरोधी हथकण्डे अपनाये।

भिण्डरावाले ने अब भारतीय राजसत्ता के खिलाफ सशस्त्र सघर्ष तथा अलगाव का नारा भी दिया एव सिक्खो की सम्प्रभुता एव भिन्नता पर जोर दिया। भिण्डरावाले ने गन एव मोर्टार के साथ सीधी कार्रवाई के द्वारा और अकाली पार्टी द्वारा स्वयसेवको के आत्मघाती दस्तो की सहायता से खालिस्तान के लिये "धर्मयुद्ध" के नाम से शक्ति प्राप्त की गई[45], जिसका उद्देश्य खालिस्तान योजना के साथ 'आनन्दपुर प्रस्ताव' की स्वीकृत और इस प्रकार अलग राष्ट्र के रूप मे सिक्खो की स्वतन्त्रता के लिये लडना था।[46] भिण्डरावाले ने जुलाई 1984 मे घोषित किया कि "सिक्ख एक अलग राष्ट्र है" और प्रत्येक सिक्ख को "एक अलग राष्ट्र के रूप मे अपनी स्वतन्त्रता के लिये लडना चाहिये।" एव यह कि "स्वतन्त्रता किसी भी कीमत पर प्राप्त की जानी चाहिये" और कि इस 'युद्ध' के लिये प्रत्येक सिक्ख को गन और मोटर साइकिल से लैस होना चाहिये।[47]

दिसम्बर 1983 मे गिरफ्तारी के डर से भिण्डरावाले स्वर्ण मन्दिर के अन्दर स्वर्ग की तरह सुरक्षित अकाल तख्त के अन्दर चले गये और उसे अपना मुख्यालय, शस्त्रागार तथा अपने

---

39 Cf Akbar, (1984), "India The Siege within , white paper on Punjab Agitation", Para 5, 13, 38 ff
40 आनन्द बजार पत्रिका, दिनाक 30 07 1984
41 स्टेट्समैन, दिनाक 24 08 1984
42 स्टेट्समैन, दिनाक 13 08 1984, 30 08 1984, 18 09 84, 22 09 1984, 27 09 1984, 08 10 1984, 09 10 1984, 27 10 1984 , टेलीग्राफ दिनाक 06 09 1984, 03 10 1984 ।
43 स्टेट्समैन, दिनाक 24 08 1984 ।
44 पजाब विद्रोह पर श्वेतपत्र, पृ0 37, 110 , स्टेट्समैन दिनाक 03 09 1984, 04 10 1984 ।
45 पजाब विद्रोह पर श्वेतपत्र, पैरा 9 एण्ड 13 ।
46 पजाब विद्रोह पर श्वेतपत्र, पैरा 47 एण्ड 56 ।
47 स्टेट्समैन, दिनाक 11 07 1984, 13 07 1984, 23 07 1984 ।

आतकवादी अनुयायियो के लिये शरणस्थली बना लिया। उन्होने बडे पैमाने पर स्वर्ण मन्दिर के अन्दर हल्के मशीनगन तथा अन्य अत्याधुनिक हथियार चोरी–छुपे जमा किये तथा मन्दिर के अहाते मे स्टेनगन, हथगोले एव अन्य हथियारो को बनाने का कारखाना भी स्थापित कर लिया।[48] उन्होने अकालतख्त एव अन्य भवनो के अन्दर उसके चारो तरफ ककरीट का किलानुमा ढॉचा तैयार किया, जहॉ वे अपने नये रगरूटो को हथियारो का प्रशिक्षण देते थे और मौत के दस्तो को हत्याओ, लूटो और बमबारी का अभियान चलाने के लिये वे बाहर भेजते थे।[49]

भिण्डरावाले के नेतृत्व मे खालिस्तानी, उग्रवादियो, आतकवादियो– चाहे जिस नाम से उन्हे पुकारा जाय– को यह आशा थी कि धीरे–धीरे वे आतकवाद को एक आम विद्रोह तथा हथियारबद बगावत मे बदल देगे। वे पजाब के लोगो पर राजनीतिक और विचारधारात्मक वर्चस्वता के लिये लडाई लड रहे थे। उनकी सभी गतिविधियॉ यह साबित करने के लिये बनाई गई थी कि भारतीय राजसत्ता पजाब पर शासन करने की स्थिति मे नही है और इसीलिये भारत से अलगाव,एक प्राप्त किया जाने लायक लक्ष्य है। अपने इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये उन्होने हिन्दुओ और सिक्खो के बीच कोई फर्क नही किया। 1981 से 3 जून 1984 के बीच मारे गये लोगो मे करीब 55 प्रतिशत सिक्ख थे।[50]

जून 1984 तक आतकवादी गतिविधियॉ इतनी बढ गई थी कि स्थिति विस्फोटक बिन्दु तक पहुच चुकी थी। पजाब और पूरे देश मे राष्ट्र की एकता और शाति के प्रति खतरे की गहरी भावना फैल गई थी। पजाब के हिन्दुओ मे डर और आतक फैल रहा था और बढती हुयी सख्या मे वे राज्य छोडकर जाने लगे थे। ज्यादा से ज्यादा गुरूद्वारो की किलेबन्दी हो रही थी और उन्हे शस्त्रागारो मे बदला जा रहा था। स्पष्टतया पजाब मे बगावत की स्थिति तैयार हो रही थी। साथ ही, सरकार अपनी प्रतिष्ठा और साख खोती जा रही थी।

इस परिस्थिति की एक सबसे चिन्ताजनक विशेषता यह थी कि पजाब मे हिन्दुओ और सिक्खो के बीच दरार बढ रही थी और शेष भारत विशेषत उत्तर भारत मे हिन्दू साम्प्रदायिकता का तेजी से प्रसार हो रहा था। हरियाणा से उस समय एक चेतावनी प्राप्त हुयी जब फरवरी मे वहॉ सिक्ख दगे भडक उठे।

मई के अन्त तक यह बिल्कुल साफ हो गया कि आतकवादियो के खिलाफ निर्णायक कार्रवाई को अब और नही टाला जा सकता तथा स्वर्ण मन्दिर एव अन्य गुरूद्वारो मे छिपे बैठे आतकवादियो को निर्णायक बल प्रयोग द्वारा निकालना आवश्यक हो गया है। अत भारत सरकार ने सैनिक कार्रवाई, जिसका छद्म नाम 'आपरेशन ब्लू स्टार' था, करने का निर्णय लिया।[51]

हालाकि अपने कई नकारात्मक परिणामो के बावजूद आपरेशन ब्लू स्टार मे कुछ सकारात्मक विशेषताये थी। इसने यह साबित कर दिया कि भारतीय राजसत्ता अलगाववाद और आतकवाद से

48 नवभारत टाइम्स, दिनाक 11 जुलाई 1984, पृ0 5 कालम–7 ।

49 चन्द्र, विपिन, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी (2002), पूर्व उद्धत कृति, पृ0 438 ।

50 तदैव, पृ0 439 ।

51 आपरेशन ब्लू स्टार ने पूरे देश में सिक्खो के बीच असतोष और नाराजगी की गहरी भावना पैदा की। उनमे से ज्यादातर लोगो ने इसे धर्म विरोधी तथा अपने समुदाय के खिलाफ एक अपमान के रूप में लिया न कि भिण्डरावाले और आतकवादियो से निबटने के लिये एक अरूचिकर परन्तु आवश्यक कदम के रूप मे देखा।

निबटने के लिये पर्याप्त शक्तिशाली है इसने करिश्माई भिण्डरावाले और उसके गिरोह का अन्त कर दिया और इसने एक न्यूनतम कानून और व्यवस्था की स्थिति पैदा की जिसने काग्रेस, पी0पी0एम0 और सी0पी0आई0 जैसी धर्म निरपेक्ष पार्टियो को क्रुद्ध जनता के बीच जाने और साम्प्रदायिकता का विरोध करने के लायक बनाया और उन्हे बताया कि पजाब की मौजूदा के लिये भिण्डरावाले, आतकवादी और अकाली सम्प्रदायवादी ही मुख्य रूप से जिम्मेदार है।

आतंकवाद और अकाली

आतकवादियो की तरफ अकाली नेतृत्व का रवैया दोमुहा था। एक तरफ तो वे उनके साथ शामिल नही थे, वही दूसरी तरफ जरूरत पडने पर उन्हे अपना समर्थन भी प्रदान करते थे। नरमपथी अकाली नेता भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आतकवादी कार्य के आरोपियो का बचाव ही करते थे। उन्होने आतकवादियो के खिलाफ पुलिस द्वारा लिये गये ठोस कदमो की सदैव आलोचना की। वे सरकार द्वारा भिण्डरावाले के खिलाफ की जाने वाली किसी भी सरकारी कार्रवाई का विरोध करते थे। मिसाल के लिये 1981 मे लोगोवाल ने कहा था, 'सम्पूर्ण सिक्ख समुदाय भिण्डरावाले का समर्थन करता है'।[52] उन्होने गुरूद्वारो और स्वर्ण मन्दिर पर आतकवादियो द्वारा कब्जा किये जाने और अपवित्र किये जाने के खिलाफ कोई कदम नही उठाया। वस्तुत यह महसूस करते हुये कि सिक्ख जनता पर उनके नेत्त्व के लिये खतरा है, वे भिण्डरावाले के साथ सम्बन्ध बनाए रखने की कोशिश कर रहे थे और जैसे–जैसे वे भिण्डरावाले के हाथो अपनी जमीन खो रहे थे, वैसे–वैसे वे अधिक से अधिक अतिवादी दृष्टिकोण अपनाते हुये अपनी मागो और आक्रामक राजनीतिक और विचारधारात्मक रवैय्ये के साथ भिण्डरावाले से प्रतियोगिता करने लगे। उदाहरणतया, सत लोगोवाल ने उन सैकडो सेना के भगोडे सिक्खो की पुनर्नियुक्ति की माग की जो सैन्य विद्रोह के बतौर परीक्षण हेतु भाग गये थे[53] या अपने कैम्प से पलायन कर गये थे।[54] यह भी कम गम्भीर बात नही है कि उन्होने सिक्खो के कृपाण रखने के अधिकार को आधुनिक आग्नेयास्त्र रखने के अधिकार मे तब्दील करने एव स्वर्ण मन्दिर से सैन्य कार्यवाही के दौरान जब्त किये गये आग्नेयास्त्रो को वापस करने की माग की।[55]

वास्तव मे जब अकाली नेताओ ने जोर दिया कि वे आनन्दपुर प्रस्ताव स्वीकृत करने के लिये सरकार को विवश करने हेतु सभी साधनो का आश्रय लेगे तो इसमे सत भिण्डरावाले के शब्दो की केवल प्रतिध्वनि ही गूजती है।[56]

आनन्दपुर साहब प्रस्ताव के परिप्रेक्ष्य में पंजाब का राजनैतिक इतिहास

जहॉ तक आनन्दपुर साहब प्रस्ताव के परिप्रेक्ष्य मे पजाब के राजनैतिक इतिहास का प्रश्न है तो पजाब वैदिक समय से भारत का एक भाग और वैदिक सभ्यता का मूल केन्द्र स्थल था जो पॉच नदियो की भूमि ब्रह्मवर्त के रूप मे जाना गया।[57] 15 वी शताब्दी मे सिक्ख सम्प्रदाय के उदय के

---

52 गिल, के0पी0एस0 (1997), पूर्व उद्धत कृति, पृ0 35 ।

53 स्टेट्समैन, दिनाक 08 09 1984, 30 09 1984 ।

54 आनन्द बाजार पत्रिका, दिनाक 13 03 1985 , स्टेट्समैन दिनाक 31 12 1984 ।

55 बसु, डी0डी0, (1985), ''कान्सटीट्यूनल आस्पेक्ट्स आफ सिक्स सेपराटिज्म'', नई दिल्ली, प्रेन्टिस इण्डिया प्रा0लि0, पृ0 17 , स्टेट्समैन, दिनाक 19 01 1985 ।

56 तदैव, पृ0 15 ।

57 मनुस्मृति ।

बाद इसके गुरूओ ने मुगल और उसके बाद अग्रेज क्रुरताओ के विरूद्ध लडाई लडी। पजाब राज्य 1799 मे रजीत सिह द्वारा स्थापित किया गया था, जो 1849 मे ब्रिटिश इण्डिया से जोडा गया और भारत की स्वतन्त्रता तक भारत सरकार के अधिकारी चीफ कमिश्नर के प्रशासन के अधीन क्षेत्र था।[59] सिक्ख सम्प्रदाय के उदय के बाद भी पजाब प्रान्त मे एक वास्तविक हिन्दू जनसख्या सम्मिलित थी जिसमे वे लोग भी शामिल थे जो पजाबी या गुरुमुखी भाषा नही बोलते थे। वर्तमान पजाब राज्य 1966 के पजाब पुनर्गठन अधिनियम के अधीन एक पुनर्गठित राज्य है, जिसे सविधान के अन्तर्गत सभी राज्यो के पुनर्गठित भाषा विज्ञान के आधार पर स्थापित किया गया और हरियाणा राज्य के लिये हिन्दी बोले जाने वाले क्षेत्रो को अलग किया गया।

इस प्रकार पजाब के सदर्भ मे कोई इतना वास्तविक या अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दा नही है जितना कि एक मुस्लिम बहुल क्षेत्र को स्थापित करने के तर्क पर पाकिस्तान द्वारा कश्मीर पर आक्रमण के द्वारा उठाया गया था , और इस प्रकार जम्मू और कश्मीर के सम्बन्ध मे सविधान के अनुच्छेद 370 की समानता पजाब के सदर्भ मे सगठन की शक्तियो के अधीन करने के पक्ष मे नही की जा सकती।

फिर भी यह कल्पना करना गहरी भूल होगी कि कश्मीर के रूप मे पजाब के स्वराज की माग इतनी अधिक निरीह (अहानिकारक) है[59] जितनी कि सविधान के उन प्रान्तो की जिन्हे 1949 के मूल सविधान मे जोडा गया ताकि विशिष्ट राज्यो की कुछ विशेष रूचिया वास्तविक रूप से अनुच्छेद 371, 371ए, 371बी, 371सी, 371डी, 371एफ द्वारा सुरक्षित रहे। वास्तव मे कुछ विशेष प्रावधान केवल सिक्खो के लिये बनाये जा सकते है , यदि वे भारतीय सविधान से अस्तित्व मे आये सघीय सरचना को नष्ट करने और अलग राष्ट्रीयता के लिये अपनी शिकायते त्याग दे जो अनुच्छेद 248 व 248 के साथ पढी गयी अनुसूची VII की सहमति और सगठन के ऊपर सगठित अधिकार क्षेत्र देता है।

बाद मे सत लोगोवाल ने अपने मुक्त होने के पश्चात् घोषित किया[60] कि उनके और भिण्डरावाले के मध्य कभी कोई भिन्नता नही थी और उनका साधारण उद्देश्य "आनन्दपुर साहब प्रस्ताव की स्वीकृति पर दबाव डालना था।" यदि इसके स्थान पर उसी समय वह यह कहते[61] कि इसका उद्देश्य 'खालिस्तान' घोषित करना नही था, बल्कि भारतीय सविधान की रूपरेखा के अन्दर एक स्वायत्तशाषी सिक्ख राज्य के लिये लडाई करना था , तो सरकारिया कमीशन के परिप्रेक्ष्य मे उसका परीक्षण करना सरल हो जाता और सिक्खो की विशेष रूचियो को देखते हुये पजाब के लिये कुछ विशेष प्रावधान (सेफगार्डस) सविधान मे जोडे जा सकते थे।

आपरेशन ब्लू स्टार और उसके बाद

आपरेशन ब्लू स्टार के बाद आतकवादियो ने इन्दिरा गाधी और उनके परिवार के खिलाफ स्वर्ण मन्दिर को अपवित्र करने के लिये बदला लेने की कसम खाई। 31 अक्टूबर 1984 की सुबह इन्दिरा गाधी की अपने ही सुरक्षा गार्डों के दो सिक्ख सदस्यो द्वारा हत्या कर दी गई।

58 गजेटियर ऑफ इण्डिया (1973), खण्ड II पृ0 517 ।
59 स्टेट्समैन, दिनाक 19 07 1984 ।
60 स्टेट्समैन, दिनाक 20 03 1985 ।
61 स्टेट्समैन, दिनाक 07 11 1984 ।

1981–84 के दौरान उत्तर भारत के बिगडे हुये साम्प्रदायिक माहौल मे एक लोकप्रिय प्रधानमत्री की हत्या ने खौफ, डर, क्रोध और साम्प्रदायिक असतोष की आधी पूरे देश की जनता, विशेषत गरीबो के बीच पैदा की। इस गुस्से ने दिल्ली तथा उत्तर भारत के अन्य हिस्सो मे एक भद्दा और साम्प्रदायिक रूप ले लिया , खासतौर पर 31 अक्टूबर की शाम से लेकर तीन दिनो तक दिल्ली की सडको को भीड ने अपने कब्जे मे ले लिया और सिक्खो को लूट एव अपनी हिसा का निशाना बनाया। दिल्ली मे तीन दिनो की हिसा के परिणामस्वरूप 2500 लोग मारे गये, जिनमे ज्यादातर सिक्ख थे एव दिल्ली की पुर्नवास कॉलोनिया इस हत्याकाण्ड की मुख्य स्थल बनी।[62] नवम्बर के इन दगो ने बडी सख्या मे सिक्खो को सरकार से और दूर कर दिया।

राजीव गॉधी जिन्होने 1 नवम्बर 1984 को प्रधानमत्री के रूप मे इन्दिरा गाधी की जगह ली, ने दिसम्बर 1984 के आम चुनाव के बाद पजाब समस्या को निपटाने मे तेजी से कदम आगे बढाये। जनवरी 1985 मे सभी प्रमुख गिरफ्तार नेताओ को अकाली दल के अध्यक्ष एच0एस0 लोगोवाल सहित रिहा कर दिया गया और राजीव गाधी ने शीघ्र ही अकाली नेताओ के साथ बातचीत भी शुरू कर दी ताकि किसी समझौते से पजाब समस्या का एक दीर्घकालीन समाधान प्राप्त किया जा सके। लेकिन इस नीति का नतीजा यह हुआ कि आपरेशन ब्लू स्टार से प्राप्त हुआ फायदा भी खो गया। आतकवाद और साम्प्रदायिकता के खिलाफ सघर्ष का वस्तुत परित्याग कर दिया गया और इन ताकतो को नई जिन्दगी मिल गई।

अपनी रिहाई के बाद अकाली नेता विभाजित, दिग्भ्रमित और असमजस मे पड गये थे। एक तरफ लोगोवाल सहित उनमे से कइयो ने आतकवादियो के मुकाबले अपनी स्थिति मजबूत करने के लिये उग्रवादी स्वर मे भाषणबाजी का रास्ता अपनाया। दूसरी तरफ ज्यादातर अकाली नेताओ को यह स्पष्ट हो गया कि न तो कोई जन आन्दोलन पुनर्जीवित किया जा सकता है और न ही उग्रवादी राजनीति आगे चलाई जा सकती है। इसलिये लोगोवाल ऊपर से कठोर बाते करते हुये भी गुप्त रूप से सरकार के साथ समझौता वार्ता मे शरीक हुये।

अन्तत अगस्त 1985 मे राजीव गाधी और लोगोवाल ने पजाब समझौते पर हस्ताक्षर किये। सरकार ने प्रमुख अकाली मागे मान ली और यह वादा किया कि दूसरी मागो पर पुनर्विचार किया जायेगा। खासतौर पर इस बात पर सहमति हो गई कि चडीगढ पजाब को हस्तान्तरित कर दिया जाएगा और एक आयोग इस बात का निर्धारण करेगा कि कौन से हिन्दी भाषी इलाके पजाब से हरियाणा को हस्तान्तरित किये जायेगे तथा एक स्वतन्त्र ट्रिब्यूनल द्वारा नदी जल के विवाद का निर्णय कराया जाएगा।

20 अगस्त 1984 जिस दिन लोगोवाल ने यह घोषणा की कि अकाली चुनाव मे हिस्सा लेगे, उसी दिन आतकवादियो द्वारा उनकी हत्या कर दी गई। किन्तु चुनाव नियत समय पर हुये। जिसमे अकालियो को पहली बार पूर्ण बहुमत मिला और सुरजीत सिह बरनाला मुख्यमत्री बने। इस सरकार ने बडी सख्या मे उन लोगो को रिहा कर दिया, जिन पर आतकवादी अपराधो का आरोप

62 स्टेट्समैन, दिनाक 01 11 1984, 02 11 1984, 03 11 1984, 04 11 1984 ।

था और उनमे से ज्यादातर आतकवादी कतारो मे फिर शामिल हो गये और आतकवाद को भारी बल पहुचाया।

अकाली सरकार ने यह पाया कि वह पजाब के किसी भी भूभाग को चण्डीगढ के घाटे के लिये मुआवजे के तौर पर हरियाणा को हस्तान्तरित करने के लिये सहमत नही है और हरियाणा सरकार इसके बगैर चण्डीगढ को हस्तान्तरित करने के लिये तैयार नही होती। अकाली नेतृत्व नदी जल विवाद के सम्बन्ध मे भी ट्रिब्यूनल के फैसले को मानने से पीछे हट रही थी, अत पजाब समझौते की सभी महत्वपूर्ण शर्तें एक बार फिर विवादास्पद बन गई।

बरनाला सरकार की नरम नीतियो का फायदा उठाते हुये उग्रवादी समूह फिर से इकट्ठा होने लगे। समय के साथ आतकवादी गतिविधियो मे फिर से वृद्धि हुयी तथा गुटबाजी की शिकार राज्य सरकार उन पर नियन्त्रण रखने मे असमर्थ हो गई। परिणामस्वरूप केन्द्र सरकार ने बरनाला मन्त्रिमण्डल को बर्खास्त कर 1987 मे राष्ट्रपति शासन को लागू कर दिया। राष्ट्रपति शासन के बावजूद पजाब मे आतकवाद बढता ही चला गया और खासतौर से 1985 के बाद जैसे–जैसे यह पाकिस्तान द्वारा खुलेआम पैसा, समर्थन और यहॉ तक कि निर्देशन प्राप्त करने लगा, वैसे–वैसे उत्थान और पतन के विभिन्न दौरो से गुजरने लगा।[63] यद्यपि राजीव गाधी सरकार कई बार आतकवादियो के ऊपर जीत हासिल करने के बिल्कुल नजदीक आ गई थी, परन्तु इसमे पूरा रास्ता तय करने के लिये दृढ निश्चय का अभाव था।

1987 से उन्होने लोगो के ऊपर राजनीतिक और विचारधारात्मक वर्चस्वता बनाने के लिये सुनियोजित अभियान चलाना शुरू किया। मास, शराब, तम्बाकू और महिलाओ द्वारा साडी के उपयोग पर प्रतिबन्ध, उनके द्वारा स्कूली बच्चो की पोशाको को निर्धारित करने की कोशिश, वैवाहिक रीति–रिवाजो पर उनकी पाबन्दी, सार्वजनिक स्थानो पर उनके द्वारा खालिस्तानी झण्डो को लहराना, समानान्तर कर उगाहना, ये सभी इस तरह रेखाकित किये गये थे, ताकि लोगो को यह समझा दिया जाय कि वे ही आने वाले कल के शासक है। समय–समय पर अच्छा मनोभाव रखने वाले लोगो और कभी–कभी स्वय प्रधानमत्री द्वारा दोहराये जाने वाले समझौते की वकालतो एव केन्द्र सरकार तथा विभिन्न आतकवादी समूहो के बीच सशर्त या बिना शर्त बातचीत आदि सभी का परिणाम यही हुआ।[64]

बातचीत और आतकवादियो तथा चरमपथी सम्प्रदायवादियो के तुष्टीकरण के माध्यम से पजाब समस्या के 'समाधान' की नीति का इसके बाद आयी वी0पी0 सिह और चन्द्रशेखर सरकारो द्वारा 1990 और 1991 के दौरान और अधिक जोरदार तरीके से पालन किया गया। इस बीच आतकवाद के शिकार लोगो की सख्या बढती चली गई।

राजसत्ता ने अन्तत कठोर कार्रवाई की। ऐसी एक कार्रवाई की एक भूमिका आपरेशन ब्लैक थडर मे देखने को मिली, जिसे पजाब पुलिस और अर्द्धसैनिक बलो ने मई 1988 मे चलाया था और इसे स्वर्ण मन्दिर से आतकवादियों को खीचकर बाहर निकालने मे सहायता मिली थी। 1991 के

63 1985 के बाद पजाब मे आतकवाद और लूटपाट में वृद्धि कैसी हुयी, इसे विस्तार से जानने के लिये के0पी0एस0 गिल की पुस्तक 'पजाब द नाइट्स ऑफ फाल्सहुड' देखे।

64 चन्द्र, विपिन, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी (2002), पूर्व उद्धत कृति, पृ0 446 ।

मध्य मे आतकवाद के खिलाफ एक कठोर नीति की पालन केन्द्र मे नरसिह राव सरकार द्वारा तथा फरवरी 1992 के चुनावो मे बनी पजाब की बेअत सिह के नेतृत्व वाली काग्रेस सरकार द्वारा उठाया गया। परिणामस्वरूप 1993 के अन्त तक पजाब आतकवाद से लगभग मुक्त हो गया। हालाकि भारी सख्या मे पुलिस को इन कार्रवाइयो मे अपनी जान देनी पडी।[65]

किन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत की राजनीतिक व्यवस्था के व्यवहारिक विकास को दृष्टिगोचर रखते हुये यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि हाल ही मे पजाब मे खालिस्तान आन्दोलन के कर्ताधर्ता पहले वासन सिह जफरवाल और फिर जगजीत सिह चौहान के भारत वापस लौटने से, लम्बे अरसे के बाद शान्त हुये पजाब मे पुन खालिस्तान आन्दोलन को बल मिलने और आतकवादी गतिविधियो के बढने की आशका बलवती होने लगी है।[66] पजाब के मुख्यमत्री प्रकाश सिह बादल काफी समय से केन्द्र सरकार पर सिक्खो की बनी काली सूची पर दोबारा विचार करने की माग कर रहे है। इस पक्षघर मे वे गृहमत्री लालकृष्ण आडवाणी से 15 बार मिल चुके है।[67] उन्होने विदेशो मे भाग गये सिक्ख आतकवादियो से वापस लौटने का आग्रह किया है। इसलिये वे चाहते है कि केन्द्र सरकार काली सूची पर फिर से विचार करे। इससे राज्य मे एक बार पुन आतकवाद के दिन लौटने के अदेशे जरूर पैदा हो गये है। कहा जा सकता है कि साम्प्रदायिकता क्षेत्रीयतावाद के समक्ष एक बडी आन्तरिक चुनौती है, केवल हमारे धर्म निरपेक्ष और सघीय व्यवस्था के क्रियान्वयन और स्थायित्व की दृष्टि से ही नही वरन् राष्ट्रीय जीवन और पहचान को निर्धारित करने वाले मौलिक सिद्धान्तो की दृष्टि से भी। इस अर्थ मे यह विभाजनकारी प्रवृत्ति राष्ट्र और समाज के समक्ष सबसे शक्तिशाली वास्तविक खतरा है।

(ग) भूमिपुत्र सिद्धान्त पर आधारित संरक्षणात्मक या सामाजिक–आर्थिक क्षेत्रीयतावाद

क्षेत्रीयतावाद का एक विशिष्ट और खासतौर पर भद्दा स्वरूप 1950 के दशक मे 'धरती का बेटा' या 'भूमिपुत्र सिद्धान्त' के रूप मे सामने आया। यह एक राज्य से दूसरे राज्य मे आने वाले प्रवासी मजदूरो और अल्पसख्यक समुदायो की हैसियत से सम्बन्धित रहा है। इस सिद्धान्त के आधार पर कई राज्यो मे ऐसे आन्दोलन आयोजित किये गये है कि सरकार अपने हस्तक्षेप द्वारा 'स्थानीय' निवासियो के लिये रोजगार और नौकरियो की गारन्टी करे और बाहरी लोगो को इसमे प्रवेश करने से रोके।

इस 'भूमिपुत्र सिद्धान्त' के दर्शन के पीछे मूल विचार यह है कि एक राज्य उस खास भाषाई समूह का है जो वहा के निवासी है अर्थात एक राज्य और उसके शहर उस राज्य के मुख्य भाषाई समूह के लोगो की अपनी अलग 'गृहभूमि' है और ये 'स्थानीय' या 'धरतीपुत्रो' की खास जमीन है। बाकी जितने भी लोग वहा रहते है या बस गये है और जिनकी मातृभाषा वहा की राजभाषा से भिन्न है, वे सभी 'बाहरी' घोषित कर दिये जाते है। चाहे ये बाहरी लोग काफी लम्बे समय से उस राज्य

---

65 1988 से 1992 के दौरान ही इन कार्रवाइयो मे 1550 से ज्यादा पुलिसकर्मी मारे गये।

66 दैनिक जागरण, 4 जुलाई 2001, द्विवेदी, अजित कुमार (6 जुलाई 2001) का आलेख, *'बादल खेल रहे है खतरनाक खेल'*, कानपुर, दैनिक जागरण, पृ0 8 ।

67 तदैव ।

मे रह रहे हो या निकट अतीत मे ही वहा आये हो, पर उन्हे उस 'धरती का बेटा' नही माना जाता। यह दर्शन मूलत शहरो मे ही प्रचलित रहा है हालाकि प्रत्येक शहर इसकी चपेट मे नही रहा है।

1952 के बाद नियोजन और आर्थिक विकास के परिणाम स्वरूप खासकर शहरो मे आर्थिक अवसर बडे पैमाने पर विकसित होने लगे। परन्तु देश के विभिन्न भागो मे इन आर्थिक अवसरो का विकास असमान तरीके से हुआ। इसलिये उन तक पहुच भी असमान तरीके से हुयी। तब उन राज्यो के 'स्थानीय' लोगो और 'भूमिपुत्रो' के लिये 'बाहरी' लोगो के मुकाबले रोजगार एव शैक्षणिक अवसरो मे प्राथमिकता देने की बात उठाई जाने लगी, जहाँ ये अवसर उपलब्ध हुये थे। आर्थिक ससाधनो और अवसरो के लिये यह सघर्ष अक्सर साम्प्रदायिकता जातिवाद और भाई–भतीजावाद का रास्ता अपना लता है । साथ ही साथ, भाषा के प्रति वफादारी और क्षेत्रीयतावाद का योजनाबद्ध दुरूपयोग भी 'बाहरी' लोगो को उस राज्य या नगर के आर्थिक जीवन से बाहर करने के लिये किया जाता रहा है।

यह समस्या तब और भी गम्भीर हो जाती है जब कई शहरो और इलाको मे राज्य की बहुसख्यक भाषा बोलने वाले लोग अल्पमत या बहुत क्षीण बहुमत मे होते है। उदाहरण के लिये 1961 के दौरान बबई मे मराठी भाषी मात्र 42 8 प्रतिशत थे। बगलौर मे कन्नड बोलने वाले 25 प्रतिशत से भी कम हो गये थे। कलकत्ता मे बगाली लोग किसी तरह जोडकर बहुमत बनाते थे। आसाम के शहरी क्षेत्रो मे मुश्किल से 33 प्रतिशत असमी लोग रहते थे। 1951 के बाद शहरो मे बसने की प्रक्रिया जोर पकडने लगी।

सबसे महत्वपूर्ण सवाल यह है कि 'भूमि पुत्र' आन्दोलन केवल कुछ ही शहरो और राज्यो मे पैदा हुये और बाकी मे नही ? क्यो इसका निशाना कुछ खास प्रवासियो और भाषायी समूहो को बनाया गया बाकी को नही ? तकनीकी और पेशेवर शिक्षा मे ही क्यो, बाकी शिक्षा या कला विभाग की शिक्षा मे नही ? यह भी याद रखना चाहिये कि प्रवासी और गैर–प्रवासियो और भाषाई अल्पसख्यको एव बहुसख्यको के बीच सघर्ष अनिवार्य और अतर्निहित नही है। आमतौर पर दोनो सौहार्दपूर्ण तरीके से ज्यादातर राज्यो मे रहते रहे है। इसलिये सिर्फ खास परिस्थितियो मे ही ऐसे सघर्ष पनपते रहे है।

'भूमिपुत्र' आन्दोलन मुख्यत तभी उठा है और ज्यादा आक्रामक बनकर उभरा है जब औद्योगिक एव मध्यवर्गीय रोजगारो के लिये प्रवासी और स्थानीय शिक्षित मध्यवर्गीय नौजवानो के बीच प्रतियोगिता हुयी है या होने की सम्भावना रहती है। ये आन्दोलन मुख्यत मध्यवर्गीयो द्वारा सचालित रहा है और उनका लक्ष्य अर्थव्यवस्था और प्रशासन मे मध्यवर्गीय स्थानो पर केन्द्रित होना है। यह आन्दोलन उन राज्यो और शहरो मे अधिक पैदा हुआ है और गहरा रहा है जहाँ 'बाहरी' लोगो की उच्च शिक्षा तक अधिक पहुच रही है या सरकारी नौकरियो, पेशो, उद्योगो और छोटे व्यापारो, जैसे–लघु उद्यागो और दुकानदारी आदि मे वे ज्यादा प्रखर हो। इन आन्दोलनो मे सबसे सक्रिय भागीदारी आमतौर पर निम्न–मध्यवर्गीय मजदूरो और समृद्ध मध्यवर्ती किसानो का रहा है जिन्हे अपनी हैसियत पर कोई खतरा नही दिखता है, परन्तु जो धीरे–धीरे मध्यवर्गीय हैसियत प्राप्त करने और खुद नही तो अपने बच्चो को उस जगह पर पहुचाने की तीव्र आकाक्षा रखते है। ये सभी सामाजिक वर्ग अपने बच्चो को उच्च शिक्षा विशेषकर तकनीकी शिक्षा–जैसे इजीनियरिंग, मेडिकल और कॉमर्स जैसे

क्षेत्रो मे पहुचाने की मशा रखते है। 1950 के दशक मे जनसख्या मे तीव्र विस्तार और हाईस्कूल एव कॉलेज स्तरीय शिक्षा का भारी प्रसार हुआ। परन्तु उसकी तुलना मे अर्थव्यवस्था रोजगार के उतने अवसर पैदा नही कर सकी कि सभी नवशिक्षितो को आसानी से जगह मिल जाय। नौकरियो की भारी कमी हो गयी और 1960 एव इसके बाद के दशको मे उपलब्ध नौकरियो के लिये गहरी प्रतियोगिता हो गई।

चूकि अभी भी अविकसित भारतीय अर्थव्यवस्था मे मध्यवर्गीय नौकरियो के लिये सबसे ज्यादा अवसर नौकरियो और सार्वजनिक उपक्रमो मे ही मौजूद है, इसलिये व्यापक जनादोलन तथा जनवादी राजनीतिक प्रक्रिया का उपयोग बहुसख्यक भाषाई समूह द्वारा करवाकर सरकार पर दबाव डाला जा सकता है, ताकि रोजगार और शैक्षणिक अवसरो और सम्भावनाओ को हथियाया जा सके। इसलिये कुछ समूह 'भूमिपुत्र' की भावना का इस्तेमाल राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने के लिये करते है या करते थे।

किसी इलाके मे प्रवासी विरोधी आन्दोलन के पैदा होने या न होने के पीछे एक अन्य महत्वपूर्ण कारण उस इलाके मे पहले से प्रवासियो की परम्परा की उपस्थिति या अनुपस्थिति भी पायी गई है। जब किसी राज्य के लोग, खासकर मध्यवर्ग खुद ही बाहर से आया प्रवासी होता है, तो इस प्रवृत्ति का विरोध काफी कम होता है। यह मामला खासतौर पर पश्चिम बगाल, केरल, पजाब, बिहार और उत्तर प्रदेश मे देखा जा सकता है। दूसरी तरफ 'भूमिपुत्र' आन्दोलन ज्यादातर महाराष्ट्र, असाम और आन्ध्र प्रदेश के तेलगाना इलाको मे देखा जा सकता है जहॉ के लोगो मे प्रवास की खुद कोई परम्परा नही रही है।

दुर्भाग्य से भारतीय सविधान कई मामलो मे काफी हद तक अस्पष्ट है। कुछ खुदगर्ज भारतीय राजनीतिज्ञो ने सविधान की इस अस्पष्टता का लाभ 'भूमिपुत्र' सिद्धान्त को विकसित करने और इसका प्रसार कर राजनीतिक सत्ता की प्राप्ति चाही है। जब सविधान निर्माताओ ने सविधान का निर्माण किया तब उन्होने यह सोचा भी नही होगा कि उनके द्वारा निर्मित सविधान के कुछ विशेष उपबन्ध 'भूमिपुत्र सिद्धान्त' की व्यवस्था कर रहे है। सविधान के जिन उपबन्धो से भूमिपुत्र के सिद्धान्त को समर्थन मिलता है, वे निम्नलिखित है–

(प) शिक्षा सस्थाओ मे प्रवेश तथा नौकरी की शर्त–राज्य का निवास होना

भारतीय सविधान धर्म, जाति, नस्ल, लिग या जन्म स्थान के आधार पर किसी भेदभाव पर प्रतिबन्ध लगाता है।[68] किन्तु यह निवास स्थान के आधार पर भेदभाव करने पर पाबन्दी नही लगाता है जिसके आधार पर अधिकाश राज्यो मे निवास स्थान के आधार पर शिक्षा सस्थानो के दाखिले मे भेदभाव किया जाता है। यद्यपि सविधान मे यह प्रावधान किया गया है कि धर्म, नस्ल, जाति, लिग, जन्म स्थान तथा निवास के आधार पर राज्य की नियुक्तियो मे कोई भेदभाव नही किया जायेगा। परन्तु इसी के साथ ससद को यह शक्ति भी दे दी गयी है कि वह, हालाकि राज्यो की विधान सभा नही, किसी राज्य मे राजकीय नियुक्तियो के लिये उस राज्य मे निवास की आवश्यकता का प्रावधान बनाते

---

68 भारतीय सविधान, अनुच्छेद 15 ।

हुये कानून स्वीकृत कर सकता है।[69] राजनीतिक दबावो के अन्दर सविधान की अस्पष्टता का फायदा उठाते हुये कई राज्यो ने दरअसल नौकरिया आरक्षित कर दी है या राज्य की नौकरियो तथा शैक्षणिक सस्थाओ मे भर्ती के लिये राज्य के निवासियो को प्राथमिकता देते है। ऐसे मामलो मे निवास की न्यूनतम् अवधि निश्चित या प्रस्तावित कर दी जाती है। इतना ही नही जहाँ सविधान कुछ हद तक निवास के आधार पर राज्य की नौकरियो मे आरक्षण या प्राथमिकता देने की अनुमति देता है, वही भाषा के आधार पर ऐसा करने की छूट बिल्कुल नही देता। फिर भी कई राज्य सरकारो ने आगे बढकर ऐसे स्थानीय निवासियो को प्राथमिकता देना घोषित कर रखा है जिनकी मातृभाषा उस राज्य की प्रमुख भाषा हो। इस प्रकार दीर्घकाल से उन राज्यो मे बसे हुये प्रवासियो और उनक वशजो और यहा तक कि ऐसे निवासियो के विरूद्ध भेदभाव किया गया है जो उस राज्य की भाषा तो बोल सकते है, परन्तु उनकी मातृभाषा उस राज्य की अल्पसख्यक भाषा है। जोकि सविधान की भावना का सरासर उल्लघन है।

वैसे राज्य के पिछडे निवासियो के लिये राज्य प्रशासन की नौकरियो और उच्च शिक्षण सस्थानो मे आरक्षण, राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से अस्वागत योग्य होते हुये भी इनका एक तर्क समझा जा सकता है। लेकिन प्रवासी विरोधी आन्दोलनो के लिये ऐसी कोई दलील नही मानी जा सकती है। 1960 के दशक मे चलने वाले इन आन्दोलनो ने दूसरे राज्यो से आने वाले प्रवासियो को रोकने के लिये खुलेआम विरोध की घोषणा की और उनके खिलाफ दुश्मनी को भडकाया। ये उग्रवादी, प्रवासी–विरोधी 'भूमिपुत्र' आन्दोलन ज्यादातर शहरो के इर्द–गिर्द, विशेषरूप से आसाम, आन्ध्र मे तेलगाना, कर्नाटक, महाराष्ट्र और उडीसा मे फैले । इन्होने प्रवासियो को परेशान किया और यहा तक कि उनके खिलाफ हिसात्मक कार्यवाहिया की।

(ii) जम्मू तथा कश्मीर के लिये विशेष उपलबन्ध

जम्मू तथा कश्मीर के सविधान मे भूमिपुत्र सिद्धान्त को स्पष्टतया शामिल किया गया है। जम्मू तथा कश्मीर के सविधान के अनुच्छेद 35 (ए) मे स्पष्टतया यह व्यवस्था की गई है कि वहॉ का विधानमण्डल यह निश्चित करेगा कि वहॉ के स्थायी निवासी कौन है। इन स्थायी निवासियो को यह विशेष अधिकार दे सकती है और जो वहॉ के निवासी नही है उन पर वह –(i) सरकारी नौकरियो, (ii) राज्यो मे अचल सम्पत्ति खरीदने, (iii) राज्य मे बसने तथा (iv) राज्य मे विद्यार्थियो को दिये जाने वाले वजीफो तथा अन्य सहायता के बारे मे बन्धन लगा सकती है।

इस अनुच्छेद के अधीन राज्य की विधान पालिका ने एक कानून भी बनाया है जिसके अनुसार अस्थायी निवासियो को राज्य मे अचल सम्पत्ति खरीदने का अधिकार नही है। दूसरे शब्दो मे इसका अर्थ है कश्मीर केवल कश्मीरियो के लिये है। यहॉ तक कि जो शरणार्थी देश के विभाजन के समय पाकिस्तान से आकर वहा पर बस गये थे और जो 50 वर्ष से अधिक समय से वहा पर बसे हुये है, उन्हे भी केन्द्रीय सरकार के कहने पर भी वहॉ की नागरिकता नही दी गयी है जिससे भूमिपुत्र सिद्धान्त को बढ़ावा मिला है।

---

69 भारतीय सविधान, अनुच्छेद 16 ।

(iii) नागालैण्ड, असम, मिजोरम, मेघालय, अरूणाचल, सिक्किम तथा आन्ध्र के लिये विशेष उपबन्ध

उपरोक्त राज्यो के लिये भी सविधान मे विशेष उपबन्ध किये गये है। उदाहरणतया नागालैण्ड के बारे मे सविधान मे यह व्यवस्था की गई है कि वहॉ की भूमि तथा उसके सम्पत्ति स्रोतो का अन्तरण वहॉ की विधान सभा द्वारा पारित सकल्प के बिना नही किया जा सकता।[70] इसके अतिरिक्त वहा पर विधानसभा के 60 स्थानो मे 59 स्थान (दीमापुर को छोडकर) अनुसूचित जनजातियो के लिये आरक्षित कर दिये गये हैं।[71]

सविधान के 51 वे सशोधन अधिनियम 1984 मे नागालैण्ड, मेघालय, मिजोरम तथा अरूणाचल मे रहने वाली जनजातियो के लिये भी लोकसभा मे स्थान आरक्षित किये गये। बाद मे 57वे सविधान सशोधन द्वारा अनुच्छेद 330 तथा 332 मे सशोधन करके नागालैण्ड तथा मेघालय की विधान सभाओ मे भी अनुसूचित जनजातियो के लिये स्थान आरक्षित किये गये। अब मेघालय मे भी यह माग की गयी है कि नागालैण्ड के समान मेघालय की विधान सभा मे भी सारे स्थान जनजातियो के लोगो के लिये आरक्षित कर देने चाहिये। इस समय वहॉ की विधान सभा के 60 स्थानो मे से 52 स्थान जनजातियो के लिये आरक्षित है।

सविधान के अनुसार ससद, सिक्किम विधान सभा मे अनेक सामाजिक वर्गों के लिये स्थान बाट सकती है। इस सम्बन्ध मे ससद ने एक कानून पास किया है जिसके अनुसार 32 स्थानो मे से 12 स्थान लैपचास तथा 12 स्थान भुटियास को और एक स्थान सिक्किम के बौद्धो को दिया गया है। यह भी भूमिपुत्र सिद्धान्त का ही एक रूप है क्योकि इस कानून के द्वारा सिक्किम मे रहने वाले दूसरे लोगो को विधान सभा मे उनके प्रतिनिधित्व से बहुत हद तक वचित कर दिया गया है।

आन्ध्र प्रदेश मे भी सविधान मे सशोधन करके भूमिपुत्र सिद्धान्त को अन्त स्थापित किया गया था। सशोधन द्वारा सविधान मे 371 डी शामिल करके यह व्यवस्था की गयी थी कि असैनिक सेवाओ को अनेक श्रेणियो मे बाटकर राज्य के विभिन्न स्थानीय काड्रस मे बाट दिया जाय परन्तु 1969 मे उच्चतम न्यायालय ने इस सशोधन को असवैधानिक घोषित कर दिया था।[72]

धरती के बेटो के लिये विशेष उपबन्धो की व्यवस्था करने का सविधान निर्माताओ का इरादा चाहे कुछ भी हो परन्तु वास्तविकता तो यह है कि इसके दूरगामी परिणामो की गम्भीरता के बारे मे हमे अभी अनुभव हुआ है। यहा तक कि सविधान मे सशोधन करके इस सिद्धान्त को नागालैण्ड तथा सिक्किम मे भी किसी न किसी रूप मे लागू कर दिया गया है और केन्द्रीय सरकार ने भी केन्द्रीय व्यवसायो मे नौकरियॉ देते समय इस सिद्धान्त पर अमल किया है।[73]

---

70 भारतीय सविधान, अनुच्छेद 371ए (1) ।

71 ऐसा सविधान म 57वॉ सशोधन करके 1987 मे किया गया था। सविधान के 57वे सशोधन अधिनियम 1987 में यह व्यवस्था की गयी है कि जिस तिथि को यह सविधान सशोधन अधिनियम लागू किया गया है, यदि उस तिथि को अरूणाचल प्रदेश, मिजोरम मेघालय तथा नागालैण्ड राज्य मे यदि विधान सभा के सारे स्थान अनुसूचित जनजातियो के सदस्यो के पास है तो एक स्थान को छोड़कर बाकी सभी स्थान अनुसूचित जनजातियो के लिये आरक्षित होगे और जहॉ पर ऐसा नहीं है वहॉ पर जनजातियो के विधान सभा मे स्थान उनकी जनसख्या के अनुपात के अनुसार होगे। परन्तु वे स्थान वर्तमान विधानसभा मे उनके पास जो स्थान है, उनसे कम नहीं होगे।

72 इण्डियन एक्सप्रेस, अप्रैल 21, 1980 पृ0 4 ।

73 *इण्डिया* 1992, पृ0 296 ।

अरस्तु ने ठीक ही कहा है कि जो किसी के अधीन है वे इसलिये विद्रोह करते है ताकि वे समान हो जाय और जो लोग समान होते है वे इसलिये विद्रोह करते है कि उनका स्थान दूसरो की अपेक्षा अधिक उच्च हो जाय। इस प्रकार के सोच के कारण ही क्रान्ति होती है। भारत मे ऐसा होने की सम्भावना और भी अधिक है क्योकि यहा पर बेरोजगारी बढती जा रही है। उदाहरणतया 1952 मे पजीकृत बेरोजगारो की सख्या 4 37 लाख थी 1981 मे बढकर 178 3 लाख और 1991 मे 363 0 लाख हो गयी।[74] इन परिस्थितियो मे वे पढे लिखे नौजवान जिनके पास नौकरियॉ नही है और जिन लोगो का आर्थिक शोषण किया जा रहा है या जिनके सास्कृतिक अस्तित्व को खतरा है, वे अवश्य ही विद्रोह कर सकते है। अनेक राज्यो मे ऐसा भी हो रहा है जिसके कारण राज्यो के मूल निवासियो ने बाहर वालो को डराना, धमकाना शुरू कर रखा है ताकि वे वहा से चले जाय। उनके द्वारा ऐसा किये जाने के पीछे निम्नलिखित कारण है–

(क) राजनैतिक कारण

भूमिपुत्र से सम्बन्धित आन्दोलन फैलने के कुछ तो राजनैतिक कारण है। उदाहरणतया उत्तर–पूर्वी क्षेत्रो मे केन्द्रीय सरकार ने एक तरफ तो असम का बटवारा करके नागालैण्ड, मेघालय, अरूणाचल प्रदेश तथा मिजोरम जैसे छोटे–छोटे राज्यो की स्थापना कर दी है और दूसरी तरफ अनेक अनुसूचित जनजातियो से सम्बन्धित वर्गों ने अपनी पृथक पहचान बनाये रखने के लिये बाहर वालो को, उन राज्यो मे बसने से रोक दिया है। जनजातियो के आन्दोलन के आधार पर शक्ति हथियाने के पश्चात् इन राजनीतिज्ञो ने अपनी सत्ता को बनाये रखने के लिये इन क्षेत्रो की देश के दूसरे भागो से सामाजिक तथा सास्कृतिक भिन्नता का प्रचार शुरू कर दिया है। जिन राजनीतिज्ञो के पास राजनैतिक सत्ता नही है वे और भी बढ–चढकर बाते करते है जिसके परिणामस्वरूप जो लोग सत्ता मे है वे भी राष्ट्रीय मुख्य धारा मे शामिल नही हो सकते है। अरूणाचल, मिजोरम तथा नागालैण्ड मे (दीमापुर शहर को छोडकर) अन्दरूनी सीमा विनिमय लागू है जिसके अनुसार दूसरे राज्यो से आने वाले व्यक्तियो को इन राज्यो की सरकारो की इजाजत के बिना वे वहा पर कोई सम्पत्ति नही खरीद सकते। मेघालय के मुख्यमत्री विलियमसन सागम्मा ने भी इस अन्दरूनी नियन्त्रण रेखा के नियम को मेघालय मे भी लागू करने की माग की है। यहॉ तक कि मेघालय सरकार बाहर वालो को मेघालय मे आने से रोकने के लिये वहा पर उद्योग लगाने तथा रेल की पटरी बिछवाने का भी विरोध कर रही है।[75] आसाम सरकार भी दूसरे राज्यो के लोगो को आसाम मे जाने से रोकने के लिये इसी प्रकार की माग कर रही है। यहा पर यह ध्यातव्य है कि मेघालय मे कोई भी व्यक्ति राज्य सरकार से इजाजत लिये बिना 6 महीने से अधिक नही ठहर सकता।[76] त्रिपुरा मे त्रिपुरा उपजाति जुब्बा समिति भी राज्य के उन क्षेत्रो मे जहॉ अनुसूचित जनजातियो के लोग रहते है वहा पर बाहर वालो को जाने से रोकने के लिये मेघालय

---

74 चन्द्र, विपिन, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखजी (2002), पूर्व उद्धत कृति, पृ0 178 ।

75 इण्डियन एक्सप्रेस, जनवरी 18, 1987, पृ0 7 ।

76 तदैव, मई 17, 1986, पृ0 6 ।

की तरह का ही प्रबन्ध करने एव अनुसूचित जनजातियो के लिये विधान सभा के 50 प्रतिशत स्थान आरक्षित करने की माग कर रही है।[77]

मणिपुर मे भी मणिपुर नेशनल फ्रण्ट ने मेटीज पर अनुसूचित जनजातियो के प्रभुत्व को देखते हुये उनके विरूद्ध नारे लगाये है।[78] बाहर वालो को डराने के लिये वहॉ के विद्यार्थियो ने विदेशियो के विरूद्ध बिल्ले लगाये और आसामी, बगाली, पजाबी, नेपाली, बिहारी तथा खासी दुकानदारो से चावल, तेल, गेहूँ और आटा जबरदस्ती इकट्ठा किया। उन्हे मणिपुर छोडकर चले जाने को भी कहा और इस धमकी के परिणामस्वरूप उनमे से बहुत से मणिपुर छोडकर चले भी गये।[79]

(ख) सांस्कृतिक पहचान के लोप होने का डर

सास्कृतिक पहचान के लोप होने के डर के कारण भी भूमिपुत्र के सिद्धान्तो का आन्दोलन फैला है। उदाहरणतया असम मे रहने वाले अपने राज्य मे ही राजनैतिक दृष्टि से यतीम हो गये है क्योकि अब राज्य विधान सभा मे गैर असमियो की सख्या भी काफी अधिक है। असमियो का कहना है कि जिस गति से बाग्लादेश के मुसलमान असम मे आकर बस रहे है। उससे राज्य मे मुसलमानो की जनसख्या बहुत तेजी से बढ रही है और यदि इसी तरह से उनकी जनसख्या बढती रही तो कुछ समय पश्चात असम मे मुसलमानो का बहुमत होगा और मूल असमी वहॉ पर अल्पसख्यक हो जायेगे। ये मुसलमान कल बाग्लादेश मे भी शामिल होने की माग कर सकते है। इसलिये असमियो ने मतदाता सूची मे विदेशियो के नाम शामिल किये जाने के विरूद्ध आन्दोलन किया था। उन्होने बगाल से आये हुये लोगो के विरूद्ध भी हिसात्मक कार्यवाही इसीलिये की थी ताकि वे बाहर वालो को डरा धमका सके। यहा पर यह चर्चा करना आवश्यक है कि विद्यार्थियो तथा अन्य सगठनो ने कई महीनो तक स्कूलो तथा कालेजो को बन्द रखा। बरौनी को जाने वाले तेल की पाइप लाइनो को भी बन्द कर दिया था और 1980 मे लोकसभा के चुनाव भी नही होने दिये थे। क्योकि उनकी दृष्टि मे बगाली उनकी भूमि तथा अन्य प्राकृतिक स्रोतो को कब्जाना चाहते है। असमगण सग्राम परिषद ने इन्ही कारणो से दीवारो पर निम्नलिखित पोस्टर लगाये थे।

(क) भारतीय कुत्तो आसाम से बाहर चले जाओ।

(ख) भारत माता को भूल जाओ आसाम माता को प्यार करो।

(ग) आसाम मातृभूमि की विजय हो।

(घ) यदि तुम साप और बगाली को एक साथ देखो तो साप की बजाय बगाली को पहले मार दो।

यूनाइटेड लिब्रेशन फ्रण्ट ऑफ असम भी अब गैर असमियो को असम छोडकर चले जाने के लिये कह रहा है , जो कि एक पृथकतावादी सगठन है।

त्रिपुरा मे भी स्थिति इससे बेहतर नही है क्योकि वहा पर भी बाहर वालो के आगमन के कारण अनुसूचित जनजातियो के लोगो की जनसख्या केवल एक तिहाई रह गई है। त्रिपुरा मे वहा के मूल निवासियो की अपेक्षा बगालियो की जनसख्या अधिक है। त्रिपुरावासी नही चाहते कि उनकी भी वही

77 द टाइम्स ऑफ इण्डिया, अगस्त 24, 1984, पृ0 6 ।

78 तदैव, मई 6, 1980, पृ0 6 ।

79, द हिन्दुस्तान टाइम्स, मई 4, 1980 पृ0 1 ।

दशा हो जो असम के मूल निवासियो की असम मे है। इस प्रकार की स्थिति को देखते हुये भूमिपुत्र का सिद्धान्त इन राज्यो मे जोर पकडता जा रहा है।

पिछले कुछ वर्षों मे त्रिपुरा के मूल निवासियो के हितो की रक्षा करने के लिये त्रिपुरा उपजाति जुब्बा समिति सगठित की गयी है जो यह माग कर रही है कि जो लोग अक्टूबर 1948 के पश्चात् त्रिपुरा मे आये है वे त्रिपुरा छोडकर चले जाय।

इसीलिये त्रिपुरा उपजाति जुब्बा समिति तथा अमार बगाली गुटो के बीच खीचातानी चल रही है। लेकिन यहॉ पर यह जानना बहुत जरूरी है कि बाहर वालो को राज्य छोडकर चले जाने का नारा ईसाई धर्म से सम्बन्धित अनुसूचित जनजातियो के लोगो ने ही दिया है और त्रिपुरी तथा रेग कबीले के लोग जो हिन्दू है, वे इस सम्बन्ध मे बहुत उत्साही नही है। लेकिन फिर भी राज्य सरकार को विधानसभा मे अनुसूचित जनजातियो को यह आश्वासन दिलाना पडा कि 1971 के पश्चात् जो लोग बाग्लादेश से आये है, उन्हे वापिस भेज दिया जाएगा।[80]

लगभग इसी प्रकार का डर अरूणाचल के लोगो मे पाया जाता है जिसके कारण उन्होने भी 1980 मे टीराप तथा सुबानसिरी जिलो मे बसे हुये चकमा शरणार्थियो को वहॉ से हटाये जाने की माग की है। तत्कालीन मुख्यमत्री गैगाग अपग ने सदन को स्पष्ट शब्दो मे यह आश्वासन दिलाया कि उसकी सरकार अरूणाचल मे पडोसी राज्यो असम, मेघालय तथा मणिपुर जैसी स्थिति उत्पन्न नही होने देगी।[81]

मिजोरम मे भी मिजो नेशनल फ्रण्ट ने उन लोगो को जो मिजो नही है, मिजोरम छोडकर चले जाने को कहा है। इस सम्बन्ध मे आइजौल मे जो कि मिजोरम की राजधानी है, 1980 मे पोस्टर भी लगाये गये थे, जिन्हे पुलिस ने उतार दिया था। परन्तु जनवरी तथा मार्च 1980 के बीच मिजो नेशनल फ्रण्ट ने 16 व्यक्तियो का कत्ल कर दिया था।[82] मिजो नेशनल फ्रण्ट की गतिविधियॉ पृथकतावादी है। मणिपुर मे भी सास्कृतिक पहचान के लोप होने का डर मेट्टी राष्ट्रवाद के फैलने का कारण है। इसीलिये वहा पर मातृभूमि सिद्धान्त के नारे लगाये जा रहे हैं।[83] मेट्टीज तथा बगालियो और नेपालियो मे तनावपूर्ण सम्बन्ध होने का भी यही कारण है। मेट्टीज तो मिजोज, कुकीज को भी पसन्द नही करते।[84]

मेघालय मे भी स्थिति इससे बेहतर नही है। मेघालय जिसे असम का पुनर्गठन करके 1972 मे पृथक राज्य बनाया गया था, वहा पर भी अनुसूचित जनजातियो तथा गैर अनुसूचित जनजातियो मे झगडा है और 1979 मे वहा पर गैर अनुसूचित जनजातियो के विरूद्ध विस्तृत स्तर पर हिसात्मक कार्यवाही की गयी थी। अनुसूचित जनजातियो के लोग यह नही चाहते कि वहा अन्य राज्यो के लोग

---

80 इण्डियन एक्सप्रेस, अप्रैल, 1980, पृ 1 ।

81 द टाइम्स ऑफ इण्डिया, सितम्बर 25, 1980, पृ0 2 ।

82 तदैव, मार्च 30, 1980, पृ0 1 ।

83 मेट्टीज का मानना है कि शेष भारत हमें नहीं देखता और यदि देखता है तो शिकायतों को ध्यान से सुनता नहीं। उत्तर पूर्वी भारत में रहने वाले असमी, नागा, मिजो, मेट्टी, खासी तथा गारो और अन्य वर्गों को भी इसी तरह की शिकायत है। मणिपुर के मुख्यमत्री राजकुमार दौरेन्द्र सिह का विचार यह है कि मेट्टी लोगों की सास्कृतिक पहचान के लोप होने के डर के कारण वहा पर भूमिपुत्र का सिद्धान्त फैला है।— इण्डियन एक्सप्रेस, मार्च 14, 1980, पृ0 5 ।

84. द हिन्दुस्तान टाइम्स, मई 9, 1980, पृ0 1 ।

विशेषकर नेपाली तथा बगाली आकर बसे। वे उन सबको विदेशी समझते है तथा वे विदेशियो और भारत के अन्य राज्यो से आये हुये लोगो मे फर्क नही समझते। वे उन्हे मेघालय मे रहने वाले जयन्तीया, खासी तथा गारो कबीलो की कबायली विरासत के लिये खतरा समझते है। इन कबीलो ने इसाई धर्म को अपना लिया है और वे चाहते है कि वे गैर कबायली जो 1954 के पश्चात् यहा आकर बसे है उन्हे मेघालय छोडकर चला जाना चाहिये। वे गैर कबायलियो को डराने का प्रयत्न भी कर रहे है और खासीपुर नेशनल काउन्सिल ने 1980 मे एक पोस्टर निकाला था जिसमे लोगो को विदेशी शासन से सशस्त्र आन्दोलन के माध्यम से स्वतन्त्र कराने के लिये आह्वान किया था।[85] पब्लिक डिमाण्ड इम्पलिमेटेशन कन्वैशन ने सरकार से यह माग की है कि मेघालय अनुसूचित जनजातियो की सीटो के लिये आरक्षण लागू किया जाय।[86] उनकी यह माग भी है कि ससद के दो स्थान और विधानसभा के कुछ स्थान कबायलियो के लिये आरक्षित किये जाय।[87] यह सदेह किया जाता है कि वहा पर गडबड कराने मे ईसाई धर्म प्रचारको का हाथ है। यहा पर यह चर्चा करना भी आवश्यक है कि कबायलियो के भूमि से सम्बन्धित अधिकारो की पूरी तरह से रक्षा की गई है और उस राज्य मे अन्य कोई भूमि खरीद नही सकता।[88] यहॉ पर यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि 1987 मे खासी स्टूडेन्ट्स यूनियन ने नेपालियो के विरूद्ध विस्तृत स्तर पर हिसात्मक कार्यवाहिया की थी जिसके परिणामस्वरूप लगभग 7000 गैर कबायली शिलाग मे अपने घरो को छोडकर भाग गये थे।[89]

(ग) आर्थिक शोषण–

भूमिपुत्र सिद्धान्त के फैलने का एक कारण यह भी है कि कुछ राज्यो के प्राकृतिक साधनो का प्रयोग अन्य राज्यो के व्यक्तियो द्वारा किया जाता है और ऐसा करते समय वे राज्य के मूल निवासियो को नौकरियो मे उनका उचित भाग भी नही देते। उदाहरणतया बिहार जो हर दृष्टि से पिछडा हुआ है, वहा के युवको का यह नारा है कि बिहार बिहारियो के लिये। इसलिये बिहार बचाओ मोर्चा जनता का समर्थन प्राप्त करने के उद्देश्य से यह माग कर रहा है कि सार्वजनिक तथा निजी उद्योग जो बिहार मे खनिज पदार्थों का व्यापार कर रहे है, उन सबके मुख्य कार्यालय बिहार मे होने चाहिये।[90] क्योकि इन उद्योगो के मुख्य कार्यालय साधारणतया कलकत्ता, बम्बई तथा दिल्ली मे है जिसके कारण बिहार वालो को उनमे नौकरियॉ देने से वचित रखा जाता है।

इसी प्रकार की विचारधारा हिमाचल के लोगो मे भी पायी जाती है। विलासपुर, मडी, सुन्दरनगर शिमला तथा कुल्लू मे पहाडी समाज के समर्थको द्वारा वे पोस्टर लगाये गये जिनमे गैर हिमाचलियो को हिमाचल छोडकर चले जाने को कहा गया था। पहाडी समाज ने उन लोगो को जिनके वहा बाग है, उन्हे स्थानीय लोगो को बेचने के लिये कहा है।[91] हिमालय के भूतपूर्व उद्योग

85 द टाइम्स ऑफ इण्डिया, अगस्त 25, 1980, पृ0 8 ।
86 तदैव, जून 7, 1980, पृ0 7 ।
87 1970 मे पहले जब मेघालय पृथक ,राज्य नहीं बना था तब कबायलियो के लिये इस प्रकार का आरक्षण था।– द हिन्दुस्तान टाइम्स, मई 18, 1980, पृ0 14 ।
88 द टाइम्स ऑफ इण्डिया, अगस्त 25, 1980, पृ0 8 ।
89 तदैव, जुलाई 21, 1987, पृ0 4 ।
90 सईद, एस0एम, (1998), पूर्व उद्धत कृति, पृ0 370 ।
91 द ट्रिब्यून, सितम्बर 4, 1980, पृ0 1 ।

मत्री रणजीत सिह ने वहा के उद्योगपतियो को यह सलाह दी थी कि वे हिमाचल वालो को ही नौकरियॉ दे। राज्य मे एक कानून भी पास किया गया है जिसके अनुसार शहरो मे प्लाट्स को छोडकर अन्य भूमि खरीदने पर बधन लगा दिये गये है।[92] सिक्किम सरकार ने भी उन लोगो को जो वहॉ पर पुश्तो से व्यापार करते आ रहे थे, को व्यापार करने के लाइसेस देने से इकार कर दिया है। अधिकतर यह लोग हरियाणा और उत्तर प्रदेश के रहने वाले है।[93]

(घ) नौकरियो मे भेदभाव

भूमिपुत्र सिद्वान्त के फैलने का एक कारण यह भी है कि कुछ वर्गो के साथ नौकरियो मे भेदभाव किया जाता है। उदाहरणतया मारवाडी समुदाय के लोगो ने बगाल मे अपनी मेहनत के कारण जो उद्योग लगाये, देश के विभाजन के पूर्व से वे उन उद्योगो मे बगालियो को छोटी–मोटी नौकरियो को छोडकर अन्य नौकरी नही देते थे। जिसके कारण वे उन्हे पसन्द नही करते थे। परन्तु देश के विभाजन के पश्चात्, उन्होने व्यापार मे बगालियो को भी हिस्सेदार बना लिया जिसके परिणामस्वरूप मारवाडियो तथा बगालियो के सम्बन्धो मे काफी सुधार आया है। परन्तु इसके विपरीत बम्बई मे दक्षिण भारत से आये व्यापारियो ने ऐसा नही किया जिसके कारण शिवसेना के लोग उनके विरूद्ध हो गये और उन्होने केरल, कर्नाटक तथा तमिलनाडु के व्यापारियो को महाराष्ट्र छोडकर जाने को कहा।[94] 1996 मे बाल ठाकरे के नेतृत्व मे स्थापित शिव सेना ने माग की कि नौकरियो और छोटे व्यापारो मे महाराष्ट्रीयन लोगो को प्राथमिकता दी जाय और महाराष्ट्रीयन उन्हे माना गया जिनकी मातृभाषा मराठी हो। यह घोषित किया कि तमिल लोग ऑफिस की नौकरियां जैसे क्लर्क और प्राइवेट कम्पनियो के टाइपिस्टो तथा चाय की दुकानो और रेस्तरा जैसे छोटे व्यापारो मे बहुत ज्यादा सख्या मे मौजूद है। 1969 मे शिवसेना ने बम्बई शहर मे दक्षिण भारतीयो के खिलाफ विशेषकर तमिलो के विरूद्ध हिसा और आगजनी का नगा नाच किया, उनकी चाय की दुकानो और रेस्तराओ को लूटकर बर्बाद कर दिया गया, तमिल लोगो की कारे उलट दी गई और दुकानो पर से तमिल साइन बोर्ड नोच डाले गये।[95] मार्च 1981 मे महाराष्ट्र मे दक्षिण भारतीयो के विरूद्ध पुन हिसात्मक कार्यवाहिया की गई।[96] कर्नाटक मे भी मलियाली भाषी लोगो के विरूद्ध हिसात्मक कार्यवाहिया की गई थी जिसके परिणामस्वरूप बहुत से व्यापारी केरल वापस चले गये।[97] कर्नाटक मे कन्नड साहित्य परिषद के अध्यक्ष ने यह धमकी दी थी कि यदि कर्नाटक के लोगो के साथ नौकरियो मे भेदभाव नही समाप्त किया गया तो वह कर्नाटक को दूसरा असम बना देगे। उन्होने यह भी शिकायत की है कि केन्द्रीय उद्योगो मे छोटी–छोटी नौकरिया भी बाहर वालो को ही दी जाती है। और ऊँचे पदो की स्थिति तो और भी खराब है। कोलार के क्षेत्र मे जहा पर केन्द्रीय सरकार द्वारा सोना निकालने का कारखाना स्थापित किया गया है, वहा पर

92 द टाइम्स ऑफ इण्डिया, नवम्बर 20,, 1985, पृ0 4 ।
93 तदैव, अप्रैल 3, 1987 पृ0 7 ।
94 तदैव, मार्च 24, 1981 पृ0 7 ।
95 द टाइम्स ऑफ इण्डिया, मार्च 14, 1981, पृ0 9 ।
96 चन्द्र, विपिन, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी (2002), पूर्व उद्धत कृति, पृ0 178–179 ।
97 द हिन्दुस्तान टाइम्स, दिसम्बर 19, 1986, पृ0 6 ।

भी कर्नाटक के लोगो की स्थिति यतीमो जैसी है।[98] कर्नाटक के पूर्व मुख्यमत्री गुण्डुराव ने 1980 मे यह कहा था कि जब यहा के उद्योगो मे कर्नाटक की भूमि, कर्नाटक का पानी तथा कर्नाटक की बिजली प्रयोग की जाती है तो इन उद्योगो मे शत–प्रतिशत नौकरिया भी कर्नाटक के लोगो को ही दी जानी चाहिये।[99]

यहा पर यह चर्चा करना भी आवश्यक है कि कर्नाटक मे विहल नागराज के नेतृत्व मे 'कन्नड, भालू वलीगर्स' नाम का एक सगठन बनाया गया है जो यह चाहता है कि गैर कन्नाडिगास कर्नाटक से चले जाए। बम्बई मे शिवसेना की तरह से यह सगठन भी हिसात्मक कार्यवाही करता है। कर्नाटक मे भी इस सगठन ने दीवारो पर ऐसे पोस्टर लगाये जिनमे केरल तथा तमिलनाडू के लोगो को कर्नाटक छोडकर चले जाने को कहा था।

उडीसा मे भी मावाडियो पर कुछ हमले किये गये थे और बेलागीर मे उनकी सम्पत्ति को जला दिया गया तथा कुछ अन्य शहरो मे उन्हे उडीसा छोडकर जाने को कहा गया था।

उपरोक्त से यह सिद्ध हो जाता है कि भूमिपुत्र का सिद्धान्त देश के अनेक भागो मे कैसर के रोग की तरह फैल गया है और यदि इस पर नियन्त्रण नही रखा गया तो यह देश की एकता और अखण्डता के लिये खतरनाक सिद्ध हो सकता है क्योकि इस सिद्धान्त (भूमिपुत्र सिद्धान्त) के आधार पर देश के कई भागो मे पृथक राज्य आन्दोलन चल रहे है। ये आन्दोलन म0प्र0 मे छत्तीसगढ, उ0प्र0 मे उत्तराचल, बिहार, उडीसा, प0 बगाल और मध्य प्रदेश के कुछ इलाको मे झारखण्ड, असम मे बोडोलैण्ड एव प0 बगाल मे गोरखालैण्ड है, जिनका अध्ययन अगले अध्याय, अध्याय 5 'भारत मे क्षेत्रीय आन्दोलन' के अन्तर्गत किया गया है।

फिर भी, समकालीन भारत मे जहॉ 1960 के दशक से ही जारी पक्षपातपूर्ण और प्राथमिकता पर आधारित नियन्त्रण अब तक चल रहे है, वही प्रवासियो के खिलाफ दुश्मनी और हिसा हाल के वर्षों मे काफी कम हुयी है। यहा यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि देश के अन्दर प्रवासियो की आवाजाही कभी नही रूकी है बल्कि अन्तर्राज्यीय गतिशीलता पहले से काफी बढी है। परन्तु समस्या अगले आने वाले लम्बे समय तक बनी ही रहेगी खासकर तब तक तो जरूर, जब तक कि आर्थिक विकास, बेरोजगारी, विशेष रूप से मध्यवर्गीय तबको मे बेरोजगारी तथा क्षेत्रीय असमानताओ का समाधान नही कर लिया जाता।

वस्तुत आर्थिक धरातल पर, स्वतन्त्र भारत की पूजीवादी विकास प्रणाली ने दो प्रकार से क्षेत्रीयतावाद मे वृद्धि की है। पहला तो यह है कि पूजीवादी अर्थव्यवस्था तीव्र रूप से बढती जनसख्या की तुलना मे काफी धीमी गति से विकसित हुयी है। दूसरे, यद्यपि कृषि एव उद्योगो के क्षेत्रो मे पूजीवादी विकास प्रणाली ने अधिक आमदनी एव खुशहाली को उत्पन्न किया है, परन्तु इसका वितरण असमान रहा है। एक ओर तो गरीबी और असमानता बढी है दूसरी ओर नये सामाजिक समूह भी प्रकट हुये है, जिनसे शक्ति सम्बन्धो के नये समीकरण भी बने।

---

98 इण्डियन एक्सप्रेस, अप्रैल 21, 1980, पृ0 4 ।
99 द ट्रिब्यून, मार्च 18, 1981, पृ0 4 ।

राजनीतिक स्तर पर भी क्षेत्रीयतावाद के लिये दो प्रमुख उत्तरदायी कारक है प्रथम भारतीय राज्य स्वतन्त्रता के पश्चात् जनमानस की आकाक्षाये पूरा करने मे ये न्यूनाधिक रूप से असमर्थ होने के कारण वैधता के गम्भीर सकट से गुजर रहा है। इसी के साथ ही भारतीय राज्य सस्थागत व्यवस्था एव उसको विनियमित करने वाले मानदण्डो को बरकरार रखने और प्रोन्नत करने मे असफल रहा है। इस असफलता ने एक ओर नेताओ को राष्ट्रीय एकता को आर्थिक सस्कृति और क्षेत्रीय एकता के सदर्भो मे परिभाषित करने का अवसर दिया है और दूसरी ओर, ऐसे नेतृत्व ने आत्मरक्षा के लिये इस सस्थागत व्यवस्था, जिसने सदैव व्यक्ति एव राज्य के बीच एक मध्यवर्ती का काम किया है, की सरचना एव क्रियाओ को कमजोर करने का भी प्रयास किया है। चूकि नेतागण अपने निर्वाचन मण्डलो को सफलतापूर्वक सजोकर नही रख पाये है, इसलिये सत्ता मे बने रहने की अनिवार्यता ने उन्हे लोगो को अपने सकीर्ण राजनीतिक स्वार्थों की परिपूर्णता हेतु इतर सस्थान तरीके अपनाने पर बाध्य कर दिया है। स्पष्ट है कि राजनीतिक आवोहवा की ऐसी अधोगति क्षेत्रीयतावाद के पनपने के लिये एक आदर्श वातावरण पैदा करती है।

भारत में क्षेत्रीय आन्दोलन

भौगोलिक स्थिति, ऐतिहासिक परम्पराओ, जातीय, धार्मिक और भाषायी सम्बन्धो तथा आर्थिक मागो ने भारत मे क्षेत्रीयतावाद को जन्म दिया है। स्वाधीनता सग्राम के दौरान भी यद्यपि अलगाव की भावना विद्यमान थी, परन्तु क्षेत्रीयतावाद की प्रवृत्ति स्वतन्त्रता के बाद ज्यादा तीव्र हुयी क्योकि इस दौरान हुये असमान आर्थिक विकास की वजह से यह अधिक तेजी से उभरकर सामने आयी, किन्तु इसकी उत्पत्ति के मूल स्वतन्त्रता पूर्व के भारत मे ही खोजे जा सकते है।

स्वतन्त्रता पूर्व भारत में क्षेत्रीय आन्दोलन

स्वतन्त्रता पूर्व औपनिवेशिक शासन के अधीन होने के कारण, भारत मे कई क्षेत्रो के आर्थिक स्वरूप की अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप से नही हुयी, वरन् क्षेत्रीय आन्दोलनो ने जाति, धर्म या भाषा का चोगा पहन लिया। ब्रिटिश औपनिवेशिक शासको ने पुन इन सामाजिक मतभेदो का पोषण तेजी से बढते हुये राष्ट्रवाद और भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के प्रभाव को रोकने के लिये किया। इसके कारण कुछ आन्दोलनो ने राष्ट्र विरोधी शक्ल अख्तियार कर ली। मद्रास प्रान्त मे जातीय चेतना और पजाब मे धर्म पर आधारित क्षेत्रीय राजनीति ऐसे ही तत्व थे जिन्होने स्वतन्त्रतापूर्व भारत मे क्षेत्रीयतावाद की नीव डाली।

मद्रास प्रान्त मे क्षेत्रीय आन्दोलनो के उत्स तत्कालीन जातीय सघर्षों मे खोजे जा सकते हैं। 1914 के आस–पास गैर ब्राह्मणो के हितो को सुरक्षित करने के उद्देश्य से जातीय आधार पर कुछ सगठनो का निर्माण हुआ। इनमे से एक प्रमुख सगठन 'द्रविड सघ' था, जो कि दक्षिण भारत मे जातीय मिश्रण का सूचक था और यह विचार फैला रहा था कि ब्राह्मण जाति आर्य मूल की है तथा ब्राह्मणो की सस्कृति वास्तव मे उत्तर भारत से सम्बन्धित और सर्वथा भिन्न है , एव उनका उद्देश्य द्रविड लोगो के राजनीतिक, सास्कृतिक, सामाजिक एव आर्थिक हितो की रक्षा करना तथा ब्रिटिश राज्य के तहत एक 'द्रविड राज्य' का निर्माण करना था। 1916 मे 'द्रविड सघ' मे से ही 'साऊथ इण्डियन लिबरल फेडरेशन' का जन्म हुआ जिसने गैर ब्राह्मणो की सामाजिक, शैक्षणिक तथा रोजगार सम्बन्धी स्थिति का सर्वेक्षण किया था। इसमे ब्राह्मणो को सिर्फ एक जातीय श्रेणी ही नही अपितु एक वर्ग भी बताया गया था। साथ ही इन्हे बाह्य आक्रामक और साम्राज्यवादी प्रभुता के रूप मे पेश किया गया था, जिन्होने कुछ शताब्दियो पूर्व दक्षिण भारत पर प्रभुत्व स्थापित कर लिया था।

वस्तुत इस सस्था का उद्देश्य न तो आम जनता का सामाजिक विकास एव उन्नति करना था और न ही क्षेत्रीय सस्कृति का पुनरूद्धार करना था। वरन् इसका वास्तविक उद्देश्य स्थानीय जनता के कुछ विशिष्ट वर्गों के हितो का सरक्षण करना था, जिससे वे औपनिवेशिक शासको को प्रसन्न करके और ब्रिटिश शासन के प्रति अपनी वफादारी दिखाकर सामाजिक सम्मान तथा राजनीतिक प्रभाव हासिल कर सके। इसका प्राक् पूजीपति चरित्र इस तथ्य से और भी स्पष्ट हो जाता है कि इसके सस्थापक या तो अवकाश प्राप्त आई0सी0एस0 अफसर थे या फिर शहरी व्यवसायी और बडे भू स्वामी। इसने शुरू से ही एक दबाव गुट के रूप मे शिक्षा एव रोजगार के क्षेत्र मे और साथ ही राजनीतिक सरक्षण प्राप्त करने के लिये अपने सरकार समर्थक हाव–भाव द्वारा

सरकारी रियायते एव विधायी और कार्यपालिका सम्बन्धी शक्ति प्राप्त करने का प्रयास किया। वस्तुत इस प्रकार यह एक क्षेत्रीय आन्दोलन के स्थान पर क्षेत्रीय सस्था अधिक रह गयी। इस प्रकार क्षेत्रीय सास्कृतिक और आर्थिक विकास मे इसका योगदान बिल्कुल शून्य रहा और सास्कृतिक उद्धार का यह कार्य इसने एक अन्य आन्दोलन जो 'आत्म सम्मान आन्दोलन' के नाम से जाना जाता है, के लिये छोड दिया।

'आत्म सम्मान आन्दोलन' ने तमिल अखबारो और भाषायी लेखो द्वारा तमिल सस्कृति और इसके गौरवशाली अतीत को उन्नत करने का एक बडा एव सफल प्रयास किया। इसने सस्कृत भाषा और ब्राह्मणो मे समरूपता स्थापित कर इसे आर्य सस्कृति का हिस्सा बतलाया। इस प्रकार एक ऐसे द्रविड आन्दोलन का आविर्भाव हुआ जो तमिल चेतना का पर्याय और ब्राह्मणो तथा ब्राह्मणवाद का विरोधी था। इसने अखिल भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस को 'आर्य' 'उत्तर' और 'सस्कृत' के समरूप माना। इस प्रक्रिया मे इसने जस्टिस पार्टी के साथ भी गठजोड किया। यद्यपि 'आत्मसम्मान आन्दोलन' जातिवाद विरोध और तर्क बुद्धिवाद पर आधारित था तथा इसने निम्न जातियो और निम्न वर्गों मे नवीन चेतना जगायी थी। तथापि, इन दोनो के आपस मे मिल जाने से 1944 मे द्रविड कजगम का जन्म हुआ जिसने पृथक द्रविडनाडू (द्रविडो के राष्ट्र) की माग की। इसी के प्रभाव के तहत पेरियार ने, जिन्होने 20वी सदी के तीसरे दशक मे अपने राजनीतिक जीवन की शुरूआत एक राष्ट्रवादी काग्रेसी के रूप मे की थी, ने 15 अगस्त 1947 को भारत की आजादी मनाने का विरोध किया और इसे 'काला दिवस' अर्थात 'दु ख ओर सुख का दिन' कहा क्योकि उनकी दृष्टि मे इस दिन से उत्तर भारत के आर्यों, ब्राह्मणो और काग्रेस का दक्षिण भारत के द्रविड एव गैर–ब्राह्मणो पर शासन प्रारम्भ हो जायेगा।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इस उग्रवादी रवैये के कारण द्रविड कजगम मे दरार पड गयी और द्रविड मुनेत्र कजगम राजनीतिक रूप से अधिक लोकप्रिय साबित हुयी जिसने 1967 मे अपनी सरकार बनायी। लेकिन, द्रविड कजगम की मागे अब समाप्त नही हो गई है, वरन् अब वह क्षेत्रीय दल के स्थान पर क्षेत्रीय आन्दोलन बन गया , जो क्षेत्रीय स्वतन्त्रता तथा बेहतर आर्थिक विकास की माग रट लगाये हुये था। जातीय चेतना अन्य दलो के साथ–साथ काग्रेस मे भी फैल गई जो कि अब मद्रास की राजनीति का व्यवहारिक ढर्रा हो गयी है।

जबकि, पजाब की राजनीति मे बहुत से तत्वो के सयोजन के कारण एक विशेष प्रकार के ढॉचे का जन्म हुआ। धार्मिक विभाजन, आर्थिक विषमताओ और क्षेत्रीय विभिन्नता के कारण पजाब के क्षेत्रीयतावाद की प्रवृत्ति मे धर्म एक विशिष्ट तत्व के रूप मे उभरा है। ब्रिटिश शासन के प्रारम्भ के समय पजाब मे तीन धार्मिक समूह थे– हिन्दू, मुस्लिम और सिक्ख। इनकी तीन भाषाये क्रमश हिन्दी, उर्दू और पजाबी तथा तीन लिपिया क्रमश नागरी, अरबी और गुरूमुखी थी। जनसख्या अथवा साम्प्रदायिकता किसी भी दृष्टि से कोई भी समूह विशेष राज्य पर नियन्त्रण करने की स्थिति मे नही था। राज्य मे हिन्दू, मुस्लिम और सिक्ख जनसख्या का प्रतिशत क्रमश 55प्रतिशत, 30 प्रतिशत और 13 प्रतिशत था। पजाब के पश्चिमी क्षेत्र मे जहा मुसलमानो का पूर्ण बहुमत था, वही पूर्वी हिस्से मे

हिन्दुओ की प्रधानता थी और मध्य पजाब मे तीनो धार्मिक सम्प्रदाय लगभग बराबर–बराबर बटे हुये थे। इस धार्मिक विभाजन के साथ–साथ यहा आर्थिक असमानता भी विद्यमान थी। असमान आर्थिक विकास ने पजाब के विभिन्न क्षेत्रो मे धार्मिक वैमनस्य को बढावा दिया। जहा पश्चिमी और मध्य पजाब (जहाँ अधिकतर मुस्लिम जनसख्या थी) आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न था। वही पूर्वी पजाब का क्षेत्र आर्थिक दृष्टि से पिछडा था। इन आर्थिक विषमताओ को धर्म और जातिवाद के प्रभाव ने नया रग दे दिया। अग्रेजो के आने के बाद एक नई प्रकार की प्रतिस्पर्द्धा का जन्म हुआ जिसके कारण साम्प्रदायिकता केवल विकसित ही नही सगठित भी हुयी। व्यापारी तथा खेतिहर[1] जनता के बीच की इस खाई का शोषण करते हुये सरकार ने "फूट डालो और शासन करो" की नीति अपनायी। जातीय विभाजनो को बढाया गया और राजनीति को धार्मिक रग मे रग दिया गया। सिक्ख और मुसलमान खेतिहर समूहो के प्रति क्षमाशीलता की नीति द्वारा सरकार ने हिन्दू व्यापारी समूहो के बीच यह विश्वास उत्पन्न कर दिया कि अग्रेज धर्म के आधार पर विभिन्न समूहो के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार कर रहे है। इस विश्वास के कारण हिन्दुओ के "आर्य समाज ने 'गोरक्षा' की अपील की तथा हिन्दी भाषा का देवनागरी लिपि मे समर्थन किया।" इस प्रवृत्ति ने सिक्खो को हिन्दू सम्प्रदाय से और अधिक दूर करने का कार्य किया।

शहरी हिन्दू व्यापारी वर्ग और ग्रामीण मुस्लिम भू स्वामी वर्ग के बीच सिक्ख खेतिहर वर्ग के हित विभाजित हो जाने के कारण बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ तक साम्प्रदायिक शत्रुता तथा ग्रामीण–शहरी आर्थिक हित एक दूसरे से मेल खाने लगे फलस्वरूप पजाब मे साम्प्रदायिक हिसा पनपने लगी। ब्रिटिश सरकार ने 1890 मे 'भूमि अपहरण नियम' पास किया जिसने साम्प्रदायिक वैमनस्य को और बढावा दिया। इसका सिक्ख किसानो ने जहाँ विरोध किया वही हिन्दू बुर्जुआजी के एक समूह ने ऐसा महसूस किया कि सरकार की नीतिया मुसलमान भूस्वामी और सिक्खो (किसानों) को अपने पक्ष मे रखने की है। क्योकि वह (सरकार) काग्रेस के बढते प्रभाव को रोकना चाहती है तथा यह भी चाहती है कि ये सिक्ख और मुसलमान दोनो ही काग्रेस मे शामिल न होने पाये। इसका उन्होने सीधा सा यह निष्कर्ष निकाला कि वह ब्रिटिश सरकार का सहयोग करे। फलत हिन्दुओ के इस मध्य वर्ग ने हिन्दू सभा का निर्माण किया जिससे सार्वजनिक सेवाओ मे हिन्दुओ के लिये अधिक भाग प्राप्त किया जा सके। किन्तु इसकी वजह से आर्थिक एव राजनीतिक विकास मे तथा काग्रेसी कार्यकलापो मे साम्प्रदायिकता पुनर्जीवित हो गई। काग्रेसी अथवा अन्य वामपथी नेतृत्व की अनुपस्थिति के कारण पीडित सिक्ख कृषको की आवाज उठाने वाला पजाब मे लगभग कोई दल न था, इससे ब्रिटिश नीतियो के कारण गरीब हुये ये कृषक मध्यवर्गीय साम्प्रदायिक सगठनो की राजनीति का मोहरा बन गये।

1909 के बाद साम्प्रदायिक आधार पर मतदान, स्थानीय सस्थाओ के क्रियाकलापो मे वृद्धि, विधायी कौसिलो के विस्तार तथा धार्मिक अल्पमतो की मान्यता ने सिक्खो को पृथक प्रतिनिधित्व की माग के लिये उकसाया। 1919 के माण्टेग्यू चेम्सफोर्ड सुधारो मे सिक्खो की इस माग को स्वीकार

---

1 शहरी व्यापारी जातियो मे अग्रवाल, अरोडा और खत्री मुख्य थे और खेती करने वालो में मुख्य सम्प्रदाय मुस्लिम और सिक्ख जातियो के थे।

कर लिया गया और उन्हे पजाब मे 18.3प्रतिशत सीटे प्राप्त हो गई, यद्यपि चीफ खालसा दीवान ने 30प्रतिशत सीटो की माग की थी। परिणामो की निराशा तथा अपने प्रति एक समूह विशेष की भावना ने उग्र सिक्ख आन्दोलन को जन्म दिया जिसके कारण 1919 मे "सेन्ट्रल सिक्ख लीग" का जन्म हुआ। लीग ने शिरोमणि गुरूद्वारा प्रबन्धक कमेटी का निर्माण 1920 मे किया, जिसका उद्देश्य गुरूद्वारो का प्रबन्ध करना था। इसी समय अकाली पार्टी का गठन भी हुआ जिसने गुरूद्वारो को महन्तो के प्रभुत्व से छुडाने के लिये अहम् भूमिका अदा की। इसके अलावा इसके राजनीतिक उद्देश्य भी थे। इसने काग्रेस द्वारा "स्वराज के लिये सघर्ष" का न केवल समर्थन किया बल्कि सिक्ख कृषक वर्ग का सगठन भी किया। इसने सिक्ख मध्यवर्ग को राजनीति के नजदीक ला काग्रेस के समानान्तर पक्ति मे खडा कर दिया। इसने धार्मिक राजनीतिक और गुरूद्वारा सुधारो पर विशेष बल दिया। इससे हिन्दुओ और सिक्खो के बीच खाई बढती गई और इस प्रकार राष्ट्रीय स्तर पर साम्प्रदायिक राजनीति का आधार तैयार हो गया।

1906 मे मुस्लिम लीग का आर्विभाव हुआ जिसने अपनी पृथकतावादी नीति के द्वारा साम्प्रदायिक राजनीति को बढावा दिया। सिक्खो ने पाकिस्तान निर्माण के भय के कारण राष्ट्रवादी नेतृत्व और सरकार से भविष्य के लिये प्रचुर सरक्षण की माग की। राजगोपालचारी प्रस्ताव के प्रति काग्रेसी रवैये को देखते हुये सिक्ख, सघवादियो और मुस्लिम लीग के साथ वार्तालाप के लिये उत्साहित हुये, क्योकि राजगोपालचारी फार्मूले के द्वारा पजाब का विभाजन इस प्रकार होना था कि मुस्लिम बहुमत वाले भाग को पाकिस्तान मे शामिल होना था, जबकि अन्य जिले हिन्दुस्तान मे रहने वाले थे। सिक्खो को यह बटवारा सिक्ख समुदाय रूपी जीते जागते प्राणी के अगो का बटवारा लगा। अत अकाली नेता हर प्रकार से सिक्खो को एक सूत्र मे पिरोना चाहते थे जिससे बटवारा न हो। सघवादियो और मुसलमानो के साथ सिक्खो के मतभेद का आधार वर्गीय था। उन्होने सिक्खिस्तान की माग की जिसमे आजाद पजाब का क्षेत्र और विभिन्न सिक्ख शासित राज्यो को मिलाने की बात कही। इसके पीछे तर्क यह रखा गया कि जिन्ना की यदि मुसलमानो के लिये पृथक राज्य की माग को माना जा सकता है तो सिक्खो के लिये वैसे ही अलग स्वतन्त्र राज्य का निर्माण क्यो नही किया जा सकता ? कैबिनेट मिशन के समय 1946 मे 'अकाली दल' ने सिक्ख राज्य की माग की। जब वे अपने इस मिशन मे नाकामयाब रहे तो इन्होने अतरिम सरकार के समय काग्रेस के विरूद्ध सावधानी बरतने की माग शुरू कर दी। इस प्रकार पजाब मे धर्म और राजनीति एक दूसरे मे बिल्कुल गड्ड–मड्ड हो गया और धार्मिक सम्प्रदायो के अविभाजित और सगठित सकेन्द्रण ने साम्प्रदायिक राजनीति को जन्म दिया। इसके कारण भारत मे आजादी के पूर्व ही क्षेत्रीयतावाद की नीव रख गई, जो दुर्भाग्यवश आजादी के बाद के भारत की भी कहानी है। एक औद्योगिक पूजीपति वर्ग एव काग्रेस की अनुपस्थिति के कारण पजाब मे राष्ट्रीय आन्दोलन शहरी हिन्दू व्यापारी और व्यावसायिक वर्ग के समर्थन पर आश्रित रहा। जो नवोदित बुर्जुआजी, भू–स्वामी और कृषक वर्ग के अन्तर्गत उभरी वह प्रान्तीय राजनीति को साम्प्रदायिक दलदल मे फसाने मे व्यस्त हो गई। आजादी की प्राप्ति ने और अन्य राजनीतिक

आन्दोलनो ने इस धार्मिक आधार को राजनीति मे और मजबूत कर दिया जिसके कारण राष्ट्रीय राजनीति और पजाब की राजनीति पृथक हो गई।

स्वाधीन भारत में क्षेत्रीय आन्दोलन

1947 मे जब भारत स्वतन्त्र हुआ तब देश मे सैकडो की सख्या मे छोटी–छोटी देशी रियासते थी जिनकी अलग सार्वभौमिकता थी।[2] सरदार बल्लभ भाई पटेल की राजनीतिक सूझ–बूझ के परिणामस्वरूप देशी रियासतो के भारत सघ मे विलय की समस्या आसानी से सुलझ गई। स्वतन्त्र भारत के इतिहास मे यह प्रथम अति महत्वपूर्ण कार्य था जिसके बिना देश मे प्रजातान्त्रिक सस्थाओ का विकास सम्भव नही था। देशी रियासतो का एकीकरण करते हुये सघ के राज्यो को चार श्रेणी मे विभाजित किया गया।[3] भाग 'ए' मे 216 देशी रियासतो तथा भाग 'बी' मे 275 रियासतो का समामेलन किया गया।[4] हैदराबाद, मैसूर एव जम्मू कश्मीर को भाग बी मे स्थान दिया गया। भाग 'सी' मे 61 देशी रियासतो को शामिल किया गया, जिन्हे सघ शासित क्षेत्र घोषित किया गया। भाग 'डी' मे अण्डमान निकोबार द्वीप समूह को शामिल किया गया और इस प्रकार भारत के भौगोलिक मानचित्र का नया स्वरूप गठित हो सका। इतना ही नही, इस नीति ने सम्पूर्ण राष्ट्र को एक राजनीतिक सरचना के रूप मे एकीकृत करने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इससे सारी प्रशासनिक कमिया और वित्तीय जटिलताये दूर हो गई और भारत एक सम्प्रभु, प्रजातान्त्रिक तथा कल्याणकारी राज्य घोषित हुआ।

भारत सघ मे देशी रियासतो के विलय के बाद का गठन एक अस्थाई व्यवस्था थी। भारत सघ की इकाइयो के सघीकरण की दिशा मे शीघ्र ही एक नये दृष्टिकोण की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। देश की राजनीतिक स्थितियो मे भी नये परिवर्तन नजर आने लगे थे। आजादी के बाद भाषा के आधार पर उठा आन्ध्र आन्दोलन काफी व्यापक बना। आन्दोलन की परिणति वहा के नेता श्री रामुलु की अनशन के दौरान मृत्यु और तत्पश्चात् जे0वी0पी0 आयोग की रिपोर्ट के आधार पर 1953 मे हैदराबाद और मद्रास राज्य के तेलगू भाषी क्षेत्र को मिलाकर भाग 'क' के आन्ध्र प्रदेश राज्य के गठन के रूप मे हुयी। आन्ध्र प्रदेश के निर्माण के साथ ही सम्पूर्ण राष्ट्र की इकाइयो के पुनर्गठन की आवश्यकता महसूस की जाने लगी।[5] दिसम्बर 1953 मे केन्द्र सरकार द्वारा राज्य पुनर्गठन आयोग की स्थापना की गई। राज्य पुनर्गठन आयोग ने अपनी अनुशसा मे राज्यो की इस प्रकार की श्रेणियो को अनावश्यक बताया और इन 29 राज्यो को 16 राज्य और 3 केन्द्र शासित प्रदेशो मे विभाजित करने की सस्तुति की।

---

2 भारत का जो भाग अग्रेजो के सीधे शासन मे था उसे ब्रिटिश भारत कहा जाता था इसके अलावा देशी राजाओ के शासन मे करीब 500 छोटी बडी रियासते थी। ये स्वतन्त्र राज्य नहीं; ब्रिटिश अधिपत्य के अन्तर्गत थे। किन्तु अग्रेजो के हटने से भारत और पाकिस्तान को अपने आप इनके ऊपर अधिपत्य नहीं मिला। इसलिये देशी रियासतो को शेष देश मे मिलाने की टेढी समस्या पैदा हुयी। देशी रियासतो के भारत में विलय के लिये देखे– चन्द्र, विपिन, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी (2002), *आजादी के बाद का भारत, 1947–2000*, दिल्ली विश्वविद्यालय, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, पृ0 94–101 ।

3 देखे इसी शोध ग्रन्थ का परिशिष्ट 'ड'।

4 भाग 'ए' मे वे राज्य थें जो ब्रिटिश काल मे प्रान्त कहलाते थे और यहा के प्रमुख गर्वनर कहलाते थे। जबकि भाग 'बी' में देशी राज्यों को एकीकृत कर बनाये गये राज्य थे।

5 भाषायी आधार पर राज्यों के पुनर्गठन के विषय में विस्तार से जानने के लिये देखे इसी शोध ग्रन्थ का अध्याय तीन।

राज्य पुनर्गठन आयोग के प्रतिवेदन को कतिपय सशोधनो के साथ स्वीकार करते हुये ससद ने 1956 मे राज्य पुनर्गठन अधिनियम पारित किया। इस अधिनियम के अन्तर्गत चौदह पूर्ण राज्य और 6 केन्द्र शासित प्रदेशो का गठन किया गया।[6] राज्य पुनर्गठन अधिनियम 1956 के अस्तित्व मे आने के बाद इस समस्या के स्थाई समाधान का दावा भले ही सरकार द्वारा किया जाता रहा है तथापि पुनर्गठन से सम्बन्धित नई–नई समस्याये आती गई। 1954 मे फ्रास से हस्तान्तरण के बाद फ्रासीसी उपनिवेश चन्द्रनगर, माहे, यनाम तथा कारेकल को भारतीय राज्यो मे मिलाकर 1962 मे पाण्डिचेरी नाम से सघ शासित क्षेत्र का दर्जा दिया।[7] दिसम्बर 1961 मे पुर्तगाली उपनिवेश को एक सैन्य कार्यवाही द्वारा मुक्त कराकर गोवा, दमन दीव नामक सघ शासित क्षेत्र की रचना की गई।[8] इन्ही दिनो गुजराती एव मराठी भाषी क्षेत्र बम्बई राज्य मे भाषायी आधार पर विवाद के कारण 1960 मे गुजरात का गठन किया गया।[9] 1970 के प्रारम्भिक वर्षों मे मास्टर तारा सिह के नेतृत्व मे अकाली दल ने सिक्खिस्तान की माग रखी। यद्यपि यह माग तो नही स्वीकार की गई तथापि 1966 मे पजाब से हरियाणा को अलग कर दिया गया और चण्डीगढ को सघ शासित क्षेत्र का दर्जा प्रदान करते हुये दोनो राज्यो की सयुक्त राजधानी बनाई गई।[10] 1985 मे राजीव गाधी लोगोवाल समझौते के अन्तर्गत पजाब को चण्डीगढ तथा हरियाणा के जुडे पजाब के हिन्दी भाषी क्षेत्र हरियाणा को देने पर सहमति हुयी[11] लेकिन आज तक इसे अमली जामा न पहनाया जा सका।[12] सघ शासित क्षेत्र हिमाचल प्रदेश को कागडा के कुछ क्षेत्र दिये गये। 1963 मे असन्तुष्ट नागाओ को शान्त करने के लिये असम राज्य के अधीन स्थित "नागा पहाडी एव त्युएनसाग क्षेत्र को मिलाकर नागालैण्ड राज्य का गठन किया गया।[13] 1969 मे असम को पुन विघटित कर मेघालय नामक स्वशाषी उप राज्य का गठन किया गया।[14] 1971 मे हिमाचल प्रदेश

6 देखे इसी शोध ग्रन्थ का परिशिष्ट 'ड' ।

7 पाडिचेरी की फ्रासीसी बस्ती (करायल नाहे और यनाम सहित) जिसे 1954 मे फ्रासीसी सरकार ने भारत को अध्यार्पित किया था, 1962 तक 'अर्जित राज्यक्षेत्र' के रूप मे प्रशासित किया जा रहा था क्योकि अध्यर्पण सन्धि को फ्रासीसी ससद ने अनुमोदित नहीं किया था। अनुमोदन के पश्चात् फ्रासीसी बस्तियों का यह राज्य क्षेत्र दिसम्बर 1962 मे सघ राज्य क्षेत्र बन गया– बसु, डी0डी0, (1994), *भारत का सविधान एक परिचय,* नई दिल्ली प्रेस्टिस हाल ऑफ इण्डिया प्रा0लि0 पृ0 66 । सविधान (चौदहवा सशोधन) अधिनियम, 1962 ।

8 सविधान (बारहवॉ सशोधन) अधिनियम, 1962 ।

9 बम्बई पुनर्गठन अधिनियम, 1960 ।

10 पजाब पुनर्गठन अधिनियम, 1966 ।

11 स्टेट्समैन, 26 07 1985 ।

12 पजाब करार से पजाब समस्या का हल नहीं निकला कारण यह था कि–
(क) मुख्यमत्री (सुरजीत सिह बरनाला) सरकारिया आयोग के समक्ष राज्य का पक्ष प्रस्तुत नही कर सके।
(ख) चण्डीगढ के बदले मे पजाब के जो हिन्दी भाषी क्षेत्र हरियाणा को दिये जाने थे उनकी पहचान करने के लिये जो आयोग बना था वह अपना कार्य पूरा नहीं कर सका क्योकि पजाब सरकार ने उसके समक्ष बार–बार आक्षेप उठाये।
(ग) नवम्बर 1989 के निर्वाचन मे मान ग्रुप के जो लोग ससद के लिये निर्वाचित होकर आये थे वे नित्य नई–नई मागे प्रस्तुत करते थे। इसके कारण राष्ट्रीय मोर्चा सरकार से कोई भी मैत्रीपूर्ण समझौता नही हो पाया।
(घ) आतकवाद यथावत् चलता रहा।– बसु, डी0डी0, (1994), पूर्व उद्धत कृति, पृ0 392 ।

13 नागालैण्ड राज्य अधिनियम, 1962 ।

14 असम पुनर्गठन (मेघालय) अधिनियम, 1969 ।

को राज्य का (पच राज्य) स्तर प्रदान किया गया[15] तथा उत्तर पूर्वी क्षेत्र को पुनर्गठित कर मेघालय को पूर्ण शासित क्षेत्र के रूप मे मिजोरम एव अरूणाचल प्रदेश का आविर्भाव हुआ।[16] 1986 मे केन्द्र सरकार का लालडेगा से समझौता हुआ जिसके परिणामस्वरूप मिजोरम को देश के 23वे राज्य के रूप मे मान्यता मिली।[17] 1986 मे अरूणाचल प्रदेश[18] एव 1987 मे गोवा को राज्य का दर्जा प्रदान किया गया।[19] 1974 मे सिक्किम को सहयोगी राज्य का दर्जा प्रदान किया गया था[20] जिसे बाद मे पूर्ण राज्य का दर्जा प्रदान किया गया।[21]

फिर भी राज्यो का भाषायी और दूसरे आधार पर पुनर्गठन हो जाने के बाद उन क्षेत्रो मे जो पुनर्गठन के वक्त अपने मूल राज्यो से जुडे थे, वहा अलग राज्य की माग हो रही है। राज्यो के पुनर्गठन एव पृथक राज्य की स्थापना की माग के समर्थन मे देश मे उत्तराचल, छत्तीसगढ एव झारखण्ड के अलावा विदर्भ, गोरखालैण्ड, बोडोलैण्ड, तेलगाना, मराठवाडा, रूहेलखण्ड, महाकौशल, कोडागू, मिथिलाचल, सीमाचल, भोजपुरी, हरित प्रदेश, गारोलैण्ड, रूहेलखण्ड, बुन्देलखण्ड आदि आन्दोलन चल रहे है।

सारणी 4 1

प्रस्तावित पृथक राज्य आन्दोलन एवं उनकी वर्तमान स्थिति

आन्दोलन	सम्बन्धित क्षेत्र/प्रदेश	आन्दोलन	सम्बन्धित क्षेत्र/प्रदेश
लद्दाख	लद्दाख	तेलगाना	आन्ध्र प्रदेश
विदर्भ	म0प्र0एव महाराष्ट्र	मराठवाडा	महाराष्ट्र
कोडागू	कर्नाटक	महाकौशल	उडीसा
पाडिचेरी	पाडिचेरी	रूहेलखण्ड	उ0प्र0
मिथिलाचल	बिहार	बुन्देलखण्ड	उ0प्र0 एव म0प्र0
गोरखालैण्ड	प0बगाल	बघेलखण्ड	उ0प्र0
बोडोलैण्ड	असम	मालवाचल	म0प्र0
ग्रेटर नागालैण्ड	मणिपुर	मध्याचल	बिहार
गारोलैण्ड	मेघालय	मारूच	राजस्थान
मालवा	म0प्र0	सीमाचल	बिहार
किसान/हरित प्रदेश	उ0प्र0	भोजपुरी	बिहार

वर्तमान मे इन आन्दोलनो की गति कुछ स्थिर हो चली थी। परन्तु केन्द्र की राज्य सरकार द्वारा उत्तराचल, वनाचल एव छत्तीसगढ को राज्य का दर्जा दिये जाने से इन आन्दोलनो की गति पुन कुछ तीव्र हुयी है। इनमे से कुछ प्रमुख आन्दोलनो यथा—बुन्देलखण्ड, पूर्वांचल, विदर्भ, बोडोलैण्ड

15 हिमाचल प्रदेश राज्य अधिनियम, 1970 ।
16 पूर्वोत्तर क्षेत्र (पुनर्गठन) अधिनियम, 1971 ।
17 मिजोरम राज्य अधिनियम, 1986 ।
18 अरूणाचल प्रदेश राज्य अधिनियम, 1986 ।
19 गोवा दमन दीव पुनर्गठन अधिनियम, 1987 ।
20 पैतीसवॉं सविधान सशोधन अधिनियम, 1974 ।
21 छत्तीसवा सविधान सशोधन अधिनियम, 1975 ।

एव गोरखालैण्ड का नवीन राज्यो वनाचल एव छत्तीसगढ सहित अध्ययन निम्नवत् है। नवगठित राज्य उत्तराचल का विस्तृत अध्ययन अध्याय–पॉच मे किया गया है।

(मानचित्र– 4 1)

झारखण्ड / वनांचल–

झारखण्ड राज्य का उदय बिहार के विभाजन से हुआ है। 15 नवम्बर 2000 को झारखण्ड राज्य अस्तित्व मे आया। झारखण्ड आन्दोलन का सूत्रपात 1920 मे 'छोटा नागपुर उन्नत समाज' की स्थापना के साथ ही हो गया था। 1928 मे इस सगठन ने साइमन कमीशन से आदिवासियो को विशेष अधिकार दिये जाने की माग की। 1939 मे जयपाल सिह मुण्डा ने 'आदिवासी महासभा' नामक सगठन का नेतृत्व सम्हाला तथा झारखण्ड क्षेत्र को पूर्ण राज्य का दर्जा दिये जाने की माग की।[22]

22 सिविल सर्विसेज क्रानिकल, फरवरी 1996, पृ0 23 एव नवम्बर 1996, पृ0 14 ।

1948 मे जमशेदपुर अधिवेशन मे सयुक्त झारखण्ड पार्टी की स्थापना हुयी, जिसने 1952 के चुनाव मे पृथक राज्य की माग को लेकर चुनाव लडा।[23] 1953 मे राज्य पुनर्गठन आयोग ने पृथक झारखण्ड की माग को इस दृष्टि से अस्वीकृत कर दिया कि राज्यो का पुनर्गठन भाषायी आधार पर हो रहा है और झारखण्ड को भाषायी आधार पर राज्य नही माना जा सकता।[24] तब से लगातार झारखण्ड आन्दोलन से जुडे विभिन्न सगठन पृथक राज्य की माग करते रहे है। 1975 मे शिबू शोरेने, ए0के0राय व विनोद बिहारी महतो ने झारखण्ड मुक्ति मोर्चा का गठन किया जिससे इसमे फिर उभार आया। 1986 मे ऑल झारखण्ड स्टूडेन्ट्स यूनियन का गठन हुआ तो इसकी गति तेज हो गई है। 1989 मे केन्द्र सरकार ने राजीव गाधी की अध्यक्षता मे झारखण्ड मामले पर एक समिति बनाई जिसकी सिफारिश पर राज्य विधानमण्डल ने 1991 मे झारखण्ड क्षेत्र स्वशाषी परिषद की स्थापना के लिये सर्वसम्मति से विधेयक पारित किया।[25] अन्तत अप्रैल 2000 मे विधान मण्डल ने और 2 अगस्त 2000 को लोकसभा ने बिहार पुनर्गठन विधेयक– 2000 पारित कर दिया।

हालाकि झारखण्ड राज्य की मूल परिकल्पना मे बिहार के मौजूदा 18 जिलो के क्षेत्रो के अलावा प0 बगाल के पुरूलिया, बाकुरा एव वीरभूमि, म0प्र0 के रायगढ सरगुजा और उडीसा के मयूरगज, क्योझर, सुन्दरगढ एव सम्भलपुर जिले थे पर झारखण्ड राज्य का निर्माण केवल बिहार के 18 जिलो को मिलाकर ही हो रहा है। स्वप्न की इस खण्डित पूर्ति के बावजूद यह निर्विवाद झारखण्ड क्षेत्र की जनता की उम्मीदो की एक नई शुरूआत है।
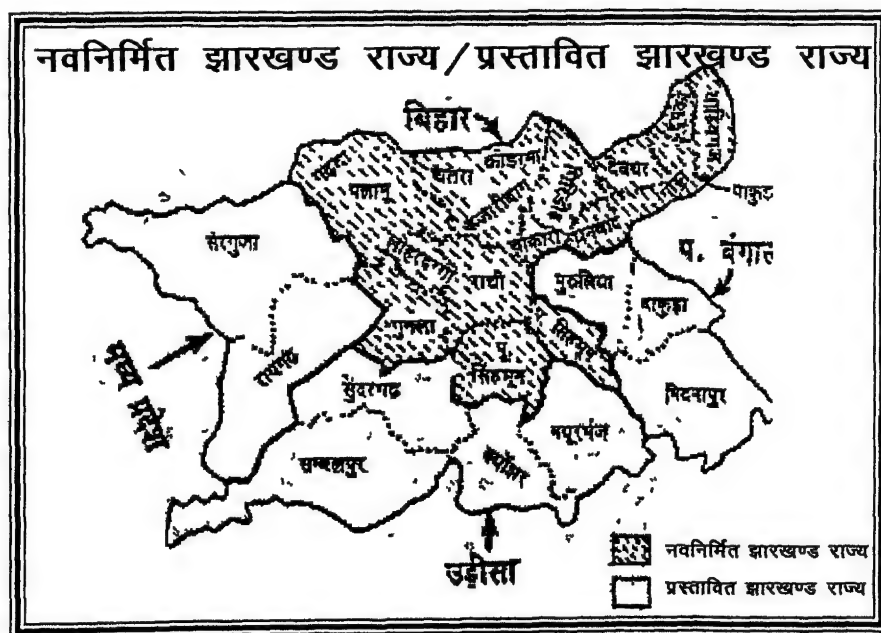
(मानचित्र–4 2)

वास्तव मे झारखण्ड राज्य की आकाक्षा आकस्मिक रूप से नही फूट पडी थी। इसके ठोस ऐतिहासिक कारण रहे है। झारखण्ड के मूल निवासियो का अस्तित्व और सास्कृतिक पहचान ने ही

---

23 सिविल सर्विसेज क्रानिकल, फरवरी 1996, पृ0 23 एव नवम्बर 1996, पृ0 14 ।

24 तदैव

25 इण्डिया टूडे, 16 अगस्त 2000, पृ0 30 ।

झारखण्ड के आन्दोलन को जन्म दिया है। अग्रेजीराज कायम होने के बाद से झारखण्ड मे वहाँ के मूल निवासियो, मुख्यत सथाल, मुडा उराव, खरिया और कोरबा जैसी आदिवासी जातिया और इन्हीं के साथ बाद मे आकर बस गई कुर्मी–महतो तथा कई सदान और दलित जातियो के हाथो से उनकी जमीन छीनी जाने और जगल से इनके अधिकार हडपे जाने की समस्या उठ खडी हुयी थी जो लगातार बढती ही गई है।[26] फलस्वरूप कई जगहो पर स्थानीय विद्रोह हुये जमीन और जगल के सवाल पर ही आजादी के बाद भी वहा जनान्दोलन जारी रहे। इस पूरी समस्या के पीछे झारखण्ड मे लगातार बाहरी लोगो का आना था जिन्होने वहाँ के मूल निवासियो की जमीनो पर कब्जा कर लिया।[27] जगल काटने का ठेका लेकर जगलात को तहस–नहस किया। सबसे ज्यादा बाहरी आबादी तो खदानो, कारखानो और सरकारी कार्यालयो के खुलने से वहा पहुची। फलस्वरूप झारखण्ड की परम्परागत अर्थव्यवस्था तो छिन्न–भिन्न हो ही गयी, वहा की जनसख्या का अनुपात और सतुलन भी बिगड गया। इससे एक सास्कृतिक सकट पैदा हुआ। यहाँ के आदिवासियो ने अनुभव किया कि अपने ही क्षेत्र मे वे बेगाने बनते जा रहे हैं। इस इलाके के तमाम सशाधनो पर 'बाहरी लोगो, जिन्हे आदिवासी 'दिकू' कहते हैं का कब्जा होता जा रहा है। यह प्रक्रिया आजादी के पहले और बाद मे भी जारी रही है। नतीजतन, स्थानीय आदिवासी आबादी काम–धन्धे की तलाश मे बड़ी सख्या मे बाहर जाने को मजबूर होती रही है। इसका इस क्षेत्र की जनसाख्यकीय सरचना पर जर्बदस्त प्रभाव पडा है। इस क्षेत्र की आबादी मे कभी बहुमत सथाल, मुडा, ओराव खरिया आदि जनजातियो का था। पर आज हालात यह है कि एक तरफ बाहरी लोगो के आ बसने एव दूसरी तरफ खुद आदिवासियो के बाहर जाने पर बाध्य होने से अब अपने ही इलाके मे आदिवासी आबादी अल्पसख्यक हो गयी हैं। आज झारखण्ड राज्य बनाने के साथ ऐसी कोई शर्त जुडी नही दिखाई देती जो वहाँ की आबादी के बिगडते स्वरूप के प्रति सवेदनशील हो।

सविधान मे जनजातीय इलाको के लिये प्रयुक्त धारा मे जनजातीय इलाको की आबादी के परम्परा से चले आ रहे अनुपात और सतुलन को बनाये रखने के लिये कुछ प्रावधान तय है ताकि, आदिवासी मूल निवासी अल्पसख्यक स्थिति मे न चले जाए।[28] इन प्रावधानो को केन्द्र सरकार ने उत्तर–पूर्व के नागालैण्ड, अरूणाचल, मिजोरम जैसे राज्यो मे लागू भी किया हुआ है। सच पूछा जाए तो इन प्रावधानो की सबसे ज्यादा जरूरत झारखण्ड मे है क्योकि पिछले सौ वर्षों से यहाँ के मूल निवासियो की आबादी का अनुपात लगातार घटता गया है। जिसकी सम्भावना आगे भी दिखाई देती है। जिन राजनीतिक दलो के हाथ मे झारखण्ड राज्य जाता दिख रहा है उनका मुख्य आधार वास्तव मे झारखण्ड के बाहर है। इनकी निष्ठाये बाहरी लोगो के प्रति अधिक है इसलिये यह समस्या अपने आपमे जस की तस खडी है कि ये दल क्या झारखण्ड की आबादी के सवालो को सुलझा भी पायेगे या नही?

आबादी के दृष्टिकोण से देखा जाय तो वास्तव मे झारखण्ड राज्य बनने का उद्देश्य पूरा हुआ ही नही है। झारखण्ड की माग वहाँ के मूल निवासियो की राजनीतिक स्वायत्तता की मांग है। यह

---

26 तलवार, वीर भारती (19 अगस्त 2000), *"असली झारखण्ड अभी बाकी है"*, राष्ट्रीय सहारा, हस्तक्षेप, पृ0 3 ।

27 तदैव ।

28 भारतीय सविधान, भाग–10, अनुच्छेद 244, 244 क ।

स्वायत्तता आज झारखण्ड के सिर्फ एक हिस्से को दी गई है और उसके मूल निवासी अब भी पहले की तरह चार अलग राज्यो मे विभाजित है। झारखण्ड राज्य की माग इन सबको मिलाकर बनाने की थी जो पूरी नही की गई है। इसलिये यह समस्या आगे फिर उठेगी।[29]

आदिवासियो की घटती आबादी केवल इस बात का प्रतीक नही है कि उनकी पारम्परिक सास्कृतिक पहचान के 'दिक् सास्कृतिक पहचान' मे समाहित हो जाने का खतरा पैदा हो गया है, बल्कि यह भी कि इस क्षेत्र के तमाम उपलब्ध रोजगारो मे उनके लिये कोई जगह नही रही है। कहने को तो सारी दुनिया जानती है कि झारखण्ड एक अत्यन्त खनिज सम्पदा सम्पन्न क्षेत्र है। यहॉ देश का 37 5 प्रतिशत कोयला भण्डार, 90 प्रतिशत कोकिग कोल भण्डार, 40 प्रतिशत तॉबा भण्डार, 22 प्रतिशत लौह अयस्क भण्डार और 90 प्रतिशत अभ्रक, बाक्साइट आदि मौजूद है। इस पृष्ठभूमि मे इस इलाके मे अनेक बडे उद्योग–धन्धे शुरू हुये। पर इनसे स्थानीय आबादी को नगण्य लाभ ही हुआ। इस इलाके के उद्योगो मे श्रम की स्थिति पर एक अध्ययन मे कहा गया है– "इस क्षेत्र मे शुरू हुये बडे पैमाने के उद्योग कुल मिलाकर बिहार के 65 प्रतिशत औद्योगिक मजदूरो को काम देते है। लेकिन महज 5 प्रतिशत आदिवासी यहॉ की औद्योगिक शहरी इकाइयो मे मौजूद है। इसलिये, ये औद्योगिक इकाइया स्थानीय आदिवासी आबादी को लाभकारी रोजगार मुहैया करने मे मद्दगार साबित नही हुयी है। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगो सहित इन उद्योगो मे भर्ती प्रक्रिया का पक्षपात स्थानीय लोगो को इस बहाने बाहर रखने की ओर है कि वे उस काम के लिये जिसकी जरूरत है, पर्याप्त योग्यता नही रखते। चूकि ये इकाइया उस जमीन पर पनपी है जो परम्परागत रूप से आदिवासियो की रही है, इसलिये उन्हे बेदखली का सामना करना पडता है और खेत– मजदूरो की कतारो मे शामिल होना पडता है। इन उद्योगो मे बाहरी लोगो के आने से आदिवासी आबादी की ताकत और घटी है।" कहने की जरूरत नही कि इन स्थितियो मे जहॉ आर्थिक लूट–खसोट के प्रति आदिवासियो मे एक आक्रोश पैदा हुआ, वही जनजातीय अस्मिता पर घिरते सकट के प्रति उनमे एक गहरी बेचैनी का एहसास जगा। पूरा झारखण्ड आन्दोलन अपने विभिन्न रूपो एव पडावो के दौरान इन्ही भावनाओ की अभिव्यक्ति था।

मौजूदा राजनीतिक शक्तियो से उन स्वप्नो के पूरा होने की कोई उम्मीद नही बधती जो स्वप्न झारखण्ड आन्दोलन का लक्ष्य था। फिर भी इस बात की उम्मीद की जा सकती है कि शोषण की यह व्यवस्था जल्द ही अपने प्रतिरोध को जन्म देगी जो राज्य को विकास पथ पर ले जाने जाने के लिये प्रकाश किरण का कार्य करेगी।

छत्तीसगढ़–

> "एक विशाल सुखी व गौरवशाली प्रान्त के लिये यहॉ सभी साधन उपलब्ध है। मालवा, छत्तीसगढ, नर्मदा क्षेत्र इस प्रदेश के अन्न भण्डार हैं और छत्तीसगढ़ एव विंध्यक्षेत्र खनिज भण्डार हर तरह से यह प्रदेश कामधेनु है। यहॉ का सास्कृतिक वैभव देश की अमूल्य सम्पदा है।"

---

29 जैसा कि झारखण्ड पार्टी (होरो) के अध्यक्ष एन0ई0होरो का कहना है, "हमारा सपना तो बिहार, प0 बगाल, उडीसा और म0प्र0 के 26 जिलो को मिलाकर झारखण्ड राज्य बनाना था, यह तो केवल बिहार विभाजन है।" – इण्डिया टूडे, 16 अगस्त 2000, पृ0 31 ।

1 नवम्बर 1956 को मध्य प्रदेश के पितामह व प्रथम मुख्यमत्री प0 रविशकर शुक्ल के उक्त उद्गारो के साथ मध्य प्रदेश ने अपनी विकास यात्रा शुरू की किन्तु दुर्भाग्य से स्वतन्त्र भारत का यह सबसे विराट प्रदेश एक असफल प्रयोग साबित हुआ। मध्य प्रदेश को छत्तीसगढ व शेष मध्य प्रदेश मे विभाजित करने की राजनीतिक महत्वाकाक्षा इस असफलता का उद्घोष करती प्रतीत होती है। पूर्व राष्ट्रपति डॉ0 शकर दयाल शर्मा के अनुसार आधुनिक भारत के निर्माता प्रथम प्रधानमत्री जवाहर लाल नेहरू ने विशाल मध्य प्रदेश का मानचित्र देखकर इसकी रचना को असगत व बेतुका बताया था। वर्तमान मे पृथक छत्तीसगढ राज्य के निर्माण से प0 नेहरू की यह आशका सत्य साबित हुयी है।

पौराणिक कथाओ के मुताबिक जरासध के समय कर्मकारो के छत्तीस परिवार उसके राज्य के दक्षिणी हिस्से मे चले गये थे जहा उन्होने पृथक राज्य की स्थापना की। तब उसे 'छत्तीस घर' का नाम दिया गया था, जो बाद मे छत्तीसगढ हो गया। जनश्रुति मे वर्णित वही छत्तीसगढ आज नये राज्य के रूप मे अस्तित्व मे है। यो तो साहित्य परम्परा मे छत्तीसगढ का उल्लेख सर्वप्रथम खैरागढ के राजा लक्ष्मीनिधि राय के चारण कवि दलपत राय द्वारा 1497 मे किया गया था। परन्तु स्वतन्त्रता के बाद 1964 मे छत्तीसगढ की माग पहली बार स्पष्ट रूप से मुखरित हुयी। छत्तीसगढ क्षेत्र 1818 तक मराठो के हाथ मे रहा। 1818 मे मराठो पर विजय प्राप्त कर अग्रेजो ने इस पर अपना अधिपत्य जमाया और अग्रेज सुपरिडेट एग्न्यू को इस क्षेत्र का प्रशासक नियुक्त किया। एग्न्यू के काल मे ही छत्तीसगढ क्षेत्र की राजधानी रतनपुर से रायपुर स्थानान्तरित की गई। 1861 मे सेन्ट्रल प्रोविन्सेस मे छत्तीसगढ को शामिल किये जाने के साथ ही पृथक छत्तीसगढ राज्य की जनभावना का उदय हुआ तथा 1924 मे पहली बार रायपुर जिला काग्रेस कमेटी द्वारा छत्तीसगढ राज्य के गठन की माग की गई। इसके बाद जबलपुर के त्रिपुरी सम्मेलन (1939) मे भी यह माग उठी। 1956 मे राज्य पुनर्गठन आयोग के समक्ष भी पृथक छत्तीसगढ राज्य के लिये प्रतिवेदन प्रस्तुत किय गये , परन्तु मध्य प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमत्री रविशकर शुक्ल से किसी भी तरह का सहयोग न मिलने के कारण वह माग दब गई। बाद मे उनके उत्तराधिकारियो विद्याचरण शुक्ल एव श्यामाचरण शुक्ल द्वारा भी इस कार्य मे कोई रूचि नही दिखाई गई। राज्यसभा सदस्य डॉ0 खूबचन्द्र बहेल ने 1967 मे पृथक छत्तीसगढ की विचारधारा को सर्वप्रथम अभियान एव जन आन्दोलन का रूप दिया तथा छत्तीसगढ भ्रात सघ का गठन किया। बाद मे पवन दीवान द्वारा छत्तीसगढ की माग दोहरायी गई। परन्तु काग्रेसी सासद बन जाने के कारण उन्होने स्वय को इस आन्दोलन से अलग कर लिया। पवन दीवान द्वारा पृथक छत्तीसगढ पार्टी का भी गठन किया गया था जिसका अस्तित्व समाप्त हो चुका है।[30]

1977 तक शेष मध्य प्रदेश व छत्तीसगढ का विकास समान रूप से होता रहा अत पृथक छत्तीसगढ की माग सीमित रही किन्तु इसके पश्चात् असमान विकास के चलते यह माग पुन जोर पकडने लगी। फलस्वरूप काग्रेस ने 1993 के विधानसभा चुनाव मे इस मुद्दे को अपने घोषणा पत्र मे शामिल किया।[31] 4 मार्च 1994 को मालवा अंचल की आगर विधान सभा सीट के प्रतिनिधि भाजपा विधायक श्री गोपाल परमार ने पृथक छत्तीसगढ राज्य का सकल्प पत्र प्रस्तुत किया, जिसे 18 मार्च 1994 को विधानसभा

30 परीक्षा मथन (1998–99), भाग–3, इलाहाबाद, पृ0 178 ।

31 इण्डिया टूडे, 15 अक्टूबर 1996, पृ0 36 ।

द्वारा सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया। तत्पश्चात् 1998 के लोकसभा चुनाव मे भाजपा ने भी नये राज्य के गठन को अपने घोषणा पत्र मे शामिल किया था। अन्तत राजग सरकार द्वारा प्रस्तुत मध्य प्रदेश पुनर्गठन विधेयक 2000 के लोकसभा तथा राज्य सभा मे पारित होने और के0आर0नारायण द्वारा अनुमति दिये जाने के बाद 1 नवम्बर 2000 को छत्तीसगढ राज्य अस्तित्व मे आ गया।

किसी राज्य के पृथक्करण के पीछे दीर्घकालीन आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक शोषण होता है, जिससे शनै–शनै क्षेत्रीय असन्तोष जन्म लेता है। जिसका सामयिक निराकरण न होने पर जन आक्रोश के फलस्वरूप पृथक राज्य की कामना का उदय होता है। छत्तीसगढ राज्य की माग जो अपनी भाषा, बोली, रहन–सहन, विशिष्ट सस्कृति के सरक्षण, धीमा औद्योगिक विकास, क्षेत्रीय विषमता, निम्न सामाजिक आर्थिक स्थिति, म0प्र0 की प्रशासनिक राजधानी भोपाल से क्षेत्र की अधिक दूरी, स्थानीय लोगो मे बढती बेरोजगारी, अशिक्षा आदि के कारण उपजी है , इसी मूल बिन्दु को स्पष्ट करते है। विशाल भू क्षेत्र एव अत्यधिक आबादी इस पृथक राज्य की माग के अन्य कारण रहे है।

नये छत्तीसगढ राज्य मे 16 जिले–बस्तर, विलासपुर, दडेवाडा, धमतरी, दुर्ग, जाजगीर–चापा, जशपुर, काकेर, कवर्धा, कोरबा, कोरिया, महासमुन्द, रायगढ, रायपुर, राजनादगाव और सरगुजा स्थित है। छत्तीसगढ की जनसख्या 1,76,14,928 और क्षेत्रफल 1,46,361 वर्ग किमी0 है। छत्तीसगढ मे 146 विकासखण्ड, 95 शहर तथा 20378 गाव है जिनमे से 19,720 आबाद है। छत्तीसगढ मे शहरी साक्षरता की दर 79 23 प्रतिशत तथा ग्रामीण साक्षरता का प्रतिशत 36 56 है। म0प्र0 की लोकसभा
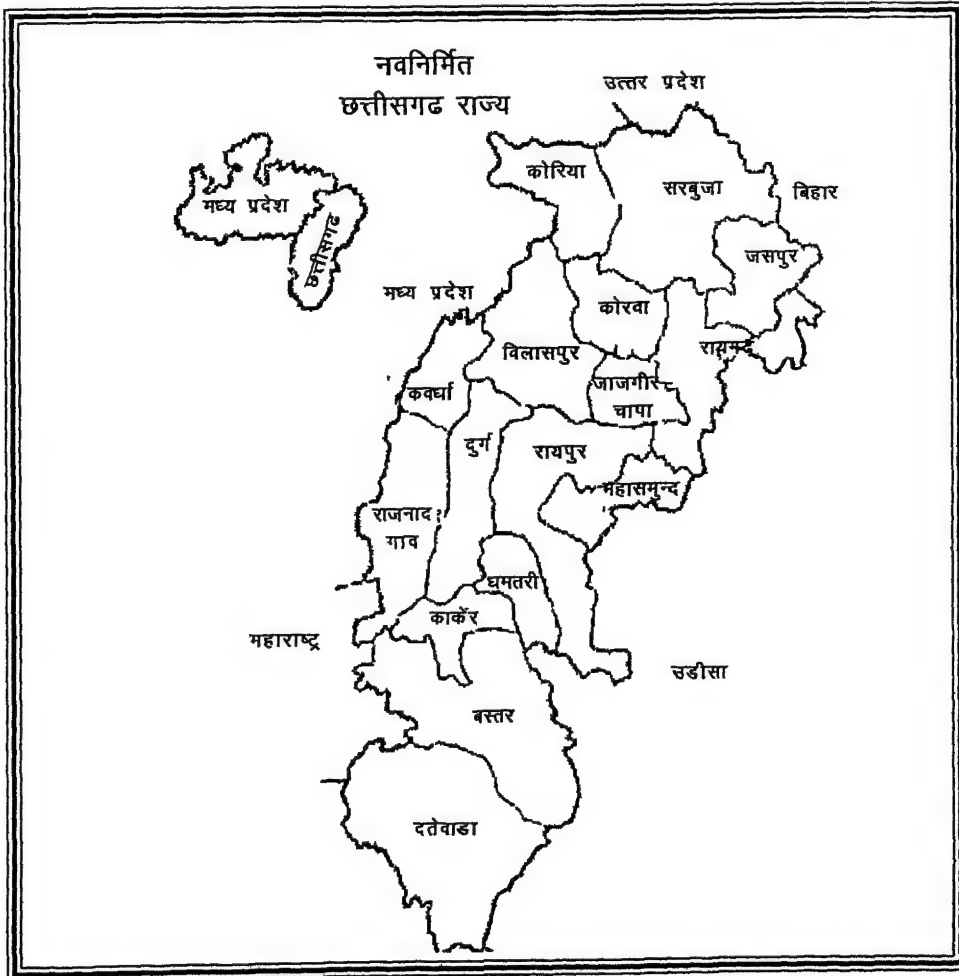
(मानचित्र–4.3)

की 40 सीटो, राज्य सभा की 12 सीटो और विधानसभा की 320 सीटो मे से छत्तीसगढ के हिस्से मे लोकसभा की 11 सीटे, राज्य सभा की 5 सीटे और विधानसभा की 90 सीटे आयी है।

छत्तीसगढ अपने जन्म के साथ ही एक कर्जदार प्रदेश है जिसे लगभग 6 हजार करोड रूपये का कर्ज विरासत मे मिला है। इसकी कुल राजस्व प्राप्ति 1,343 करोड रू0 है जबकि नये राज्य को अपना कामकाज तत्काल शुरू करने के लिये 2000 करोड रू0 की और आवश्यकता होगी।

देश का धान का कटोरा कहा जाने वाला छत्तीसगढ अतुल प्राकृतिक सम्पदाओ, खूबसूरत वनो, प्राचीन आदिवासी सस्कृति और अद्वितीय पुरातात्विक वैभव के लिये जाना जाता है। हीरे, कोयले और पत्थर की अनगिनत उत्कृष्ट किस्मो से छत्तीसगढ की धरती भरी पडी है। बस्तर का हीरा, ग्रेनाइट और सगमरमर दुनिया मे मशहूर है तो कोरबा के लोहे पर जापान के कई कल–कारखाने निर्भर करते है। यह एक ऐसा अकेला इलाका है जिसकी नदी के रेत मे कभी–कभी स्वर्णकण मिल जाता है। साल सागौन के वृक्षो पर लो पूरे भारत की नजर रहती है। यह क्षेत्र 1,500 से अधिक किस्म के चावल पैदा करता है, जिस पर आधारित 600 चावल मिले है।[32] यहा की 85 प्रतिशत जनता कृषि पर आधारित है। यह भिलाई इस्पात सयन्त्र, भारत एल्युमिनियम कम्पनी जैसे भारी उद्योगो, कई ताप बिजलीघरो और सीमेन्ट कारखानो का घर भी है। मध्य प्रदेश के कुल वन क्षेत्र का 43 85प्रतिशत इसी इलाके मे है।[33] छत्तीसगढ के जगल देश मे तेदू (बीडी) पत्ते की कुल जरूरत का 70 प्रतिशत से अधिक पूरा करते है।[34]

इसके बावजूद यह इलाका पिछडा और गरीब है और अज्ञानता के अन्धेरे मे दो तिहाई आबादी डूबी है । इसकी कुल सडको का महज 20 प्रतिशत हिस्सा पक्का है और केवल 32 प्रतिशत घरो मे बिजली है।[35] हकीकत यह है कि खनिजो से मिलने वाले राजस्व का बडा हिस्सा केन्द्र की झोली मे चला जाता है।

ऐसा नही है कि स्वतन्त्रता बाद के पचास वर्षो मे छत्तीसगढ ने विकास यात्रा पर एक भी पग नही बढी है। समय के साथ उन्नति हुयी है, वहा भी सडको का जाल बिछा है, रेल की पटरियॉ **बढ़ी** और नगरीय क्षेत्रो मे आसमान छूती भव्य इमारतो के जगल खडे हो गये। देश का शायद ही ऐसा कोई औद्योगिक घराना हो, जिसने छत्तीसगढ मे अपना कारखाना न खोल रखा हो, फिर भी छत्तीसगढ आज भी उपेक्षित और अविकसित है। लाखो करोडो टन लोहा, कोयला और लकडी कट जाने के बाद भी छत्तीसगढ के मूल निवासी के तन पर लगोटी है, जो विकास हुआ है, वह या तो बाहरी लोगो का हुआ है अथवा स्वार्थी और भ्रष्ट अफसरो का। व्यापारियो और बिचौलियो के बीच छत्तीसगढ का मूल निवासी आज भी दीन–हीन अवस्था मे घूमता मिल जाता है। नगर भोपाल हो अथवा राष्ट्रीय राजधानी महानगर दिल्ली हो मजदूरी करता अर्धनग्न छत्तीसगढ का आदमी अलग से दिख जाता है।

---

32 इण्डिया टूडे, 16 अगस्त 2000, पृ0 32 ।

33 इण्डिया टूडे, 15 अक्टूबर 1996, पृ0 33 ।

34 तदैव ।

35 तदैव ।

उपेक्षा, अवहेलना और अविकास से मुक्ति की इसी छटपटाहट की कोख से फूटा है— पृथक छत्तीसगढ राज्य के गठन का स्वप्न। छत्तीसगढ के लोगो ने विकास का यह स्वप्न पहली बार नही देखा यह अनेक बार जुडा और टूटा है। छत्तीसगढ के श्रमिको का शोषण, रोजगार की तलाश मे श्रमिको का पलायन, कुपोषण, महामारी से होने वाली मौते, प्राकृतिक ससाधनो की छीना—झपटी और चिकित्सा शिक्षा का अभाव, ऐसी स्थिति मे वहॉ अज्ञान का अधेरा कैसे दूर होगा। जो नागरिक दो रूपये के नमक के लिये तीस रूपये की इमली, चिरौजी या गोद दे देता हो अथवा नमक के अभाव मे लाल चीटी से काम चला लेता हो उस नागरिक के लिये यह समझ भी एक पहाड जैसी है, कि विकास की प्रारम्भिक परिकल्पना का स्वरूप कैसा होगा। छत्तीसगढ जिसकी 60 प्रतिशत से ज्यादा आबादी की जरूरत आज भी पेट भर रोटी और साफ पानी है, मे वह स्वय कैसे भागीदार होगा, अपने विकास का स्वय कैसे नियामक बन सकेगा।

अभी एक भी ऐसा पैकेज सामने नही आया है जिससे आभास हो सके कि छत्तीसगढ की सम्पदा का दोहन छत्तीसगढ के नागरिको के लिये ही हो सकेगा और क्षेत्र अपनी सामर्थ्य के अनुरूप सम्पन्न भी हो सकेगा और यदि सम्पन्न बनेगा तो उसका रास्ता क्या होगा? रणनीति कैसे बनेगी?

लगभग समूचा छत्तीसगढ नक्सली समस्या से आतकित है। नक्सली प्रभाव बढने के भी लगभग वही कारण है। जो छत्तीसगढ के अविकास और शोषण के कारक रहे है। छत्तीसगढ ने अतीत के उतार—चढावो को अपनी आखो से देखा है। अग्रेजो के चले जाने, मध्य प्रदेश बन जाने अथवा काग्रेस या भाजपा के रूप मे राजनीतिक परिवर्तनो के बावजूद प्रशासन मे परिवर्तन नही हो पाया। अब नक्सली समस्या के उन्मूलन के तौर—तरीको मे बदलाव आयेगा, इसमे सदेह है। सरकार की आय का एक चौथाई भाग तो नक्सली समस्या के मुकाबले पर जाना आशकित है। जो बचेगा वह बढे हुये प्रशासनिक व्यय भार मे समा जायेगा। ऐसी स्थिति मे, अतुल, अनत, प्राकृतिक और भरपूर सम्पदा वाले इस नवीन प्रान्त के केन्द्र के अनुदान का अपेक्षाकृत अधिक मोहताज होने की आशका अभी से ही उभरने लगी है। हीरा खदान मे काम के बहाने विदेशियो की आवाजाही, जगलो की अवैध कटाई पर रोक, सामाजिक वानिकी के नाम पर कदाचार, आदिवासियो को बेदखल कर उनकी जमीन हथियाने के कुचक्र और कारखानेदारो पर अकुश कैसे लगेगा ? इस समस्या का समाधान किसी राजनीतिक दल अथवा छत्तीसगढ को पृथक राज्य बनवा देने के अभियान के पास नही है।

बुन्देलखण्ड

पृथकता की आग मध्य प्रदेश के सिर्फ छत्तीसगढ क्षेत्र मे ही नही अन्य भागो मे भी प्रविष्ट हो चुकी है। उत्तर प्रदेश के सात व मध्य प्रदेश के 23 जिलो को मिलाकर 30 जिलो वाले बुन्देलखण्ड राज्य की माग भी विगत पाच दशको से की जा रही है। इस माग के पीछे बुन्देली भाषा को कसौटी बनाया जा रहा है। पृथक बुन्देलखण्ड की माग सर्वप्रथम टीकमगढ के पूर्व नरेश वीरेन्द्र सिह जूदेव व प0 बनारसी दास चतुर्वेदी ने पॉच दशक पूर्व चलायी थी।[36] 1949—50 मे तत्कालीन पन्ना महाराज व बाद मे रविशकर शुक्ल और द्वारिका प्रसाद मिश्र ने भी इस माग को उठाया।[37] राज्यो के पुनर्गठन

36 सिविल सर्विसेज क्रानिकल, फरवरी 1996, पृ0 23 ।
37 तदैव ।

के पूर्व भारत के प्रथम प्रधानमत्री प0 जवाहर लाल नेहरू व तत्कालीन गृहमत्री सरदार वल्लभ भाई पटेल के समक्ष यह माग रखी गई थी। बाद मे इस माग को राज्य पुनर्गठन आयोग के समक्ष भी रखा गया, परन्तु आयोग ने इस माग को ठुकरा दिया। कुछ समय बाद 1970 के दशक मे बुन्देलखण्ड के समर्थको द्वारा एक सघर्ष समिति का गठन आन्दोलन को बल देने के लिये किया गया। साथ ही क्षेत्र के सासदो व विधायको द्वारा सामूहिक इस्तीफे भी दिये गये।[38]

यह आन्दोलन अभी तक न तो हिसक हुआ है और न ही इसमे विशेष तीव्रता है परन्तु भारतीय जनता पार्टी द्वारा कुछ बडे राज्यो को विभाजित कर नये राज्यो के गठन को सैद्धान्तिक रूप से स्वीकार कर लेने के बाद अब पृथक बुन्देलखण्ड आन्दोलन के तीव्र होने के आसार है। वर्तमान मे इस आन्दोलन की बागडोर वरिष्ठ पत्रकार महेन्द्र कुमार मानव के हाथो मे है। गगाचरण राजपूत एव विद्ठल भाई पटेल भी इस आन्दोलन से सक्रिय रूप से जुडे हुये है। बुन्देलखण्ड समर्थको के अनुसार इस क्षेत्र की ऐतिहासिक, भौगोलिक, सास्कृतिक व भाषाई सस्कृति एक है लेकिन वह दो राज्यो मे बटी हुयी है तथा इससे क्षेत्र की विकास योजनाओ मे समन्वय नही हो पाता है। दोनो राज्यो के हित इन समस्याओ को खोजने मे बाधक बने हुये है।

बुन्देलखण्ड समर्थको के अनुसार यह देखते हुये कि मध्य प्रदेश देश का तीसरा सबसे बडा राज्य है। इसलिये इसे दो भागो–बुन्देलखण्ड तथा मालवाचल मे विभाजित करना जरूरी है।

भौगोलिक दृष्टि से पूरी तरह भिन्न तथा प्राकृतिक एव वन सम्पदा से परिपूर्ण बुन्देलखण्ड राज्य के लिये मध्य प्रदेश के 23 जिले– सागर, दमोह, पन्ना, छतरपुर, टीकमगढ, सतना, रीवा, जबलपुर, नरसिहपुर, छिदवाडा, सिवनी, मडला, बालाघाट, होशगाबाद, रायसेन, विदिशा, ग्वालियर, शिवपुरी, मुरैना, बैतूल, दतिया, भिड तथा गुना के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश के 7 जिले– ललितपुर, झॉसी, हमीरपुर, बॉदा, महोबा, चित्रकूट तथा जालौन का नाम प्रस्तावित किया जा रहा है। इस क्षेत्र मे विकास के नाम पर स्वतन्त्रता के बाद से कुछ विशेष नही किया गया है। शासन द्वारा लगातार की जा रही उपेक्षा इस आन्दोलन का मुख्य कारण है।

पूर्वांचल अथवा भोजपुर राज्य

पूर्वांचल अथवा भोजपुर राज्य की यह माग तीन दशक से भी ज्यादा पुरानी है। दस्तावेजो के मुताबिक नियोजित ढग से सबसे पहले 2 जून 1962 को स्वतन्त्रता सग्राम सेनानी तथा तत्कालीन सासद विश्वनाथ सिह गहमरी ने लोकसभा मे पूर्वांचल की दयनीय दशा का ऐसा कारुणिक चित्रण किया था जिसे सुनकर प्रधानमत्री जवाहर लाल नेहरू की ऑखे नम हो गई थी। गहमरी जी ने क्षेत्रीय असन्तुलन का इतना प्रभावशाली उल्लेख किया कि प0 नेहरू ने योजना आयोग के तत्कालीन उपाध्यक्ष अशोक मेहता को आदेश दिया कि एक अध्ययन दल का गठन कर इस विषय मे आवश्यक कार्यवाही की जाय।[39]

प्रधानमत्री के इस निर्देश पर वी0पी0पटेल की अगुवाई मे गठित अध्ययन दल ने 13 जनवरी 1964 को सरकार को प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट मे इस अचल के तीव्रगामी विकास हेतु अनेक कार्यक्रमो और योजनाओ को सुझाव दिया था[40], लेकिन ये सस्तुतियॉ तब से लेकर आज तक ठण्डे बस्ते मे

38 सिविल सर्विसेज क्रानिकल, फरवरी 1996, पृ0 23 ।
39 राष्ट्रीय सहारा, 26 सितम्बर 1998, पृ0 11 ।
40 तदैव ।

पडी हुयी है , ऐसा ही हुआ है। वस्तुत इसके पीछे ठोस तार्किक आधार और पिछडेपन के दर्द से निजात पाने की कातार पुकार का मिला जुला स्वर भी है।

पूर्वांचल आन्दोलन के रणनीतिकारो का सबसे बडा तर्क यह स्थापित तथ्य है कि बडे राज्यो की तुलना मे छोटे राज्यो का विकास ज्यादा तेजी से होता है। उत्तर प्रदेश की तुलना मे देश के अधिकाश छोटे–छोटे राज्य आर्थिक और शैक्षणिक प्रगति के मामले मे बहुत आगे जा चुके है, मसलन पजाब मे कुल 14 जिले तथा जनसख्या 24,289,296 है। प्रति व्यक्ति आय 12319 रूपया है तथा साक्षरता 63 55 प्रतिशत है। इसी तरह हरियाणा मे 16 जिले है। वहा की जनसया 21,082,989 है वहा प्रति व्यक्ति औसत आय 10,390 रूपये है तथा साक्षरता का प्रतिशत 56 31 है। यहा तक कि घोषित निवर्तमान उत्तराचल राज्य की आबादी 84 79 लाख, साक्षरता का प्रतिशत 60 26 तथा प्रति व्यक्ति आय 5,000 रूपये है। मगर दूसरी तरफ पूर्वी उत्तर प्रदेश है जहा के 27 जिलो मे तकरीबन 6 करोड की आबादी रहती है। वहॉ औसतन आय 3000 रूपये से भी कम है और साक्षरता के प्रतिशत का आकडा महज 39 फीसदी के सकेताक पर स्थिर है।

पूर्वांचल प्रदेश के समर्थक इतिहास की इस गवाही को उद्धत करते है कि राज्यो के विभाजन का धनात्मक प्रभाव पडता है। वे पजाब सूबे का उदाहरण देते है जिसे बाद मे तीन हिस्सो क्रमश पजाब, हरियाणा और हिमाचल प्रदेश मे विभाजित कर दिया गया था। आज तीनो राज्य समृद्ध और खुशहाल प्रान्त के रूप मे देश मे अग्रणी स्थान रखते हैं। मुम्बई प्रान्त का विभाजन होकर महाराष्ट्र और गुजरात बने जिनकी प्रगति किसी टिप्पणी को मोहताज नही है। इसी प्रकार असम प्रान्त को सात राज्यो–असम, मणिपुर, मेघालय, त्रिपुरा, मिजोरम और अरूणाचल प्रदेश के रूप मे विभाजित किया गया और आज इसमे से प्रत्येक राज्य उग्रवादी और विध्वसकारी गतिविधियो के बावजूद प्रगति के रास्ते पर तेजी से अग्रसर है। दूसरी तरफ उत्तर प्रदेश इतना विशाल राज्य है कि उसका प्रशासनिक नियन्त्रण तथा शासन और प्रशासन के बीच निर्वाध तालमेल अपने आप मे सचमुच कठिन और चुनौतीपूर्ण कार्य है। पूर्वांचल राज्य के एक प्रमुख ध्वजवाहक सासद हरिकेवल प्रसाद का कहना है कि "यदि पूर्वी उत्तर प्रदेश के 22 जिलो (अब 27 जिलो) को मिलाकर पूर्वांचल राज्य की मजूरी

(मानचित्र–4 4)

नही दी जाती तो उत्तराखण्ड को उत्तराचल राज्य का दर्जा देना भी औचित्यपूर्ण नही कहा जा सकता जहॉ केवल 8 जिले (वर्तमान मे 13 जिले) है।"[41]

वस्तुत यह एक कडवा लेकिन पूर्णतया सच है कि पूर्वांचल स्वतन्त्र भारत मे एक उपेक्षित और पिछडा क्षेत्र रहा है। इस पिछडेपन के पीछे ठोस राजनीतिक कारण है। समाजवाद के पुरोधा डॉ0 राम मनोहर लोहिया ने एक बार कहा था– हिन्दी भाषा–भाषी क्षेत्र वालो को प्रधानमत्री पद का मोह छोड देना चाहिये। अभी तक भारत के प्रधानमत्री का पद हिन्दी इलाको के पास रहा है और इसलिये यह अचल पिछडा भी है। गैर हिन्दी भाषी क्षेत्र इसे प्रधानमत्री पद देकर विकास योजनाओ की अधिकाधिक राशि अपने राज्यो के विकास के लिये ले जाते है।[42] आश्चर्यजनक सयोग यह है कि यही काम उत्तर प्रदेश के भीतर होता रहा है। सम्पूर्णानन्द, कमलापति त्रिपाठी, रामनरेश यादव, श्रीपति मिश्र, विश्वनाथ प्रताप सिह और वीर बहादुर सिह सरीखे ज्यादातर प्रभावशाली मुख्यमत्री पूर्वी उत्तर प्रदेश के थे और राजनीतिक मजबूरियो के चलते इनके कार्यकाल मे उत्तर प्रदेश के अन्य हिस्से ज्यादा लाभान्वित होते रहे।

स्थिति यह है कि भूख, गरीबी, अशिक्षा, बीमारी तथा बेरोजगारी की त्रासदी झेलने वाले पूर्वी उत्तर प्रदेश मे गगा, यमुना, सरयू, घाघरा, राप्ती, बडी गडक आदि तमाम नदियो का जाल बिछा होने के बावजूद यहा की आधी धरती असिचित और प्यासी है। यहा के खेतो को पर्याप्त पानी नही मिलता उल्टे हर साल बाढ की प्रलयकारी विभीषिका झेलनी पडती है। 85,844 वर्ग किमी0 क्षेत्रफल तथा लगभग 6 करोड की आबादी वाले पूर्वी उत्तर प्रदेश मे जनसख्या का घनत्व सघन होने के कारण यहा एक हेक्टेयर से कम जोतो का प्रतिशत 82 3 है जबकि पश्चिमी उत्तर प्रदेश मे यह 66 1, हरियाणा मे 40 6 तथा पजाब मे 26 5 प्रतिशत है।[43] औद्योगिक इकाइयो की कमी के कारण यहा के युवको का महानगरो की ओर पलायन जारी है। सरकारी ऑकडो के मुताबिक इस क्षेत्र मे औद्योगिक कारखाने कुल आबादी पर मात्र 5 प्रतिशत है। जिसके फलस्वरूप यहा की कुल आबादी के लगभग 31 प्रतिशत लोग रोजी–रोटी की तलाश मे बाहर भागे है।[44]

जैसा कि उक्त से स्पष्ट ही है कि आजादी के बाद की आधी शताब्दी मे केन्द्र और राज्य सरकारो की उपेक्षा और उदासीनता के कारण पूर्वी उत्तर प्रदेश विकास की गति मे लगातार पिछडता गया। यहा के ससाधनो का दोहन करके दूसरे क्षेत्रो को विकसित किया गया। जन असतोष को दबाने के लिये इस क्षेत्र की जनता को पूर्वांचल विकास निधि नाम का एक झुनझुना थमा दिया गया, जिसमे नाम मात्र को धन दिया गया। वर्ष 1998–99 के बजट मे जहा उत्तराचल के विकास हेतु 860 करोड रूपये राज्य सरकार द्वारा आवटित किये गये, वही पूर्वांचल विकास निधि को महज 120 करोड दिया गया है। दूसरे शब्दो मे 60 लाख लोगो को 860 करोड रूपये और 6 करोड जनता को केवल 128 करोड।[45]

---

41 राष्ट्रीय सहारा, 26 सितम्बर 1998, पृ0 11 ।
42 तदैव ।
43 तदैव ।
44 तदैव ।
45 तदैव ।

अगर सरकारी ऑकडो को ही तुलना का आधार बनाया जाय तो भी पूर्वांचल की माग उत्तराचल की अपेक्षा कम तार्किक नही कही जा सकती। यदि नये राज्यो का आधार लोगो की युक्ति सगत मागो को ही माना जाय तो पूर्वांचल राज्य की माग राजनीतिक नजरिये से उपयुक्त हो या न हो कम से कम युक्तिसगत तो है ही।

विदर्भ

भारत की स्वतन्त्रता के साथ ही विदर्भ क्षेत्र की स्वायत्तता की माग उठने लगी थी। परन्तु केन्द्र के प्रभावी नियन्त्रण के कारण यह माग दब गई। फजल अली की अध्यक्षता मे गठित राज्य पुनर्गठन आयोग ने भी विदर्भ राज्य के गठन की सस्तुति की थी जिसे केन्द्र सरकार ने अस्वीकार कर दिया था। 1964 मे गठित खाडेकर समिति ने पृथक विदर्भ राज्य के गठन की सस्तुति की थी। 1960 मे महाराष्ट्र के पुनर्गठन के समय विदर्भ के कुछ क्षेत्रो को महाराष्ट्र मे मिला देने के बाद विदर्भ को अलग से राज्य का दर्जा देने की माग बलवती हो उठी। उस समय पूर्व काग्रेसी केन्द्रीय मत्री बसत साठे ने कहा था कि मुम्बई राज्य, जो उस समय महाराष्ट्र का नाम था, के साथ रहते हुये ही विदर्भ क्षेत्र के विकास की सम्भावनाये बन सकती है[46], बहरहाल यह नही हुआ। अर्थशास्त्र के अपने नियम है। राज्य पुनर्गठन के बाद जितना भी विकास हुआ, वह मुम्बई और उसके इर्द–गिर्द तक ही सीमित रहा। यह पुणे से आगे नही बढा। ऐसा नही है कि इस क्षेत्र ने नेता नही दिये। महाराष्ट्र के चार मुख्यमत्री विदर्भ क्षेत्र से ही आये, मसलन कम्मनवार 1961–65, बसत राव नाइक 1975–77, सुधाकर राव नाइक आदि। जब विदर्भ का मुख्यमत्री नही रहा तो सरकार मे दूसरे महत्वपूर्ण पद पर हमेशा विदर्भ का ही कोई व्यक्ति बैठा।[47] उत्तराचल पर भी यही बात लागू होती है, यहा से उत्तर प्रदेश को तीन मुख्यमत्री मिले– गोविन्द बल्लभ पन्त, हेमवतीनदन बहुगुणा और एन0डी0तिवारी। इनमे सभी राष्ट्रीय स्तर के नेता थे। सवाल यह है कि इनके राष्ट्रीय स्तर तक पहुच जाने के बाद भी इन क्षेत्रो का विकास क्यो नही हुआ?
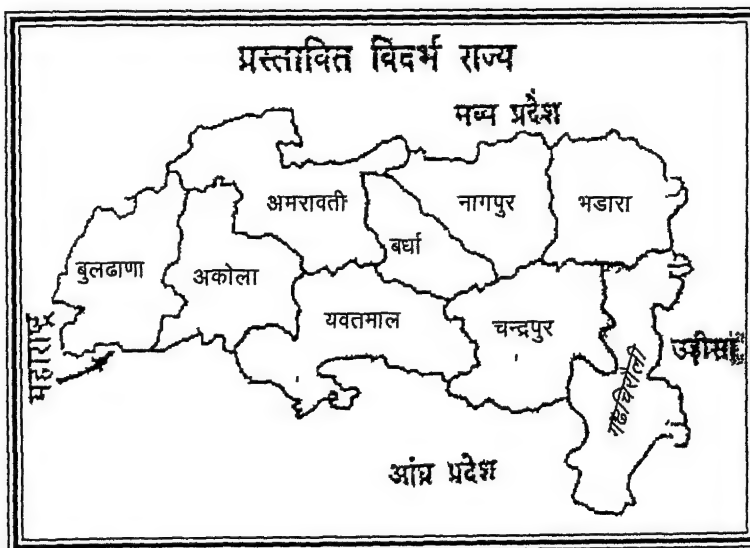
(मानचित्र–4 5)

46 माया, 31 अक्टूबर 1996, पृ0 19 ।

47 तदैव ।

विदर्भ की माग के पीछे वास्तव मे इस क्षेत्र के प्रति महाराष्ट्र एव मध्य प्रदेश की सरकारो द्वारा लगातार की जा रही उपेक्षा है। कृषि के क्षेत्र मे यह भाग अभी तक पिछडा है, जबकि समुचित सिचाई सुविधा उपलब्ध करा दी जाय तो अकेले विदर्भ सम्पूर्ण महाराष्ट्र के लिये खाद्यान्न उपलब्ध करा सकता है। औद्योगिक दृष्टि से भी यह क्षेत्र पिछडा है। आवागमन के समुचित साधन न होने के कारण यहा औद्योगिक विकास की गति अत्यधिक धीमी है। इस क्षेत्र मे नवनिर्मित उत्तराचल राज्य की कुल आबादी की तीन गुना आबादी निवास करती है। महाराष्ट्र की कुल आबादी का 24 प्रतिशत विदर्भ मे निवास करता है इतना सब कुछ होते हुये भी महाराष्ट्र सरकार इस क्षेत्र के विकास पर नाममात्र व्यय करती है। अत्यधिक उपेक्षा के परिणामस्वरूप उपजी पृथक विदर्भ की माग को दबाने के लिये महाराष्ट्र सरकार द्वारा स्वतन्त्र विदर्भ विकास मण्डल की स्थापना की गई थी। परन्तु यह प्रयास सतही ही साबित हुआ। महाराष्ट्र की राजधानी मुम्बई विदर्भ से काफी दूर है। जिस कारण विदर्भ वासियो की समस्याओ के निराकरण के लिये कोई ठोस प्रयास नही हो पाता है। हालाकि इस कठिनाई को ध्यान मे रखते हुये नागपुर को महाराष्ट्र की दूसरी राजधानी का दर्जा दिया गया है और विधान सभा का वर्ष मे एक बार अधिवेशन भी यहा होता है। परन्तु इस क्षेत्र के विकास को गति मिलती नही दिखाई देती।

प्रस्तावित विदर्भ राज्य मे नागपुर, अकोला, बुलढाणा, अमरावती, वर्धा, चन्द्रपुर (चादा), गढचिरौली, यवतमाल एव भडारा जिलो को शामिल किया गया है। इसके अतिरिक्त मध्य प्रदेश के कुछ सीमावर्ती जिलो को भी विदर्भ राज्य मे मिलाये जाने की माग है। पृथक विदर्भ से सम्बन्धित आन्दोलन का नेतृत्व काग्रेसी नेता प्रफुल्ल पटेल कर रहे है जिसे छोटे राज्यो की समर्थक भाजपा का भी समर्थन प्राप्त है। परन्तु, शिवसेना इस नये राज्य के गठन का विरोध कर रही है।

गोरखालैण्ड

पृथक गोरखालैण्ड की माग भारत की स्वतन्त्रता मिलने के पहले से ही शुरू हो गई थी। हिमालय क्षेत्र मे निवास करने वाले गोरखा लोग उच्च कोटि के योद्धा माने जाते है। ऐतिहासिक प्रमाणो के अनुसार ये लोग क्षेत्रीय राजाओ के अधीन थे। 1768 मे क्षेत्रीय राजवशो के आपसी कलह का लाभ उठाकर इन्होने अपना शासन स्थापित किया। कई वर्षों तक निर्विघ्न शासन करने के उपरान्त 1816 मे इन्हे अपनी अस्मिता बचाये रखने के लिये अग्रेजो से युद्ध करना पडा। अग्रेजो से बुरी तरह पराजित होने के बाद सुगौली की सन्धि के अन्तर्गत गढवाल और कुमाऊ जिले जो तत्कालीन नेपाल राज्य के अग थे, अग्रेजो को सौप दिया गया। इस सन्धि के बाद अग्रेजो और गोरखाओ के सम्बन्ध इतने मधुर हो गये कि 1857 मे गोरखाओ ने भारत के स्वतन्त्रता सेनानियो के विरूद्ध अग्रेजो का खुलकर साथ दिया।

पश्चिम बगाल के दार्जिलिग जिले के चार सब डिवीजनो– सिलीगुडी, कुर्सियाग, कलिम्पोग व दार्जिलिग को मिलाकर एक पृथक प्रशासनिक इकाई बनाने की माग स्वतन्त्रता प्राप्ति (1947) के पूर्व मे की जाती रही है जो देश की आजादी के बाद भाषाई आधार पर राज्यो के पुनर्गठन, नेपाल के पूर्वी क्षेत्र के गोरखाओ के पलायन, अस्मिता की पहचान, गोरखाओ के दमन, उत्पीडन व असुरक्षा

आदि के आधार पर अलग राज्य की माग मे बदल गई। 1956 मे जब भाषाई आधार पर राज्यो के पुनर्गठन की बात चली तो यहा के लोगो द्वारा दार्जिलिग को पृथक प्रशासनिक इकाई के रूप मे गठित करने की माग की गई, परन्तु इस पर कोई ध्यान नही दिया गया। प्रारम्भ मे यह माग गोरखा लीग प्रान्त परिषद व गोरखा दुख निवारिणी समिति द्वारा की गई।[48] अप्रैल 1980 मे सेना से सेवानिवृत्त सुभाष घीसिग ने गोरखा राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा बनाया और और पृथक गोरखालैण्ड की माग की।[49] इस माग पर सरकार द्वारा चार–पॉच वर्षो तक कोई ध्यान नही दिया गया। इसी बीच मे मेघालय मे विदेशियो के विरूद्ध आन्दोलन शुरू हुआ और लगभग 4000 नेपाली नागरिक विस्थापित किये गये।[50] इसी के प्रत्युत्तर मे गोरखा मुक्ति मोर्चा ने मार्च 1986 मे अपना 11 सूत्रीय माग पत्र प्रस्तुत किया[51] और तत्पश्चात् 13 अप्रैल 1986 को आन्दोलन की शुरूआत कर दी।[52] मार्च 1987 मे पश्चिम बगाल विधान सभा चुनावो मे मोर्चा आह्वान पर लगभग 93 प्रतिशत लोगो ने मतदान नही किया।[53] इस दौरान आन्दोलन ने कई बार हिसक रूप धारण किया। आन्दोलन की तीव्रता को देखते हुये अन्तत केन्द्र सरकार, राज्य सरकार तथा सुभाष घीसिग के मध्य त्रिपक्षीय वार्ता हुयी जिसमे पर्वतीय विकास परिषद नामक स्वायत्तशाषी निकाय के गठन पर 22 अगस्त 1986 को सहमति हो गई।[54] जिसके अन्तर्गत चारो सब डिवीजनलो को मिलाकर स्वायत्तशाषी दार्जिलिग पर्वतीय परिषद के गठन का प्रावधान किया गया। दिसम्बर 88 मे सम्पन्न परिषद चुनावो मे जी एन एफ एल ने भारी बहुमत से विजय हासिल की तथा परिषद ने कार्यारम्भ प्रारम्भ कर दिया।[55]

वर्षो से सघर्ष के बाद पश्चिम बगाल के पर्वतीय क्षेत्र कुर्सियाग और दार्जिलिग मे जब गोरखा क्षेत्रीय विकास परिषद बनाकर सुभाष घीषिग को शान्त किया गया था, तभी यह आशका व्यक्त की गई थी कि यह समस्या बहुत दिन तक सुलझी नही रहेगी, बल्कि एक अलग अदाज मे सामने आयेगी। बाद मे सुभाष घीसिग ने नया नारा दिया कि दार्जिलिग का अवैध तरीके से भारत मे विलय हुआ है।[56] वैसे भी इस स्वायत्त विकास के गठन से न तो वहा के निवासियो के जीवन स्तर मे कोई सुधार हुआ है और न ही दार्जिलिग क्षेत्र का विकास हुआ है। स्वायत्त विकास परिषद को जिला परिषदो जितना भी अधिकार नही दिया जाना, आखिर किस हद तक समस्या को सुलझाने की मनोवृत्ति की तरफ इशारा करता है। हालाकि इस गोरखा हिल स्टेट कौसिल के गठन से प0 बगाल के इस पर्वतीय क्षेत्र की शाति लौट आयी, जनजीवन सामान्य हो गया और आम आदमी की परेशानिया समाप्त हो गयी थी, लेकिन यह समस्या का स्थाई हल न होकर तत्कालिक इलाज था।

अलग राज्य की यह माग तीन नये राज्यो के गठन के बाद पुनर्जीवित हो गयी है। घीसिग कहते है, "1980 मे मैं अलग गोरखालैण्ड राज्य की माग कर रहा था। अब मैं इसके लिये सिर्फ कह

48 सिविल सर्विसेज क्रानिकल, फरवरी 1996, पृ0 13 ।
49 तदैव।
50 परीक्षा मथन (1998–99) भाग–3, इलाहाबाद, पृ0 183 ।
51 सिविल सर्विसेज क्रानिकल, फरवरी 1996, पृ0 22 ।
52 परीक्षा मथन (1998–99) भाग–3 इलाहाबाद पृ0 183 ।
53 तदैव ।
54 नवभारत टाइम्स, 23 अगस्त 1986 ।
55 परीक्षा मथन (1998–99) भाग–3, इलाहाबाद पृ0 183 ।
56 सिविल सर्विसेज क्रानिकल, फरवरी 1996, पृ0 22 ।

रहा हूँ।"[57] सितम्बर 1996 मे गोरखा डेमोक्रेटिक फ्रन्ट के नेता मदन तमग की अगुवाई मे एक सर्वदलीय सभा मे अलग राज्य के लिये 'गोरखा पीपुल्स फ्रण्ट' का गठन किया गया है। अब पहाडो मे माकपा के सदस्य भी इस अलग राज्य की मुहिम मे कूद पडे है। माकपा के दो सासद आर0बी0राय और तमग दावा लामा–पार्टी के नजरिये की मुखालफत कर दार्जिलिग के लिये अलग राज्य की वकालत कर रहे है। उन्हे दार्जिलिग पर्वतीय जिला इकाई के 29 मे से 25 सदस्यो का समर्थन प्राप्त है।[58] उन्हे कुर्सियाग क्षेत्रीय समिति और सिक्किम की इकाई का भी समर्थन प्राप्त है। जबकि माकपा पार्टी आलाकमान का मानना है कि समस्या का समाधान आर्थिक विकास मे ही निहित है क्योकि "अलग राज्य की माग असगत विकास और आर्थिक पिछडेपन से ही पैदा हुयी है।"[59] किन्तु आन्दोलनकारियो का मानना है कि क्षेत्र का आर्थिक विकास पृथक राज्य मे ही सम्भव है। पश्चिम बगाल के मुख्यमत्री ज्योतिबसु भी कहते हैं, "अगर उन्हे लगता है कि पहाडो को पश्चिम बगाल से अलग करके वे वहा स्वर्ग बना देगे तो उन्हे करने दीजिये। इसमे हम क्या कर सकते है।"[60]

गोरखालैण्ड मुक्ति मोर्चा द्वारा पृथक गोरखालैण्ड के लिये पश्चिम बगाल के दार्जिलिग, जलपाईगुडी के दुआर क्षेत्र, असम के गोपालपाडा से बिहार के गालगलिया तक की हिमालयन पट्‌टी को प्रस्तावित किया जाता है। प्रस्तावित गोरखालैण्ड राज्य का क्षेत्रफल लगभग 2256 वर्ग मील है जिसमे लगभग 14 लाख लोग निवास करते है। इस प्रस्तावित राज्य का विस्तार उत्तर मे रजीत नदी, दक्षिण मे महानदी, पूर्व मे सकोश तथा पश्चिम मे बालासुन नदी तक है।

बोड़ोलैण्ड

ब्रह्मपुत्र नदी के उत्तर तटीय क्षेत्र, दाराग जिले के उदलगुडी क्षेत्र, भूटान की सीमा से लगा पश्चिम बगाल मे सिरायपुर तथा सदिया के बोडो बाहुल्य क्षेत्र को बोडोलैण्ड के रूप मे निरूपित किया जाता है। इस क्षेत्र मे रहने वाली जनजातियो मे 60 प्रतिशत बोडो जनजाति के हैं, जो भूमिहीन है।[61] वास्तव मे बोडो कोई जनजाति न होकर कोच, गारो, लाल्लुग, धाटिया, डिमासो तथा कचारी जनजातियो का समूह है। बोडो भाषा तिब्बती–वर्मी परिवार की असमी–वर्मी प्रशाखा है।[62] कोच राजवश के काल मे बोडो का उल्लेख मिलता है। ऐतिहासिक तथ्यो के आधार पर बोडो तिब्बती तथा वर्मी लोगो के मिलन से उत्पन्न एक जाति की उप शाखा है, जो कालान्तर मे ब्रह्मपुत्र के उत्तरी किनारे पर आ बसी थी।[63] इन आदिवासी क्षेत्रो मे सिचाई, विद्युत, सचार तथा अन्य प्राथमिक सुविधाये न के बराबर है। आन्दोलन के पीछे एक मात्र मूल कारण अग्रेजो के काल से चली आ रही प्रशासन की उपेक्षा तथा बाग्लादेश से असम की सीमा मे होने वाली अवैध घुसपैठ है। राज्य व केन्द्र सरकार सीमा पर इस अवैध घुसपैठ को रोकने मे न केवल असफल रहे है, बल्कि विदेशियो को असम से पूर्णत बाहर निकालने मे भी विफल रहे है। यही कारण है कि इस क्षेत्र मे उग्रवाद को बढावा मिला है।

---

57 इण्डिया टुडे, 15 अक्टूबर 1996, पृ0 34 ।
58 तदैव ।
59 तदैव ।
60 तदैव ।
61 सिविल सर्विसेज क्रानिकल, जून 1993, पृ0 19 ।
62 तदैव, पृ0 20 ।
63 तदैव ।

सिर्फ बोडो बहुल क्षेत्रो मे ही नही वरन् पूरे भारत मे ही गैर आदिवासी बहुमत द्वारा आदिवासियो को दबाकर रखने तथा उनकी जीवन पद्धति की विविधता को बनाये रखने के नाम पर न केवल आधुनिक राज व्यवस्था से दूर रखा गया है, बल्कि उनके वैध अधिकारो पर भी कुठाराघात किया गया है। असम के अभिजात वर्ग और नौकरशाहो द्वारा निरन्तर शोषण व उपेक्षा ने वहा के बोडो बहुल मैदानी इलाको के आदिवासियो को अपनी सास्कृतिक पहचान व अस्मिता की रक्षा हेतु आन्दोलन के लिये प्रेरित किया। नागालैण्ड, मिजोरम, मेघालय, त्रिपुरा व अरूणाचल प्रदेश का स्वतन्त्र अस्तित्व व इन प्रदेशो की जनजातियो की उन्नति ने बोडो समुदाय के मन मे उपेक्षा का भाव गहराई तक बैठा दिया।[64]

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व सन् 1907 मे निराकार ब्रह्म के उपासक कालीचरण ब्रह्मचारी के नेतृत्व मे "ब्रह्मा आन्दोलन" अस्तित्व मे आया। जिसने बोडो जनजातीय लोगो के लिये शिक्षा, समाज सरक्षण तथा नौकरियो मे आरक्षण की माग की।[65] स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सन् 1952 मे बोडो साहित्य सभा की स्थापना की गई।[66] इस सभा ने स्कूली स्तर पर बोडो भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने के लिये आवाज उठायी। साठ के दशक के अन्त मे उनकी यह माग मान ली गई, लेकिन उस सघर्ष के दौरान अनेक बोडो काल कवलित हो गये। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद असम मे भारी सख्या मे प्रवासी आने लगे, एव उन्होने भू कानूनो को अनदेखा कर बोडो लोगो की जमीन खरीदने का काम शुरू किया। उल्लेखनीय है कि इस समय लगभग 60प्रतिशत बोडो लोग भूमिहीन है, जबकि बोडो जनजाति मुख्यत कृषि (धान) पर ही निर्भर करती है। बोडो समुदाय के अधिकाश लोग गरीबी की काली छाया मे जीने के लिये अभिशिप्त होने के साथ ही ऐसे भागो मे रहते है, जहॉ विद्युत, सचार, सिचाई, रेल आदि सुविधाओ की दूर–दूर तक कोई सम्भावना नही है।

असम के अन्य पडोसी राज्यो मेघालय, मिजोरम व नागालैण्ड के पर्वतीय इलाको मे रहने वाली जनजातियो की प्रगति को देखकर, जहा एक ओर बोडो लोगो मे अपनी उपेक्षा होने की भावना पैदा होने लगी, वही दूसरी ओर अप्रवासियो द्वारा शोषण की प्रवृत्ति, असमी को शिक्षा का माध्यम बनाने व राज्य नौकरशाही के उपेक्षापूर्ण व्यवहार ने बोडो लोगो को अपनी पहचान व सस्कृति की रक्षा हेतु राजनीतिक सत्ता प्राप्ति के लिये बढावा दिया। 1963 मे नागालैण्ड की स्थापना ने उनकी पृथकता की भावना को और उकसाया। फलस्वरूप, 2 मार्च 1987 को आल बोडो स्टूडेट्स और बोडो पीपुल्स एक्शन कमेटी ने भारतीय सविधान के भीतर एक पृथक राज्य का गठन करके अपनी समस्याओ के समाधान के उद्देश्य से बोडो आन्दोलन शुरू कर दिया।[67] आन्दोलन के दौरान बद, प्रदर्शन, सडक व रेल रोको अभियान आदि का सहारा लेने का निर्णय लिया गया। 28 अगस्त 1987 को केन्द्र सरकार, राज्य सरकार व बोडो प्रतिनिधियो के बीच बोडो समस्या के समाधान हेतु प्रथम त्रिपक्षीय वार्ता आरम्भ हुयी।[68]

---

64 सिविल सर्विसेज क्रानिकल, जून 1993, पृ0 19 ।
65 तदैव ।
66 तदैव ।
67 तदैव, पृ0 20 ।
68 नवभारत टाइम्स, 29 अगस्त, 1987 ।

प्रारम्भ मे बोडो आन्दोलन ब्रह्मपुत्र के उत्तरी तट पर यूनियन का गढ समझे जाने वाले दाराग जिले के ऊदल गुडी उपखण्ड तक ही सीमित रहा। लेकिन 1989 मे आन्दोलन ने हिसक रूप धारण कर लिया। बोडो आन्दोलनकारियो की मागो मे प्रथम, ब्रह्मपुत्र के उत्तर तटीय श्री रामपुर से सदिया तक के क्षेत्र को बोडोलैण्ड नामक पृथक केन्द्र शासित क्षेत्र बनाना व द्वितीय, सविधान की अनुसूची 6 के अन्तर्गत ब्रह्मपुत्र के दक्षिणी तट पर मैदानी जनजातीय क्षेत्रो के लिये जिला परिषद की स्थापना प्रमुख थी।[69] केन्द्र सरकार द्वारा देश के विखण्डन और पृथक राज्य की माग मानने से स्पष्ट इन्कार के बाद आन्दोलनकारियो से बातचीत के विभिन्न दौर असफल रहे। 13 सितम्बर 1990 को इस त्रिपक्षीय वार्ता के आठवी दौर की बातचीत के समय हुयी सहमति के आधार पर ब्रह्मपुत्र के उत्तर मे बोडो और अन्य आदिवासी क्षेत्रो का निर्धारण करने व उनके विधायी, प्रशासनिक एव तकनीकी अधिकारो और स्वायत्तता के सम्बन्ध मे सिफारिश हेतु तीन सदस्यो की विशेषज्ञ समिति का गठन 25 फरवरी 1991 को केन्द्र सरकार ने भूपिन्दर सिह की अध्यक्षता मे की।[70] समिति ने 30 मार्च 1992 को केन्द्र सरकार को अपनी रिपोर्ट व सिफारिशे सौप दी। लेकिन समिति की सिफारिशो को बोडो नेताओ ने ठुकरा दिया। बाद मे बोडो आन्दोलनकारियो, केन्द्र सरकार व असम सरकार के बीच 20 फरवरी 1993 को हुये एक त्रिपक्षीय समझौते[71] के अनुसार असम सरकार द्वारा 'बोडोलैण्ड स्वशाषी परिषद अधिनियम' (विधेयक) को पारित कर दिया।
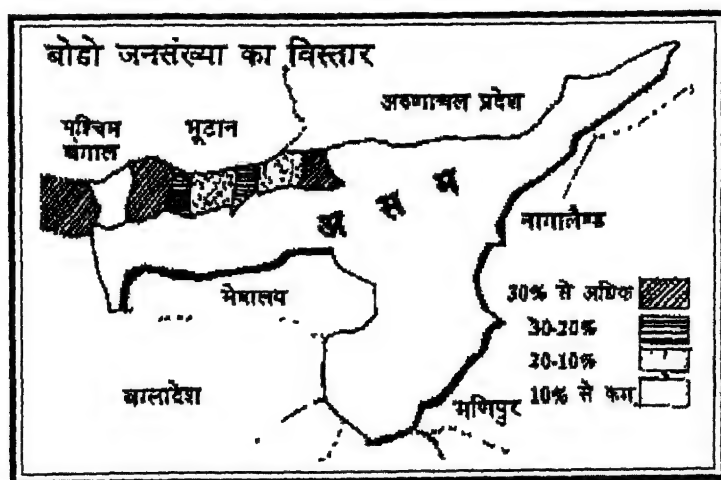
(मानचित्र—4 6)

हालाकि बोडो स्वायत्त विधेयक परिषद को लेकर विभिन्न सगठनो व लोगो द्वारा अनेक आशकाये व्यक्त की गई। लेकिन राज्य के भीतर एक परिषद के गठन का निर्णय स्वीकार करके वृहत्तर असमी समाज के अभिन्न अग बोडो लोगो ने राज्य की एकता और अखण्डता को सर्वोपरि स्थान दिया है। किन्तु यह समझौता बोडो लोगो और असम मे शान्ति स्थापित करने मे सफला नही हो सका। क्योकि विभिन्न बोडो सगठनो के प्रतिनिधियो को अतरिम परिषद मे शामिल नही किया गया। इस समझौते मे दक्षिणी सीमा के बारे मे भी स्पष्ट तथ्य नहीं है। अनेक स्थानो पर यह गैर

69 सिविल सर्विसेज क्रानिकल, जून 1993, पृ0 20 ।
70 तदैव ।
71 नव भारत टाइम्स, 21 फरवरी, 1993 ।

जनजातीय क्षेत्रो को अपने अन्दर लेता है। सभी सात जिलो मे कुछ स्थानो पर जैसे–कामरूप मे बोडो लोगो की सख्या नाममात्र है। उल्लेखनीय है कि उक्त स्वशाषी क्षेत्र की 18 लाख आबादी मे बोडो आबादी सिर्फ 6 लाख है। विभिन्न स्थानो पर प्रशासन मे दुहराव और टकराव की सम्भावना व वन क्षेत्र के सम्बन्ध मे भी अनेक सवाल उठाये जा रहे है। बोडो लोगो द्वारा अपनी मैदानी भूमि को बेच देने तथा वन विभाग द्वारा वनो पर अधिकार कर लेने के पश्चात् बोडो लोग मैदानी क्षेत्रो मे लगभग बेघर हो चुके है। समझौते के क्रियान्वयन मे वन विभाग के साथ ही रक्षा विभाग भी बाधक हो सकता है। क्योकि सीमावर्ती गाव मे उसके अधिकार क्षेत्र वाले भागो मे समझौते की बाध्यता लागू होना आवश्यक नही है। इसके साथ ही स्वशाषी परिषद के बजट व राज्यपाल द्वारा परिषद की बर्खास्तगी सम्बन्धी प्रावधान भी असतोष के कारण है।

सुखद बात यह है कि सरकार ने समय रहते इस समस्या पर ध्यान दिया और इसके समाधान की दिशा मे ठोस कदम उठाते हुए 10 फरवरी, 2003 को केन्द्र सरकार, असम सरकार और बोडो लिबरेशन टाइगर के बीच एक ऐतिहासिक त्रिपक्षीय समझौता हुआ जिसके तहत सवैधानिक दर्जा प्राप्त स्वायत्तशासी बोडोलैण्ड क्षेत्रीय परिषद का गठन किया जायेगा।[72] इस समझौते से बोडोलैण्ड क्षेत्रीय परिषद के गठन का रास्ता साफ हो गया है और पृथक बोडोलैण्ड राज्य की माग को लेकर 15 साल से चल रहे सघर्ष के समाप्त हो जाने की उम्मीद बनी है।

समझौते के मुताबिक बोडो क्षेत्रीय परिषद मे 3082 गॉव होगे, जिन्हे असम के 4 जिलो कोकराझार, चिराग, बासका और उदालगिरी के अधीन रखा जायेगा। इसके साथ ही मौजूदा बोडोलैण्ड स्वायत्त परिषद भग कर दी जायेगी। नई परिषद मे 95 और गॉवो को शामिल करने के लिये एक तीन सदस्यीय समिति बनाई जायेगी, जो तीन महीने मे अपनी रिपोर्ट देगी। इस समिति मे तीनो पक्षो के एक–एक सदस्य शामिल होगे। इन गावो के चयन के तीन आधार होगे, जिनमे गाव की आबादी मे बोडो आदिवासियो का प्रतिशत अहम् होगा। जिन गावो की आबादी मे कम से कम 50 प्रतिशत बोडो आदिवासी होगे, उन्ही को बोडो क्षेत्रीय परिषद मे शामिल किया जायेगा। केन्द्र सरकार एव सविधान सशोधन विधेयक भी लायेगी, जिसके मुताबिक बोडो क्षेत्रीय परिषद को सविधान की छठी अनुसूची मे शामिल किया जायेगा।[73]

बोडो क्षेत्रीय परिषद मे 46 सदस्य होगे। इनमे से 30 सीटे आदिवासियो के लिए आरक्षित होगी और पाच सीटे बोडो क्षेत्रीय परिषद मे रहने वाले गैर–आदिवासियो के लिए। पाच सीटे अनारक्षित होगी। परिषद के दस सदस्यो को नामित करने का अधिकार असम सरकार के पास होगा। वह इन लोगो को उन समुदायो मे से चुनेगी, जिनके प्रतिनिधि 40 सीटो के लिए होने वाले चुनाव मे नही चुने गये होगे। परिषद के इलाके मे रहने वाले गैर–आदिवासियो की रक्षा के लिये जरूरी प्रविधान किये गये है।

---

72 टाइम्स ऑफ इण्डिया, फरवरी 11, 2003।

73 चाणक्य सिविल सर्विसेज टूडे, अप्रैल 2003, पृ० 23।

समझौते से उम्मीदे– जिस स्वायत्तता प्रस्ताव पर फिलहाल त्रि–पक्षीय सहमति बनी है, उसे देखने से ऐसा लगता है कि अपने हिसक दौर से बोडो आदोलनकारियो के दावे कुछ ज्यादा ही बढे–चढे थे। इस प्रस्ताव मे 3082 बोडो बाहुल्य गावो को चुनकर चार जिलो मे विभाजित इस इलाके के लिये एक स्वायत्तशासी परिषद गठित करने की बात है। इसके अलावा केन्द्र सरकार ने बोडो भाषा को सविधान की आठवी अनुसूची मे शामिल करने पर विचार करने का आश्वासन भी दिया है। 1999 मे सीमित स्वायत्तता के लिये राजी होने से पहले बोडो लिबरेशन टाइगर्स के लोग असम की 60 प्रतिशत आबादी अपनी जाति की ही बताते थे और पूरे असम पर ही अपना दबाव ठोक रहे थे। बोडोलैण्ड की अपनी माग के जरिये वे अपनी छवि नागा आन्दोलन जैसी प्रदर्शित करना चाहते थे और इसका भौगोलिक विस्तार भी उन्होने वृहत्तर नागालैण्ड की तरह ही कर रखा था। यह बात अलग है कि मूलत एक मैदानी जाति होने के चलते वन–पर्वत के वाशिन्दे नागाओ की तरह लम्बा हिसक आन्दोलन चला पाना उनके लिये सम्भव नही था।

हालाकि बोडो स्वायत्तता के मामले मे कुछ तकनीकी मुश्किले हल होनी अभी बाकी है। सबसे बडी समस्या उन 90 गावो की है, जिनमे बोडो आजादी आधी या इससे कुछ कम है। इन गावो की पहचान के लिये तीन सदस्यो की एक समिति गठित की गई है, हालाकि गैर–बोडो आबादी के विरोध के चलते यह काम उसके लिये आसान नही होगा। इसके अलावा, जैसा कार्बी स्वायत्त क्षेत्र मे फिलहाल हो रहा है, स्वायत्तता मिलने के बाद आदिवासियो और गैर–आदिवासियो के बीच अधिकारो को लेकर पैदा होने वाला तनाव खुद मे एक बडी समस्या है। बोडो स्वायत्त क्षेत्र के साथ ऐसी मुश्किले कुछ ज्यादा ही आ सकती हैं। क्योकि असम मे लोकसभा और विधान सभा सीटो का बटवारा जिस तरह हुआ है उसके रहते बोडो आजादी के समुचित पुनर्सिमाकन की कोई बात समझौते मे नही शामिल है, फलत मुख्य धारा के राजनैतिक दलो को इसके लिए अतिरिक्त प्रयास करने होगे।

उपर्युक्त आन्दोलनो के वस्तुपरक एव तथ्यात्मक विश्लेषण से निम्नाकित निष्कर्ष निकाले जा सकते है।

1 बडे राज्यो की तुलना मे छोटे राज्यो का विकास तेजी से हुआ है।

2 प्रधानमत्री और मुख्यमत्री के पद का मोह भी क्षेत्र के पिछडेपन का एक प्रमुख कारण है। बदले मे राजनीतिक मजबूरियो के चलते इनसे सबधित क्षेत्र की अपेक्षा देश और प्रदेश के अन्य हिस्से ज्यादा लाभान्वित होते रहे है। क्योकि प्रधानमत्री और मुख्यमत्री पद के एवज मे उन्हे उन आर्थिक ससाधनो को दूसरे क्षेत्रो को आवटित करना पडा जो उनके क्षेत्रो को मिलना चाहिए था।

3 राष्ट्रीय राजनीति मे अपना दबदबा बनाये रखने के चलते भी उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र जैसे बडे राज्यो के मुख्यमत्रियो ने प्रदेश के और विभाजन का विरोध किया है। मेघालय और सिक्किम जैसे छोटे राज्य का मुख्यमत्री बनने की अपेक्षा उत्तर प्रदेश जैसे बडे राज्य राज्य का मुख्यमत्री बनना वे ज्यादा पसन्द करते हैं।

4 गैर आदिवासियो द्वारा आदिवासियो को दबाकर रखने तथा उनकी जीवन पद्धति की

विविधता को बनाये रखने के नाम पर न केवल उन्हे आधुनिक राजव्यवस्था से दूर रखा गया बल्कि उनके वैध अधिकारो पर भी कुठाराघात किया गया है। निरन्तर उपेक्षा, शोषण और अपने ही क्षेत्र मे अल्पसख्यक होने के भय ने ही इन आदिवासी बाहुल्य क्षेत्रो मे आदिवासियो को अपनी सास्कृतिक पहचान व अस्मिता की रक्षा हेतु आन्दोलन के लिये प्रेरित किया है। झारखण्ड, उत्तराचल, छत्तीसगढ, बोडोलैण्ड आन्दोलन इसी का परिणाम है।

5 पूर्वोत्तर मे चल रहे पृथक राज्य आन्दोलनो का प्रमुख कारण विदेशियो की अवैध घुसपैठ रही है।

आर्थिक पिछडापन, प्रशासनिक राजधानी की क्षेत्र से दूरी, क्षेत्र मे औद्योगिक वातावरण का अभाव पृथक राज्य की माग की पीछे अन्य प्रमुख कारण रहे है।

स्वाधीन भारत के लिये सविधान मे सघीय स्वरूप को अगीकृत किया गया है। भारत उसमे निहित राज्यो का सघ है। सघ के सभी घटक शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त से प्रशासित होते है। स्वतन्त्रता के समय से ही भारत मे भाषायी तथा क्षेत्रीय आधार पर पृथक राज्य की माग उठती रही है। इन्ही मागो को देखते हुये 1956 मे राज्यो का पुनर्गठन किया गया। इसके बाद भी समय–समय पर राज्यो का गठन, पुनर्गठन अथवा सीमा परिवर्तन होता रहा है। प्रश्न यह उठता है कि राज्यो का पुनर्गठन आखिर कब तक होता रहेगा? इन मागो के पीछे कौन से कारण है ? यो अगर इन आन्दोलनो के पक्ष मे देखा जाय तो अधिकाश आन्दोलनो की शुरूआत उन क्षेत्रो से हुयी है जो अपने राज्य के अन्य क्षेत्रो से अपेक्षाकृत पिछडे हुये है। पिछडे क्षेत्रो के प्रति शासन की दोमुही नीति एव उनकी शोषण के विरूद्ध लडने की प्रवृत्ति इन आन्दोलनो की शुरूआत का प्रमुख कारण रही है। इन आन्दोलनो के सूत्रधार प्राय क्षेत्रीय स्तर के नेता होते हैं जो अपना जनाधार बढाने के लिये प्राय इन आन्दोलनो को हवा देते है। आर्थिक पिछडापन, सामाजिक विषमता, शोषण आदि आधारो से इन्कार नही किया जा सकता, परन्तु क्षेत्रीय नेताओ द्वारा अपनी महत्वाकाक्षा की पूर्ति के लिये इन आन्दोलनो को गलत दिशा देने के उदाहरणो को भी अनदेखा नही किया जा सकता है।

उपरोक्त अध्ययन द्वितीयक स्रोतो पर आधारित है। उप–क्षेत्रीयतावाद या पृथक राज्य आन्दोलन के सदर्भ मे आम नागरिको का मत जानने के लिए प्राथमिक आकडो का भी सग्रहण किया गया है जिसका विश्लेषण इस प्रकार है।

शोध प्रबन्ध हेतु संग्रहीत प्राथमिक आंकडों का विश्लेषण– पृथक राज्य आन्दोलन एव नये राज्यो के निर्माण के सदर्भ मे आम मतदाता क्या चाहते है, उनकी राय (मत) का परीक्षण करने के लिये साक्षात्कार अनुसूची की सहायता से एक अध्ययन किया गया जिसमे पृथक राज्य आन्दोलन की माग के पीछे सहायक कारको, प्रथम राज्य पुनर्गठन आयोग की असफलता के आधारो, नये राज्यो के निर्माण, एक और राज्य पुनर्गठन आयोग के गठन, राज्यो के पुनर्गठन के आधार, नये राज्यो की स्थापना मे पडने वाले प्रशासनिक और वित्तीय बोझ की प्रतिपूर्ति हेतु दीर्घगामी सुधार कार्यक्रम लागू किये जाने आदि से सबधित प्रश्नो को शामिल किया गया है।

प्रतिवादी या उत्तरदाता– उत्तर प्रदेश और उत्तराचल मे स्थित आम मतदाता जिसमे राजनीतिक और अराजनीतिक, कार्यकर्ता जिन्हे पृथक राज्य आन्दोलनो के सबध मे जानकारी थी का साक्षात्कार, साक्षात्कार सूची[1] के माध्यम से लिया गया। उत्तरदाताओ का चयन यादृच्छिक आधार पर किया गया, जिनका विभिन्न वर्गीकरण के आधारो पर विवरण निम्नवत् है।

सारणी · 5.1

प्रतिदर्श उत्तरदाताओं का विवरण

विवरण		सख्या
क्षेत्र	ग्रामीण	38
	शहरी	62
धर्म	हिन्दू	72
	मुस्लिम व अन्य	28
सामाजिक स्थिति	अनु0जाति/जनजाति	30
	अन्य पिछडा वर्ग	14
	सामान्य	56
आयु	18 से 40 वर्ष	43
	40 से 60 वर्ष	37
	60 वर्ष से अधिक	20
शैक्षिक स्थिति	स्नातक या स्नातक से कम	68
	स्नातक से अधिक (स्नातकोत्तर	32
आर्थिक स्थिति	निम्न व निम्न–मध्यम आय वर्ग	25
	मध्यम एव उच्च आय वर्ग	75
	कुल उत्तरदाता	100

स्रोत – क्षेत्रीय अध्ययन के अनुसार।

कुल 100 लोगो से साक्षात्कार लिया गया जिनमे से 38 0% ग्रामीण पृष्ठभूमि के और 62% शहरी पृष्ठभूमि के थे। उत्तरदाताओ मे से 72 0% हिन्दू जबकि 28 0% मे मुस्लिम तथा अन्य धर्म के मतालम्बी थे। सामाजिक स्थिति के आधार पर 30 0% अनु0 जाति/जनजाति के, 14 0% अन्य पिछडा वर्ग के और 56 0% सामान्य वर्ग के उत्तरदाता थे। इनमे से 43 0% लोग 18 से 40 वर्ष के, 37 0% लोग 40 से 60 वर्ष के और 20 0% 60 वर्ष से अधिक उम्र के थे। 32 0% लोग स्नातकोत्तर या इससे उच्च शिक्षित थे जबकि 68 0% लोगो का शैक्षिक स्तर स्नातक या इससे कम था। उत्तरदाताओ मे से 25 0% लोग निम्न–मध्यम आय वर्ग से सम्बन्धित और 75 0% मध्यम एव उच्च आय वर्ग से सम्बन्धित थे।

सारणी 5 2 के अवलोकन से स्पष्ट है कि क्षेत्रीय स्वायत्तता की भावना को पृथक राज्य की माग मे तबदील करने की दृष्टि से विभेदकारी आर्थिक नीतियो का अनुपालन और क्षेत्रीय दलों का अभ्युदय एव उनके द्वारा सत्ता प्राप्ति हेतु क्षेत्रीय भावना को उभारना दो प्रमुख कारण रहे हैं। जबकि मात्र 34 0% लोगो ने ही पुरानी राज्य क्षेत्रीय सीमा के प्रति निष्ठा को एक कारण के रूप मे स्वीकार किया है।

सारणी · 5 2

क्षेत्रीय स्वायत्तता की भावना को उभारने में योगदान करने वाले कारणों का वर्गीकरण

विवरण		पुरानी राज्य सीमा के प्रति निष्ठा		विभेदकारी आर्थिक नीतियो का अनुपालन		क्षेत्रीय दलो का अभ्युदय एव उनके द्वारा सत्ता प्राप्ति हेतु क्षेत्रीय भावना को उभारना	
		हॉ	नही	हॉ	नही	हॉ	नही
क्षेत्र	ग्रामीण	15 (39 47)*	23 (60 53)	25 (65 79)	13 (34 21)	30 (78 95)	08 (21 05)
	शहरी	19 (30 65)	43 (69 35)	45 (72 58)	17 (27 42)	52 (83 87)	10 (16 13)
धर्म	हिन्दू	26 (36 11)	46 (63 89)	49 (68 06)	23 (31 94)	61 (84 72)	11 (15 28)
	मुस्लिम व अन्य	08 (28 57)	20 (71 43)	21 (75 00)	07 (25 00)	11 (39 29)	17 (60 71)
सामाजिक स्थिति							
	अनु0जति / जनजाति	10 (33 33)	20 (66 67)	21 (70 00)	09 (30 00)	24 (80 00)	06 (20 00)
	अन्य पिछडा वर्ग	04 (28 57)	10 (71 43)	10 (71 43)	04 (28 57)	14 (100 0)	00 (00 00)
	सामान्य	20 (35 71)	36 (64 29)	39 (69 54)	17 (30 36)	44 (78 57)	12 (21 43)
आयु	18 से 40 वर्ष	12 (27 91)	31 (72 09)	32 (74 42)	11 (25 58)	35 (81 40)	08 (18 60)
	40 से 60 वर्ष	14 (37 84)	23 (62 16)	27 (72 97)	10 (27 03)	32 (86 49)	05 (13 51)
	60 से अधिक	08 (40 00)	12 (60 00)	11 (55 00)	09 (45 00)	15 (75 00)	05 (25 00)
शैक्षिक स्थिति							
	स्नातक या स्नातक से कम	24 (35 29)	44 (64 71)	48 (70 59)	20 (29 41)	55 (80 88)	13 (19 12)
	स्नातक से अधिक	10 (31 25)	22 (68 75)	22 (68 75)	10 (31 25)	27 (84 38)	05 (15.62)
आर्थिक स्थिति							
	निम्न एव निम्न–मध्यम आय वर्ग	09 (36 00)	16 (64 00)	18 (72 00)	07 (28 00)	21 (84 00)	04 (16 00)
	मध्यम एव उच्च आय वर्ग	25 (33 33)	50 (66 67)	52 (69 33)	23 (30 67)	61 (81 33)	14 (18 67)
कुल उत्तरदाता		34 (34 00)	66 (66 00)	70 (70 00)	30 (30 00)	82 (82 00)	18 (18 00)

स्रोत – क्षेत्रीय अध्ययन के अनुसार। ' कोष्ठक मे अकित अक प्रतिशत दर्शाते हैं।

सारणी 5 3 के अवलोकन से स्पष्ट है कि पृथक राज्य की माग के सर्वप्रमुख कारणो मे क्षेत्रीय पहचान, आर्थिक विषमता एव पिछडापन तथा भाषावाद का प्रभाव रहा है, जिसका क्रमश 82 0%, 79 0%, तथा 61 0%, लोगो ने समर्थन किया है। 59 0%, लोगो ने धर्म को, 53 0%, लोगो ने भूमिपुत्र सिद्धान्त को, 51 0% लोगो ने जातीय पहचान को और 47 0% लोगो ने सामाजिक–सास्कृतिक पृष्ठभूमि को भी पृथक राज्य आन्दोलन का आधार माना है। इनका यह भी

सारणी . 5.3

पृथक राज्य आन्दोलन में सहायक कारकों का वितरण

विवरण	राजनीतिक लाभ हेतु धर्म का प्रयोग		जातीय पहचान		भाषावाद का प्रभाव		आर्थिक विषमता (तिरस्कार) और पिछड़ापन		क्षेत्र की सार्वभौमिकता या क्षेत्रीय पहचान		ऐतिहासिक एव सामाजिक–सास्कृतिक पृष्ठभूमि		रोजगार और शैक्षणिक अवसरो हेतु भूमिपुत्र सिद्धान्त का प्रयोग	
	हॉ	नही	हॉ	नही	हॉ	नही	हॉ	नही	हॉ	नही	हॉ	नही	हॉ	नही
क्षेत्र ग्रामीण	22(57 89)*	16(42 11)	19(50 00)	19(50 00)	23(60 53)	15(39 47)	29(76 32)	09(23 68)	30(78 95)	08(21 05)	17(71 05)	11(28 95)	20(52 63)	18(47 37)
शहरी	37(59 68)	25(40 32)	32(51 61)	30(48 39)	38(61 29)	24(38 71)	50(80 65)	12(19 35)	52(83 87)	10(16 13)	30(48 39)	32(51 61)	33(53 23)	29(46 77)
धर्म हिन्दू	43(59 72)	29(40 28)	36(50 00)	36(50 00)	44(61 11)	28(38 89)	57(79 17)	15(20 38)	60(83 33)	12(16 67)	34(47 22)	38(52 78)	40(55 56)	32(44 44)
मुस्लिम व अन्य	16(57 14)	12(42 86)	15(53 57)	13(46 43)	17(60 71)	11(39 29)	22(78 57)	06(21 43)	22(78 57)	06(21 43)	13(46 43)	15(53 57)	13(46 43)	15(53 57)
सामाजिक स्थिति														
अनु0जति / जनजाति	18(60 00)	12(40 00)	15(50 00)	15(50 00)	19(63 33)	11(36 67)	24(80 00)	06(20 00)	25(83 33)	05(16 67)	14(46 67)	16(53 33)	24(80 00)	06(20 00)
अन्य पिछड़ा वर्ग	10(71 42)	04(28 58)	08(57 14)	06(42 86)	10(71 42)	04(28 58)	12(85 71)	02(14 29)	12(85 71)	02(14 29)	07(50 00)	07(50 00)	09(64 29)	05(35 71)
सामान्य	31(55 36)	25(44 64)	28(50 00)	28(50 00)	32(57 14)	24(42 86)	43(76 79)	13(23 21)	45(80 36)	11(19 64)	26(46 43)	30(53 57)	20(35 71)	36(64 29)
आयु 18 से 40 वर्ष	26(60 47)	17(39 53)	22(51 16)	21(48 84)	27(62 79)	16(37 21)	34(79 07)	09(20 93)	36(83 72)	07(16 28)	21(48 84)	22(51 16)	23(53 49)	20(46 51)
40 से 60 वर्ष	21(56 76)	16(43 24)	19(51 35)	18(48 65)	22(59 45)	15(40 55)	29(78 38)	08(21 62)	30(81 08)	07(18 92)	16(43 24)	21(56 76)	19(51 35)	18(48 65)
60 से अधिक	12(60 00)	08(40 00)	10(50 00)	10(50 00)	12(60 00)	08(40 00)	16(80 00)	04(20 00)	16(80 00)	04(20 00)	10(50 00)	10(50 00)	11(55 00)	09(45 00)
शैक्षिक स्थिति														
स्नातक या स्नातक से कम	41(60 29)	27(39 71)	35(51 47)	33(48 53)	42(61 76)	26(38 24)	54(79 41)	14(20 59)	56(82 35)	12(17 65)	33(48 53)	35(51 47)	37(54 41)	31(45 59)
स्नातक से अधिक	18(56 25)	14(43 75)	16(50 00)	16(50,00)	19(59 38)	13(40 63)	25(78 13)	07(21 88)	26(81 25)	06(18 75)	14(43 75)	18(56 25)	16(50 00)	16(50 00)
आर्थिक स्थिति														
निम्न एव निम्न–मध्यम आय वर्ग	15(60 00)	10(40 00)	13(52 00)	12(48 00)	16(64 00)	09(36 00)	20(80 00)	05(20 00)	21(84 00)	04(16 00)	12(480 0)	13(52 00)	14(56 00)	11(44 00)
मध्यम एव उच्च आय वर्ग	44(58 67)	31(41 33)	38(50 67)	37(49 33)	45(60 00)	30(40 00)	59(78 67)	16(21 33)	61(81 33)	14(18 67)	35(46 67)	40(53 33)	39(52 00)	36(48 00)
कुल उत्तरदाता	59(59 00)	41(41 00)	51(51 00)	49(49 00)	61(61 00)	39(39 00)	79(79 00)	21(21 00)	82(82 00)	18(18 00)	47(47 00)	53(53 00)	53(53 00)	47(47 00)

स्रोत – क्षेत्रीय अध्ययन के अनुसार। * कोष्ठक मे अकित अक प्रतिशत दर्शाते है।

कहना है कि नेताओ ने धर्म का प्रयोग प्राय अपने निजी स्वार्थों की पूर्ति और राजनीतिक लाभ के लिये किया है, जिससे राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया को आघात पहुचा है। इनका यह भी मानना है कि पृथक राज्य की स्थापना मे पजाब को छोडकर इसका कही योगदान नही रहा है। इसी प्रकार रोजगार और शैक्षणिक अवसरो तथा सभावनाओ को हथियाने के लिये भूमिपुत्र के सिद्धान्त के प्रयोग ने क्षेत्रीयतावाद की अभिवृद्धि मे तो अपना योगदान दिया है, किन्तु पृथक राज्य की माग मे इसका कोई सीधा योगदान नही रहा है। यद्यपि इसके गौण महत्व से इन्कार नही किया जा सकता। यहॉ यह भी ध्यातव्य है कि इसे पृथक राज्य का एक कारण मानने वालो मे अनु0जाति/जनजाति के लोगो का प्रतिशत सर्वाधिक है, जिनके 80 0% लोगो ने इसका एक कारण के रूप मे समर्थन किया है।

सारणी : 5 4

राष्ट्रीय एकीकरण की दृष्टि से और प्रान्तों की स्थापना पर उत्तरदाताओं के विचार

विवरण		उत्तरदाताओ की सख्या	
		हॉ	नही
क्षेत्र	ग्रामीण	21(55 26)*	17(44 74)
	शहरी	37(59 68)	22(40 32)
धर्म	हिन्दू	41(56 94)	31(43 06)
	मुस्लिम व अन्य	17(60 71)	11(39 29)
सामाजिक स्थिति	अनु0जति/जनजाति	18(60 00)	12(40 00)
	अन्य पिछडा वर्ग	9(64 29)	05(35 71)
	सामान्य	31(55 36)	25(44 64)
आयु	18 से 40 वर्ष	26(60 47)	17(39 53)
	40 से 60 वर्ष	21(56 76)	16(43 24)
	60 से अधिक	11(55 00)	09(45 00)
शैक्षिक स्थिति	स्नातक या स्नातक से कम	39(57 35)	29(42 65)
	स्नातक से अधिक	19(59 38)	13(40 63)
आर्थिक स्थिति	निम्न एव निम्न–मध्यम आय वर्ग	15(60 00)	10(40 00)
	मध्यम एव उच्च आय वर्ग	43(57 33)	32(42 67)
	कुल उत्तरदाता	58(58 00)	42(42 00)

स्रोत –क्षेत्रीय अध्ययन के अनुसार। *कोष्ठक मे अकित अक प्रतिशत दर्शाते हैं।

सारणी 5 4 मे वर्णित ऑकडे दर्शाते हैं कि 58 0% लोगो ने नवीन राज्यो के निर्माण का समर्थन किया है जबकि 42 0% लोगो ने कहा कि और राज्यो का निर्माण नही किया जाना चाहिये। राज्य निर्माण के समर्थको का कहना है कि यदि बडे राज्यो को छोटे–छोटे राज्यो मे बाट दिया जाता है तो राज्यो के आकार मे समरूपता आने पर केन्द्रीय राजनीति मे उ0प्र0 और बिहार जैसे बडे राज्यो के नेताओ को मनमानी करने से रोका जा सकता है और सघीय राजनीति मे इनके वर्चस्व या प्रभाव

को सीमित किया जा सकता है, जिससे सघीय भावना को बल प्राप्त होगा। छोटा राज्य बनने से इन बडे प्रदेशो के अविकसित क्षेत्र भी अपना विकास कार्य कर सकेगे, जिससे देश के समग्र विकास को और गति प्राप्त हो सकेगी।

लगभग 70 0% लोगो का मानना है कि प्रथम राज्य पुनर्गठन आयोग अपने ध्येय मे असफल रहा है जबकि 30 0% लोगो ने इसके विपरीत अपना मत दिया है, जिनका मानना है कि प्रथम राज्य पुनर्गठन आयोग अपने ध्येय मे सफल रहा है और पृथक राज्य आन्दोलनो की माग के नेपथ्य मे प्रथम राज्य पुनर्गठन आयोग की असफलता नही वरन् अन्य अनेक दूसरे कारणो का हाथ रहा है (सारणी 5 5)।

सारणी : 5 5

प्रथम राज्य पुनर्गठन आयोग की असफलता पर उत्तरदाताओं के विचार

विवरण		उत्तरदाताओ की सख्या	
		हॉ	नही
क्षेत्र	ग्रामीण	27(71 05)*	11(28 95)
	शहरी	43(69 35)	19(30 65)
धर्म	हिन्दू	51(70 83)	21(29 17)
	मुस्लिम व अन्य	19(67 86)	09(32 14)
सामाजिक स्थिति	अनु0जति/जनजाति	22(73 33)	08(26 67)
	अन्य पिछडा वर्ग	10(71 43)	04(28 57)
	सामान्य	38(67 86)	18(32 14)
आयु	18 से 40 वर्ष	31(72 09)	12(27 91)
	40 से 60 वर्ष	25(67 57)	12(32 43)
	60 से अधिक	14(70 00)	06(30 00)
शैक्षिक स्थिति	स्नातक या स्नातक से कम	48(70 59)	20(29 41)
	स्नातक से अधिक	22(68 75)	10(31 25)
आर्थिक स्थिति	निम्न एव निम्न–मध्यम आय वर्ग	19(76 00)	06(24 00)
	मध्यम एव उच्च आय वर्ग	51(68 00)	24(32 00)
	कुल उत्तरदाता	70(70 00)	30(30 00)

स्रोत – क्षेत्रीय अध्ययन के अनुसार। * कोष्ठक मे अकित अक प्रतिशत दर्शाते है।

प्रथम राज्य पुनर्गठन आयोग को अपने ध्येय मे असफल मानने वालो मे से 71 43% लोगो ने क्षेत्रीय विषमता से प्रभावित समूहो के असन्तोष को 61 43% लोगो ने गठित राज्यो मे आन्तरिक एकरसता के अभाव को 82 86% लोगो ने उपभाषा (बोली, के प्रभाव और राज्यो के आकार मे गहरी असमानता) को तथा 70 0% लोगो ने उन आयामो को पहचानने मे नाकामी, जिनके कारण अलग–अलग क्षेत्रीय आन्दोलन पैदा हुये है को प्रथम राज्य पुनर्गठन आयोग की असफलता का आधार माना है। किन्तु, एक बात पर सभी सहमत थे कि राज्य पुनर्गठन आयोग की असफलता मे सभी कारणो का कुछ न कुछ सम्मिलित योगदान रहा है (सारणी 5 6)।

सारणी 56

प्रथम राज्य पुनर्गठन आयोग की असफलता के कारणों पर उत्तरदाताओं के विचार

विवरण		क्षेत्रीय विषमता से प्रभावित समूहो का असन्तोष		गठित राज्यो मे आन्तरिक एकरसता का अभाव		उपभाषा (बोली) का प्रभाव और राज्यो के आकार मे गहरी असमानता		क्षेत्रीय आन्दोलनो के आयामो एव कारणो को पहचानने मे नाकामी	
		हॉ	नही	हॉ	नही	हॉ	नही	हॉ	नही
क्षेत्र	ग्रामीण	20 (74 07)*	07 (25 93)	17 (62 96)	10 (37 04)	22 (81 48)	05 (18 52)	19 (70 37)	08 (29 63)
	शहरी	30 (69 77)	13 (30 23)	26 (60 47)	17 (39 53)	36 (83 72)	07 (16 28)	30 (69 76)	13 (30 24)
धर्म	हिन्दू	36 (70 59)	15 (29 41)	30 (60 78)	41 (39 22)	10 (82 35)	21 (17 65)	36 (70 59)	15 (29 41)
	मुस्लिम व अन्य	14 (73 68)	05 (26 32)	12 (63 16)	07 (36 84)	16 (84 21)	03 (15 79)	13 (68 42)	06 (31 58)
सामाजिक स्थिति									
	अनु0जति/जनजाति	16 (72 73)	06 (27 27)	13 (59 09)	09 (40 81)	18 (81 82)	04 (18 18)	15 (68 18)	07 (41 82)
	अन्य पिछडा वर्ग	07 (70 00)	03 (30 00)	06 (60 00)	04 (40 00)	08 (80 00)	02 (20 00)	07 (70 00)	03 (30 00)
	सामान्य	27 (71 05)	11 (28 95)	24 (63 16)	14 (36 84)	32 (84 21)	06 (15 79)	27 (71 05)	11 (28 95)
आयु	18 से 40 वर्ष	22 (70 97)	09 (29 03)	19 (61 29)	12 (38 71)	26 (83 87)	05 (16 13)	22 (70 97)	09 (29 03)
	40 से 60 वर्ष	18 (72 00)	07 (28 00)	15 (60 00)	10 (40 00)	20 (80 00)	05 (20 00)	17 (68 00)	08 (32 00)
	60 से अधिक	10 (71 43)	04 (28 57)	09 (64 29)	05 (35 71)	12 (85 71)	02 (14 29)	10 (71 43)	04 (28 57)
शैक्षिक स्थिति									
	स्नातक या स्नातक से कम	34 (70 83)	14 (29 17)	29 (60 41)	19 (39 59)	40 (83 33)	08 (16 67)	34 (70 83)	14 (29 17)
	स्नातक से अधिक	16 (72 73)	06 (27 17)	14 (63 64)	08 (36 36)	18 (81 82)	04 (18 18)	15 (68 18)	07 (31 82)
आर्थिक स्थिति									
	निम्न एव निम्न–मध्यम आय वर्ग	13 (68 42)	06 (31 58)	12 (63 16)	07 (36 84)	16 (84 21)	03 (15 79)	13 (68 42)	06 (31 58)
	मध्यम एव उच्च आय वर्ग	37 (72 55)	14 (27 45)	31 (60 78)	20 (39 22)	42 (82 35)	09 (17 65)	36 (70 59)	15 (29 41)
कुल उत्तरदाता		50 (71 43)	20 (28 57)	43 (61 43)	27 (38 57)	58 (82 86)	12 (17 14)	49 (70 00)	21 (30 00)

स्रोत – क्षेत्रीय अध्ययन के अनुसार। * कोष्ठक मे अकित अक प्रतिशत दर्शाते है।

सारणी 5 7
एक और राज्य पुनर्गठन आयोग की नियुक्ति पर उत्तरदाताओं के विचार

विवरण		उत्तरदाताओ की सख्या	
		हॉ	नही
क्षेत्र	ग्रामीण	20 (52 63)*	18 (47 37)
	शहरी	41 (66 13)	21 (33 87)
धर्म	हिन्दू	44 (61 11)	28 (38 89)
	मुस्लिम व अन्य	17 (60 71)	11 (39 29)
सामाजिक स्थिति	अनु0जति/जनजाति	22 (73 33)	08 (26 67)
	अन्य पिछडा वर्ग	10 (71 43)	04 (28 57)
	सामान्य	29 (51 78)	27 (48 22)
आयु	18 से 40 वर्ष	28 (65 12)	15 (34 88)
	40 से 60 वर्ष	23 (62 16)	14 (37 84)
	60 से अधिक	10 (50 00)	10 (50 00)
शैक्षिक स्थिति	स्नातक या स्नातक से कम	40 (58 82)	28 (41 18)
	स्नातक से अधिक	21 (65 63)	11 (34 37)
आर्थिक स्थिति	निम्न एव निम्न–मध्यम आय वर्ग	16 (64 00)	09 (36 00)
	मध्यम एव उच्च आय वर्ग	45 (60 00)	30 (40 00)
	कुल उत्तरदाता	61 (61 00)	39 (39 00)

स्रोत – क्षेत्रीय अध्ययन के अनुसार। *कोष्ठक मे अकित अक प्रतिशत दर्शाते है।

सारणी 5 7 के अवलोकन से स्पष्ट है कि 61 0% लोगो का मानना है कि एक और राज्य पुनर्गठन आयोग की नियुक्ति की जानी चाहिए, ताकि देश मे चल रहे पृथक राज्यो की माग का परीक्षण कर कुछ समय के लिये समुचित समाधान निकाला जा सके। राज्य पुनर्गठन आयोग की नियुक्ति के प्रश्न पर सामान्य जाति, ग्रामीण पृष्ठभूमि और 60 वर्ष से अधिक उम्र के लोगो ने पक्ष व विपक्ष मे लगभग बराबर मत दिये है। अनुसूचित जाति/जनजाति के 73 33% लोगो ने, अन्य पिछडा वर्ग के 71 43%लोगो ने, शहरी पृष्ठभूमि के 66 13% लोगो ने, 18 से 40 वर्ष के युवाओ मे से 65 11% लोगो ने एक और राज्य पुनर्गठन आयोग की नियुक्ति का समर्थन किया है। हिन्दू, मुस्लिम व अन्य धर्मालम्बियो, 40 से 60 वर्ष के प्रौढ, निम्न एव निम्न–मध्यम आय वर्ग और मध्यम व उच्च आय वर्ग के लोगो का समर्थन प्रतिशत राष्ट्रीय औसत के आस–पास रहा है।

राज्य पुनर्गठन आयोग के गठन का समर्थन करने वालो मे से सभी ने एक मत से प्रशासनिक कार्यकुशलता को इसका आधार बनाये जाने का समर्थन किया है। जबकि, राज्य पुनर्गठन आयोग के समर्थको मे से, आर्थिक सक्षमता को 83 61% ने, उचित समरूप जनसख्या एव भौगोलिक

सारणी 5.8

राज्य के पुनर्गठन हेतु अपनाये जाने वाले आधारों के संबंध में उत्तरदाताओं के विचार

विवरण	आर्थिक सक्षमता		प्रशासनिक कार्यकुशलता		उचित समरूप जनसख्या		उचित समरूप क्षेत्रफल		सामाजिक–सास्कृतिक भिन्नता		भौगोलिक अवस्थिति		भाषायी आधार		जातीय आधार		धार्मिक आधार	
	हॉ	नही	हॉ	नही	हॉ	नही	हॉ	नही	हॉ	नही	हॉ	नही	हॉ	नही	हॉ	नही	हॉ	नही
त्र ग्रामीण	18(90 00)*	02(10 00)	20(100 0)	00(0 00)	17(85 00)	03(15 00)	17(85 00)	03(15 00)	09(45 00)	11(55 00)	18(90 00)	02(10 00)	02(10 00)	18(90 00)	02(10 00)	18(90 00)	00(0 00)	20(100 0)
शहरी	33(80 49)	08(19 51)	41(100 0)	00(0 00)	32(78 05)	09(21 95)	29(70 73)	12(29 27)	23(56 10)	18(43 90)	31(75 61)	10(24 39)	03(07 32)	38(92 68)	00(0 00)	41(100 0)	03(07 32)	38(92 68)
र्म हिन्दू	38(86 36)	06(13 64)	44(100 0)	00(0 00)	35(79 55)	09(20 45)	32(72 73)	12(27 27)	25(56 82)	19(43 18)	34(77 27)	10(22 73)	02(04 56)	42(95 44)	02(04 56)	42(95 44)	00(0 00)	44(100 0)
मुस्लिम व अन्य	13(76 47)	04(23 53)	17(100 0)	00(0 00)	14(82 35)	03(17 65)	14(82 35)	03(17 65)	07(41 18)	10(58 82)	15(88 24)	02(11 76)	03(17 65)	14(82 35)	00(0 00)	17(100 0)	03(17 65)	14(82 35)
सामाजिक स्थिति																		
अनु0जति / जनजाति	18(81 82)	04(18 18)	22(100 0)	00(0 00)	17(77 27)	05(22 73)	16(72 73)	06(27 27)	15(68 18)	07(31 82)	16(72 73)	06(27 27)	00(0 00)	22(100 0)	00(0 00)	22(100 0)	00(0 00)	22(100 0)
अन्य पिछडा वर्ग	08(80 00)	02(20 00)	10(100 0)	00(0 00)	08(80 00)	02(20 00)	07(70 00)	03(30 00)	04(40 00)	06(60 00)	09(90 00)	01(10 00)	02(20 00)	08(80 00)	02(20 00)	08(80 00)	00(0 00)	10(100 0)
सामान्य	25(86 21)	04(13 79)	29(100 0)	00(0 00)	24(82 76)	05(17 24)	23(79 31)	06(20 69)	13(44 83)	16(55 17)	24(82 76)	05(17 24)	03(10 34)	26(89 66)	00(0 00)	29(100 0)	03(10 34)	26(89 66)
आयु 18 से 40 वर्ष	24(85 71)	04(14 29)	28(100 0)	00(0 00)	23(82 14)	05(17 86)	21(75 00)	07(25 00)	14(50 00)	14(50 0)	25(89 29)	03(10 71)	00(0 00)	28(100 0)	00(0 00)	28(100 0)	00(0 00)	28(100 0)
40 से 60 वर्ष	20(86 96)	03(13 04)	23(100 0)	00(0 00)	19(82 61)	04(17 39)	18(78 26)	05(21 74)	12(52 17)	11(47 83)	18(78 26)	05(21 74)	05(21 74)	18(78 26)	02(08 70)	21(91 30)	03(13 04)	20(86 96)
60 से अधिक	07(70 00)	03(30 00)	10(100 0)	00(0 00)	07(70 00)	03(30 00)	07(70 00)	03(30 00)	06(60 00)	04(40 00)	06(60 00)	04(40 00)	00(0 00)	10(100 0)	00(0 00)	10(100 0)	00(0 00)	10(100 0)
शैक्षिक स्थिति																		
स्नातक या स्नातक से कम	32(80 30)	08(20 00)	40(100 0)	00(0 00)	31(77 50)	09(22 50)	31(77 50)	09(22 50)	21(52 50)	19(47 50)	33(82 50)	07(17 50)	05(12 50)	35(87 50)	02(05 00)	38(95 00)	03(07 50)	37(92 50)
स्नातक से अधिक	19(90 48)	02(09 52)	21(100 0)	00(0 00)	18(85 71)	03(14 29)	15(71 43)	06(28 57)	11(52 38)	10(47 62)	16(76 19)	05(23 81)	00(0 00)	21(100 0)	00(0 00)	21(100 0)	00(0 00)	21(100 0)
आर्थिक स्थिति																		
निम्न एवनिम्न मध्यम आय वर्ग	13(81 25)	03(18 75)	16(100 0)	00(0 00)	13(81 25)	03(18 75)	12(75 00)	04(25 00)	09(56 25)	07(43 75)	12(75 00)	04(25 00)	04(25 00)	12(75 00)	02(12 50)	14(87 50)	02(12 50)	14(87 50)
मध्यम एव उच्च आय वर्ग	38(84 44)	07(15 56)	45(100 0)	00(0 00)	36(80 00)	09(20 00)	34(75 56)	11(24 44)	23(51 11)	22(48 89)	37(82 22)	08(17 78)	01(02 22)	44(97 78)	00(0 00)	45(100 0)	01(02 22)	44(97 78)
कुल उत्तरदाता	51(83 61)	10(16 39)	61(100 0)	00(0 00)	49(80 33)	12(19 67)	46(75 41)	15(24 59)	32(52 46)	29(47 54)	49(80 33)	12(19 67)	05(08 20)	56(91 80)	02(03 28)	59(96 72)	03(04 92)	59(95 08)

स्रोत – क्षेत्रीय अध्ययन के अनुसार। *कोष्ठक मे अकित अक प्रतिशत दर्शाते है।

अवस्थिति को 80 33% ने, उचित समरूप क्षेत्रफल को 75 41% ने तथा सामाजिक–सास्कृतिक भिन्नता को 52 46% लोगो ने राज्य पुनर्गठन का आधार बनाये जाने का समर्थन किया है। भाषा, जाति एव धर्म को इसका आधार बनाये जाने का लोगो ने भारी बहुमत से विरोध किया है। भाषा, जाति एव धर्म को क्रमश मात्र 8 20%, 3 28% एव 4 92% लोगो ने इसका आधार बनाये जाने के रूप मे समर्थन किया है। ग्रामीणो, मुसलमानो व अन्य धर्मालम्बियो तथा सामान्य एव अन्य पिछडा वर्ग के आधे से अधिक लोगो ने सामाजिक–सास्कृतिक भिन्नता को राज्य के गठन का आधार बनाये जाने का विरोध किया है (सारणी 5 8)।

47 0% लोगो का मानना है कि राज्य की जनसख्या वर्ष 2001 की जनगणना को आधार मानने पर 5 करोड और 25 0% लोगो का मानना है कि यह 3 करोड से अधिक नही होना चाहिए। जबकि, 13 0% लोगो का मानना है कि प्रशासनिक कार्यकुशलता पर राज्य की जनसख्या का कोई प्रभाव नही पडता है और यह कितनी भी रखी जा सकती है। 15 0% लोगो ने कहा है कि राज्य की जनसख्या 10 करोड से अधिक नही होना चाहिए। स्पष्ट है कि राज्य की आबादी 5 करोड से कम रखने वालो का प्रतिशत 72 0 (25+47) है।

इसी प्रकार 40 0% लोगो का मानना है कि प्रशासनिक कार्यकुशलता के लिये आवश्यक है कि राज्य का क्षेत्रफल देश के कुल भू–क्षेत्रफल के 5 0% से अधिक नही रखा जाना चाहिए। 21 0% लोगो का कहना है कि यह देश के कुल भू–क्षेत्रफल का 3 0% से अधिक नही होना चाहिए। 27 0% लोगो ने सुझाव दिया कि यह देश के कुल भू–क्षेत्रफल का 10 0% से अधिक नही रखा जाना चाहिए। जबकि, 12 0% लोगो का मानना है कि राज्य के क्षेत्रफल का प्रशासनिक कार्यकुशलता पर कोई प्रभाव नही पडता है और यह कितना भी रखा जा सकता है (सारणी 5 9)।

प्रशासनिक और वित्तीय क्षेत्र मे दीर्घगामी सुधार कार्यक्रम लागू किये जाने के सबध मे 81 0% लोगो ने राज्यपाल के पद को समाप्त कर क्षेत्रीय परिषद के प्रमुख के रूप मे राज्यपाल की नियुक्ति किये जाने का समर्थन किया है। विधान परिषद समाप्त करने के सदर्भ मे जहॉ अधिकाश युवाओ (69 77%) ने इसे समाप्त करने के पक्ष मे मत दिया है वही बुजुर्गों मे से मात्र 25 0% ने इस समाप्त किये जाने का समर्थन किया है। मंत्रिमण्डल का आकार छोटा रखने हेतु सवैधानिक प्रावधान किये जाने का 97 0% लोगो ने समर्थन किया है और मात्र 3 0% लोगो ने यह प्रावधान किये जाने का विरोध किया है। लोगो का मानना है कि मत्रिमण्डल का जो विशाल आकार है, वह प्रशासन की कार्यकुशलता की दृष्टि से नही बल्कि विधायको को सतुष्ट करने के कारण होता है, जिसके कारण राज्यो पर अनावश्यक बोझ पडता है और विकास कार्य प्रभावित होते है। इसी प्रकार लोगो का कहना है कि अब राज्यपाल भी सक्रिय राजनीति मे उतरकर दलगत भावना से काम करने लगे है। यदि कई राज्यो का एक ही राज्यपाल बनाया

सारणी 5.9

प्रशासनिक कार्यकुशलता के लिये राज्य की अधिकतम् जनसंख्या एवं क्षेत्रफल पर उत्तरदाताओं के विचार

विवरण	अधिकतम जनसख्या					अधिकतम क्षेत्रफल				
	तीन करोड से अधिक नही	5 करोड से अधिक नही	10 करोड से अधिक नही	कितनी भी जनसख्या हो सकती है	उत्तरदाताओं की सख्या का योग	98 600किमी0² या क्षेत्रफल का 3%	164 400किमी0² या क्षेत्रफल का 5%	328 700किमी0² या क्षेत्रफल का 10%	कितना भी क्षेत्रफल हो सकता है	उत्तरदाताओ की सख्या का योग
क्षेत्र ग्रामीण	10 (26 32)*	19 (50 00)	05 (13 16)	04 (10 53)	38	08 (21 05)	15 (39 47)	11 (28 95)	04 (10 53)	38
शहरी	15 (24 19)	28 (45 16)	10 (16 13)	09 (14 52)	62	13 (20 97)	25 (40 32)	16 (25 81)	08 (12 90)	62
धर्म हिन्दू	18 (25 00)	33 (45 83)	11 (15 28)	10 (13 89)	72	14 (19 44)	31 (43 06)	18 (25 00)	09 (12 50)	72
मुस्लिम व अन्य	07 (25 00)	14 (50 00)	04 (14 29)	03 (10 71)	28	07 (25 00)	09 (32 14)	09 (32 14)	03 (10 71)	28
सामाजिक स्थिति										
अनु0जति / जनजाति	08 (26 67)	13 (43 33)	05 (16 67)	04 (13 33)	30	07 (23 33)	11 (36 67)	08 (26 67)	04 (13 33)	30
अन्य पिछडा वर्ग	04 (28 57)	06 (42 86)	02 (14 29)	02 (14 29)	14	03 (21 43)	05 (35 71)	04 (28 57)	02 (14 29)	14
सामान्य	13 (23 21)	28 (50 00)	08 (14 29)	07 (12 50)	56	11 (19 64)	24 (42 86)	15 (26 79)	06 (10 71)	56
आयु 18 से 40 वर्ष	11 (25 58)	21 (48 84)	06 (13 95)	05 (11 63)	43	09 (20 93)	18 (41 86)	12 (27 91)	04 (9 30)	43
40 से 60 वर्ष	10 (27 03)	18 (48 65)	06 (16 22)	03 (8 11)	37	07 (18 92)	04 (10 81)	10 (27 03)	06 (16 22)	37
60 से अधिक	04 (20 00)	08 (40 00)	03 (15 00)	05 (25 00)	20	05 (25 00)	08 (40 00)	05 (25 00)	02 (10 00)	20
शैक्षिक स्थिति										
स्नातक या स्नातक से कम	18 (26 47)	32 (47 06)	10 (14 71)	08 (11 76)	68	14 (20 59)	28 (41 18)	18 (26 47)	08 (11 76)	68
स्नातक से अधिक	07 (21 88)	15 (46 88)	05 (15 63)	05 (15 63)	32	07 (21 88)	12 (37 50)	09 (28 13)	04 (12 50)	32
आर्थिक स्थिति										
निम्न एव निम्न–मध्यम आय वर्ग	06 (24 00)	14 (56 00)	03 (12 00)	02 (8 00)	25	05 (20 00)	09 (36 00)	07 (28 00)	04 (16 00)	25
मध्यम एव उच्च आय वर्ग	19 (25 33)	33 (44 00)	12 (16 00)	11 (14 67)	75	16 (21 33)	31 (41 33)	20 (26 67)	08 (10 67)	75
कुल उत्तरदाता	25 (25 00)	47 (47 00)	15 (15 00)	13 (13 00)	100	21 (21 00)	40 (40 00)	27 (27 00)	12 (12 00)	100

स्रोत – क्षेत्रीय अध्ययन के अनुसार। *कोष्ठक मे अकित अक प्रतिशत दर्शाते है।

जायेगा तो उसके पास किसी राज्य विशेष की राजनीतिक उठापटक मे अनावश्यक रूप से हस्तक्षेप करने का समय नही रहेगा और वह निष्पक्ष रूप से कार्य कर सकेगा (सारणी 5 10)।

सारणी 5.10

नये राज्यों की स्थापना से पडने वाले प्रशासनिक और वित्तीय बोझ की प्रतिपूर्ति हेतु किये जाने वाले उपायों पर उत्तरदाताओं के विचार

विवरण	राज्यपाल का पद समाप्त कर क्षेत्रीय परिषदे गठित की जाय जिसका प्रमुख राज्यपाल को बनाया जाय जो राज्यपाल के वर्तमान कर्तव्यों का निर्वहन करे।		विधान परिषद जैसी सस्थाओ को समाप्त किया जाय		मन्त्रिमण्डल का आकार छोटा रखने का सवैधानिक प्रावधान होना चाहिए	
	हॉ	नही	हॉ	नही	हॉ	नही
क्षेत्र ग्रामीण	30 (78 95)*	08 (21 05)	11 (28 95)	27 (71 05)	35 (92 10)	03 (7 90)
शहरी	51 (82 26)	11 (17 74)	39 (62 90)	23 (37 10)	62 (100 00)	00 (0 00)
धर्म हिन्दू	59 (81 94)	13 (18 06)	34 (47 22)	38 (52 78)	71 (98 61)	01 (1 39)
मुस्लिम व अन्य	22 (78 57)	06 (21 43)	16 (57 14)	12 (42 86)	26 (92 86)	02 (7 14)
सामाजिक स्थिति						
अनु0जति/जनजाति	25 (83 33)	05 (16 67)	15 (50 00)	15 (50 00)	29 (96 67)	01 (3 33)
अन्य पिछडा वर्ग	12 (85 71)	02 (14 29)	06 (42 86)	08 (57 14)	14 (100 00)	00 (0 00)
सामान्य	44 (78 57)	12 (21 43)	29 (51 79)	27 (48 21)	54 (96 43)	02 (3 57)
आयु 18 से 40 वर्ष	38 (88 37)	05 (11 63)	30 (69 77)	13 (30 23)	43 (100 00)	00 (0 00)
40 से 60 वर्ष	31 (83 78)	06 (16 22)	15 (40 54)	22 (59 46)	35 (94 59)	02 (5 41)
60 से अधिक	12 (60 00)	08 (40 00)	05 (25 00)	15 (75 00)	19 (95 00)	01 (5 00)
शैक्षिक स्थिति						
स्नातक या स्नातक से कम	55 (80 88)	13 (19 12)	33 (48 53)	35 (51 47)	65 (95 59)	03 (4 41)
स्नातक से अधिक	26 (81 25)	06 (18 75)	17 (53 13)	15 (46 88)	32 (100 00)	00 (0 00)
आर्थिक स्थिति						
निम्न एव~~निम्न मध्यम~~ आय वर्ग	21 (84 00)	04 (16 00)	14 (56 00)	11 (44 00)	25 (100 0)	00 (0 00)
मध्यम एव उच्च आय वर्ग	60 (80 00)	15 (20 00)	36 (48 00)	39 (52 00)	72 (96 00)	03 (4 00)
कुल उत्तरदाता	81 (81 00)	19 (19 00)	50 (50.00)	50 (50 00)	97 (97 00)	03 (3 00)

स्रोत – क्षेत्रीय अध्ययन के अनुसार। *कोष्ठक मे अकित अक प्रतिशत दर्शाते है।

अनुसूचित जाति/जनजाति और मुस्लिम समुदाय के अधिकाश लोगो ने जनसख्या के समानुपात मे आरक्षण दिये जाने का समर्थन किया है। जबकि, सामान्य और अन्य पिछडे वर्ग के

अधिकाश लोगो ने आरक्षण दिये जाने का विरोध किया है। आरक्षण समर्थको का यह भी कहना है कि इस आरक्षण की परिधि मे राज्य मे एक निश्चित अवधि तक निवास करने वाले सभी लोग आने चाहिए और यह अवधि बहुत अधिक नही होनी चाहिए। जनसख्या के समानुपात मे कम या अधिक आरक्षण के सदर्भ मे लोगो की प्रतिक्रिया शून्य रही है (सारणी 5 11)।

सारणी 5 11

राज्य की योजनाओं और नौकरी में स्थानीय नागरिकों को आरक्षण दिये जाने के संदर्भ में उत्तरदाताओं के विचार

विवरण		जनसख्या के समानुपात मे आरक्षण होना चाहिये	आरक्षण नही होना चाहिए
क्षेत्र	ग्रामीण	15 (39 47)*	23 (60 53)
	शहरी	20 (32 26)	42 (67 74)
धर्म	हिन्दू	20 (27 78)	52 (72 22)
	मुस्लिम व अन्य	15 (53 57)	13 (46 43)
सामाजिक स्थिति	अनु0जति/जनजाति	24 (80 00)	06 (20 00)
	अन्य पिछडा वर्ग	04 (28 57)	10 (71 43)
	सामान्य	07 (12 50)	49 (87 50)
आयु	18 से 40 वर्ष	16 (37 21)	27 (62 79)
	40 से 60 वर्ष	13 (35 14)	24 (64 86)
	60 से अधिक	06 (30 00)	14 (70 00)
शैक्षिक स्थिति	स्नातक या स्नातक से कम	24 (35 29)	44 (64 71)
	स्नातक से अधिक	11 (34 38)	21 (65 63)
आर्थिक स्थिति	निम्न एव निम्न–मध्यम आय वर्ग	11 (44 00)	14 (56 00)
	मध्यम एव उच्च आय वर्ग	24 (32 00)	51 (68 00)
	कुल उत्तरदाता	35 (35 00)	65 (65 00)

स्रोत – क्षेत्रीय अध्ययन के अनुसार। *कोष्ठक मे अकित अक प्रतिशत दर्शाते है।

उपरोक्त क्षेत्रीय अध्ययन के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि 58 0% लोगो का मानना है कि कुछ अन्य नवीन राज्यो का निर्माण किया जाना चाहिए। इन 58 0% मतदाताओ के अलावा 3 0% अन्य मतदाताओ ने भी द्वितीय राज्य पुनर्गठन आयोग की नियुक्ति का समर्थन किया है और मत व्यक्त किया है कि नये राज्यो के निर्माण का प्रश्न उस पर छोड दिया जाना चाहिए। इन लोगो का यह भी कहना है कि राज्यो के पुनर्गठन के लिये आर्थिक सक्षमता, प्रशासनिक कार्यकुशलता, उचित समरूप जनसख्या एव क्षेत्रफल, भौगोलिक अवस्थिति को आधार बनाया जाना चाहिए। सामाजिक–सास्कृतिक भिन्नता को आधार बनाये जाने के प्रश्न पर पक्ष और विपक्ष मे लगभग बराबर मत प्राप्त हुये है। अधिकाश लोगो का मानना है कि राज्य की जनसख्या 5 करोड और क्षेत्रफल देश के भू–क्षेत्रफल के 5 0% से अधिक नही होना चाहिए।

लोगो का मानना है कि क्षेत्रीय स्वायत्तता की भावना को उभारने मे विभेदकारी आर्थिक नीतियो का अनुपालन और क्षेत्रीय दलो का अभ्युदय एव उनके द्वारा सत्ता प्राप्त हेतु क्षेत्रीय भावना

को उभारना दो प्रमुख कारण रहे है। पृथक राज्य आन्दोलन की माग मे सहायक प्रमुख कारक–क्षेत्रीय पहचान, आर्थिक विषमता और पिछडापन तथा भाषावाद का प्रभाव रहे है। 70 0% लोगो का मानना है कि प्रथम राज्य पुनर्गठन आयोग अपने ध्येय मे असफल रहा है, क्योकि यह क्षेत्रीय विषमता मे प्रभावित समूहो के असन्तोष, उपभाषा (बोली) के प्रभाव और उन आयामो को पहचानने मे नाकाम रहा है, जिनके कारण अलग–अलग क्षेत्रीय आन्दोलन पैदा हुए है। इसके साथ ही इसकी सस्तुति पर बनाये गये राज्यो के आकार मे गहरी असमानता भी इसके लिये उत्तरदायी रही है।

जहाँ तक नये राज्यो की स्थापना से पडने वाले प्रशासनिक और वित्तीय बोझ की प्रतिपूर्ति का प्रश्न है तो इस सबध मे लोगो का मत है कि मत्रिमण्डल का आकार छोटा रखने का सवैधानिक प्रावधान किया जाना चाहिए। साथ ही राज्यपाल का पद समाप्त कर क्षेत्रीय परिषदे गठित की जानी चाहिए, जिसका प्रमुख राज्यपाल को बनाना चाहिए, जो क्षेत्रीय परिषद के अन्तर्गत आने वाले सभी राज्यो मे राज्यपाल के वर्तमान कर्तव्यो का निर्वहन करे।

अध्याय–6

उत्तरांचल पृथक राज्य आन्दोलन : एक विशिष्ट अध्ययन

उत्तराचल या उत्तराखण्ड राज्य आन्दोलन उत्तर प्रदेश के उत्तर मे अवस्थित उस विशिष्ट भौगोलिक समरूप क्षेत्र की स्वायत्तता व स्वशासन का आन्दोलन है जिसका सदियो तक एक सामाजिक, सास्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक इकाई के रूप मे पृथक एव स्वतन्त्र अस्तित्व रहा है। ऐतिहासिक रूप से विकसित यह विशिष्ट भू–भाग अपनी सभ्यता एव सामाजिक–राजनीतिक सरचना मे शेष भारत के मैदानी इलाको से भिन्न आचलिक पहचान रखता है।

प्रकृति की अमूल्य कृति हिमालय के मध्यभाग को उत्तराखण्ड कहा जाता है[1], जिसमे उत्तर प्रदेश के कुमाऊँ और गढवाल मडल शामिल थे और अब इसे उत्तराचल के नाम से अलग प्रशासनिक इकाई के रूप मे जाना जाता है।[2] यह एक ऐसी देवभूमि है , जो पुरातन काल से देवगण, ऋषि–मुनि आदि का निवास स्थल एव तपोभूमि रहा है। देव दानवो की उत्पत्ति का स्थान गढवाल ही माना जाता है।[3] यह खश बालिका शकुन्तला के पुत्र राजा भरत की जन्मस्थली है, जिनके नाम पर इस देश का नाम भारत पडा।[4] प्राचीन ग्रन्थो मे इस क्षेत्र या इसके किसी हिस्सो के लिये तपोभूमि, हिमवत, इलावृत, ब्रह्मपुर, रूद्र हिमालय, बदरिका आश्रम, मानस नाम आदि प्रयुक्त होते रहे हैं।[5] हिमालय के पाच पौराणिक खण्डो मे दूसरे और तीसरे को कूर्मांचल तथा केदारखण्ड कहा गया है[6] और स्कन्द पुराण मे केदारखण्ड की भूमि को स्वर्गभूमि कहा गया है।[7] स्कन्दपुराण के चालीसवे अध्याय मे इस केदारखण्ड की लम्बाई पचास योजन बतायी गयी है, जो वर्तमान उत्तराचल के समरूप ही है।[8]

---

1 उत्तराखण्ड शब्द का प्रयोग कब हुआ यह ज्ञात नहीं हो सका है, क्योंकि प्राचीन साहित्य मे उत्तराखण्ड नाम नहीं मिलता है। पाणिनी और कौटिल्य ने पाटिलीपुत्र–कपिशा मार्ग को उत्तरापथ कहा है। बाद मे उत्तरापथ का प्रयोग सम्पूर्ण उत्तर भारत के लिये होने लगा। डा0 डबराल (1960 श्री उत्तराखण्ड यात्रा दर्शन नारायण कोटी, चमोली) का कहना है कि उत्तरापथ के पूर्व पद और केदारखण्ड के उत्तरपद के सयोग से 'उत्तराखण्ड' नाम चला होगा।

2 'उत्तराखण्ड' नाम अपनाने मे मुख्यत दो कठिनाइया हैं। चीनी आक्रमण के पश्चात् गढवाल एव कुमाऊ के तीन जिलो (उत्तरकाशी, चमोली और पिथौरागढ) को मिलाकर एक नई कमिश्नरी बनाई गयी थी, उसका नाम भी उत्तराखण्ड रखा गया था। अत उत्तराखण्ड शब्द गढवाल–कुमाऊ के सीमित क्षेत्र का बोध कराता है। इससे भी अधिक महत्व का कारण यह है कि प0 बगाल मे 1964 मे उत्तराखण्ड (सभी उत्तरखण्ड) दल उनके प्रदेश मे स्थित पाच जिलो (दार्जिलिग, जलपाईगुडी, कूच बिहार, मान्दा और पश्चिमी दिनाजपुर) के अलग राज्य की माग कर रहा है। इस आन्दोलन को भी पहचाना जाता है। उत्तराखण्ड क्रान्ति दल की स्थापना से दस वर्ष पूर्व से यह आन्दोलन 'उत्तराखण्ड' नाम से जुडा हुआ है। उत्तराखण्ड नाम रखने से उपर्युक्त भ्रातिया निर्मित हो सकती है। वर्तमान समय मे दो ही नाम प्रयुक्त हुये हैं। उपर्युक्त कारणो से उत्तराचल प्रदेश का प्रयोग ही समीचीन प्रतीत होता है। यह नाम हिमाचल और अरूणाचल से मिलता–जुलता भी है जिन्होने शान्तिपूर्ण रीति से राज्य का दर्जा प्राप्त किया है।

3 आज भी गढ़वाल मे देव और दानवो की समान रूप से पूजा होती है। नृसिह, नागर्जा आदि जहा देव हैं वहीं भूत पिचास आदि अनेक राक्षसी प्रवृत्ति के (छल आदि) रूप मिलते हैं जिनकी पूजा भी समान सम्मान के साथ होती है।

4 डबराल, शिवप्रसाद, "उत्तराखण्ड के पशुचारक", पृ0 59।

5 चातक, गोविन्द, (1958), 'गढ़वाली लोक–गाथाएँ' देहरादून, पृ0 17 ।

6 'खडा पच हिमालयस्य कथिला नैपाल कूर्मांचलौ ।
केदारोऽथ जलधरोऽथ, रूचिर कश्मीर सज्ञोऽन्तिम ।।"

7 अन्यत्र पृथ्वी प्रोक्ता गगाद्वारोत्तरो बिना ।
इद्मेव महाभाग स्वर्गद्वार स्मृत बुधै ' ।। – स्कन्द पुराण

8 पचाशद् योजनायाम त्रिशद् योजना विस्तृतम् ।
इद वै स्वर्गगमन न पृथ्वी ता महाविभौ ।। 27 ।।
गगाद्वार मर्याद श्वेतान्त वर वर्णिनी ।
तमसातटत. पूर्वभागे बौद्धाचल शुभम् ।। 28 ।।
केदारमडल ख्यात भूम्यास्तद् भिन्नक स्थलम् ।
वात्साल्यान्तद देवेशी कथित देशमुक्तमम् ।। 29 ।।– स्कन्द पुराण

उत्तराचल जिसे मध्य हिमालय के नाम से पृथक पर्वतीय खण्ड माना गया है पूर्व मे काली नदी, पश्चिम मे टौंस नदी द्वारा हिमाचल से निर्धारित होती है। उत्तर मे भारत चीन जल विभाजक द्वारा तथा दक्षिण मे रूहेलखण्ड को स्पर्श करते हुये तराई द्वारा इसकी सीमा नियन्त्रित होती है। उत्तराचल का विस्तार 28°44′ से 31°25′ उत्तरी अक्षास तथा 77°45′ से 81°1′ पूर्वी देशान्तर के मध्य है ।

इस भू–भाग का क्षेत्रफल 53,483 वर्ग कि0मी0 है और इसकी जनसख्या 8,49,562 है। 13 जिलो 49 तहसीलो और 95 विकास खण्डों मे प्रशासनिक दृष्टि से बाटे गये इस क्षेत्र की 82% जनसख्या गावो में निवास करती है। यहॉ स्थित कुल भूमि का 14प्रतिशत ही कृषि योग्य है। देहरादून, ऊधमसिह नगर और हरिद्वार की समतल तराई को छोडक शेष भूमि मे ढलावदार सीढीनुमा खेत ही है। ऊधमसिह नगर की तराई एव देहरादून की
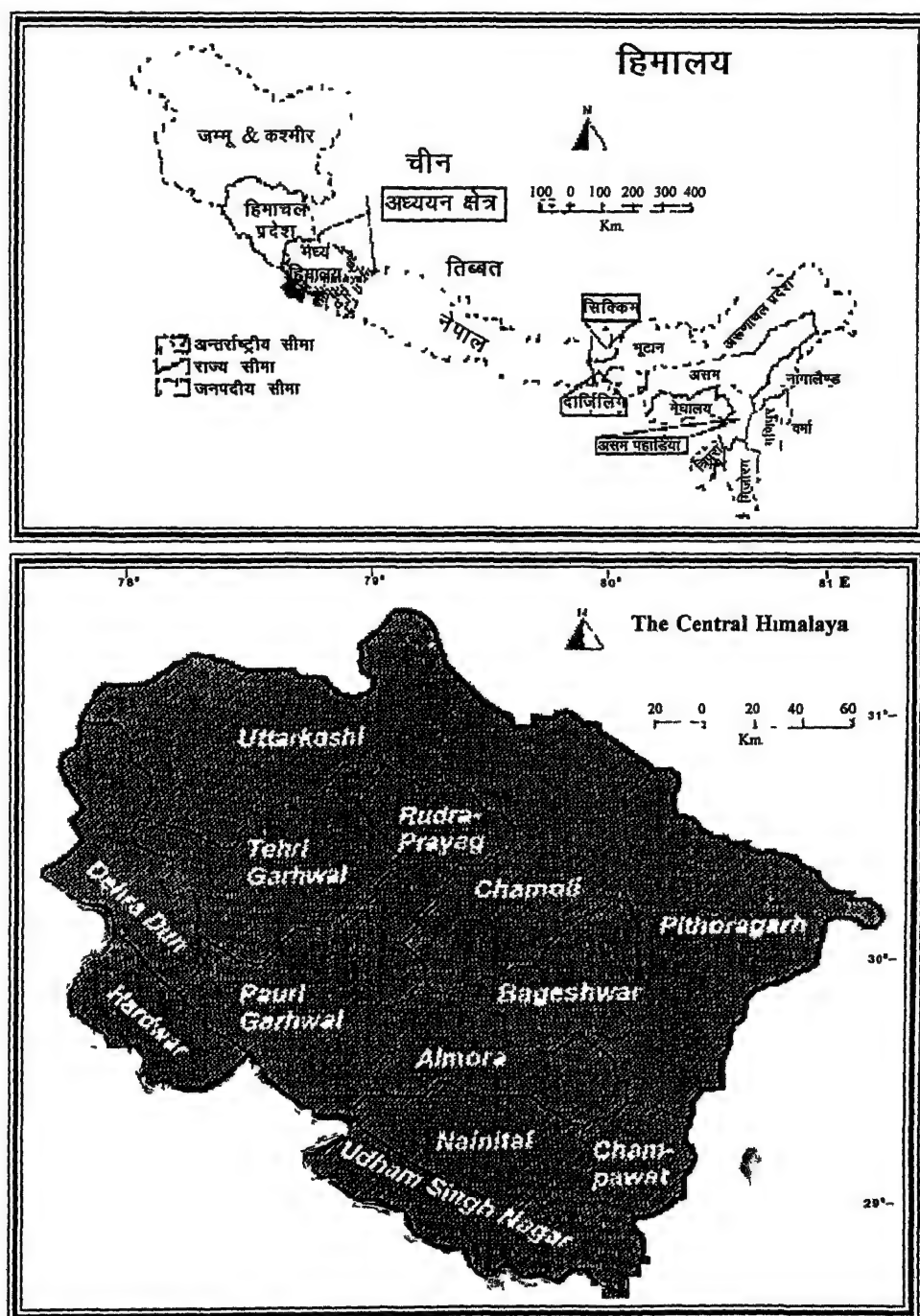
(मानचित्र–5.1 उत्तराचल की अवस्थिति)

घाटी की कृषि भूमि अत्यधिक उपजाऊ है। गगा की सात प्रमुख धाराओ–भागीरथी, मदाकिनी, अलकनदा, धौली, पिंडार, नयार, भिलगना एव यमुना, टौंस, रामगगा, कोसी, काली के जलागम क्षेत्र इसी भू–भाग मे अवस्थित है। मध्य हिमालय की वनस्पति विहीन रेखा से प्रारम्भ होकर दक्षिण में शिवालिक की तराई तक का यह भू–भाग वनो से आच्छादित है। ये वन स्थानीय जनता की जरूरतो को पूरा करने के अतिरिक्त राष्ट्रीय आय का बडा स्रोत है। मशहूर जिमकार्बेट व राजाजी उद्यान यहीं अवस्थित है। इस भू–भाग मे बहुमूल्य खनिज सम्पदा, चूना पत्थर मारवल, डोलोमाइट, यूरेनियम, ताबा, जिप्सम, सैंडस्टोन, मैग्नेसाइट आदि पाये जाते हैं। बहुमूल्य जडी–बूटियॉ, हिमाच्छादित, हिमालय की चोटियॉ–नदा देवी, चौखम्बा, त्रिशूल इसके ग्लेशियर, इसके नदियो नाले, प्रपात इसकी झीले और वन, फूलो की घाटिया और घास के मैदान (बुग्याल) से भरे विविध प्राकृतिक सौन्दर्य सदियो से लोगो को इस जटिल भू सरचना की और आकर्षित करते रहे हैं।

भू–अवस्थिति एवं पारिस्थितिकी

धरातलीय दृष्टि से उत्तराचल अत्यन्त विषम है (मानचित्र 5 2)। तराई–भावर तथा इन क्षेत्रो को छोडकर शेष उत्तराचल पर्वतीय प्रदेश है। जिसका धरातल 250 मी0 से आरम्भ होकर तथा तीव्रता से उठकर 8000 मी0 से भी अधिक ऊँचाई तक पहुचता है। इसके दक्षिण मे 8 से 25 कि0मी0 तक चौडी तराई–भावर की चौरस पट्टी पूर्व मे टनकपुर से पश्चिम मे इन घाटियो तक फैली है, जिसके बगल मे हरिद्वार मे गगा का चौरस मैदान है और शेष उत्तराचल शिखरो और तग घाटियो से घिरा है। इस क्षेत्र मे सेरो (पानी वाले चौरस कृषि क्षेत्र) और बगडो (बडी नदियो के अगल–बगल मे कृषि क्षेत्र) को छोडकर मैदानी क्षेत्र नही है।[9] तराई–भावर तथा दून घाटिया दक्षिण मे गगा के मैदान से

(मानचित्र–5 2 उत्तराचल का भू–स्वरूप)

9 पाठक, शेखर (1987), *उत्तराखण्ड मे कुली बेगार प्रथा,* नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृ0 1–2 ।
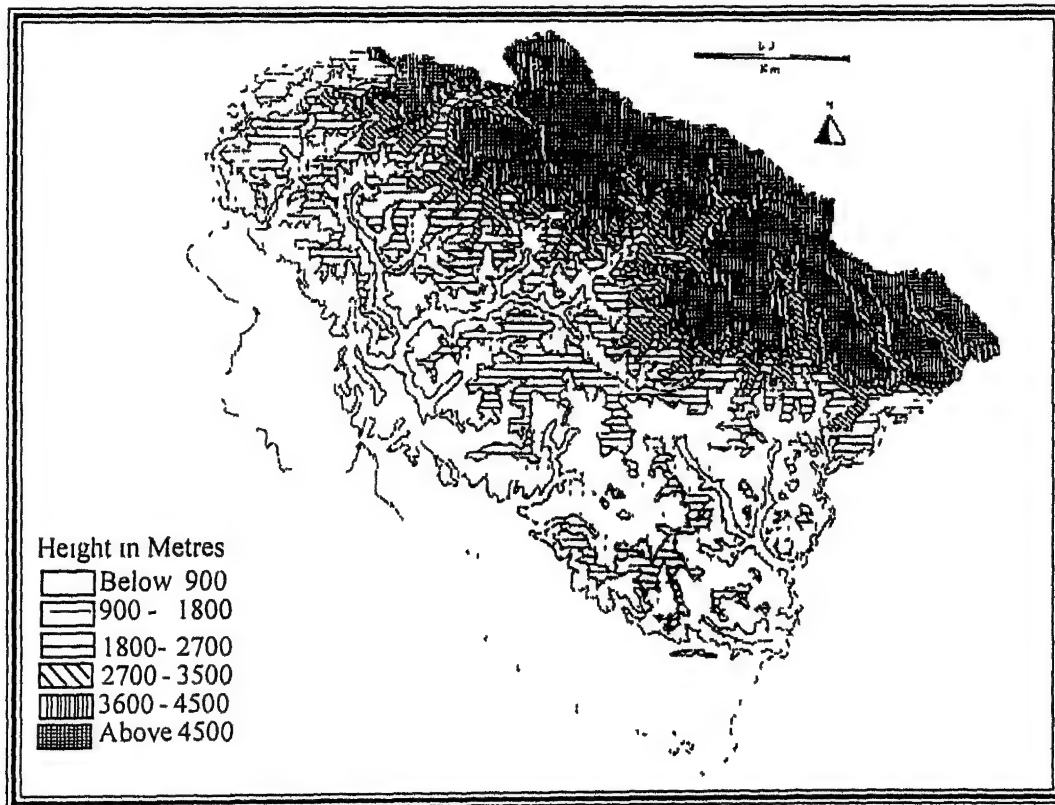
जुडी है या यह कहे कि यह क्षेत्र गगा के मैदान का ही हिस्सा है और उत्तर मे ऊँचा होकर शिवालिक की प्रारम्भिक पहाडियो को छूता है। उत्तराचल से हिमालय की तीनो श्रखालये–स्नोयी (बर्फ ढका) हिमालय, ट्रान्स (उस पार) हिमालय तथा सब (उप) हिमालय गुजरती है।[10]

भौगोलिक अवस्थिति और जलवायु की दृष्टि से उत्तराचल को पाच भागो मे बाटा जा सकता है।

(क) 900मी0 ऊँचाई तक का भू–क्षेत्र जहा वर्ष के दौरान अधिकाश समय सामान्य ठडक एव सामान्य गर्मी पडती है इस भू–भाग मे दून घाटी तथा तराई–भावर का समतल क्षेत्र एव गगा का मैदान सम्मिलित है। उत्तराचल के दूनो मे देहरा चौखम्भा, कोठरी, पतली तथा कोटादून है जो 450मी0 से 700 मी0 की ऊँचाई पर स्थित समतल घाटियॉ है। दून से पूर्व की ओर कोटद्वार कालागढ तथा काठगोदाम से नीचे की ओर का भाग 'भाभर' के नाम से पुकारा जाता है, क्योकि इस भू–भाग मे भाभर घास बहुतायत मे है। भाभर के बाद तराई का समतल भू भाग है[11], जो आज कृषि के उन्नतशील क्षेत्रो मे गिनी जाती है। इन क्षेत्रो की प्रमुख वनस्पति शाल, शीशम, कैल, हल्दू, कत्था, सेमुल, तून, बास है। गगा के मैदान एव दून घाटी मे सर्वाधिक जनसख्या दबाव है तथा तराई–भावर क्षेत्र मे यह दून घाटी के बाद द्रुत गति से बढ रहा है।

(ख) 900मी0 से 1800 मी0 ऊँचाई तक का क्षेत्र जहा अधिकाश समय जाडा तथा कुछ समय के लिये गर्मी का मौसम रहता है। जाडे के समय मध्यम ठडक पडती है। इस क्षेत्र मे वे सभी घाटिया और पर्वत श्रृखलाये सम्मिलित है जो इस ऊँचाई के अन्तर्गत आती है। इस क्षेत्र मे चौडी पत्ती के वन कम पाये जाने के कारण चीड वनो की प्रधानता है। कही–कही बॉस के जगल भी पाये जाते है। लीसा का एकमात्र भण्डार यही क्षेत्र है। जनसख्या का भारी दबाव इस क्षेत्र मे पाया जाता है।[12]

(ग) 1800 मी0 से 3000 मी0 ऊँचाई तक का क्षेत्र जहॉ जाडे मे प्राय 'स्नोफाल' होता रहता है एव अल्पावधि की ठडक युक्त गर्मी का मौसम रहता है। इस क्षेत्र मे स्थित प्रमुख स्थान–पिथौरागढ, अल्मोडा, नैनीताल, रानीखेत, कौसानी, गौरीकुण्ड, मनेरी, चम्बा, सुरकण्डा, मसूरी आदि है। इसमे चौडी पत्ती के वन अधिक और नुकीली पत्ती के वन कम है। वन सम्पदा के मुख्य भण्डार यही है। इनमे मुख्य रूप से बाज, तिलज, खोरू, मोरू, भोजपत्र, देवदार, थुनेर, पॉकार, अखरोट, पापडी, रिगाल आदि वृक्ष एव मूल्यवान जडी–बूटिया उत्पन्न होती है। निचले भाग मे जनसख्या घनी तथा 2000 मी0 से अधिक ऊँचाई के क्षेत्र मे बिखरी हुयी है।[13]

(घ) 3000मी0 से 4800मी0 ऊँचाई तक के क्षेत्र जो सामन्यता बर्फ से आच्छादित रहता है। इस क्षेत्र मे अप्रैल से सितम्बर के मध्य तक नाना प्रकार की जडी बूटिया, छोटी झाडिया तथा घास उत्पन्न होती है। इनको बुग्याल के नाम से पुकारा जाता है। इस क्षेत्र के चारागाह भेड–बकरी, चबरगाय, घोडे आदि जानवरो के बुग्याल है।[14] जडी–बूटियो के महत्वपूर्ण भण्डार इसी क्षेत्र मे स्थित है। इस

---

10 पाठक, शेखर (1987), पूर्व उद्धत कृति, पृ० 2।
11 औस्मोस्टन, ए0ई0 (1927), *ए फोरेस्ट फ्लोरा ऑफ कुमाऊ*।
12 विष्ट, डॉ0 नारायण सिह (जून 1978), –*"क्या पर्वतीय जिलो के लिये क्षेत्रीय नियोजन आवश्यक है"*– हिमालय वर्ष–2 अक–1 ।
13 तदैव ।
14 विष्ट, डॉ0 नारायण सिह (1981), *उत्तराखण्ड हिमालय की अर्थव्यवस्था,* टिहरी गढवाल, भागीरथी प्रकाशन गृह, पृ० 22।

क्षेत्र के कुछ गावो– माणा, नीति, दूनागिरी, मलारी, जेलम, मिलम, हरसिल, दार्मा आदि मे कृषि भी की जाती है, जहॉ मुख्यत जौ, गेहूँ, ओगल, फाफर, आलू, गोभी पैदा की जाती है।

(ड) 4800मी0 से अधिक ऊॅचाई का क्षेत्र जो हिम रेखा से ऊपर और वनस्पति विहीन है। यह स्थायी रूप से बर्फ से ढका रहता है। भारत की प्रमुख व पवित्र नदियो का यह उद्गम क्षेत्र है। इस भू–भाग मे स्थित प्रमुख श्वेताग शिखर है– नदा देवी (7817मी0), कामेट (7756मी0), माणा पर्वत (7,434मी0), त्रिशूल (7,273मी0) सतोपन्थ (7075मी0), दूनागिरी (7,066मी0), चौखम्भा (7,138मी0), केदारनाथ (6940मी0), बन्दरपुच्छ (6315मी0), श्रीकठ (6,133मी0), शिवलिग (6543मी0), नारायण पर्वत (5,965मी0), गगोत्री (6,672मी0), नर पर्वत हैं। इनके अतिरिक्त एक सौ से अधिक पर्वत शिखर और हैं। यही पर प्रख्यात ग्लेशियर, खतलिग, यमुनोत्तरी, गगोत्तरी, पिंडर, सुदरढूगा, कफनी, मिलम और जोलिग कोग स्थित हैं। रूपकुण्ड, वसुधारा, लोकपाल, सतोपथ आदि इसी क्षेत्र में स्थित है। यहा पर कुछ प्रमुख दर्रे यथा–माणा, नीति, मलारी पास, ट्रेलपास, लीपूलेख आदि अवस्थित हैं, जो प्राचीन समय से ही भारत और तिब्बत, चीन, मध्य एशिया के व्यापार और सामान्य आवागमन के साथ–साथ सामारिक सदर्भो मे भी महत्वपूर्ण रहे हैं।[15]

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

पुरातत्ववेत्ताओ की स्पष्ट खोजो के मुताबिक उत्तराचल मे ईसा पूर्व छठी शताब्दी से मानव विकास के चिन्ह मिलते हैं। इस दौर के निवासी लोहे और तॉबे के उपकरण, तीरों के नुकीले हिस्से, मछली आखेंट के काटे तथा लोहे की सुइयो का प्रयोग करते थे। पुरातात्विक खोजो के अनुसार उत्तराचल (गढवाल एव कुमाऊ) मौर्य साम्राज्य का अग था। अधिकतर जनजातिया, अर्द्ध आदिवासी बौद्ध धर्म के अनुयायी थे। कालसी मे अशोक शिलालेख का मिलना, गढवाल के पेनखडा मे बौद्धाचल का होना[16], बद्रीनाथ मे बुद्ध प्रतिमा की उपस्थिति[17] तथा शकराचार्य का इस क्षेत्र मे आना, तत्कालीन उत्तराखण्ड मे बौद्धमत के व्यापक प्रसार की स्थिति स्पष्ट करते हैं। ऐतिहासिक खोजो से कुषाण, कुणिदो और वर्धनो[18] का शासन होने का यहॉ प्रमाण मिलता है। छठी शताब्दी मे यह पौरववश[19] के शासनाधीन था तथा सातवी शताब्दी मे यहा कत्यूरी राजवश का उदय हुआ। जिसने लगभग 350 वर्षों तक शासन किया।[20] इसी दौरान 780 ई0 मे शकराचार्य के उत्तराचल आगमन के पश्चात् यहॉ हिन्दू धर्म और ब्राह्मणवाद का उदय हुआ।

कहने का तात्पर्य यह है कि उत्तराचल के पुराने समाज मे कही भी वर्ण व्यवस्था का नामोनिशान नही था। ऐतिहासिक विरासत से मिली यह सभ्यता विशिष्ट सास्कृतिक और सामाजिक सरचना मे शेष भारत के मैदानी इलाको से काफी भिन्न थी। इसी विशिष्ट सास्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक व भौगोलिक पहचान के कारण ही सातवी शताब्दी मे कत्यूरी शासक पूरे उत्तराचल को एक सूत्र मे बाधने मे सफल हुये थे। उनके साम्राज्य की सीमा उत्तर मे तिब्बत, दक्षिण मे शिवालिक तथा तराई–भावर, पूर्व मे डोटी तथा पश्चिम मे कागडा तक फैली हुयी थी। विशिष्ट आचिलक पहचान के कारण ही दो सौ वर्ष तक यह विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र एक स्थायी शासन के अधीन रह पाया था।

15 विष्ट, डॉ0 नारायण सिह, (जून 1981), पूर्व उद्धत कृति, पृ० 23।
16 राहुल, (n d), *गढवाल,* पृ0 278 ।
17 बहुगुणा, शम्भु प्रसाद, (1951), *विराट हृदय,* लखनऊ, पृ0 33 ।
18 डबराल, डॉ0 शिवप्रसाद, (1928), *केदारखण्ड गढवाल मण्डल,* पृ0 41 ।
19 रतूडी, प0 हरिकृष्ण, (1920), *गढवाल का इतिहास,* देहरादून, पृ0 353 ।
20 पाठक, शेखर (1987), पूर्व उद्धत कृति, पृ० 38।

कत्यूरी वश के शासक समिसुराज के शासनकाल 1050 से 1060 ई0 के पश्चात् कत्यूरी शासन का विघटन शनै –शनै , प्रारम्भ हो गया और 1300ई0 तक आते–आते पूरा उत्तराचल शासको की स्वार्थ लिप्सा के कारण छोटी–छोटी प्रशासनिक इकाइयो मे विभाजित हो गया। कालान्तर मे पुन 1500–1510ई0 के बीच, चादपुर के पवार शासक ने 52 गढो को अपने अधीन कर गढवाल राज्य की स्थापना की[21], जबकि कुमाऊँ मे चद शासको का शासन रहा।[22] मैदानी भू–भाग से आये पवार शासको ने यहा वर्ण व्यवस्था को सुदृढ किया, धार्मिक अनुष्ठान के लिये ब्राह्मण भी बुलाये गये और क्षत्रियो के अभाव मे सभी खस जनो को क्षत्रिय वर्ण मे आत्मसात करने की प्रक्रिया आरम्भ हुयी। पूरे भारत मे यही एकमात्र क्षेत्र है जहॉ स्थानीय आधार पर चुनिदा कबीले ब्राह्मण बना लिये गये। यही कारण है कि यहा ब्राह्मण उपनामो मे दोनो ही तरह के ब्राह्मण पाये जाते है– बाहर से आये पाण्डे, तिवारी, जोशी, पाठक, भट्ट, पत, कोठारी और स्थानीय ढौडियाल, नौटियाल, कोठियाल, उनियाल, बडथ्वाल, सकलानी आदि। ब्राह्मीकरण की यह प्रक्रिया उन्नीसवी शताब्दी तक भी जारी रही, जिसके चलते एक क्षेत्र विशेष के जनजातीय समूह जातीय गतिशीलता के जरिये उच्च वर्णों म परिवर्तित हो गये। यहॉ के आस्ट्रिक समूह के आदिवासी अति शूद्र बना दिये गये।[23] इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि क्यो उत्तराचल की आबादी का 80प्रतिशत हिस्सा सवर्ण कहलाता है, जबकि पूरे देश के पैमाने पर सवर्ण मात्र 13प्रतिशत हैं। उत्तरी सीमान्त क्षेत्र मे भारतीय मगोल समूह की जो जनजातिया है, इनमे बहुत से अभी भी बौद्ध धर्म के अनुयायी है। यह जनजातीय समूह तिब्बत के साथ हमारे व्यापार का एक मात्र सूत्र बना रहा है।

कालान्तर मे 1771 ई0 मे पुन एक बार गढवाल और कुमाऊँ समेत पूरा उत्तराचल प्रद्युमन शाह के शासनाधीन आ गया।[24] 1771 से 1787 तक पूरा गढवाल और कुमाऊ एक ही शासन के अन्तर्गत रहा। प्रद्युमन शाह उत्तराचल का अन्तिम शासक था जिसके राज्य की सीमाये पूर्व मे काली नदी के तट तक एव पश्चिम मे यमुना तट तक फैली हुयी थी और तराई का कुछ भू–भाग भी इस शासन के अन्तर्गत था। 1791 ई0 मे कुमाऊँ मे गोरखाराज स्थापित हो गया जो 1804 ई0 मे आते–आते देहरादून समेत पूरे गढवाल पर स्थापित हो गया।[25] राजा प्रद्युमन शाह जो गोरखा आक्रमण के दौरान सहारनपुर पलायन कर गये थे, ने अग्रेजो की मदद मागी। इसके साथ ही 1814 व 1815 के वर्षों मे गोरखाओ ने इस क्षेत्र के निवासियो पर घोर अत्याचार किये, जिससे अग्रेजो का ध्यान इस ओर गया और सन् 1815 मे अग्रेजो ने गोरखाओ को परास्त कर इस क्षेत्र पर अधिकार कर लिया।[26] 1816 मे नेपाल व कम्पनी के बीच सगोली की सन्धि हुई, जिसके अनुसार कुमाऊँ एव गढवाल का आधा भाग कम्पनी ने अपने अधीन ले लिया और टिहरी, रियासत का शासन सुदर्शन शाह को सौंप दिया। गढवाल एव कुमाऊँ के शेष भाग को एक 'नॉन रेगुलेशन प्रान्त' बना दिया जो

---

21 *उत्तराखण्ड जन सघर्ष वाहिनी का घोषणा पत्र,* उद्धत, नौटियाल, सुरेश सपा0 (1994) *उत्तराखण्ड एक अध्ययन आकलन और प्रस्ताव,* नई दिल्ली, अभिकथन पब्लिकेशन्स, पृ0 124 ।

22 तदैव ।

23 *उत्तराखण्ड मुक्ति मोर्चे के प्रथम अधिवेशन का घोषणा पत्र,* उद्धत, तदैव पृ0 138 ।

24 तदैव, पृ0 139 ।

25 नौटियाल, डॉ0 शिवानन्द, (n d), *गढवाल दर्शन,* लखनऊ, पृ0 37 ।

26 तदैव।

उत्तर–पूर्वी प्रान्त का एक भाग रहा । 1891 मे 'नान रेगुलेशन प्रान्त' भी समाप्त कर दिया गया जो उत्तरी–पूर्वी भाग का एक भाग रहा। 1901 ई0 मे जब 'सयुक्त प्रान्त आगरा एव अवध' बना तो उत्तराचल को उसमे मिला दिया गया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् 'आगरा एव अवध प्रान्त' 'उत्तर प्रदेश' राज्य कहलाया। 1947 ई0 मे टिहरी रियासत का विलय भारत मे नही हुआ। किन्तु 1948 ई0 मे टिहरी रियासत मे हुयी जनक्रान्ति के दौरान सामन्तशाही के तख्ता पलटने के पश्चात् इस रियासत का भी भारत मे विलय हो गया, जिससे टिहरी राज्य को ब्रिटिश राज मे प्राप्त शिक्षा व नौकरियो मे आरक्षण की सुविधाये भी समाप्त हो गयी।

पृथक पर्वतीय राज्य आन्दोलन : स्वप्न से हकीकत तक

उत्तराचल की स्वायत्तता के सदर्भ मे सर्वप्रथम 5–6 मई 1938 को श्रीनगर (गढवाल) मे काग्रेस के विशेष राजनीतिक सम्मेलन मे इस पहाडी अचल के लिये अलग राजनीतिक व्यवस्था के विचार को जवाहर लाल नेहरू ने दिया था। नेहरू ने कहा था कि 'इस पर्वतीय अचल के लोगो को अपनी विशेष परिस्थितियो के अनुरूप स्वय निर्णय लेने का तथा अपनी सस्कृति को समृद्ध करने का अधिकार मिलना चाहिये।''[27] आजादी की लडाई मे उत्तराचलवासियो की भागीदारी व तत्कालीन परिस्थितियो ने इस प्रश्न को सुसुप्तावस्था मे ही रखा। आजादी की पूर्व बेला पर 1946 मे कुमाऊँ केसरी बद्रीदत्त पाण्डे की अध्यक्षता मे हल्द्वानी मे हुये एक सम्मेलन मे पर्वतीय क्षेत्र को विशेष दर्जा देने की माग उठायी गयी। इस माग के पक्ष मे तर्क यह था कि इस क्षेत्र की भौगोलिक, सामाजिक, सास्कृतिक एव भाषायी भिन्नता इसको मैदानी इलाको से अलग करती है और इतने बडे सयुक्त प्रान्त 'आगरा और अवध' के साथ इसका विकास नही हो सकता। प्रान्त के तत्कालीन प्रीमियर गोविन्द वल्लभ पत 51 जिलो के मुख्यमत्री बनने जा रहे थे और व्यक्तिगत महत्वाकाक्षा के लिये उन्होने उत्तराचल बनाये जाने का सवाल ही नही उठने दिया। कालान्तर मे पर्वतीय क्षेत्र से जो भी नेता राष्ट्रीय राजनीति मे उभरा उसने उत्तराचल की माग को व्यक्तिगत हित मे मातहत रखा।

इसके पूर्व 1815 ई0 मे गढवाल व कुमाऊँ मण्डल के 'ईस्ट इडिया कम्पनी' के अधीन हो जाने के बाद 'हर्षदेव जोशी' ने इस क्षेत्र के लिये विशेष अधिकार और रियासतो की माग की थी। इसके लगभग आधा शताब्दी बाद जून 1867 मे महारानी विक्टोरिया को भेजे गये बधाई पत्र के रूप मे इस क्षेत्र के लोगो ने अपनी राजनीतिक व सास्कृतिक पहचान की पृथक मान्यता दिलाने की बात रखी। 1928 ई0 मे साइमन कमीशन के भारत आने की खबर मिलने पर इस क्षेत्र के प्रबुद्ध लोगो ने लेफ्टिनेट गवर्नर के मार्फत 'कुमाऊँ एक पृथक प्रान्त' शीर्षक से लिखा एक स्मृति पत्र सरकार को दिया, जिसमे सन् 1814 से पूर्व कुमाऊँ को स्वतन्त्र बताते हुये ब्रिटिश हुकुमत से इसे स्वायत्त क्षेत्र बनाने की माग की गयी।

आजादी के बाद पहली बार भारतीय कम्युनिष्ट पार्टी के महासचिव पी0सी0जोशी ने 1952ई0 मे पर्वतीय जिलो की स्वायत्तता का प्रश्न उठाया। उनके प्रयास का आधार काग्रेस का 1928 का कराची अधिवेशन था जिसमे काग्रेस ने प्रस्ताव पास कर भाषा व भौगोलिकता के आधार पर राज्यो

---

27 काला, ललित (1994), *''इतिहास का अन्तिम पृष्ठ जो अभी लिखा जाना है''*, नौटियाल, सुरेश सपा0, पूर्व उद्धत कृति, पृ0 224 ।

के पुनर्गठन की बात कही थी। 1967 ई0 मे टिहरी रियासत के अपदस्थ राजा मानवेन्द्र शाह ने पृथक राज्य का झण्डा उठाया। यह आन्दोलन टिहरी जिले तक ही सीमित रहा तथा राजा को राजभाग मिलने पर समाप्त हो गया।

1956 मे राज्य पुनर्गठन आयोग के सदस्य के0एम0पणिक्कर ने भी उत्तर प्रदेश के विभाजन के सदर्भ मे यहॉ की भौगोलिक, आर्थिक, सास्कृतिक परिस्थितियो के अनुरूप विकास के लिये उत्तर प्रदेश के चार भागो मे विभाजन की बात कही। पणिक्कर ने अपने नोट मे कहा था "विशाल क्षेत्र वाला उत्तर प्रदेश सतुलित भारतीय सघ मे पूरी तरह नही बैठता है। इसकी 6 करोड 30 लाख जनसख्या या भारत की 1/6 जनसख्या तथा 51 जिलो ओर दो लाख साठ हजार कर्मचारियो ने राज्य के बाहर शक और क्रोध पैदा किया, क्योकि इससे बहुत अधिक असमानता बढी है। इसको इस तरह एक राज्य मे रखने मे पहला तर्क है कि यह बडा शक्तिशाली और पूर्णरूपेण सुसगठित राज्य है और यह भारत की एकता की गारन्टी है तथा दूसरा तर्क यह है कि यह एक सूत्र मे बधा है, इसका, विभाजन इसकी अर्थव्यवस्था को समाप्त कर देगा और निराशा की भावना फैलायेगा। ये तर्क वास्तविकता पर आधारित नही है। भारतीय सघ मे किसी भी इकाई को भारत की रीढ की हड्डी की तरह नही समझा जाना चाहिये।"[28]

24–25 जून 1967 को रामनगर सम्मेलन मे पर्वतीय राज्य के गठन के लिये ठोस कार्यक्रम बनाया गया तथा पर्वतीय राज्य परिषद का गठन किया गया। इस सम्मेलन मे पारित 6 प्रस्तावो मे कहा गया, 'देहरादून एव नैनीताल के मैदानी क्षेत्र ऐतिहासिक, भौगोलिक और सास्कृतिक दृष्टि से पर्वतीय क्षेत्र के ही अग है पर्वतीय जिलो के तीव्र विकास और आर्थिक समृद्धि के लिये पिछले कई वर्षो से इन क्षेत्रो की जनता की माग है कि उनके लिये पृथक नियोजन की व्यवस्था की जाय इन क्षेत्रो की भौगोलिक, सामाजिक एव आर्थिक परिस्थितियो को ध्यान मे रखते हुये ऐसे अधिकार सम्पन्न ढाचे का निर्माण करे जो इन क्षेत्रो के सही विकास और योजनाओ को सही ढग से मूर्तरूप दे सके उत्तर प्रदेश राज्य के अर्न्तगत इन आठ जिलो (अब 13 जिलो) का आर्थिक विकास जिस ढग से होना चाहिये था, नही हुआ और इस स्थिति को बनाये रखने से इन जिलो का अहित होगा।"[29] सम्मेलन मे स्पष्ट तौर पर कोई माग तो नही की गयी, लेकिन सरकार से यह अपेक्षा की गयी कि वह ऐसा हल निकाले कि क्षेत्र मे त्वरित विकास हो सके। 14–15 अक्टूबर को नई दिल्ली मे उत्तराखण्ड विकास सगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसका उद्घाटन करते हुये तत्कालीन केन्द्रीय मत्री अशोक मेहता ने कहा कि "उत्तर प्रदेश पर्वतीय क्षेत्र की समस्याये मैदानो से भिन्न है इसलिये पर्वतीय क्षेत्रो के लिये योजना के तौर–तरीके भी भिन्न होने चाहिये।"[30] इसके साथ ही उन्होने मानवेन्द्र शाह की इस माग को कि इस क्षेत्र को केन्द्र शासित राज्य का दर्जा प्रदान किया जाय अस्वीकार कर दिया। अगले वर्ष ही 1968 मे योजना आयोग ने पर्वतीय नियोजन प्रकोष्ठ

28 उत्तराखण्ड क्रान्ति दल का जुलाई 24, 1979 को मसूरी सम्मेलन मे अगीकृत किये गये प्रथम सकल्प से उद्धत, नौटियाल, सुरेश सपा0 (1994),पूर्व उद्धत कृति, पृ0 119–120 ।

29 लेयीतुआन, सूशर (1994), "*गोदो का इतजार*", नौटियाल, सुरेश सपा०, पूर्व उद्धत कृति, पृ0 234।

30 पैट्रियाट, अक्टूबर 15, 1967 ।

खोला। बाद मे इसी वर्ष (1968) मे ही दिल्ली के अनेक प्रवासी सगठनो ने ऋषि वल्लभ सुद्रियाल के नेतृत्व मे वोट क्लब पर प्रदर्शन किया। प्रदर्शनकारी गिरफ्तार कर लिये गये और मामला ठण्डा पड गया। इससे पूर्व तत्कालीन प्रधानमत्री इदिरा गाधी ने अपने श्रीनगर (गढवाल) प्रवास के दौरान कहा कि उत्तर प्रदेश पर्वतीय क्षेत्र की समस्याये मैदानी क्षेत्रो से अलग है, लिहाजा, इस क्षेत्र के लिये योजना का स्वरूप भिन्न रखा जायेगा।

1973ई0 मे पुन उत्तराखण्ड पर्वतीय राज्य परिषद का पुनर्गठन किया गया, जिसमे दो पर्वतीय सासद नरेन्द्र सिह बिष्ट व प्रताप सिह नेगी भी शामिल थे। प्रताप सिह नेगी ने उत्तराखण्ड राज्य की स्थापना के लिये ससद मे प्रस्ताव भी रखा। 1976ई0 मे उत्तराखण्ड युवा मोर्चा बना। इस मोर्चे ने बद्रीनाथ से दिल्ली वोट क्लब तक पद यात्रा कर ससद का घेराव करने का प्रयास किया, जिसमे 73 आन्दोलनकारी गिरफ्तार कर लिये गये। किन्तु इससे उत्पन्न आशा ने एक और दलीय गठन के प्रयास को कार्यरूप दिया और परिणामत 1978 मे उत्तराखण्ड राज्य परिषद का गठन किया गया जिसने 28 जुलाई, 1979 को वोट क्लब पर प्रदर्शन कर तत्कालीन प्रधानमत्री श्री मोरार जी देसाई को ज्ञापन भी दिया। 1979 मे ही भारत की कम्युनिष्ट पार्टी (मार्क्सवादी लेनिनवादी) ने भी उत्तराखण्ड राज्य बनाये जाने के पक्ष मे प्रस्ताव पारित किया। 1979 मे कुमाऊ विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति डॉ0 डी0डी0पन्त की अध्यक्षता मे उत्तराखण्ड क्रान्ति दल (उक्राद) की स्थापना हुई। इसके बाद छिटपुट तौर पर उत्तराचल और दिल्ली मे पृथक राज्य की माग उभरती रही। कागजो पर कार्यक्रम बनते रहे पर सार्थक कुछ नही हो पाया। लम्बे अन्तराल के बाद 1987 का वर्ष महत्वपूर्ण रहा। इस वर्ष 9 मार्च को पौडी मे उक्राद ने प्रदर्शन किया। 25 जुलाई को ऑल इण्डिया स्टूडेटस फेडरेशन और अखिल भारतीय नौजवान सभा की उत्तर प्रदेश इकाई ने लखनऊ मे इस माग को लेकर धरना दिया। 9 अगस्त को पूर्ण उत्तराखण्ड बन्द का आवाह्न उक्राद ने किया। इसके बाद उत्तराखण्ड जनसघर्ष वाहिनी के अस्तित्व मे आने से नया ध्रुवीकरण बना, जिसने 'नये भारत के लिये नये उत्तराखण्ड' के नारे के साथ उत्तराखण्ड आन्दोलन चलाने की घोषणा की। बाद मे इसकी एकता बरकरार न रह पाने के कारण 23 जुलाई 1991 को दिल्ली मे 'उत्तराखण्ड महासभा' के रूप मे मुखरित हुयी। इसके बाद महासभा, सघर्ष वाहिनी तथा उक्राद के कुछ कार्यकर्ताओ ने मिलकर उत्तराखण्ड पार्टी के रूप मे 19 जुलाई 1992 को एक दल उत्तराखण्ड पार्टी का गठन किया। इसके पूर्व मई 1991 मे कुछ पर्वतीय लोगो तथा प्रवासियो के गठबधन से उत्तराखण्ड मुक्ति मोर्चे का गठन किया गया।

26 अगस्त 1991 को उत्तर प्रदेश की भाजपा सरकार ने उत्तराचल प्रस्ताव केन्द्र के पास मजूरी के लिये भेजा, किन्तु केन्द्र सरकार ने इस प्रस्ताव के सम्बन्ध मे राज्य सरकार से अतिरिक्त विवरण मागने के अलावा कुछ नही किया। मार्च 1992 मे भाजपा के भूवनचन्द्र खण्डूरी और सुषमा स्वराज ने क्रमश लोकसभा और राज्यसभा मे पृथक उत्तराचल की माग उठायी। 23 अगस्त 1992 को उ0प्र0 के तत्कालीन मुख्यमत्री कल्याण सिह ने भोपाल मे राज्यो के पुनर्गठन के लिये नया आयोग बनाये जाने की माग की। उनका तर्क था कि छोटे राज्य बेहतर तरक्की कर सकते है। अत उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और राजस्थान जैसे बड़े राज्यो का पुनर्गठन होना चाहिये।

अप्रैल 1994 को बहादुरराम टम्टा द्वारा सयुक्त उत्तराखण्ड राज्य मोर्चा की स्थापना की गयी। इसी वर्ष 24 अप्रैल को इसके सदस्यो ने दिल्ली मे उत्तराखण्ड राज्य के गठन की माग को लेकर विशाली रैली का आयोजन किया। अप्रैल मे ही मुलायम सिह के नेतृत्व वाली सपा–बसपा गठबधन सरकार द्वारा उत्तराखण्ड राज्य के प्रश्न पर नगर विकास मत्री रमाशकर कौशिक की अध्यक्षता मे उपसमिति गठित की गयी एव 2 जून को महत्वपूर्ण राजनैतिक एव प्रशासनिक निर्णय के तहत उ0प्र0 के पर्वतीय जिलो के लिये अतिरिक्त मुख्य सचिव नियुक्त किये जाने की घोषणा की गयी।

मुलायम सिह सरकार द्वारा शिक्षा के क्षेत्र मे अन्य पिछडे वर्गों (जो उत्तराचल मे लगभग 3प्रतिशत है) हेतु लागू किये गये 27प्रतिशत आरक्षण की उत्तराखण्ड के सामाजिक सरचना के प्रतिकूल होने के कारण इसी वर्ष 8 अगस्त को इसके विरोध मे हुये छात्र प्रदर्शन पर पुलिस द्वारा बर्बरता से लाठी चार्ज किया गया तथा गोलिया चलायी गयी। परिणामत उत्तराखण्ड राज्य प्राप्ति का अब तक का सबसे बडा और देश के इतिहास मे एक उपेक्षित समाज का आन्दोलन बन गया। इसी बीच 24 अगस्त को मुलायम सिह सरकार द्वारा उत्तराखण्ड राज्य निर्माण का प्रस्ताव विधानमण्डल मे पारित कर केन्द्र को भेजा गया, लेकिन जनता ने इसे सरकार की चाल समझा और आन्दोलन जारी रखा। अत इसे दबाने के लिये मुलायम सिह सरकार द्वारा 1 सितम्बर को खटीमा मे तथा 2 सितम्बर को मसूरी मे आनदोलनकारियो पर गोलिया चलायी गयी।[31] इन गोलीकाण्डो मे अनेक आन्दोलनकारी मारे गये। इसी दौरान उत्तराखण्ड की जनता द्वारा 2 अक्टूबर को दिल्ली मे आयोजित रैली मे भाग लेने के लिये आ रही जनता को पुलिस द्वारा मुजफ्फर नगर के रामपुर तिराहे पर रोका गया। आन्दोलनकारियो की बसो पर आग लगाने के साथ ही निहत्थी जनता पर गोलिया चलायी गयी। फलस्वरूप, अनेक आन्दोलनकारी मारे गये और कई घायल हुये।[32] 3 अक्टूबर को उत्तराखण्ड मे हजारो प्रदर्शन हुये। इसमे भी देहरादून मे तीन आन्दोलनकारी मारे गये।[33]

19 से 22 जनवरी 1995 के मध्य उक्राद की पहल पर केन्द्रीय गृह मत्रालय द्वारा पृथक राज्य समर्थक आन्दोलनकारियो को बुलाकर वार्ता की गयी। 23 मार्च को पूर्व उप थल सेनाध्यक्ष लेफ्टिनेट जनरल गजेन्द्र सिह रावत के नेतृत्व मे फिरोजशाह कोटला मैदान से ससद तक रैली निकाली गयी और इसी वर्ष 15 दिसम्बर को भूतपूर्व मेजर जनरल शैलेन्द्र सिह बहुगुणा के नेतृत्व मे ससद का घेराव किया गया। 24 अप्रैल 1997 को उत्तर प्रदेश की विधानसभा (मायावती सरकार) द्वारा तीसरी बार पृथक उत्तराचल राज्य के गठन सम्बन्धी प्रस्ताव को पारित कर केन्द्र के पास भेजा गया।[34] 23 जुलाई को भारतीय जनता युवा मोर्चा ने भाजपा सासद भुवनचन्द्र खडूरी व मनोहरकात ध्यानी के नेतृत्व मे उत्तराचल राज्य को लेकर ससद भवन पर प्रदर्शन किया। 15 अगस्त को लाल किले के प्राचीर से प्रधानमत्री इन्द्रकुमार गुजराल ने पूर्व प्रधानमत्री देवगौडा की घोषणा पर कायम रहते हुये कहा कि उनकी सरकार उत्तराखण्ड राज्य के गठन के सम्बन्ध मे शीघ्र कदम उठायेगी। लेकिन

31 दैनिक जागरण, सितम्बर 2 एव 3, 1994 ।
32 तदैव, अक्टूबर 4, 1994 ।
33 तदैव।
34 तदैव, अप्रैल 25, 1997 ।

विभिन्न कारणो एव विवादो से इसमे अनावश्यक विलम्ब होता रहा। अन्तत 3 अगस्त 1998 को पृथक उत्तराखण्ड राज्य के निर्माण सम्बन्धी विधेयक को केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल ने मजूरी दी। 20 अगस्त को अपनी मजूरी देते हुये राष्ट्रपति ने इसे 21 अगस्त को राज्यो को इस निर्देश के साथ भेजा कि 28 सितम्बर से पहले वह अपनी टिप्पणियो के साथ केन्द्र को वापस भेज दे। 23 सितम्बर 1998 को उ0प्र0 विधानमण्डल ने 36 ससोधनो सहित हरिद्वार विहीन उत्तराचल के गठन को स्वीकृति प्रदान की।

वर्ष 1999 मे उत्तराखण्ड के गठन की प्रक्रिया प्रारम्भ हुयी, किन्तु ऊधमसिह नगर तथा हरिद्वार को नये राज्य मे सम्मिलित करने और नये राज्य के नामकरण पर अनेकानेक विवाद उठे और आन्दोलन छिड गये। अन्तत 1 अगस्त, 2001 को उत्तर प्रदेश पुनर्गठन विधेयक, 2000 लोकसभा मे पारित हुआ। राज्यसभा ने 11 अगस्त, 2000 को इस विधेयक का अनुमोदन कर दिया और इस प्रकार उत्तराखण्ड 9 नवम्बर, 2000 को अस्तित्व मे आ गया।

पृथक पर्वतीय राज्य के निर्माण का औचित्य

जब हम उत्तराचल की मौजूदा परिस्थितियो का विश्लेषण करते है तो पाते हैं कि लगभग हिमाचल प्रदेश के बराबर इस पहाडी इलाके मे अकूत प्राकृतिक सपदा मौजूद है जिसका पूरी तरह से औपनिवेशिक शोषण/दोहन हो रहा है।[35] परम्परागत तौर पर सदियो से उत्तराखण्ड मे कृषि, पशुपालन एव कुटीर उद्योगो पर आधारित आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था थी। गोरख्याणी और ईस्ट इण्डिया कम्पनी की उत्तराचल मे घुसपैठ के बाद के वर्षों मे वनो पर हमला शुरू हुआ लेकिन आजादी के बाद तो आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था पूरी तरह अस्त–व्यस्त कर दी गयी। दलाल, पूजी और निजी क्षेत्र के मुनाफे ने उत्तराचल के कुटीर उद्योगो को पूरी तरह उजाड दिया। वन विनाश ने कृषि को प्रभावित किया है और जल सकट बढता जा रहा है। कुटीर उद्योगो एव कृषि से उजडा अकुशल श्रमिक मैदानो की ओर जाने को बाध्य हो रहा है। कृषि–प्रधान पर्वतीय क्षेत्र मे कृषि एव पशुपालन का स्तर बेहद पिछडा हुआ है सीढीनुमा खेतो मे खेती के वैज्ञानिक तरीको पर कोई शोध, तकनीकी विकास नही किया गया है। यहॉ छोटी–छोटी जोत वाले किसान है जो कृषि व पशुपालन द्वारा अपनी आजीविका चलाने के प्रयास मे खून–पसीना एक करके भी छह माह का ही जुगाड कर पाते है, शेष समय का भरण–पोषण बाहर नौकरी–मजदूरी कर रहे लोगो के मनीआर्डर पर निर्भर रहता है।[36]

कम्पनी राज के प्रारम्भ से हुआ वन विनाश आज खतरनाक हालत पर पहुच चुका है। आजादी के बाद तो इस तेजी से वन व प्राकृतिक सम्पदा की लूट हुयी है कि कभी उत्तराचल के हरे–भरे पर्वत आज नगे नजर आते है। पर्यावरण व प्राकृतिक सन्तुलन की अकूत हानि हुयी है और प्रतिवर्ष भू–स्खलन, बाढ, भू–क्षरण की रफ्तार बढती जा रही है। पर्वतीय क्षेत्र के वनो का सारा कच्चा माल तथा खनिज सम्पदा मैदानो को चली जाती है, जहा उन पर आधारित उद्योग लगे है। तराई के मिश्रित वनो को नष्ट कर यूकेलिप्टस के एक सकुलीय वन लगाये जा रहे है जो वित्तीय पूजी

35 *उत्तराखण्ड जनसघर्ष वाहिनी का घोषणा पत्र,* उद्धत नौटियाल सुरेश सपा०(1994), पूर्व उद्धत कृति, पृ0 61 ।
36 *उत्तराखण्ड मुक्ति मोर्चे का घोषणापत्र,* उद्धत तदैव, पृ0 139 ।

के दलालो के लिये सस्ता कच्चा माल उपलब्ध कराते है। पर्वतीय क्षेत्र के विकास की उपेक्षा का कुपरिणाम है कि यहा की श्रम शक्ति पूरे भारत मे सबसे सस्ती बिकती है। श्रम शक्ति का अपने उत्पादन मूल्य से कम पर बिकना अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय पूजी और उसके दलालो के लिये सर्वोत्तम लाभकारी स्थितिया प्रस्तुत करती है।[37] कुल मिलाकर उत्तराचल मे वित्तीय पूजी और बाजार पर बडे उद्योगपतियो का नियन्त्रण होने से स्थानीय पूजी का विकास अवरूद्ध हो रहा है। बडे पूजीपतियो के लिये कच्चे माल की व्यवस्था करने वाले स्थानीय दलालो की एक बडी फौज ने शासक वर्ग की जनविरोधी नीतियो के लिये सामाजिक आधार तैयार करने का काम किया। इन दलालो ने शराब माफिया और तस्करो के साथ गठजोड कायम करके उत्तराचल की सामाजिक व्यवस्था को तहस–नहस कर दिया है।[38]

पर्वतीय क्षेत्र जडी–बूटियो के लिये मशहूर है लेकिन उसका शोध और विपणन और उनसे बनायी जाने वाली दवाओ का मुनाफा सब मैदानो मे ही चला जाता है। कत्था उत्पादन हो या लीसा से टरपेटाइन बनाने के उद्योग हो, कागज बनाने के कारखाने हो या खेल के सामान बनाने के उद्योग, वनो से उत्पादित कच्चे माल का दोहन कर उसका निर्यात उत्तराचल से बाहर किया जाता है और उत्तराचल की जनता को न तो रोजगार मिल पाता है और न ही उद्योगो का मुनाफा। सदियो से वनो पर स्थानीय जनता के जो हक–हकूक थे, उनसे भी उनको वचित किया जा रहा है। वन अधिनियम, 1980 की आड मे समस्त विकास कार्य ठप्प पडे है। पर्यावरण रक्षा के नाम पर वनवासियो को वनो से बाहर धकेला जा रहा है। सीमात क्षेत्र मे बसने वाले मार्छे तथा सौके जो सदियो से भेड पालन, ऊन एव गर्म कपडो का उत्पादन कर अपनी आजीविका चलाते थे उनको भी अब सीमात क्षेत्र मे वन अभ्यारण्य बनाकर उनके परम्परागत जीविकोपार्जन के उपायो को प्रतिबधित किया जा रहा है। गूजर जो कि गर्मियो मे बुग्यालो मे चले जाते थे और सर्दियो मे तराई के जगल मे आ जाते है, उनके परम्परागत रोजगार पशुपालन मे भी तरह–तरह की कानूनी बाधाये डाली जा रही है। बिना किसी वैकल्पिक व्यवस्था के लोगो को परम्परागत रोजगार एव हक–हकूक से वचित करने का सीधा अर्थ उनको अकुशल बेरोजगार श्रमिको मे बदल डालने के अतिरिक्त कुछ नही हैं। यह आचलिक पहचान विहीन श्रमिक सबसे सस्ता होने के कारण अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय पूजी एव उसके दलालो के लिये अतिरिक्त मुनाफा कमाने का स्रोत बना हुआ है।[39]

तराई के जगलो पर हमला आजादी के तुरन्त बाद पूर्वी बगाल से आये विस्थापितो को बसाने के नाम पर हुआ। जैसे ही तराई की नई कृषि भूमि जोत के लायक बनने लगी, जमीन लूटने की होड लग गयी। नौकरशाही, पूजीपतियो और कालेधन वालो ने तराई की भूमि पर युद्ध घोषित कर दिया, जिसमे मत्स्य न्याय हुआ। सीलिग के सारे कानूनो को ताक पर रखकर हजारों एकड के सैकडो फार्म यहॉ आज भी मौजूद है जिन पर काम करने वाले विस्थापित 'भूमिपुत्र' न्यूनतम मजदूरी भी नही पाते है। थारू, बोक्सा, जनजातिया धीरे–धीरे कृषि मजदूरो मे बदलती जा रही है। फल

37 *उत्तराखण्ड मुक्ति मोर्चे का घोषणापत्र*, उद्धत, नौटियाल सुरेश सपा0 (1994),पूर्व उद्धत कृति, पृ0 140 ।
38 *उत्तराखण्ड जनसघर्ष वाहिनी का घोषणा पत्र*, उद्धत तदैव, पृ0 125 ।
39 *उत्तराखण्ड मुक्ति मोर्चे का घोषणा–पत्र*, उद्धत तदैव, पृ0 140 ।

पट्टियो की स्थापना मे भी जमीन की खूब बदर–बाट हुयी है। लूट की इस व्यवस्था ने उत्तराचल के आवाम का राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सास्कृतिक व बौद्धिक हर प्रकार का शोषण किया है। विभिन्न इलाको मे प्रवासी उत्तराचलवासियो के सामने अपनी सस्कृति, भाषा और आचलिक पहचान का सकट खडा है।[40]

पहाड मे रहने वाली महिलाये सोलह से अठारह घण्टे कमरतोड मेहनत करने के बाद भी प्रवास से आने वाले मनीआर्डरो की बाट जोहती रहती है। पुरूषो के पलायन से महिलाओ पर दोहरी मार पडी है। लिग भेद, सामती सस्कृति के प्रभुत्व, लिग आधारित काम के बटवारे की शिकार और बच्चो के लालन–पालन का सामाजिक दायित्व उठाने को मजबूर उत्तराचल की महिला कृषि व पशुपालन का 90प्रतिशत कार्य भी अकेले ही करती है। जटिल भौगोलिक सरचना इस बिन मोल श्रम को और भी कष्ट प्रद बना देती है।[41]

पर्यटन जो कि इस क्षेत्र का सबसे बडा आकर्षण है, कुछ ही स्थानीय लोगो को रोजगार दे पाता है। होटल उद्योग समूह तो बडे पूजीपतियो के हाथ मे है जो तमाम भ्रष्ट तरीके इस्तेमाल कर मसूरी–नैनीताल की सारी भूमि कब्जाते जा रहे है। काले धन का भूमि पर कब्जा और बहुमजली भवन निर्माण कम्पनियो का अतिक्रमण पिछले कुछ दशको की नयी समस्या है। अधिकार–बोध विहीन सीधा–साधा पहाडी ठगा जा रहा है और विस्थापित होकर इन्ही होटल समूहो मे वेटर या कुक बन रहा है। पर्यटन विकास के नाम पर बहुमजली पाच तारा सस्कृति उत्तराचल की सस्कृति पर सीधा हमला है।[42]

विकास की तमाम योजनाओ के बाद भी उत्तराचलवासी पलायन के लिये मजबूर हैं। सस्ते श्रमिको के साथ–साथ बुद्धिजीवियो का बहाव भी पहाड से मैदान की ओर ही है। आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक पिछडापन, विस्थापन, श्रम का निर्मम शोषण, वनो पर निर्भरता, पशुपालन एव कृषि– कुल मिलाकर यही है उत्तराचल की अर्थव्यवस्था। विद्युत उत्पादन एव सिचाई के नाम पर वृहद् बहुउद्देशीय परियोजनाओ का निर्माण नयी समस्याओ को अलग जन्म दे रहा है।[43]

कुल मिलाकर वे मानदण्ड जिनके आधार पर पृथक उत्तराचल राज्य की स्थापना के लिये वहा की जनता आन्दोलनरत रही है, का सक्षिप्त विवरण निम्नाकित है–

(1) भौगोलिक एवं सामाजिक–सांस्कृतिक भिन्नता

प्रदेश का उत्तराचल सभाग हिमालय रेज से जुडी उत्तरी बेल्ट का वह सभाग है जो बहुत सवेदनशील है और चीन–तिब्बत तथा नेपाल की सीमा से लगा होने के कारण पृथक महत्व का है। इस क्षेत्र की जलवायु, सामाजिक, आर्थिक तथा सास्कृतिक आधार व स्वरूप प्रदेश (उत्तर प्रदेश) के मैदानी भागो मे सर्वथा भिन्न है। इस क्षेत्र की विषम स्थलाकृति तथा टेरेन के कारण यहॉ के आर्थिक एव सामाजिक ढॉचे के स्वरूप मे भिन्नता है और यहॉ की विकास समस्याये भी भिन्न है। इस क्षेत्र

---

40 *उत्तराखण्ड मुक्ति मोर्चे का घोषणा–पत्र,* उद्धत नौटियाल सुरेश सपा० (1994), पूर्व उद्धत कृति, पृ0 140 ।
41 तदैव ।
42 तदैव ।
43 तदैव ।

के लोगो का रहन–सहन और जीवन पद्धति भी प्रदेश के अन्य भागो के लोगो से भिन्न है। सीमावर्ती पर्वतीय एव कठिन क्षेत्र होने के कारण इस क्षेत्र के विकास की विशिष्ट समस्याये है।[44]

एक ओर क्षेत्र की विरल तथा बिखरी हुयी जनसख्या की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये आधारभूत सुविधाओ तथा सामाजिक एव सामुदायिक सुविधाओ की कमी है वही दूसरी ओर यहॉ पर इन सुविधाओ को मुहैया कराने की लागत मैदानी क्षेत्रो की अपेक्षा अधिक है। योजनाओ–परियोजनाओ का गेस्टेशन पीरियड, भी सामान्यत काफी अधिक है। निरन्तर और नियमित प्राकृतिक आपदाओ की बहुलता, पूर्व निर्मित परिसपत्तियो की क्षति, भू–क्षरण, भू–स्खलन की भारी समस्या है और सृजित परिसपत्तियो के रख–रखाव एव सचालन आदि की लागत भी अपेक्षाकृत अधिक है।[45]

(2) आर्थिक पिछड़ापन तथा अपेक्षित विकास का अभाव

यहॉ की लगभग 70 प्रतिशत जनसख्या आज भी गरीबी रेखा से नीचे है। यदि हम उत्तराचल मे कही खुशहाली पाते है तो वह बाहर से भेजे गये मनीआर्डरो की बदौलत है। मनीआर्डर उत्तराचल की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार है। यदि उत्तराचल मे एक वर्ष के लिये भी मनी आर्डरो पर रोक लगा दी जाय तो उत्तराचल का आर्थिक ढॉचा चरमरा जायेगा। उत्तराचल मे मनीआर्डरो से कई करोड रूपया सालाना पहुचता है जो शीघ्र ही वहॉ से वापस लौट आता है, वरना अन्य प्रदेशो के मुकाबले यहॉ के लोगो का जीवन स्तर ऊँचा होता।

उत्तर प्रदेश का प्रशासनिक ढॉचा इतना विकट और विशाल है कि यहॉ कोई कार्य समय पर हो पाना कठिन है। नौकरशाही, साथ ही लालफीताशाही की मौजूदा प्रवृत्तियो ने इसे और भी जटिल बना दिया है। फिर सत्ता केन्द्र दूरस्थ है, जहॉ उनकी न तो पहुँच है, साथ ही साथ आने–जाने मे समय धन और ऊर्जा की भी बर्बादी होती है। इस तरह उनके भाग्य का निर्माण 800 कि0मी0 की दूरी पर होता है, जहॉ परिणाम सकारात्मक ही हो यह निश्चित नही है। इसी राजनीतिक एव प्रशासनिक असन्तुलन के कारण उत्तराचल का यह पिछडापन निम्नाकित प्रत्येक क्षेत्र मे दिखाई पड रहा है।

(i) रोजगार के विकल्पों का अभाव और युवाओं का पलायन

उत्तराचल मे रोजगार की कमी तो है ही रोजगार के विकल्पो का भी पूरी तरह अभाव है। रोजगार योजना के तमाम सरकारी कार्यक्रम के बावजूद लगभग 85 लाख की आबादी वाले इस क्षेत्र मे 7 लाख से ज्यादा शिक्षित बेरोजगार है। इसके अलावा हर वर्ष कम से कम 50 से 60 हजार नौजवान पहाडो से काम की तलाश मे महानगरो को पलायन कर जाते है। जहॉ हिमाचल प्रदेश की कार्यशील जनसख्या 1970 से 90 के मध्य 7 प्रतिशत तक बढी है वही उत्तराचल मे यह 2 प्रतिशत घट गयी है। भारी सख्या मे नौजवानो के पलायन से महिलाओ के कन्धो पर काम का भार दुगुना हो गया है। आम परिवार की माली हालत इतनी खराब है कि हर वर्ष हजारो बच्चे घरेलू नौकरो, होटल कर्मचारियो, अकुशल मजदूरो आदि के रूप मे काम करने के लिये पलायन कर जाते है।

44 उत्तर प्रदेश सरकार का अ0शा0प0स0–409बी0एस0पी0/एच0डी0/92, उत्तरचल विकास विभाग, लखनऊ, दिनाक 7 फरवरी, 1992 ।

45 तदैव ।

सरकारी–गैर सरकारी नौकरियो के भरोसे बैठी लगभग 29 19 प्रतिशत जनता को छोड दे तो बाकी उद्योग–धन्धो, व्यवसाय और अन्य विकास कार्यो मे उत्तराचल के लोगो की हिस्सेदारी एक प्रतिशत से भी कम है। रोजगार के नये हालात इतने खराब है कि तृतीय एव चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी भी बाहर से लाये जा रहे है। पर्वतीय सवर्ग भी दोषपूर्ण है।

पिछडेपन एव गरीबी के कारण उत्तराचल अग्रेजो के समय से फौज मे सैनिको की भर्ती के लिये बाजार सरीखा रहा है। भारतीय सेना का सिपाही बनना भले ही गौरव की बात हो लेकिन उसका यह अर्थ नही है कि व्यक्तिगत विकास के अन्य मार्ग अवरूद्ध कर दिये जाय। सेवानिवृत्ति के बाद यहा का फौजी सर्वाधिक विकल्पहीन और किकर्तव्यविमूढ दिखाई देता है। लाखो लोगो के पलायन कर जाने और सेना मे पर्वतीय क्षेत्र के लोगो की भर्ती के कारण आज इस क्षेत्र की अर्थव्यवस्था मनीआर्डर आधारित हो गयी है।

(ii) कृषि का पिछड़ापन

कृषि की दशा को देखे तो उसकी स्थिति भी बद्तर है। कृषि पर जनसख्या का दबाव बढा है। फलत गावो मे छोटे और मध्यम स्तर के लोगो के लिये कृषि के भरोसे सम्मानपूर्वक जीवन यापन कठिन होता जा रहा है। खेती करना अलाभकारी कार्य हो गया है। वास्तव मे पाम्परिक कृषि हिमालयी आर्थिकी के अनुकूल नही है। उत्तराचल मे कृषि 80 प्रतिशत जनसख्या की वर्ष भर की खाद्यान्न आवश्यकता की पूर्ति भी नही कर पाती। इसलिये छोटे–छोटे किसान गॉव–जमीन छोडकर शहरो की ओर भाग रहे हैं। पिछले 20 वर्षों मे किसानो की सख्या मे लगभग 10 प्रतिशत की कमी आयी है और मजदूरों की सख्या 3 प्रतिशत बढी है। तराई को छोडकर पूरे उत्तराचल मे कृषि अवैज्ञानिक ढग से होती है। दरअसल उत्तराचल के भौगोलिक स्वरूप और जलवायु के अनुरूप कृषि नीति तथा तकनीक न अपनाने की वजह से उत्तराचल कृषि के क्षेत्र मे पिछडा हुआ है। जबकि यहॉ बागवानी और नगदी फसलो की असीम सम्भावनाये मौजूद हैं।

(iii) उत्तरांचल मे शैक्षणिक पिछड़ापन

उत्तराचल मे शिक्षा की स्थिति भी काफी दयनीय हैं। ऑकडो की दृष्टि से देखा जाय तो यहॉ साक्षर लोगो का प्रतिशत उत्तर प्रदेश और पूरे देश के औसत से कही अधिक है। प्राइमरी एव माध्यमिक शिक्षा का पर्याप्त प्रसार हो रहा है। परन्तु यहॉ प्राइमरी से लेकर ऊपर तक शिक्षा का स्तर अन्य क्षेत्रो की अपेक्षा निम्न है। धनपतियो और अफसरशाहो के बच्चो के लिये स्थापित दून स्कूल जैसे स्कूलो की बात और है अन्यथा यहॉ की शिक्षा छात्रो को कोई दिशा नही दे पाती। उच्च शिक्षा हेतु तीन विश्वविद्यालय है जिनका स्तर भी सामान्य से नीचा है। उत्तराचल मे शिक्षा अपेक्षित सामाजिक परिवर्तन नही ला पायी है। साथ ही यहा के छात्रो को यहॉ के परिवेश के अनुरूप शिक्षा नही दी जाती। पतनगर मे कृषि विश्वविद्यालय है किन्तु पर्वतीय कृषि के विकास मे उसका योगदान नगण्य है। हिमाचल प्रदेश ने, जो आजादी के पहले सबसे अधिक अशिक्षितो का प्रदेश था, शिक्षा के ऊँचे मानदण्डो को छुआ है। वहॉ अनेक मेडिकल और इजीनियरिंग कालेजो की स्थापना हुयी है जो हिमाचल के शैक्षिक विकास की कहानी कहते हैं, लेकिन उत्तराचल अभी भी अच्छी शिक्षा के लिये तरस रहा है।

सारणी 6 1

उत्तरांचल एव हिमाचल प्रदेश : तुलनात्मक अध्ययन

क्र0 स0	मद	उत्तराचल	हिमाचल
1	साक्षरता दर (2001)	72 28	77 13
2	लिगानुपात (2001)	964	900
3	शहरीकरण (1991)	21 56%	8 7%
4	एस0सी0/एस0टी0 जनसख्या का प्रतिशत (1981)	19 73%	29 22%
5	फसल सघनता (1987)	164 27%	169 30%
6	विद्युतीकृत गाव (1992–93)	77%	100%
7	प्रति लाख जनसख्या पर सडको की लम्बाई	226किमी0	324किमी0
8	प्रति व्यक्ति योजनागत व्यय (VII योजना)	रू0 2 223	रू0 2 171
9	प्रति व्यक्ति केन्द्रीय सहायता (VII योजना)	रू0 1 406	रू0 1,785
10	प्रति विधानसभा सदस्य जनसख्यानुपात 1991 (2001) लाख मे	3 09 (1 21)	0 75 (0 79)
11	कुल विधानसभा सीटो की सख्या 1991 (2001) मे	19 (70)	68
12	हार्टीकल्चर के अन्तर्गत भू–क्षेत्र (1989–90)	1,74 000हे0	1,56,000हे0
13	प्रति लाख जनसख्या पर स्कूलो की स0 (1989–90)		
	(1) जूनियर बेसिक/प्राइमरी	145	145
	(11) सीनियर बेसिक/सेकेण्डरी	29	39
	(111) हायर सेकेण्डरी	17	22
14	प्रति लाख पर्यटको पर टूरिस्ट गृहो मे शयन कक्षो की स0	23	31
15	कुल राजस्व (लाख रू0 में) (1992–93)	22 405	27511
16	केन्द्रीय सहायता	18,200	51,273

स्रोत – कुमार, प्रदीप, (2000), द उत्तराखण्ड मूवमेन्ट कान्सट्रक्शन ऑफ ए रीजनल आइडन्टी, पृ0 63 सशोधित रूप मे।

(iv) बुनियादी सुविधाओं का अभाव

उत्तराचल मे बुनियादी सुविधाओ का अभाव हमेशा रहा है। यहॉ 40 प्रतिशत से अधिक लोग कुपोषण के शिकार है। प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र बहुत दूर–दूर स्थापित है। जहॉ डाक्टर है तो दवाइया नही है, कम्पाउन्डर नही है। बच्चे मात्र दस्त से मर जाते है और न जाने कितनी महिलाये चिकित्सा सुविधा न होने के कारण प्रसव पीडा मे अपनी जान गवा देती है।

डाक व्यवस्था का भी यही आलम है। उत्तराचल मे 86 प्रतिशत गावो मे डाकघर तीन मील के अर्द्धव्यास के अन्तर्गत है, शेष 14 प्रतिशत गावो मे डाकघर इससे अधिक दूरी पर है। 59 प्रतिशत गावो मे बाजार की सुविधाये तीन मील की दूरी के अर्द्धव्यास के अन्दर हैं, जबकि 41 प्रतिशत गावो मे बाजार इससे भी अधिक दूरी पर है (डॉ0 आर0पी0ध्यानी के अध्ययन पर आधारित)। पेयजल एव सिचाई के लिये पानी की कमी पूरे उत्तराचल की एक गम्भीर समस्या है। पूरे देश को पानी देने वाला यह क्षेत्र खुद प्यासा है। गावो मे विद्युत आपूर्ति का भी बुरा हाल है। सही अर्थों मे उत्तराचल के 50 प्रतिशत से भी कम गावो को पानी–बिजली वास्तविक रूप से उपलब्ध है। सचार सुविधाये भी ना के बराबर हैं।

(v) सड़क एवं रेलमार्ग का अभाव

पूरे उत्तराचल मे परिवहन सुविधाओ और सडको की अपर्याप्तता सर्वविदित है। बेतरतीब तरीको से सडको के निर्माण ने भू–स्खलन के खतरो को जन्म दिया है। परिवहन व्यवस्था की कमी के कारण प्रतिवर्ष सैकडो टन आलू, माल्टा सेब, खुमानी और टमाटर सड जाते हैं। अभी भी स्थिति यह है कि उत्तराचल मे

लगभग 69 प्रतिशत गावो से मोटर मार्ग 5 मील की दूरी के अर्द्धव्यास मे और 13 प्रतिशत गावो मे 10 मील से अधिक दूरी के अर्द्धव्यास के अन्तर्गत हैं। यद्यपि अब अधिकतम् क्षेत्रो मे मोटर पहुच गई है फिर भी, कुछ गावो मे पहुचने के लिये मोटर सडक से 25 मील या इससे भी अधिक मार्ग तय करना पडता है (डॉ0 आर0पी0ध्यानी के अध्ययन पर आधारित)। सीमात और सुदूरवर्ती क्षेत्रो मे सडको का यह अभाव और भी ज्यादा है। उत्तराचल का यह भी एक दुर्भाग्य है कि उत्तराचल की सडके भारत की ऐसी सडको मे से है जो सामाजिक सवाद को बनाये रखने मे असमर्थ हैं। यहाँ की सडके या तो कच्चे माल की सप्लाई के लिये या फिर पलायन के सर्वाधिक उपयोग मे आती है। रेलो को भी विस्तारित करने के लिये कोई नई योजना नही बनायी गयी। हरिद्वार–देहरादून, हरिद्वार–ऋषिकेश, मुरादाबाद–रामनगर, पीलीभीत–काठगोदाम तथा अल्मोडा–नैनीताल को दक्षिण भाग से मिलाने वाले रेलमार्ग ही इस इलाके मे मौजूद है जो आजादी पूर्व बनाये गये थे। जबकि इस इलाके मे रेलो के विस्तार की पर्याप्त सम्भावनाये मौजूद हैं।

(vi) औद्योगिक पिछडापन

औद्योगिक दृष्टि से समूचा उत्तराचल लगभग उद्योग शून्य क्षेत्र है। मात्र इसके मैदानी जिलो– हरिद्वार, देहरादून और नैनीताल जिलो मे कुछ औद्योगिक इकाइया स्थापित है, लेकिन वे रोजगार की सम्भावना तथा वृहत् उत्पादन की दृष्टि से बहुत पीछे हैं। उत्तराचल मे उद्योगो पर लगी कुल पूजी का प्रतिशत उत्तर प्रदेश के उद्योगो मे लगी सकल पूजी का 1 प्रतिशत से भी कम बैठता है। उत्तराचल मे लगभग हर वस्तु को दूसरे औद्योगिक और व्यापारिक क्षेत्रो से ही मगाया जाता है।

पहाडो से चूना पत्थर, लीसा, मैग्नेसाइट और बहुत से खनिजो और कच्चे माल का दोहन बहुत तेजी से किया जा रहा है। मगर इन सबके लिये योजना का कोई सुनिश्चित प्रारूप तैयार नही किया गया। कही भी व्यापक अथवा कच्चे माल पर आधारित औद्योगीकरण का नियोजित प्रयास नही किया गया, फलस्वरूप कच्चे माल को अन्यत्र ले जाकर तैयार माल की शक्ल दी जाती है। यहा के लोग उससे हो सकने वाले लाभ से वचित हो जाते हैं।

उत्तराचल मे वनो पर आधारित उद्योगो, व्यवसाय एव व्यापार की पर्याप्त सभावनाये है। उत्तर प्रदेश के दो तिहाई वन इसी क्षेत्र मे पडते हैं जो प्रदेश की समृद्धि के साधन है। लेकिन उत्तराचल मे वनो पर आधारित उद्योगो का अभाव है। लकडी का जो व्यापार होता है उसमे स्थानीय जनता का हिस्सा बहुत कम है। वनो से सम्बन्धित सारे उद्योगो और सम्पदा के वितरण मे स्थानीय जनता के हाथ कुछ नही आता। जनता कटान–चिरान मे मजदूरी करती है और ठेकेदार हवेलिया खडी करते है। स्थानीय लोग जहाँ जलाने और मकान बनाने के लिये लकडी और पशुओ के चारे के लिये तरसते है वही दूसरी ओर ठेकेदारी व्यवस्था मे जगल निर्दयतापूर्वक काटे जाते है। जगलात विभाग, बडे अफसरो, नेताओ और व्यापारियो की मिलीभगत से असीमित रूप से पर्वतीय क्षेत्र की वन सम्पदा का निरन्तर शोषण किया जा रहा है। जिससे पर्यावरण सम्बन्धी परेशानिया भी खडी हो जाती है। वन सम्पदा की रक्षा हेतु जो कदम उठाये जा रहे है उन्हे उपर्युक्त गठजोड निष्क्रिय कर देता है।

उत्तराचल मे जडी–बूटियो का अकूत भण्डार मौजूद है। विश्व स्वास्थ्य सगठन ने जिन 20 हजार जडी–बूटियो की सूची तैयार की, उनमें हिमालय की वे जडी बूटिया भी है जिन्हे देशी एव

बहुराष्ट्रीय कम्पनिया सस्ते दामो मे खरीदकर भारी मुनाफा कमाती है। सरकार ने जडी–बूटियो के अन्धाधुध दोहन को रोकने मे उपेक्षा ही दिखाई है, न तो इनको बचाने का प्रयास किया गया है और न ही इनसे बनने वाली दवाओ के कारखानो के स्थानीय निर्माण और अनुसधान मे रूचि ली है।

विकास के सारे मार्गों के इस तरह सभी प्रकार से अवरूद्ध हो जाने के कारण ही यहा की जनता पृथक राज्य के निर्माण मे अपने विकास की सम्भावनाये देखती रही है।

उत्तराचल के पिछडेपन के साथ–साथ उत्तराचल की कुल जनसख्या और क्षेत्रफल का आधार भी राज्य निर्माण के औचित्य को सही ठहराता है। ये दोनो मापदण्ड देश के अनेक राज्यो की अपेक्षा यहाँ अधिक व्यापक है। उत्तराचल का वर्तमान क्षेत्रफल 53,483 वर्ग कि0मी0 है जो सम्पूर्ण भारत का 1 63 प्रतिशत और अविभाजित उत्तर प्रदेश का 18 17 प्रतिशत है। यदि हम इसके मौजूदा क्षेत्रफल को दूसरे प्रदेशो से तुलना करे तो यह देश का क्षेत्रफल की दृष्टि से 19वॉ बडा राज्य होगा अर्थात इससे भी छोटे 9 राज्य और है।

सारणी : 6 2

हिमालयी एवं कुछ अन्य छोटे राज्यों का तुलनात्मक अध्ययन

क्र0 स0	राज्य	क्षेत्रफल (वर्ग कि0मी0)	जनसख्या 2001	कुल एम0एल0ए0	कुल एम0पी0		जनसख्या घनत्व	केन्द्रीयसहायता करोड मे (91–92)% मे
					लोकसभा	राज्यसभा		
1	गोवा	3,702	1343 998	40	2	1	363	*
2	सिक्किम	7,096	540,493	32	1	1	76	88 (91 66)
3	त्रिपुरा	1,09,169	3,191,168	60	2	1	304	196 (86 34)
4	नागालैण्ड	16,579	1,988,636	60	1	1	120	165 (97 05)
5	मणिपुर	22327	2,388,634	60	2	1	107	195 (97 5)
6	मेघालय	22429	2,306,069	60	2	1	103	178 (84 8)
7	केरल	38863	31 838,619	140	20	9	819	*
8	हरियाणा	44122	21,082,989	182	10	5	477	*
9	पजाब	50362	24,289,296	117	13	7	482	*
10	मिजोरम	21081	891,058	40	1	1	42	152 (100)
11	अरूणाचल प्रदेश	83743	1,091,117	30	2	1	13	235 (100)
12	हिमालच प्रदेश	55673	60 77,248	68	4	3	109	320 (78)
13	उत्तराखण्ड	53483	8,479,562	19(70)	4	3	159	182 (50 98)
14	जम्मू कश्मीर	222236	10,069,917	76	6	4	99	721 (99 7)
15	दिल्ली	1483	13 782,976	70	7	3	9,294	*

अनुपलब्ध आकडे ।

स्रोत – डी0डी0बसु (1994), भारत का सविधान–एक परिचय, पृ0 445–446 ।

जयप्रकाश मिश्र (सपा0) (2001), भारत की जनगणना–2001।

प्रदीप कुमार (2000), द उत्तराखण्ड मूवमेन्ट कान्सट्रक्शन ऑफ ए रीजनल आइडेन्टी, पृ0 64 ।

जनसख्या की दृष्टि से भी उत्तराचल की वर्तमान जनसख्या 84,79,562 है, जिसकी तुलना यदि दूसरे राज्यो से की जाय तो यह देश का 19वॉ बडा राज्य होगा अर्थात जनसख्या की दृष्टि से भी इससे छोटे 9 राज्य और है। अन्य हिमालयी राज्यो को दृष्टिगत रखते हुये भी अपेक्षित

जन—प्रतिनिधित्व एव पर्याप्त केन्द्रीय सहायता का न प्राप्त होना भी इसके पृथक राज्य के रूप मे निर्माण के औचित्य को सही ठहराता है।

3. राष्ट्रीय सुरक्षा की दृष्टि से सामाजिक सुदृढता की आवश्यकता

यह एक सीमान्त क्षेत्र है जो सामरिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसके उत्तर मे तिब्बत है जिस पर चीन काबिज है। तिब्बत मे चीन की सेनाये तो तैनात है ही वहा उसने अतर्महाद्वीपीय मिसाइले भी तैनात की हुयी है जिनका मुँह भारत की ओर है। भारत के अनेक प्रमुख नगर उसकी जद मे है। उत्तराचल मे लगभग 800 कि0मी0 की अन्तर्राष्ट्रीय सीमा है।

हमारा शत्रु निश्चित रूप से जब भी युद्ध या आक्रमण करेगा तो उसके आक्रमण क्षेत्रो मे यह भी एक क्षेत्र होगा, क्योकि यह देश के प्रथम सुरक्षा क्षेत्रो मे से एक है। ऐसी स्थिति मे इस क्षेत्र मे पर्याप्त सुरक्षा व्यवस्था तो होनी जरूरी है ही, लेकिन इससे भी अहम् सवाल इस क्षेत्र के लोगो को आर्थिक रूप से सक्षम बनाने का है। आर्थिक दृष्टि से सुदृढ समाज का मनोबल ऊँचा रहता है और वह सुरक्षा की द्वितीय पक्ति के रूप मे कार्य करता है। इस दृष्टि से समूचा उत्तराखण्ड आने वाले सुरक्षाजनित भविष्य की दृष्टि से बहुत कमजोर क्षेत्र है। अत इसको एक सुदृढ सामाजिक—आर्थिक इकाई बनाया जाना बहुत जरूरी है। इसके लिये सरकार को ऐसे सभी सीमात क्षेत्रो मे रोजगार के अवसर पैदा करने के कार्यक्रम बनाने चाहिये ताकि सीमात क्षेत्र के निवासियो की अधिक से अधिक सख्या उन कार्यों से सम्बद्ध हो व उनकी अपनी धरती के प्रति आस्था आर्थिक रूप से भी दृढ हो, क्योकि धरती का असली और सच्चा सिपाही उस धरती से रागात्मक सम्बन्धो से जुडा रहने वाला मनुष्य है। अत ऐसा करने के लिये एक अलग और इन खतरो का अहसास करने वाली, साथ ही इस दृष्टिकोण से काम करने वाली प्रशासनिक व्यवस्था की जरूरत है।

4. हिमालयी आर्थिकी के अनुकूल नियोजन नीति की आवश्यकता

उत्तराचल का भूगोल प्रदेश (उ0प्र0) के शेष हिस्से से तो अलग है ही, आर्थिक दृष्टि से भी उत्तराचल एक भिन्न और पूर्ण इकाई है। अत यहा योजनाओ का उस रूप मे लागू होना कदापि सम्भव नही है जैसा मैदानी भागो मे। मगर यही आज तक किया जाता रहा और इसीलिये उत्तराचल के नाम पर आवटित किया गया धन ज्यादातर बर्बाद हुआ। उत्तराचल के लिये तो पूरी तरह अलग योजनाये बनानी चाहिये। ये योजनाये यहॉ के ससाधनो के वैज्ञानिक दोहन के साथ ही यहॉ की भौगोलिकता के अनुरूप होनी चाहिये था मगर ऐसा नही हुआ।

इस कार्य को आज भी वे ही लोग कर सकते है जो यहॉ की भौगोलिक जटिलताओ और साधनगत उपलब्धियो का ज्ञान रखते हो, अन्यथा कही से उठाकर थोप दिये गये अधिकारी पहली नजर मे पैसा बटोरने पर अपनी दृष्टि दौडाते है। इस कार्य के लिये विशिष्ट सोच वाले विशेषज्ञो की आवश्यकता है। पर्वतीय या हिमालयी आर्थिकी के ससाधन जल, वन या पशुधन हो सकते है, मगर इनके समुचित उपयोग की ओर किसी ने ध्यान ही नही दिया। उत्तराचल के इस भौगोलिक आधार को यदि यहा के मानव विकास की दृष्टि मे रखकर सही विश्लेषित किया जाय और उसमे उपलब्ध ससाधनो का वैज्ञानिक और सन्तुलित दोहन किया जाय तो यह भौगोलिक आधार मनुष्य को

नर्वस करने वाला न रहकर उसमे उत्फुल्लता, समृद्धि, खुशहाली और जीवनदायिनी शक्ति का सचार करने मे पूरी तरह सक्षम है जो कि एक अलग प्रशासनिक व्यवस्था मे ही सम्भव है।

5. स्वायत्तता के सिद्धान्त के तहत छोटी राजनीतिक संरचनाओं की आवश्यकता

देश के अनेक प्रान्त अत्यधिक क्षेत्रफल एव जनसख्या वाले है। इन प्रान्तो के विभिन्न भौगोलिक खण्डो मे अनेक जातीय एव सास्कृतिक पहचान वाले समूह है–जिनका अपना आर्थिक तथा सामाजिक ढॉचा है। किसी बडे प्रान्त का हिस्सा रहते हुये उनका सामाजिक–सास्कृतिक और आर्थिक विकास कठिन है। इन सामाजिक–आर्थिक इकाइयो की अपनी आकाक्षाये है। आज देश मे स्वायत्तता का विचार निरन्तर मजबूत होता जा रहा है। स्वायत्तता के सिद्धान्त के अनुसार विभिन्न सामाजिक–आर्थिक इकाइयो के विकास की दृष्टि, साथ ही उनकी सामाजिक आकाक्षाओ की पूर्ति के लिये छोटी सरचनाओ की स्थापना करके उनका शासन–प्रशासन तथा विकास कार्य सही ढग से चलाया जा सकता है। आज यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि देश मे जितने भी बडे प्रदेश है उनमे प्रशासन उतने अच्छे ढग से नही चल रहा है जितना छोटे राज्यो मे। बडी राजनीतिक सरचनाओ मे निकटवर्ती और प्रभावशाली समूह ही अधिक और यथासमय लाभ उठा पाते हैं और उनमे इसीलिये आर्थिक–प्रशासनिक असन्तुलन और विभिन्न प्रकार के सामाजिक तनाव होते है जबकि छोटे राज्यो मे सामाजिक तनाव कम होते है क्योकि वे वहॉ की सामाजिक सरचना की आकाक्षाओ की पूर्ति करते है तथा ऐसे लगभग सभी विवाद प्रशासन के प्रारम्भिक चरण मे ही सुलझा लिये जाते हैं। अत राजनीतिक न्याय तथा आर्थिक–प्रशासनिक सन्तुलन के लिये स्वायत्तता के तहत इस क्षेत्र मे एक अलग प्रशासनिक इकाई का होना अपरिहार्य था।

6. वृहत्तर जनसंख्या की सामाजिक संरचना तथा उसकी सामाजिक आकांक्षाओं की पूर्ति की आवश्यकता

उत्तराचल का भौगोलिक परिवेश व सास्कृतिक विशिष्टता तथा यहा की सामाजिक सरचना देश के शेष भागो से भिन्न है। यह अपने आप मे एक अलग या समग्र भारतीय सदर्भ मे एक लघु राष्ट्रीयता है। इसके सामाजिक विकास के आधार भिन्न है और यह कुछेक लोगो का नही बल्कि क्षेत्र की वृहत्तर जनसख्या का सवाल है, जो व्यवस्था के मौजूदा ढॉचे मे अपनी सामाजिक सरचना के नष्ट होने की आशका से त्रस्त रहे है।

वर्षो से अनेक आर्थिक–प्रशासनिक समस्याओ से त्रस्त यहा की सामाजिक सरचना को विकसित होने के अवसर नही मिल पाये,जिससे यहॉ की सामाजिक सरचना सुदृढ नही हो पायी। उसे कभी राजनीतिक न्याय नही मिल पाया। इसलिये देश मे समकालीन सामाजिक तथा राजनीतिक चेतना के चलते वह अपनी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एव सास्कृतिक आकाक्षाओ की पूर्ति हेतु पृथक राज्य की माग करने लगी। उत्तराचल की जनता की ये आकाक्षाये जो शिक्षा, प्रबन्धन, नियोजन, तथा व्यवस्था मे स्पष्ट भागीदारी की है, यहॉ की सामाजिक सरचना की समझ रखने वाली एक अलग प्रशासनिक इकाई मे ही सम्भव है।

7 पृथक राज्य का स्वरूप न होने से इस क्षेत्र की प्रबन्ध व्यवस्था तथा प्रशासनिक ढॉचा व्यवहारिक रूप से कारगर नही था। पर्वतीय क्षेत्र के सुदृढ प्रशासन एव विकास के लिये शासकीय सेवाओ के उच्च पदो व अन्य पदो पर प्रशासनिक व्यवस्था का इस प्रकार होना आवश्यक है ताकि विभिन्न अधिकारी/कर्मचारी इस क्षेत्र मे ही नीचे पद से ऊपर के पद तक कार्य करते रहे व इस प्रकार की तारतम्यता, निरन्तरता एव प्रतिबद्धता बनी रहे कि इस क्षेत्र मे कार्य करने से प्राप्त ज्ञान व अनुभव व्यर्थ न जाये। अगर उत्तराचल इस विशाल उत्तर प्रदेश का एक भाग बना रहता तो यह सम्भव नही था। ससाधनो के अभाव मे मैदानी क्षेत्र के लोग वहॉ जाना नही चाहते। परिणामस्वरूप वहॉ अनेक पद हमेशा रिक्त रहते है– यानी विकास के कार्यों का क्रियान्वयन सही तौर पर नही हो पाता है।[46]

उत्तर प्रदेश जैसे विशाल राज्य मे विभिन्न सभागो की बडे पैमाने की समस्याये है जिनका निवारण एक सुदृढ प्रशासनिक और आर्थिक ढॉचे के अभाव मे सम्भव नही है। इस सामरिक क्षेत्र मे एकरूप प्रशासन यानी सिगल लाइन एडमिनिस्ट्रेशन की नितान्त आवश्यकता है ताकि प्रशासनिक सरलता नियन्त्रण एव प्रबन्ध व्यवस्था सुदृढ हो सके। इसके अभाव मे सबसे बडी कठिनाई इस क्षेत्र मे कर्मचारियो–अधिकारियो की तैनाती की है इसके अलावा उनमे क्षेत्र के प्रति समर्पण तथा प्रतिबद्धता का अभाव है।[47]

8 इस क्षेत्र मे राजनीतिक दृष्टि से पृथक नेतृत्व स्थानीय लोगो की भागीदारी, योगदान और राजनीति तथा प्रशासनिक नेतृत्व मे व्यवहारिक तथा कारगर सामजस्य और तालमेल के लिये उत्तराचल मे पृथक राज्य की स्थापना जरूरी थी। इसके लिये यह भी आवश्यक है कि उत्तराचल की विषम स्थालाकृति तथा दुर्गम पहाड और दूर दराज के क्षेत्रो की पृथक समस्याओ के दृष्टिगत जन–प्रतिनिधित्व की इकाइया भी अपेक्षाकृत मैदानी भाग से छोटी हो। इसी प्रकार पृथक राज्य का दर्जा दिये जाने के फलस्वरूप जिला, तहसील और विकासखण्ड की माग को अन्य पृथक राज्यो की भाति मानकर इन इकाइयो की प्रशासनिक और आर्थिक दृष्टि से सख्या भी अधिक होनी आवश्यक है। इस प्रकार इस अचल की भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक, सास्कृतिक व सामरिक स्थिति बिल्कुल पृथक है और जन आकाक्षाओ के अनुसार इस पृथक इकाई के विकास मे गतिशीलता, जनजीवन के स्तर मे सुधार, आर्थिक और सामाजिक रूप मे सक्षम बनाने के लिये पृथक राज्य बनाकर ही पूर्ण प्रशासनिक नियन्त्रण तथा राष्ट्र सुरक्षा का दायित्व निर्वहन किया जा सकता है। इसके बगैर प्रशासनिक प्रबन्ध नियन्त्रण और विकास का मार्ग प्रशस्त होने मे व्यवहारिक कठिनाई महसूस की जा रही थी।[48]

9 इस क्षेत्र के लोगो की प्रबल उत्तराचल राज्य की जन आकाक्षा इसलिये भी थी कि भारत वर्ष की उत्तरी सीमाये जो हिमालय से लगी है, उससे जुडे हुये जम्मू कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, असम, नागालैण्ड, अरूणाचल प्रदेश, मिजोरम, मेघालय, सिक्किम आदि पृथक राज्य है। पश्चिम बगाल का दार्जलिग सभाग भी एक स्वशासी क्षेत्र है। इस प्रकार राष्ट्र के उत्तरी सभाग की उपरोक्त सभी इकाइयो की पृथक पहचान है। हिमालय से लगे सभी पहाडी राज्य अर्थात् हिमाचल प्रदेश एव अन्य

---

46 उत्तर प्रदेश शासन, उत्तराचल विकास विभाग, लखनऊ का अ0शा0प0 स0–409 बी0एस0पी0/एच0डी0/92 दिनाक 7 फरवरी, 1992 ।
47 तदैव ।
48 तदैव ।

पूर्वोत्तर लघु राज्य यदि सक्षम हो सकते है, तो उत्तराचल जिसका क्षेत्रफल, जनसख्या तथा यहॉ के ससाधन अन्य राज्यो की अपेक्षा अधिक सपुष्ट माने जा सकते है, विशेषकर खाद्यान्न उत्पादन क्षमता एव इस टेरेन मे ट्रेनिग मडियो तथा तराई के उपजाऊ क्षेत्रो का अपना महत्व है, जो इस सभाग की आवश्यकता की पूर्ति करने मे सक्षम है। इस क्षेत्र की स्थानीय जनता का दृढ विश्वास रहा है कि हिमालय से जुडे अन्य पृथक पर्वतीय राज्यो का पृथक अस्तित्व होने के फलस्वरूप ही वहॉ का विकास अपेक्षाकृत अधिक हुआ है क्योकि उन्हे कुछ विशेष सुविधाये यथा–योजना खर्च, नॉन–प्लान गैप की पूर्ति, विशिष्ट राज्य सहायता एव आर्थिक सरक्षण आदि प्राप्त है जो कि पृथक राज्य बनने के पूर्व उत्तर प्रदेश का भाग होने के कारण उत्तराचल को प्राप्त नही हो रही थी।

10. वन सरक्षण अधिनियम और पर्यावरण से सम्बन्धित प्रतिबन्धो के कारण ग्रामीण जीवन की कठिनाइया असाधारण रूप से बढ गयी है। मूलभूत सुविधा प्रदान करने वाले विकास कार्यक्रम रूक गये है। बेरोजगारी की समस्या के समाधान के लिये यहॉ की खनिज सम्पदा पर आधारित किसी भी उद्योग को स्थापित किये जाने पर कानूनी रोक, कई विकास योजनाओ के कार्यान्वित हो जाने पर उनके अनुरक्षण के लिये प्रावधान का अभाव तथा पचवर्षीय योजनाओ मे प्रति व्यक्ति औसत व्यय वहा उस व्यय का आधा है जो पूर्वोत्तर भारत के पर्वतीय राज्यो मे प्रति व्यक्ति किया जाता है।

उपर्युक्त सभी कारण वे मापदण्ड है जो पृथक पर्वतीय उत्तराचल राज्य के औचित्य को सही ठहराते है।

सारणी : 63

उत्तर प्रदेश के विभिन्न उपक्षेत्रों का तुलनात्मक अध्ययन

क्र0 स0	क्षेत्र	उ0प्र0 की कुल जनसख्या का प्रतिशत	बाल मृत्यु दर (1981)		स्त्री–पुरूष अनुपात (1991)	साक्षरता दर सात वर्ष व अधिक(1981) %		ग्रामीण गरीबी की मात्रा 1987-88
			स्त्री	पुरूष		स्त्री	पुरूष	
1	हिमालयन क्षेत्र (उत्तराचल)	43	106	110	955	43	76	8
2	पश्चिमी क्षेत्र	356	170	145	841	27	55	26
3	मध्य क्षेत्र	174	164	158	855	28	55	36
4	पूर्वी क्षेत्र	379	154	144	923	21	55	43
5	दक्षिणी क्षेत्र	48	166	147	846	24	58	50
	सभी क्षेत्रो का महायोग	100	160	146	879	25	56	35

स्रोत कुमार, प्रदीप, (2000), "द उत्तराखण्ड मूवमेन्ट कान्सट्रक्शन ऑफ ए रीजनल आईडेन्टी", पृ0 63।

नवगठित राज्य उत्तरांचल एक दृष्टि में

53,483 वर्ग कि0मी0 भू क्षेत्र[49] वाला नवगठित राज्य उत्तराचल प्रशासनिक दृष्टि से दो सभागो, 13 जिलो, 49 तहसीलो, 9 उप तहसीलो और 95 सामुदायिक विकास खण्डों मे बटा है। यहॉ पर 673 न्याय पचायते और 6794 ग्राम सभाये अवस्थित है। कुल 39 नगर पालिका वाले उत्तराचल क्षेत्र मे 9 नोटीफाइट एरिया है। सेना के दो रेजीमेट्स गढवाल राइफल्स रेजीमेट और कुमाऊॅ रेजीमेन्ट

1 जनगणना, 2001।

सारणी 6 4

नवगठित राज्य उत्तरांचल कुछ तथ्य एक दृष्टि में

1	राजधानी	देहरादून (अस्थाई)
2	जिले	13
3	तहसीले	49
4	क्षेत्रफल	53,483
5	जनसख्या	84,79 562
6	दशकीय जनसख्या वृद्धि	1366079
7	दशकीय जनसख्या वृद्धि का प्रतिशत	19 20
8	जनसख्या घनत्व	159
9	पजीकृत बेरोगारो की स0 (1991)	2 43,171
10	धर्मालम्बी (मे)	हिन्दू– 94 6%, मुस्लिम– 3 2%, सिक्ख– 1 7% अन्य–0 5%(1991 की जनगणनानुसार)

के अन्तर्गत आने वाली 9 छावनी इसी क्षेत्र मे अवस्थित है। क्षेत्रफल की दृष्टि से सबसे बडा जिला उत्तरकाशी और सबसे छोटा जिला बागेश्वर है जिनका क्षेत्रफल क्रमश 8016 और 1696 वर्ग कि0मी0 है। सारणी 6 5 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि–

उत्तराचल की वर्ष 2001 की जनगणनानुसार कुल जनसख्या 84,79,562 है, जिसमे पुरूषो की सख्या 43,16,401 और स्त्रियो की सख्या 41,63,161 है। जनसख्या की दृष्टि से सबसे बडा जिला हरिद्वार (14,44,213) और सबसे छोटा जिला चम्पावत (2,24,461) है। यहॉ की कुल साक्षरता दर, पुरूष साक्षरता दर एव स्त्री साक्षरता दर क्रमश 72 28 प्रतिशत, 84 01 प्रतिशत और 60 26प्रतिशत है। सर्वाधिक साक्षर जिला नैनीताल (79 60प्रतिशत) और सबसे कम साक्षरता दर वाला जिला हरिद्वार (64 60प्रतिशत) है। उत्तराचल मे लिगानुपात 964 है। सबसे अधिक लिगानुपात अल्मोडा (1,147) जिले मे तथा सबसे कम लिगानुपात हरिद्वार (868) जिले मे है। यहा आयु वर्ग 0–6 की कुल जनसख्या 13,19,393 है, जिसमे बालको की स0 6,92,272 एव बालिकाओ की सख्या 6,27,121 है। उत्तराचल मे जनसख्या घनत्व 159 है सर्वाधिक जनघनत्व हरिद्वार (612) मे तथा सबसे कम जनघनत्व उत्तरकाशी (37) मे है। उत्तराचल मे दशकीय विकास दर (1991–2001) का प्रतिशत 19 20 रहा है। (मद स0 2, 3 एव 4)

उत्तराचल मे शिक्षा प्रदान करने हेतु 5 विश्वविद्यालय, 50 डिग्री कालेज, 1,331 उच्चतर माध्यमिक विद्यालय है। सीनियर बेसिक स्कूल और जूनियर बेसिक स्कूलो की कुल सख्या क्रमश 2,661 एव 12,162 है। यहा 17 पॉलीटेक्निक और 65 औद्योगिक प्रशिक्षण देने वाली सस्थाये भी है (मद स0–20)।

उत्तराचल मे चिकित्सा सुविधा प्रदान करने वाली विभिन्न चिकित्सा केन्द्रो की सख्या इस प्रकार है– यहॉ परिवार एव मातृ शिशु कल्याण केन्द्रो और उपकेन्द्रो की सख्या क्रमश 188 और 1,509 है। आर्युवेदिक, एलोपैथिक, होम्योपैथिक और यूनानी चिकित्सा केन्द्रो की सख्या क्रमश 427, 558, 63 एव 5 है। क्षय, कुष्ट और सक्रामक रोग से सम्बन्धित विशेष चिकित्सालयो की सख्या 38 है (मद स0–21)।

सारणी सख्या 55

उत्तराचल (जनसख्या बैकिग शिक्षा स्वास्थ्य परिवहन एव अन्य सस्थागत तथ्य जनपदवार) एक दृष्टि मे

क्र0 स0	मद	इकाई	अवधि	उत्तरकाशी	चमोली	टिहरी	देहरादून	गढ़वाल	रूद्रप्रयाग	हरिद्वार	अल्मोड़ा	बागेश्वर	नैनीताल	ऊधमसिह नगर	पिथौरागढ	चम्पावत	योग
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18
1	क्षेत्रफल	वर्गकि.मी.	2001	8016	7626	3908	3796	5397	2252	1994	3074	2311	4767	2027	7218	1638	53483
2	जनसख्या (कुल)	सख्या	2001	294179	369198	604608	1279083	696851	227461	1444213	630446	249453	762912	1234548	462149	224461	8479562
	पुरूष	सख्या	2001	151599	183033	294842	675549	331138	107425	773173	293576	118202	400336	649020	227592	110916	4316401
	स्त्री	सख्या	2001	142580	186165	309766	603534	227592	120036	671040	336870	131251	362576	585528	234557	113545	4163161
	आयु वर्ग 0–6 की जनसख्या	सख्या	2001	48591	54667	96159	162772	98791	35520	254207	95914	40678	109441	213134	70169	39350	1319393
	आयु वर्ग 0–6 की पुरूष जनसख्या	सख्या	2001	24977	28258	49792	85537	51307	18460	137235	49790	20980	57346	111451	36914	20225	692272
	आयु वर्ग 0–6 की स्त्री जनसख्या	सख्या	2001	23614	26409	46367	77235	47484	17060	116972	46124	19698	52095	101683	33255	19125	627121
	जनसख्या की दशकीय विकाश दर का प्रतिशत	प्रतिशत	91–01	22 72	13 51	16 15	24 71	3 87	13 44	26 30	3 14	9 21	32 88	27 79	10 92	17 56	19 20
	जनसख्या घनत्व	कि0मी	2001	37	48	148	414	129	120	612	205	108	198	424	65	126	159
3	साक्षरता दर (कुल)	प्रतिशत	2001	66 58	76.23	67.04	78 96	77.99	74.23	64 60	74 53	71 94	79 60	65 76	76 48	71 11	72 28
	पुरूष	प्रतिशत	2001	84.52	89 89	85 62	85 87	91 47	90 73	75 06	90 15	88 56	87 39	76 20	90 57	88 13	84 01
	स्त्री	प्रतिशत	2001	47.48	63.00	49 76	71 22	66 14	59 98	52 60	61 43	57 45	70 98	54 16	63 14	54 75	60.26
4	लिगानुपात	सख्या	2001	941	1017	1051	893	1104	1117	868	1147	1110	906	902	1031	1024	964
5	तहसीलो की सख्या	सख्या	96–97	4	6	5	4	6	2	3	3	2	4	4	5	1	49
	उप तहसीलो की सख्या	सख्या	96–97	–	–	2	–	–	1	–	–	–	3	2	1	–	9
6	सामुदायिक विकासखण्ड	सख्या	96–97	6	9	9	6	15	3	6	11	3	8	7	8	4	95
7	न्याय पचायत	सख्या	96–97	37	39	76	40	118	29	46	95	34	44	27	64	24	673
8	ग्राम सभा	सख्या	96–97	373	492	762	335	1178	326	299	1016	344	442	327	651	249	6794
9 1	पुलिस स्टेशन (ग्रामीण)	सख्या	97–98	3	0	0	4	2	1	3	4	2	1	1	6	0	27
9 2	पुलिस स्टेशन (नगरीय)	सख्या	97–98	2	5	6	11	7	1	9	3	1	8	8	3	3	67
10 1	डाकघर (नगरीय)	सख्या	97–98	6	13	12	69	17	3	43	13	2	22	21	8	4	233
10 2	डाकघर (ग्रामीण)	संख्या	97–98	118	276	293	1888	409	102	82	02	139	145	84	312	70	3919
11	तारघर	सख्या	97–98	15	10	3	13	10	103	34	125	33	63	49	9	5	472
12	व्यावसायिक बैंक–																
	राष्ट्रीयकृत	सख्या		23	25	45	138	61	16	98	49	13	52	65	27	12	624
	अन्य	सख्या		0	0	0	17	0	5	2	8	4	10	13	1	5	65
13	ग्रामीण बैंक शाखाये	सख्या		3	27	23	14	36	5	1	19	14	19	8	21	4	194
14	सहकारी बैंक शाखाये	सख्या		12	15	22	13	19	5	12	16	3	20	24	13	5	179
15	सह0कृषि एव ग्राम्य विकास बैंक	सख्या		1	1	1	3	3	0	3	2	0	1	4	1	0	20
16.1	सस्ते गल्ले की दुकान (ग्रामीण)	सख्या	97–98	405	602	972	483	870	370	355	709	330	383	358	765	250	6852
16.2	सस्ते गल्ले की दुकान (नगरीय)	सख्या	97–98	18	45	41	331	52	12	132	42	3	101	157	50	14	998
17	सिचाई–नहरों की लम्बाई	कि0मी0	97–98	640	379	472	787	772	269	300	503	341	875	1063	344	216	6961
18	पशुपालन–																
	पशुधन	सख्या	1993	344078	371998	470325	369076	683665	–	455822	511569	270282	299652	370076	512111	158225	4806879
	पशु चिकित्सालय	सख्या	97–98	24	22	31	26	39	12	22	37	10	20	23	27	11	304
	पशुधन सेवाकेन्द्र	सख्या	97–98	31	48	65	37	68	24	24	62	18	78	70	52	17	594
	कृतिम गर्भाधान केन्द्र	संख्या	97–98	9	22	10	1	10	10	22	27	4	7	23	2	0	139
	कृतिम गर्भाधान उपकेन्द्र	संख्या	97–98	0	0	0	42	5	0	24	29	8	46	70	22	12	258
19	सहकारिता–																
	प्रारम्भिक कृषि ऋण समितिया	सख्या	97–98	46	56	94	41	134	33	44	81	17	53	33	112	21	765
	समितियों के सदस्य	हजार में	97–98	45	64	67	60	112	26	99	74	22	49	79	70	19	786
20	शिक्षा–																
	जूनियर बेसिक स्कूल	सख्या	97–98	608	882	1344	1214	1591	482	892	1339	528	916	815	1127	424	12162
	सीनियर बेसिक स्कूल	सख्या	97–98	188	147	344	340	321	98	201	207	80	247	211	194	83	2661
	उच्चतर माध्यमिक विद्यालय	सख्या	97–98	69	81	156	129	226	70	57	161	56	102	78	110	36	1331
	डिग्री कालेज	सख्या	97–98	4	4	2	8	4	1	7	7	1	2	4	4	2	50
	विश्वविद्यालय	सख्या	97–98	0	0	0	0	1	0	2	0	0	1	1	0	0	5
	औद्योगिक प्रशिक्षण सस्थान	सख्या	97–98	4	5	7	6	7	2	7	8	1	6	5	5	2	65
	पालिटेक्निक	सख्या	97–98	1	1	1	2	3	0	1	4	0	1	2	0	1	17
21	जनस्वास्थ्य–																
	एलोपैथिक चिकित्सालय/औषधालय	सख्या	97–98	45	33	35	104	83	28	27	52	16	55	18	45	17	558
	आयुर्वेदिकचिकित्सालय/औषधालय	सख्या	97–98	39	51	51	37	76	18	17	36	8	25	13	45	11	427
	होम्योपैथिकचिकित्सालय/औषधालय	संख्या	97–98	4	6	8	8	11	3	4	5	2	6	2	4	1	61
	यूनानीचिकित्सालय/औषधालय	सख्या	97–98	0	0	0	1	0	0	4	0	0	0	0	0	0	5
	प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र	संख्या	97–98	12	14	25	23	31	3	26	32	11	19	28	22	8	254
	परिवार एव मातृ शिशु कल्याण केन्द्र	सख्या	97–98	4	9	9	4	15	42	20	24	7	25	7	16	6	188
	परिवार एव मातृ शिशु उपकल्याण केन्द्र	सख्या	97–98	64	91	128	129	209	26	139	175	70	134	147	145	52	1509
	विशेष चिकित्सालय क्षय/कुष्ठ/सक्रामक	सख्या	97–98	3	3	0	5	3	1	9	2	0	5	0	7	0	38
22	सिनेमा गृह	सख्या	97–98	4	3	1	13	6	1	15	3	1	8	15	2	2	74
23	परिवहन–																
	बस स्टेशन/बस स्टाप	सख्या	97–98	182	79	432	232	427	67	113	275	83	220	144	189	53	2496
	पक्की सड़को की कुल लम्बाई	कि0मी0	96–97	974	1318	1708	2383	2793	–	1836	1831	452	2208	1841	1078	557	18979
	रेलवे स्टेशन (हाल्ट सहित)	सख्या	97–98	0	0	0	8	1	0	14	0	0	5	14	0	0	42
	रेलवे लाइन की कुल लम्बाई (छोटी लाइन सहित)	कि0मी0	97–98	0	0	0	65 3	–	0	80	0	0	32	161	0	0	338 3

स्रोत – अर्थ एव सख्या निदेशालय उत्तराचल की रिपोर्ट ।

पशुओ की चिकित्सा के लिये 304 पशु चिकित्सालय एव 594 पशुधन सेवा केन्द्र है। कृतिम गर्भाधान केन्द्रो और उपकेन्द्रो की सख्या क्रमश 139 और 258 है (मद स0–18)।

उत्तराचल मे यातायात की व्यवस्था असुविधाजनक तथा महगी हैं जिससे रोजमर्रा के उपयोगी सामानो की कीमत मैदानी इलाको की अपेक्षा 20 प्रतिशत से 50 प्रतिशत तक महगी रहती है। आवागमन के लिये लगभग 45 से 48 हजार कि0मी0 सडको का निर्माण हुआ है, जिसमे पक्की सडको की लम्बाई 18,979 कि0मी0 है। यहॉ पर स्थित रेलमार्ग की कुल लम्बाई 338 3 कि0मी0 है जिसमे 281 5 कि0मी0 बडी लाइन और 56 8 कि0मी0 छोटी लाइन है (मद स0–23)।

यातायात का प्रमुख साधन बस सेवा है। उत्तराचल मे उत्तर प्रदेश राज्य सडक परिवहन हरियाणा राज्य परिवहन, दिल्ली परिवहन निगम, राजस्थान राज्य परिवहन, हिमाचल रोड ट्रान्सपोर्ट कारपोरेशन आदि की बसे चलती है। यहॉ पर कुल 42 रेलवे स्टेशन (हाल्ट सहित) है जिसमे देहरादून, काठगोदाम, लालकुऑ, हल्द्वानी, ऋषिकेश प्रमुख है। उत्तर रेलवे का अन्तिम प्रमुख स्टेशन देहरादून है। देहरादून राष्ट्रीय राजमार्ग स0 45 द्वारा देश के लगभग प्रमुख भागो से जुडा हुआ है। देहरादून के अलावा ऋषिकेश व पतनगर मे हवाई अड्डा है, परन्तु यहॉ से नियमित उडाने नही होती है।

उत्तराचल मे सचार के साधनो की स्थिति भी बहुत अच्छी नही है। यहॉ कुल 472 तारघर स्थित है। इसके अलावा नगरीय एव ग्रामीण क्षेत्रो मे स्थित डाकघरो की सख्या क्रमश 233 एव 3919 है। यहॉ पर कुल पुलिस स्टेशनो की सख्या 94 है जिसमे 27 ग्रामीण क्षेत्र मे और 67 नगरीय क्षेत्र मे स्थित है (मद स0–9,10 एव 11) ।

राष्ट्रीय स्तर के कई बैक इस क्षेत्र मे अवस्थित है। सहकारी कृषि एव ग्रामीण विकास बैक की 20, ग्रामीण बैक की 194, सहकारी बैक की 179 और राष्ट्रीय कृत बैको की 624 शाखाये स्थित है। इसके अलावा कुछ अन्य बैको की 65 शाखाये यहा पर और स्थित है (मद स0–12,13,14,15)।

उत्तराचल मे मनोरजन का प्रमुख साधन सिनेमाघर है जिनकी कुल सख्या 74 है (मद स0–22)।

यहॉ पर 2,11,989 की जनसख्या पर एक ससदीय सीट है तथा पूरे क्षेत्र मे लोकसभा की 4 एव विधानसभा की 19 सीटे थी जिनकी सख्या परसीमन के बाद 70 हो गयी है।

पर्यटन की दृष्टि से इस क्षेत्र मे अनेक ऐतिहासिक–पौराणिक पर्यटन स्थल है। नैनीताल, देहरादून, मसूरी, लैसडाऊन, तपोवन, कण्वाश्रम (गढवाल), ऋषिकेश, अल्मोडा, कौसानी, रानीखेत आदि प्रसिद्ध प्राकृतिक सौन्दर्य स्थल है। बद्रीनाथ, केदारनाथ, गगोत्री और यमुनोत्री आदि जैसे पवित्र तीर्थस्थल भी स्थित है। इस पर्वतीय अचल मे कार्बेट नेशनल पार्क, राजा जी नेशनल पार्क, नदा देवी, सेक्चुअरी फूलो की घाटी, गोविन्द पशु विहार एव राष्ट्रीय उद्यान जैसे दर्शनीय स्थल भी है, जहॉ लाखो की सख्या मे प्रतिवर्ष पर्यटक और तीर्थ यात्री आते है। पर्यटको के लिये उत्तर प्रदेश पर्यटन विभाग ने इस क्षेत्र मे 102 पर्यटन इकाइया स्थापित की है जिसमे 3792 व्यक्तियो के ठहरने का प्रबन्ध है।

उत्तराचल मे अनुसूचित जाति और जनजाति की सख्या वहा की कुल जनसख्या (1991) का क्रमश 16 70 प्रतिशत तथा 3 54 प्रतिशत है। यहॉ की प्रमुख जनजातिया

जौनसारी, थारू, भोटिया, बुक्सा और राजी है जो कि मुख्यत उत्तराचल के देहरादून, ऊधमसिह नगर, पिथौरागढ, उत्तरकाशी, चमोली, बागेश्वर और नैनीताल जिले मे निवास करती है (सारणी 6 6)। धर्मानुसार यहा पर 94 6प्रतिशत हिन्दू, 3 2 प्रतिशत मुस्लिम, 1 7 प्रतिशत सिक्ख और अन्य धर्मावलम्बी 0 5प्रतिशत है। यह सवर्ण जाति बाहुल्य क्षेत्र है। 1991 की जनगणनानुसार यहाँ पजीकृत बेरोजगारो की सख्या 2,43,171 थी जिसमे उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है।

सारणी 6 6

उत्तराचल मे अनुसूचित जनजाति का विवरण

अनुसूचित जनजाति का नाम	क्षेत्र जहाँ जनजाति स्थित है	उत्तराचल मे स्थित कुल अनुसूचित जनजाति का प्रतिशत
1 जौनसारी	देहरादून जिले का चकराता और कलसी ब्लाक	38 75
2 थारू	ऊधमसिह नगर जिले का खटीमा और सितारगज ब्लाक मे जनसख्या का 60%	32 5
3 भोटिया	पिथौरागढ जिले का धारचुला मुन्स्यारी, बेरीनाग और डीडीहाट ब्लाक, उत्तरकाशी जिले का भटवारी ब्लाक, चमोली जिले का जोशीमठ और बद्रीनाथ ब्लाक एव बागेश्वर जिले के कपकोट, बागेश्वर और गरूड–बैजनाथ ब्लाक	14 68
4 बुक्सा	ऊधमसिह नगर जिले का बाजपुर गदरपुर, काशीपुर ब्लाक, नैनीताल जिले का रामनगर ब्लाक, गढवाल जिले का डोगड्डा ब्लाक और देहरादून जिले का दयावाला और सहसपुर ब्लाक	13 62
5 राजी	पिथौरागढ जिले का धारचुला, डीडीहाट, कनालीछीना ब्लाक और चम्पावत जिले के कुछ गाव	0 23

स्रोत कुमार, प्रदीप (2000) 'द उत्तराखण्ड मूवमेन्ट कान्स्ट्रक्शन ऑफ ए रीजनल आईडेन्टी", पृ0 65 ।

प्राकृतिक संसाधन एवं अर्थव्यवस्था

1 **भू/वन संसाधन**– उत्तराचल का सबसे बडा ससाधन वन सम्पदा है। सरकारी ऑकडो के अनुसार यहाँ का 62 54 प्रतिशत क्षेत्र वनो के अन्तर्गत है जबकि सुदूर सवेदन हवाई चित्रो के विश्लेषण से मालूम होता है कि उत्तराचल का 28 9प्रतिशत भाग ही वनाच्छादित है।[50] यदि वनो को अच्छी तरह विकसित किया जाय तो केवल वनो की आय से ही यह प्रदेश प्रशासनिक व्यय की दृष्टि से आत्मनिर्भर हो सकता है। इमारती लकडी के अतिरिक्त प्रतिवर्ष लगभग दो लाख क्विटल लीसा की प्राप्ति यहाँ से होती है। इसके अलावा दस लाख क्विटल भावर घास भी प्रतिवर्ष पैदा होती है जो कागज बनाने के काम आती है। यहाँ पर उपयोगी जडी–बूटियो के अतुलनीय भण्डार है। यदि औषधियो को उगाने, एकत्र करने और उनका निर्माण करने के सम्बन्ध मे एकीकृत योजना शुरू की जाय तो उससे विदेशी मुद्रा तो अर्जित होगी ही, साथ ही यहा की आबादी के एक बडे हिस्से का भरण–पोषण भी बिना अन्य कोई व्यवसाय अपनाये हो सकता है।

---

50 पत, डा0 बी0आर0 (1994), *"उत्तराखण्ड का प्राकृतिक आधार"*, नौटियाल, सुरेश सपा0, पूर्व उद्धत कृति, पृ0 61।

सारणी 67

कृषि एवं सिंचित भू–संसाधन (वर्ष 1996–97)

(क्षेत्रफल हेक्टेयर में)

जनपद	कुल प्रतिवेदित क्षेत्र	प्रतिवेदित क्षेत्र का भू वर्गीकरण											
		वन	भूमि जो कृषि हेतु अनुपलब्ध है			परती भूमि को छोडकर अन्य भूमि जो योग्य न हो				परती भूमि			शुद्ध बोया क्षेत्र
			गैर कृषि कार्यों मे प्रयुक्त भूमि	बजर एव अजोत भूमि	योग	स्थाई चारागाह	कुप्रयोग के अन्तर्गत भूमि	जोत योग्य वीरान भूमि	योग	चालू परती भूमि	अन्य परती भूमि	योग	
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
अल्मोडा	496864	304155	12855	14391	27246	28448	28018	34315	90781	350	4342	4692	69990
बागेश्वर	229965	87942	4518	17649	22167	32003	18265	25587	75855	296	3440	3736	40265
चमोली	883889	563546	18172	165639	183811	21921	35515	33490	90926	92	1621	1713	433893
चम्पावत	176751	115210	6400	3999	10399	29016	1633	1934	32583	94	1075	1169	17390
देहरादून	303208	207707	17442	1948	19390	81	4268	10844	15193	2541	4627	7168	53750
हरिद्वार	233506	70877	26258	2111	28369	93	733	2442	3268	3932	3252	7184	123808
नैनीताल	411721	300763	8702	2955	11657	1191	16056	26437	43684	986	4318	5304	50313
पौडी गढवाल	753288	444901	17655	34551	52206	43694	62132	44790	150616	146	18003	18149	87416
पिथौरागढ	460838	215529	9076	22484	31560	54255	43453	53124	150832	1055	11774	12829	50088
रूद्रप्रयाग*													
टेहरी गढवाल	536550	359207	11307	12550	23857	2927	23	74767	77717	58	8616	8674	67095
ऊधमसिह नगर	291729	103561	24646	1457	26103	26	1190	3524	4740	1830	2772	4602	152723
उत्तरकाशी	817630	726289	6805	19874	26679	13743	7531	8974	30248	43	3819	3862	30552
उत्तराचल	5595939	3499687	163836	299608	463444	227398	218817	320228	766443	11423	67659	79082	787283

*ऑकडे पितृ जनपद मे सम्मिलित

क्रमश

जनपद	एक से अधिक बार बोया क्षेत्र	सकल बोया क्षेत्र	शुद्ध सिचित क्षेत्र	सकल सिचित क्षेत्र	कुल क्षेत्र से वन क्षेत्र का प्रतिशत	कुल क्षेत्र से शुद्ध बोये क्षेत्र का प्रतिशत	शुद्ध बोया क्षेत्र मे से एक से अधिक बार बोये गये क्षेत्र का प्रतिशत	शुद्ध बोया क्षेत्र से शुद्ध सिचित क्षेत्र का प्रतिशत	सकल बोया क्षेत्र से सकल सिचित क्षेत्र का प्रतिशत	फसल सघनता	उर्वरक (मै0टन)	प्रति हेक्टेयर उर्वरक उपयोग
1	15	16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26
अल्मोडा	39935	109925	7414	13894	61 21	14 09	57 06	10 59	12 64	157 06	465	6 64
बागेश्वर	23870	64135	3489	6541	38 24	17 51	59 28	8 67	10 20	159 28	268	6 66
चमोली	22768	66661	2529	4751	63 76	4 97	51 87	5 76	7 13	151 87	263	5 99
चम्पावत	15587	32977	1772	3387	65 18	9 84	89 63	10 19	10 27	189 63	98	5 64
देहरादून	31627	85377	239667	34620	68 50	17 73	58 84	44 59	40 55	158 84	3916	72 86
हरिद्वार	58091	181899	101293	141467	30 35	53 02	46 92	81 81	77 77	146 92	35217	284 45
नैनीताल	34900	85213	30285	42833	73 05	12 22	69 37	60 19	50 27	169 37	18314	364 00
पौडी गढवाल	48412	135828	7990	15492	59 06	11 60	55 38	9 14	11 41	155 38	219	2 51
पिथौरागढ़	34804	84892	4676	7517	46 77	10 87	69 49	9 34	8 85	169 49	361	7 21
रूद्रप्रयाग*												
टेहरी गढवाल	40283	107378	9278	18044	66 95	12 50	60 04	13 83	16 80	160 04	428	6 38
ऊधमसिंह नगर	105140	257863	141839	235104	35 50	53 35	68 84	92 87	91 17	168 84	59896	392 19
उत्तरकाशी	16083	46635	5237	9400	88 83	3 74	52 64	17 14	20 16	152 64	498	16 30
उत्तराचल	471500	1258783	339769	533050	62 54	14 04	59 89	43 16	42 35	159 89	119943	152 35

*ऑकडे पितृ जनपद मे सम्मिलित

स्रोत अर्थ एव सख्या निदेशालय, उत्तराचल की रिपोर्ट, वर्ष 2000–01।

सारणी 6.8
सक्रिय धारकों की भूमि और संख्या का वितरण (1990–91की कृषि जनगणनानुसार)

जनपद	भू धारको की कुल सख्या	धारको की सख्या के वितरण का प्रतिशत					सक्रिय धारको द्वारा प्रयुक्त कुल क्षेत्रफल	सक्रिय धारको मे भू क्षेत्रफल के वितरण का प्रतिश्त				
		0–1 हेक्टेयर	1–2 हेक्टेयर	2–4 हेक्टेयर	4–10 हेक्टेयर	10+ हेक्टेयर		0–1 हेक्टेयर	1–2 हेक्टेयर	2–4 हेक्टेयर	4–10 हेक्टेयर	10+ हेक्टेयर
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13
अल्मोडा	127383	79 88	15 14	4 51	0 46	0 01	84001	47 72	30 12	18 23	3 51	0 42
बागेश्वर	51568	83 51	13 17	2 92	0 38	0 01	26381	48 72	35 48	11 94	3 39	0 47
चमोली	52956	69 77	18 84	9 34	1 97	0 08	46218	27 72	30 20	28 16	12 06	1 87
चम्पावत	44881	80 52	13 63	5 09	0 76	0 00	30446	47 19	27 31	16 93	8 50	0 07
देहरादून	69750	76 87	12 64	7 81	2 48	0 19	67496	37 78	21 42	21 99	13 81	5 00
हरिद्वार	98634	61 87	18 88	13 39	5 53	0 33	121922	20 07	21 06	30 16	25 08	3 63
नैनीताल	56218	60 13	18 47	18 59	2 56	0 25	80302	16 96	18 65	35 25	21 86	7 29
पौडी गढवाल	93672	78 93	10 08	7 25	3 31	0 43	123293	38 97	18 59	20 74	17 32	4 38
पिथौरागढ	76237	85 37	11 16	2 84	0 62	0 00	35469	49 12	28 95	16 56	5 18	0 19
रूद्रप्रयाग*												
टेहरी गढवाल	89706	70 70	20 69	7 61	0 99	0 00	72102	34 22	34 77	24 60	6 41	0 00
ऊधमसिह नगर	60391	51 08	18 10	15 99	13 17	1 66	113989	12 89	14 15	24 53	32 17	16 26
उत्तरकाशी	34984	64 84	19 43	12 81	2 87	0 05	34310	20 98	27 83	35 30	15 20	0 68
उत्तराचल	856380	72 67	15 67	8 58	2 83	0 24	835929	30 59	23 45	24 62	16 65	4 69

*ऑकडे पितृ जनपद मे सम्मिलित

स्रोत अर्थ एव सख्या निदेशालय, उत्तराचल की रिपोर्ट, वर्ष 2000–01 ।

सारणी 6 7 जो भू उपयोग से सम्बन्धित है के अवलोकन से ज्ञात होता है कि कृषि के अन्तर्गत 14 07 प्रतिशत भू–भाग है जिसका 43 16 प्रतिशत हिस्सा सिचित क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। इसमे भी अधिकाश भाग तराई–भावर के अन्तर्गत और कुछ भाग नदी वेदिकाओ मे है। कुल कृषि भूमि का 30 59 प्रतिशत एक हेक्टेयर से कम जोत का है जिस पर 72 67 प्रतिशत कृषक कृषि कार्य करते है जबकि 21 34 प्रतिशत चार हेक्टेयर से बडी जोत है जो केवल 3 07 प्रतिशत धनाड्य कृषको के स्वामित्व मे है। शेष 48 07 प्रतिशत कृषि भूमि पर 24 25 प्रतिशत लोग कृषि कार्य करते है। वर्ष 1991 की कृषि जनगणना के अनुसार 8,56,380 लोग 8,35,929 हेक्टेयर भूमि पर कृषि कार्य करते थे अर्थात प्रति व्यक्ति औसत जोत 0 976 हेक्टेयर है (सारणी 6 8)।

यहॉ पर बेकार तथा अकृषि भूमि के अन्तर्गत 2,99,608 हेक्टेयर तथा कृषि योग्य बेकार भूमि के अन्तर्गत 3,20,228 हेक्टेयर भू क्षेत्र स्थित है किन्तु सरलतम् वैज्ञानिक शोध के अभाव मे इस उपलब्ध क्षेत्र का समुचित उपयोग नही किया जा सका है। जबकि, सिचाई की उचित व्यवस्था होने पर यही क्षेत्र अपनी क्षमतानुसार पैदावार देते। मोटे अनाजो की उपज के साथ हरे भरे चारे एव ईंधन के पेडो का लगातार रोपण किया जाय और एग्रोपास्टोरल विधि से उपजाऊ खेती की जाय तो इस क्षेत्र को भी आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है।[51] उद्यानो के अन्तर्गत 3 85 प्रतिशत क्षेत्र है किन्तु इनका विकास समुचित ढग से नही हुआ है। चारागाह केवल 5 04 प्रतिशत भाग पर है जबकि पशुओ की स0 48,06,879 है, जो क्षमता से अधिक है। लगभग 11 प्रतिशत भाग अभी भी बेकार भूमि के अन्तर्गत है जिसमे कुछ चट्टानी तथा कुछ वर्फीला क्षेत्र है। इस भूमि के विकास की अपार सम्भावनाये है। इस पर चारे, ईंधन, फल आदि के जगल विकसित किये जा रहे है। यद्यपि क्षेत्र के उपयुक्त भूमि उपयोग हेतु प्रायोगिक शोध की नितान्त आवश्यकता है, प्रयोगशाला से खेत तक एक इकाई के रूप मे कार्य होना है।

2. **जल संसाधन**– जल ससाधन उत्तराचल का दूसरा मुख्य ससाधन है। गगा, यमुना, टौस, भागीरथी, भिलगना, मदाकिनी, अलकनदा, पिडर, सरयू, गौरी, धौली, कुटी, काली आदि नदिया लगभग 4000मी0 की ऊँचाई से हिमनदो मे जन्म लेकर एक दूसरे को आत्मसात करते हुये बगाल की खाडी पहुच जाती है। अपनी इस यात्रा मे ये नदियॉ हजारो मेगावट जल विद्युत उत्पादन की क्षमता रखती है।

उत्तराचल की इन सदानीरा नदियो मे निरन्तर एक वृहद् जलराशि प्रवाहमान हो रही है। उपलब्ध ऑकडो के अनुसार यमुना नदी का वार्षिक बहाव 670 9 क्यूबिक मीटर जल प्रति सेकेण्ड है, जबकि टौस का 1,861 2, सरयू का 95 21, काली का 180 50, पश्चिमी रामगगा का 119 10, कोसी का 21 34 और गौला का 42 21 क्यूबिक मीटर प्रति सेकेण्ड है। कुल मिलाकर इस क्षेत्र मे 22,575 मिलियन क्यूबिक मीटर जल प्रतिवर्ष बहता है, जिसका 62 प्रतिशत भाग गढवाल और 38प्रतिशत भाग कुमाऊँ क्षेत्र मे प्रवाहित होता है।[52] कुल वार्षिक वर्षा आकलन की थिसेन पोलिगन

51 पत, डा0 बी0आर0 (1994), पूर्व उद्धत कृति, पृ0 62 ।
52 तदैव।

विधि जिसमे बर्फीले क्षेत्र के 7प्रतिशत भाग को शामिल नही किया गया है के अनुसार अलकनन्दा तथा उसकी सहायक नदियॉ मदाकिनी तथा पिण्डर उत्तराचल के 26प्रतिशत क्षेत्र को घेरे हुये है तथा वर्ष भर मे सर्वाधिक 5,342 मिलियन क्यूबिक मीटर जलराशि (वाल्यूम) प्रदान करती है जो कुल जल प्राप्ति का 23 7प्रतिशत भाग है, जबकि अन्य नदियो मे भागीरथी तथा भिलगना की जलराशि 2,533 मिलियन क्यूबिक मीटर, टौस 4844, यमुना 1651, काली 2,387, प0 रामगगा 972, कोसी 1,870, सरयू 1,350, नयार तथा निचली गगा 1,626 मिलियन क्यूबिक मीटर जलराशि है।[53] अलबत्ता यह बात अलग है कि अभी तक केवल 43 16प्रतिशत कृषि भूमि की सिचाई तथा 65प्रतिशत जनसख्या को शुद्ध पेयजल की आपूर्ति हो सकी है शेष आबादी अन्य साधनो से प्राप्त प्रदूषित जल का उपयोग करती है।
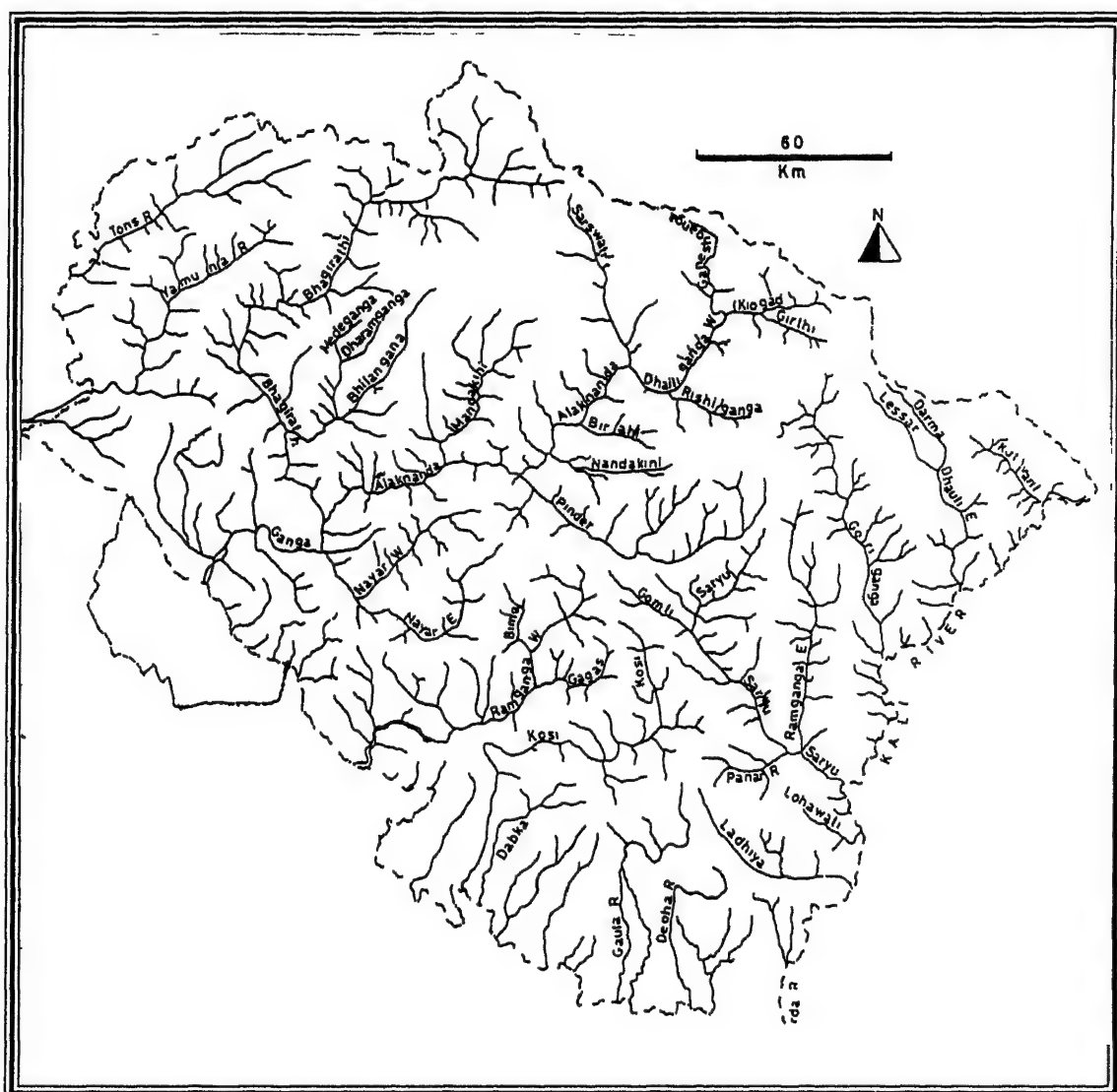
(मानचित्र–6 3 उत्तराचल का अपवाह तन्त्र)*
*जनपद हरिद्वार का अपवाह मानचित्र नही प्राप्त हो सका

53 पाठक, एच0जे0 (1983), *"वाटर रिसोर्सेज ऑफ द यू0पी0 हिमालय दियर यूज एण्ड पोट्यन्शियक्स* , ओ0पी0 सिह (सपा0), *हिमालय नेचर मैन एण्ड कल्चर,* नई दिल्ली, राजेश पब्लिकेशन्स, पृ0–161–173।

पानी की उपलब्धता के आधार पर यहॉ 9000 मेगावट विद्युत का उत्पादन किया जा सकता है।[54] हिमालय मे बिवर्तनिक शक्तियो की सक्रियता के कारण उस सवेदनशील क्षेत्र मे बडे बाधो का विरोध जरूर किया जा सकता है।[55] लेकिन 'माइक्रोहाइडिल' परियोजनाओ के माध्यम से बसे लोगो को पानी तथा विद्युत जरूर प्रदान की जा सकती है। इससे स्थानीय लोगो को रोजगार मिलने के साथ खेती के लिये लिफ्ट माध्यम से पानी तथा विद्युत का दूसरे प्रदेशो को विक्रय कर क्षेत्र का विकास हो सकता है।

उत्तराचल अनेक झीलो के लिये भी प्रसिद्ध है। वृहत् तथा लघु हिमालय मे अनेक सरोवर ऐसे है जो वहॉ की आर्थिक सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक स्थिति को बदलने मे सहायक हुये है। गढवाल मे ड्योडीताल, मासरताल, जरालताल, सहस्रताल, नदीकुण्ड, रूपकुण्ड, गौरी कुण्ड आदि और कुमाऊ मे पार्वतीताल, तडागताल, गरूणताल, खुरपाताल, नैनीताल, भीमताल, सातताल, नौकुचियाताल, हरीशताल, लोखामताल, श्यामलाताल आदि प्रमुख है। मानवकृत बाधो के रूप मे नानक सागर, बहुगुल, हरीपुरा, बौर, तुमडिया, कालागढ आदि प्रमुख है, जिनका जल सिचाई के लिये उपयोग होता है। अनेक बडी परियोजनाये मुख्यत टिहरी, विष्णुप्रयाग, पचेश्वर, धौली आदि विवादो के घेरे मे है।

(3) खनिज सम्पदा

यद्यपि उत्तराचल मे खनिज निक्षेपो की बहुलता नही है फिर भी मैग्नेसाइट, टाल्क, चूना पत्थर तथा फास्फोराइट जैसे कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण खनिजो का उत्खनन विशेष रूप से उल्लेखनीय है।[56] मैग्नेसाइट के उच्चकोटि का भण्डार काली नदी की घाटी मे फैले 150 कि0मी0 के क्षेत्र मे प्राप्त होते हैं[57] चडक, धारीगाव, बीसाबजेर, दयोपाला, देवलथाल, पथसेरा, गेडाली तथा दडु जैसे पिथौरागढ जनपद के कुछ क्षेत्र मैग्नेसाइट निक्षेपो के लिये प्रसिद्ध है। इसी प्रकार अल्मोडा जनपद मे पुगर घाटी, बडनी, झिरौली, देवलधार, बडा अगर, घिरीथिना तथा सोमेश्वर के अतिरिक्त गढवाल क्षेत्र के बगोली, बगथाल–कोमोथाल, लाटुधार–लालधारा क्षेत्र मैग्नेसाइट के लिये प्रसिद्ध है। मसूरी अपनति मे विगेपित ताल, शैल समूह मे देहरादून तथा टिहरी जनपदो मे यूरेनिफेरिस फास्फोराइट के महत्वपूर्णर्ण निक्षेप विद्यमान है। देहरादून जनपद के मालदेवता तथा दुरमाला इलाको मे फास्फोराइट का उत्खनन वृहद पैमाने पर चल रहा है। इसके अतिरिक्त देहरादून जनपद मे फास्फोराइट के निक्षेप चिफाल्डी, पारीटिब्बा, माथेड, इयरा, बागासारी, गुत्सी जारवीरवाल तथा मसराना जैसे क्षेत्रो मे विद्यमान है। फास्फोराइट के कुछ विरल निक्षेप पिथौरागढ जनपद मे भी पाये जाते है। टाल्क, स्टियराइट तथा मैग्नेसाइट निक्षेप पाकेट के रूप मे मिलते है। अल्मोडा जनपद के

---

54 पाठक, एच0जे0 (1983), 'पूर्व उद्धत कृति, पृ0–161–173।

55 पाठक, शेखर, गिरिजा पाण्डे तथा बी0आर0पत (1992), *"गढवाल भूकम्प ध्वस के बीच जिन्दगी"*, पहाड 5/6, 249–261।

56 सिन्हा, ए0के0 एव श्रीवास्तव, आर0ए0के0 (1979), *"कुमाऊ की खनिज सम्पदा उपलब्धिया तथा सम्भावनाये"*, पत, सुरेश सपा0, *उत्तरीय,* नई दिल्ली, कूर्माचल परिषद, पृ0 10–12 एव वाल्दिया, के0एस0 (1969), *स्ट्रोमेरोलाइट्स ऑफ दी लेसर हिमालयन कार्बोनेट फारमेशस एण्ड दी विध्यन,* जर0जिया0सोसा0इण्डिया, पृ0 479–482।

57 मेहरोत्रा, आर0सी0 एव जोशी, एम0एन0 (1982), *"एनवायरमेटल डीग्रेडेशन इन हिमालयन रीजन ड्यू टू एक्सप्ल्योइटेशन ऑफ मिनरल्स"*, नेशनल सेमीनार आन मिनरल्स एण्ड इकालोजी, पृ0 1–10 ।

सारणी · 69

उत्तराखण्ड में खनिज भण्डार

खनिज	स्थान / जनपद	मात्रा / खान की स्थिति, किस्म
1 डोलोमाइट	देहरादून व टिहरी–गढवाल	अधिकतम मात्रा, न्यून किस्म, का सिलिका व उच्च किस्म का मैगनीशियम डोलोमाइट।
2 जिप्सम	निहाल नदी घाटी सोहस धारा (नैनीताल)	30,000 टन, साधारण से उत्तम किस्म।
	सहस्त्रधारा, झडीपानी, (देहरादून), धापिला	अअनुमानित ।
3 लाइम स्टोन (चूना पत्थर)	मन्दारसू (देहरादून)	40 मिलियन टन।
	माणीकोट–नीलकठ (गढवाल)	80 मिलियन टन, अधिक सिलिका, कम कैल्शियम लाइम
	चौपट्टी पर्वत श्रेणी (देहरादून)	12 मिलियन टन, सिमेन्ट ग्रेड ।
	गगोलीहाट (पिथौरागढ)	30 मिलियन टन, सिमेण्ट ग्रेड ।
	धरासू (उत्तरकाशी) से दक्षिणपूर्व–धनपुर (चमोली) पट्टी तक	अअनुमानित ।
	चमोली के उत्तर से दक्षिण–पूर्व–अल्मोडा के उत्तर तक पट्टी	अअनुमानित ।
	पिथौरागढ मे एक पट्टी	अअनुमानित ।
4 मार्बल (सगमरमर)	लम्बीधार (मसूरी)	4 मिलियन टन, सफेद, 98 प्रतिशत $CaCo_3$, केमिकल ग्रेड, खनन कार्य प्रारम्भ।
5 काइनाट	चादोग (पिथौरागढ)	अअनुमानित ।
	भटवाडी (उत्तरकाशी)	अअनुमानित ।
6 टाल्क (स्ट्रेटाइल) या सोप स्टोन	रामनी (चमोली),	200' x 4' तथा 500' x 5' पट्टी 30–32
	घोनी (चमोली)	प्रतिशत MgO, साधारण किस्म ।
	बेलाकूची (चमोली)	1 5 मिलियन टन, निम्न श्रेणी की किस्म।
	टेरोसी (चमोली)	30 मिलियन टन, साधारण किस्म
	ह्वीण (चमोली	9 6 मिलियन टन, साधारण किस्म ।
	चन्दोग (पिथौरागढ)	अच्छी किस्म, अअनुमानित ।
	रेण, आगर, बलवाकोट क्षेत्र (पिथौरागढ)	अच्छी किस्म, अअनुमानित ।
	लौहारी नदी घाटी, जखेडा, के निकट (अल्मोडा)	अच्छी किस्म, अअनुमानित ।
	आगर (अल्मोडा)	खनन कार्य हो रहा है।
7 रॉक फॉस्फेट	मसूरी, (टिहरी–गढवाल)	12 मिलियन टन,, न्यून से मध्यम ग्रेड (PO-16%)
	सोमेश्वर जजुराली, देवलधार, बागेश्वर, बोरागर, गनाई, रीथल, टछनी (अल्मोडा)	3 05 मिलियन टन, (Indian Bureau of Mine के अनुसार)
8 मैगनासाइट	टिरोसी, ह्वीण, पिण्डर, कालीगगा (चमोली)	अअनुमानित, ग्रेछीला की भॉति किस्म।

स्रोत –राज्य भूतत्व एव खनिज निदेशालय– उत्तर प्रदेश की रिपोर्ट तथा डॉ0 बिष्ट, एन0एस0– "Potentialities of Ceramio Resources in Hill Districts of Uttar Pradesh"- Published in Himalokini, The annual magazine of S R T Constituent College, Garhwal University, Tehri, P 25-27

जखेरा तथा पिथौरागढ जनपद के देवलथाल क्षेत्रो मे पाये जाने वाला टाल्क तथा स्टियराइट उच्च कोटि के है। गढवाल तथा कुमाऊ क्षेत्र मे चूना पत्थर की प्रचुर मात्रा विद्यमान है। करोल शैल समूह के अन्तर्गत पाया जाने वाला चूना पत्थर देहरादून, नैनीताल तथा टिहरी जनपदो मे उत्खनित किया जाता है। देहरादून जनपद के कैरकुली–भट्टा, अरनीगाड क्षेत्र से सगमरमर का खनन किया जाता है। डोलोमोइट के निक्षेप प्रमुखत करोल शैल समूह मे पाये जाते है तथा इसका वितरण देहरादून, नैनीताल, टिहरी गढवाल, पौडी गढवाल तथा पिथौरागढ जनपदो मे मिलता है। जिप्सम सामान्यतया लेसाकार रूप मे करोल शैल समूह मे मिलता है तथा इसका खनन देहरादून जनपद के सहस्त्रधारा तथा चिफाल्डी, टिहरी जनपद के लक्ष्मण झूला, नैनीताल जनपद के खुरपाताल तथा धपिला क्षेत्र मे किया जाता है। इसके अतिरिक्त पिथौरागढ जनपद के देवलथल, अल्मोडा जनपद के सीसाखानी, देवलघाट, बलालदेव, अस्कोट, चाना, गनाई तथा तामाखानी क्षेत्रो मे अपधातु के उत्तम भण्डार विद्यमान है। चमोली जनपद के चमेथी–पोखरी–ढुगी पट्टी मे यूरेनियम विद्यमान है। अल्मोडा जनपद के कलमटीमा, सीरार तथा बगनीदनी मे ग्रेफाइट, चमोली जनपद की मदाकिनी घाटी मे गधक तथा एस्बेस्ट्स, उत्तरकाशी जनपद की भागीरथी घाटी मे कायनाइट, मालदेवता तथा बरमतिया मे बैराइट, पौडी मे अभ्रक, मुसाग मे टगस्टन के निक्षेप प्राप्त होते हैं। एटीमनी, मैग्नेसाइट, हैमेटाइट, प्लेसर सोना तथा ग्लास सैड भी इस क्षेत्र मे प्राप्त होता है।

कृषि व औद्योगिक सम्पदा

उत्तराचल का 90प्रतिशत भू–भाग हिमालय और शिवालिक का पर्वतीय क्षेत्र है। जबकि देहरादून घाटी, नैनीताल की तराई और पौडी का भावर क्षेत्र कृषि की दृष्टि से काफी उपजाऊ हैं। देश के सबसे बडे व आधुनिक कृषि फार्म नैनीताल एव ऊधमसिह नगर जिले मे है। यहॉ आधुनिक तरीके से खेती होती है। ऊधमसिह नगर एव देहरादून मे कई चीनी मिले है जो उत्तराचल की पूरी आवश्यकताओ से कही अधिक चीनी का उत्पादन करती हैं। देहरादून का बासमती चावल पूरे विश्व मे अपनी सुगन्ध और स्वाद के लिये प्रसिद्ध है। समतल भू–भाग मे सभी नकदी फसले पैदा होती है जो पूरे उत्तराचल की खाद्य आवश्यकताओ को पूरी करने के लिये यथेष्ट है (सारणी–6 10)। मसूरी, चम्बा, जोशीमठ, शहर फाटक, लम्बगडा तथा रानीखेत की फल पट्टिया सेब, अखरोट, खुमानी, चूलु, पुलम, आड़ू, नाशपाती की भरपूर फसल दे रही है।

नैनीताल की तराई मे ही गोविन्दबल्लभ पन्त कृषि विश्वविद्यालय है जो कृषि, पशुपालन, बागवानी, बीज अन्वेषण एव उत्पादन मे पूरे देश मे बेजोड है। रानीपुर मे स्थित भेल की इकाई विद्युत जनरेटर बनाने का देश का बडा उद्योग है। ऋषिकेश का आई0डी0पी0एल0 का दवा बनाने का कारखाना देश के दवाई उत्पादको को टेट्रासाइक्लिन पाउडर की आपूर्ति करता है। देहरादून तेल एव प्राकृतिक गैस आयोग का मुख्यालय है जो पूरे देश मे तेलशोधन एव उत्पादन की प्रमुख सस्था है। पूरे देश के लिये वन अनुसधान एव प्रक्षिण सस्थान भी इसी जनपद मे है। भारतीय पेट्रोलियम सस्थान के अतिरिक्त पूरे देश के सैनिक अधिकारियो एव गैर सैनिक अधिकारियो (आई0ए0एस0) के प्रशिक्षण के भी केन्द यही है। रक्षा अनुसधान व उत्पादन की फैक्ट्रिया भी यहॉ मौजूद है। इसके साथ

सारणी 6 10

उत्तरांचल की प्रमुख फसलों के अन्तर्गत भू क्षेत्र एवं उत्पादन मात्रा

क्र0 स0	फसल/ जनपद	कुल कृषि भूमि का प्रतिशत								कुल उत्पादन								कुल कृषि मूल्य का प्रतिशत							
		उत्तरकाशी	चमोली	गढवाल	टेहरी गढवाल	अल्मोडा	पिथौरागढ	नैनीताल	देहरादून	उत्तरकाशी	चमोली	गढवाल	टेहरी गढवाल	अल्मोडा	पिथौरागढ	नैनीताल	देहरादून	उत्तरकाशी	चमोली	गढवाल	टेहरी गढवाल	अल्मोडा	पिथौरागढ	नैनीताल	देहरादून
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26
1	चावल	24 67	26 70	20 60	17 03	22 30	27 62	35 05	28 73	13980	19407	27040	17469	42682	6247	326333	23892	26 44	29 25	24 25	19 90	28 27	27 64	38 13	19 00
2	गेहूँ	33 39	31 30	33.57	40 54	37 59	35 04	36 11	31 86	18171	21082	47324	40729	61361	62471	285671	44749	23 98	22 06	29 56	32 27	28 27	27 64	23 44	24 38
3	आलू	3 30	2.22	0 19	1 29	0 64	1 45	0 92	1 46	27257	26725	4914	23828	20990	37656	54184	24202	21 41	17 07	1 83	11 23	5 79	9 94	2 62	7 81
4	सोयाबीन	12 98	10 27	8 61	10 49	7 11	10 53	6 74	4 28	5018	5488	10656	8699	11957	13912	22502	2705	11 25	10 35	13 77	12 57	9 84	11 15	3 75	2 65
5	रागी	18 09	25 30	27 45	21 84	25 72	16 20	1 30	4 23	8688	16844	35235	19630	40577	28375	5614	4254	10 34	16 07	19 93	14 10	16 92	11 40	0 41	2 09
6	रैपसीड	1 16	0 43	0 28	0 58	0 27	0 11	1 99	1 94	361	198	276	406	329	1169	3039	1201	1 47	0 65	0 54	0 99	0 47	01 70	0 78	2 04
7	ज्वार	1 17	0 44	1 81	1 92	1 28	2 92	2 68	15 18	672	272	2115	1836	2492	4739	9062	16824	0 86	0 28	1 29	1 42	1 12	2 08	0 72	8 95
8	अदरख	0 04	0 00		0 03	0 01	0 02	0 04	0 26	130	27		199	89	154	939	1583	0 78	0 13		0 79	0 20	0 34	0 38	4 31
9	मिर्च	0 28	0 18	0 20	0 18	0 77	0 55	0 16	0 12	96	83	214	138	1312	593	472	76	0 77	0 54	0 83	0 68	4 01	1 61	0 23	0 26
10	तम्बाकू	0 07	0 02	0 03	0 04	0 02	0 07		0 06	85	33	101	96	104	280		151	0 70	0 22	0 39	0 47	0 30	0 77		0 51
11	बाजरा	1 08	2 70	6 21	4 50	3 91	4 96	0 51	3 47	586	2071	7852	4785	6576	10211	2110	4800	0 68	1 95	4 29	3 3	2 66	4 08	0 15	2 21
12	अरहर	0 27	0 13	0 43	0 61					92	64							0 34	0 10	0 80	1 00				
13	लहसुन	0 03	0 03	0 01	0 01	0 03	0 06	0 01	0 03	53	79	90	43	231	362	136	97	0 32	0 25	0 26	0 17	0 40	0 74	0 05	0 20
14	Sergmum	1 57			0 80				1 16	62			71				91	0 31			0 21				0 19
15	प्याज	0 03	0 07	0 17	0 07	0 15	0.20	0 02	0 91	206	647	3393	1058	3878	4054	932		0 22	0 55	1 73	0 68	1 46	1 46	0 06	
16	केला		0 03	0 01		0 01	0 06		6 05		277	190		207	1526				0 27	0 11		0 09	0 62		
17	चना			0 12				0 49				141				1460	802			0 21				0 28	1 11
18	गन्ना							13 69								2507397	306844							29 04	23 93
19	जूट							0 06								1883								0 04	
20	Conande					0 03								30											
21	हल्दी						0 03								36										

नोट– 1 बागेश्वर, चम्पावत, रूद्रप्रयाग और ऊधमसिह नगर जनपद के आकडे पितृ जनपद मे सम्मिलित

2 जनपद हरिद्वार के ऑकडे उपलब्ध नही हो सके।

स्रोत – सेन्टर फॉर मॉनिटरिग इडियन इकोनॉमी, बम्बई नवम्बर 1993 की रिपोर्ट।

ही ऐसे इलेक्ट्रानिक्स उद्योग जिसके लिये प्रदूषण रहित क्षेत्र की आवश्यकता होती है यथा–घडिया, लेस, कैमरा, माइक्रोस्कोप, टेलीस्कोप आदि की स्थापना के लिये यहॉ आदर्श वातावरण उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त पूरे देश के अभिजात शासक वर्ग के बच्चो के लिये शिक्षा के सर्वोत्तम केन्द्र भी यही है।

औद्योगिक विकास की दृष्टि से नैनीताल एव ऊधमसिह नगर जिले का सर्वाधिक विकास हुआ है। ऊधमसिह नगर जो उत्तर प्रदेश का कनाडा कहा जाता था मे 400 से अधिक लघु उद्योगो की पूरी श्रखला ही स्थित है। फिर कारखानो की सख्या के हिसाब से देहरादून का नम्बर आता है। इसके बाद अल्मोडा, पौढी गढवाल, टिहरी गढवाल, पिथौरागढ, चमोली और उत्तरकाशी आते है। नैनीताल, ऊधमसिह नगर और देहरादून मे लगे अधिकाश कारखाने तराई क्षेत्र मे स्थित होने के कारण ही क्षेत्रीय असन्तुलन बरकरार है।

आर्थिक नियोजन की समस्याये एवं विकास का प्रारूप

क्षेत्रीय विषमताओ एव आर्थिक पिछडेपन से निजात पाने की मजबूरी मे स्थानीय जनता ने आन्दोलित होकर नये राज्य की माग उठाई थी। लम्बे समय तक चले जन सघर्षों के फलस्वरूप नवम्बर 2000 मे नये राज्य का गठन भी हो गया। राज्य से अपेक्षा थी कि लोगो की रोजमर्रा की तकलीफो का समाधान होगा। वे अपने विकास के अधिकार का स्वय उपयोग कर पायेगे। स्थानीय जल, जगल, जमीन जैसे मूलभूत ससाधनो पर उनका अपना अधिकार होगा। अपने नागरिको की कार्यकुशलता वृद्धि के लिये राज्य उन आवश्यक सुविधाओ को उपलब्ध कराएगा, जिसमे व्यक्तिगत एव सामूहिक दोनो के हित समाहित होगे। लेकिन जन–आकाक्षाओ के इस प्रतिबिम्ब को लेकर उत्तराचल के जनमानस मे राज्य के गठन के समय जो खुशी जाहिर की थी वह अधिक समय तक जीवित नही रह सकी और विकास, पहचान तथा आत्मनिर्भरता का प्रश्न केवल प्रश्न बनकर रह गया है। ढॉचे का अभाव और दिवालिया विरासत इन दो यथार्थों के कारण उत्तराचल राज्य गठन के लगभग ढाई वर्ष उपरान्त भी लोग स्वय को उपेक्षित अनुभव कर रहे है और ऐसा कोई भी मूलभूत परिवर्तन नई व्यवस्था ने नही दिया है जिनसे जनसशक्तीकरण एव विकास सबधी उनके मूलाधिकारो को सुनिश्चित किया जा सके। प्रदेश मे आज भी देश की सवैधानिक अवज्ञा के अनुरूप नये पचायतीराज अधिनियम को राज्य की विधायिका से पारित कराकर विधि सम्मत सत्ता का स्थानीय स्तर पर हस्तान्तरण नही हुआ है। उत्तराचल के पहाडो का अब तक कोई कायाकल्प नही हो सका है।[58] उत्तराचल के जनप्रतिनिधियो का यह दावा कि उत्तराचल राज्य अतिशीघ्र विकास की दृष्टि से समृद्ध आत्मनिर्भर, खुशहाल एव देश का अग्रणी राज्य बन जायेगा और पर्यटन के क्षेत्र मे स्वीट्जरलैण्ड से भी अधिक उन्नति कर लेगा, इस दृष्टि से सदेह भरता है कि समृद्धि की घोषणा करने वाले उसके तरीके अभी तक उजागर नही किये गये।

यद्यपि नवम्बर 2000 मे उत्तराचल के साथ ही छत्तीसगढ और वनाचल राज्य भी अस्तित्व मे आये, किन्तु इनमे से उत्तराचल राज्य की स्थिति सामरिक दृष्टि से पूर्वोत्तर राज्यो के समान ही है। इस नवगठित राज्य की जनसख्या का एक बडा भाग राष्ट्र की सुरक्षा हेतु सेना एव अर्द्धसैनिक बलो मे भर्ती

58 दीक्षित, सजय (नव० 6, 2001), *जागरण उदय*, पृ0 12 ।

है। इस क्षेत्र के निवासियो की पूर्ण राज्य की माग लम्बे समय के बाद पूरी हो सकी है। अब उत्तराचल सरकार का लक्ष्य इस क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थितियो के अनुरूप यहॉ का चहुँमुखी विकास सुनिश्चित करना होना चाहिये। लेकिन वर्तमान प्रवृत्तिया इस दिशा मे आगे बढती नही दिखाई देती।

नवगठित राज्य को दाने–पानी के ठिकाने के लिये अभी भी उत्तर प्रदेश की सहानुभूति चाहिये और डेढ साल मे यह खोज अभी पूरी नही हुयी है।[59] मूल रूप से नई अतरिम सरकार के समक्ष परिसम्पत्तियो का बटवारा और परिसीमन का कार्य कराने के अलावा रूकी हुयी जल विद्युत परियोजनाओ को शुरू कराना, राज्य की स्थापना सम्बन्धी व्यवस्थाये करना, वित्तीय प्रबन्धन, कृषि एव ग्रामीण विकास, पर्यटन क्षेत्रो का बहुमुखी विकास, उद्योगो की व्यवस्था करना, दुर्गम भौगोलिक स्थितियो मे बसे गॉवो तक का स्वास्थ्य, शिक्षा, पेयजल की व्यवस्था करना था। लेकिन अतरिम सरकार अधिकतर मोर्चे पर फिसड्डी साबित हुयी है। फिलहाल नवगठित राज्य सिर्फ नीतियो का प्रदेश बनकर रह गया है। क्योकि इन नीतियो के क्रियान्वयन मे धन का अभाव आडे आ रहा है।

परिसपत्तियो के बटवारे का प्रश्न अभी तक उत्तराचल व उत्तर प्रदेश के बीच हल नही हो पाया है। उत्तराचल बनने से पूर्व उत्तर प्रदेश के सभी 104 विभागाध्यक्ष कार्यालयो के स्टोर्स का मूल्याकन किया गया था, जिनकी कुल कीमत 22 38 करोड आकी गयी थी।[60] उत्तर प्रदेश इस धनराशि को जनसख्या के अनुपात (1321 70) के आधार पर बाटना चाहता है। इस आधार पर उत्तराचल के हिस्से मे मात्र 1 13 करोड रू0 की धनराशि आयेगी। उत्तराचल मे स्थित सात विभागो के स्टोर्स की कीमत 78 लाख रूपये आकी गयी है, जिसे 1 13 करोड मे से घटाकर शेष 35 लाख रूपये की धनराशि उत्तर प्रदेश उत्तराचल को देना चाहता है।[61] इसी तरह जल विद्युत परियोजनाओ से पैदा होने वाली विद्युत मे से 60 प्रतिशत विद्युत उत्तर प्रदेश को देने की माग की जा रही है। इन तमाम विवादो का निपटारा अभी केन्द्र को करना है। फिलहाल उत्तराचल के जल विद्युत ससाधन पर उत्तर प्रदेश सरकार का नियन्त्रण रखा गया है। इसके अलावा दोनो राज्यो के मध्य कर्मचारियो के आदान–प्रदान की जटिल समस्या भी बनी हुई है।

वर्तमान मे उत्तराचल के सामने सबसे बडी चुनौती विकास की है। शिक्षा, स्वास्थ व पेयजल सरीखी मूल आवश्यकताए अभी दुर्गम भौगोलिक परिस्थितियो के कारण राज्य की अधिकाश जनता से कोसो दूर है। मूलरूप आवश्यकताओ के लिये जो भी योजनाए बनाई गयी है उनमे दूरदृष्टि का अभाव है। नये राज्य मे उद्योगो की कमी है और जो उद्योग यहॉ पर है भी उनमे भी बिजली व अन्य सुविधाओ की समस्या का सामना करना पड रहा है। अर्थात् औद्योगिक वातावरण का यहॉ अभाव है। हालाकि यहॉ के जन–प्रतिनिधि यह कहते हुये नही थकते कि 'हमारे पास प्राकृतिक ससाधनो–जल, जगल और जमीन का अपार भण्डार है और इन ससाधनो के बल पर यह अतिशीघ्र समृद्ध तथा विकसित राज्य बन जाएगा, परन्तु अब तक इस बात का खुलासा नही किया गया है कि यह किस प्रकार और कैसे हो सकता है। हालाकि सभी प्रमुख नदिया उत्तराचल से ही निकलती हैं किन्तु

---

59 तदैव, ।
60 तदैव, पृ0 13 ।
61 तदैव ।

पृथक राज्य आन्दोलन– पहचान का संकट : एक आलोचनात्मक मूल्यांकन

भाषायी आधार पर राज्यो के निर्माण के इतिहास मे झाकने पर स्पष्ट होता है कि केन्द्रीय सरकार ने राष्ट्रीय अखण्डता के नाम पर पृथक राज्य के निर्माण के सन्दर्भ मे बहुत ही अक्खडता के साथ अपनी असन्तुष्ट भावनाओ को प्रकट किया था, जबकि भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने 1920 मे नागपुर बैठक मे यह वादा किया था कि भाषाओ के आधार पर राज्यो का विस्तृत पुनर्गठन किया जायेगा। जैसा कि ज्ञात है कि भाषायी राज्य आन्ध्र प्रदेश जो स्वतन्त्रता के बाद जनता के अत्यधिक दबाव के बावजूद भाषायी आधार पर अस्वीकृत कर दिया गया था (वैसे उडीसा पहला राज्य था जो 1912 मे बिहार से अलग किया गया), को व्यापक हिसा के बाद जिसमे बहुत सारे लोगो को, श्री रामुलु की आमरण अनशन मे मृत्यु के पश्चात् जीवन, गवाना पडा, को 1953 मे बहुभाषी राज्य से अलग किया गया। जबकि स्वतन्त्रता के बाद गठित धर आयोग तथा जे वी पी समिति दोनो ने ही भाषायी आधार पर लोक–दबाव के बावजूद राज्यो के निर्माण को अस्वीकृत कर दिया था।

भाषायी अभिजनो के हर तरीके के धर्मोपदेश को राष्ट्रीय नेतृत्व ने क्षेत्रीय अखण्डता के नाम पर नकार दिया क्योकि उनके विचार मे जिन राज्यो का भाषायी आधार पर सीमाकन किया जायेगा उनमे भाषायी देशभक्ति की भावना मजबूती से जडे जमा लेगी। आन्ध्रा के मामले मे यह मसला इस लिये रूक गया कि भा क पा ने मद्रास क्षेत्र के उत्तर तटीय जिलो मे आन्दोलन शुरू कर दिया जिसने बाद मे तीव्र गति पकड ली जिसे रोक पाना सम्भव नही था। यहाँ पर तेलगू भाषाइयो ने एक सघर्ष छेड दिया कि विशाल आन्ध्र का निर्माण किया जाय जो 1956 मे हैदराबाद स्टेट को समाप्त करने के बाद शान्त हो गया। राज्य पुनर्गठन आयोग जिसके सुझावो के आधार पर 1956 मे भारी मात्रा मे पुनर्गठन का कार्य किया गया, उन्होने बहुत बेमन से बहुत सारे भाषायी राज्यो को उसके क्षेत्राधिकार से बाहर रखा, जिनमे मुख्य महाराष्ट्र, गुजरात तथा पजाब थे। इन राज्यो का निर्माण अगले दस वर्षो मे या उसके बाद केवल उस समय हुआ जब काग्रेस ने भारी मात्रा मे इन वर्षो मे अपना लोक समर्थन वहॉ खो दिया।

यदि कोई गभीर रूप से भाषाई देशभक्ति अथवा क्षेत्रीयता के मुद्दे का परीक्षण करे तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि इन लोगो का भय इस मान्यता पर आधारित है कि भारी मात्रा मे किया गया कोई परिवर्तन भारतीय राज्यो के लिये सकट अवश्य उत्पन्न करेगा। 1920 का प्रयास जिसके द्वारा भाषावाद को भारतीय राजनीति मे जोडा गया का लक्ष्य मुख्य रूप से तथा परिणामस्वरूप राजनीति को प्रतिक्रियावादी बनाना था। जो कि, बावजूद इसके कि मिश्रित प्रयास किये गये, यह केवल कट्टरपथी लोगो के बीच मे ही सीमित रहा। अन्तर यह है कि इसी प्रकार की रणनीति आजादी के बाद के दिनो मे कुछ अपरिहार्य कारणोवश खतरनाक तथा असुविधाजनक हो गयी। 1920 तथा 30 के दशक मे भाषावाद या भाषाई क्षेत्रवाद, जिसमे ज्यादा से ज्यादा लोगो ने राष्ट्रीय आन्दोलन मे एक उपकरण के रूप मे कार्य किया वही अचानक 50वे तथा 60वे दशक मे 'राष्ट्रीय एकता की बाधा' बन

सुसगठित एव व्यवस्थित प्रबन्धन की कमी के कारण ये नदिया स्थानीय लोगो के लिये अनुपयोगी ही बनी हुयी है और सुदूरवर्ती गावो मे आज भी महिलाओ को 5–10 कि0मी0 पैदल चलकर पानी की व्यवस्था करनी पडती है। इससे बडा दुर्भाग्य क्या हो सकता है कि छलछलाती नदियो के बाद भी यहॉ के लोग अपनी प्यास नही बुझा पाते है ? अत जब तक लोगो की समस्याओ का समाधान नही हो जाता तब तक उत्तराचल के आत्मनिर्भर और समृद्ध होने के दावे मात्र कागजी घोडे दौडाने के समान है।

उत्तराचल राज्य आर्थिक रूप से कृषि वन और औद्योगिकी के ऊपर पूरी तरह से निर्भर है। इसकी अर्थव्यवस्था को सुदृढ करने के लिये सरकार विशिष्ट क्षेत्रो का चयन करके वहा आगामी दस वर्षों की अवधि मे कृषि अवस्थापना व अन्य अवयवो मे होने वाले निवेश पर गौर करने के लिये उत्तराचल एग्रोविजन 2010 तैयार करा रही है। राज्य मे फलो और सब्जियो के विपणन की समस्या से निपटने के लिये मदर डेयरी फ्रूट एण्ड वेजीटेबिल प्रोजेक्ट के माध्यम से गाव मे बैठे लोगो को बाजार उपलब्ध कराने की व्यवस्था की जा रही है। लेकिन सरकार कुछ भी कहे मूल समस्या ससाधनो की और स्थानीय आवश्यकताओ के अनुरूप उनके उचित दोहन हेतु तृणमूल स्तर पर अपनी विकास योजनाओ के निर्माण, सचालन एव मूल्याकन के लिये अधिकारो को सौपने की है। क्योकि विशेषज्ञो द्वारा बन्द कमरो मे निर्मित स्थानीय विकास योजनाओ मे जन सामान्य की भागीदारी सुनिश्चित नही हो सकती।

अतएव, विकास के मूलभूत सामाजिक मानको से वचित उत्तराखण्ड की जनता की जन–आकाक्षाओ की पूर्ति एव सुदृढ सामाजिक विकास की नीव सुनिश्चित करने के लिये राज्य मे लोकभागीदारी युक्त विकेन्द्रीकृत विकास प्रक्रिया का शुभारम्भ किये जाने की आवश्यकता है। प्राकृतिक सम्पदा की प्रचुरता के साथ पूर्ण शिक्षित मानवीय ससाधन, आत्म–अनुशासित, कर्मशील एव शिक्षित महिला श्रम शक्ति और समृद्ध सास्कृतिक एव सामाजिक विरासत राज्य मे जनसहभागी विकास प्रक्रिया को आगे बढाने मे निर्णायक भूमिका अदा कर सकते है। पर्वतीय समाज सामुदायिक जीवन जीने का आदी और अपने प्राकृतिक पर्यावरण के प्रति सदैव सहिष्णु रहा है। सामाजिक संद्भाव एव कठिन शारीरिक श्रम स्थानीय समुदाय की मूलभूत प्रकृति रही है। भारत के अन्य राज्यो की तुलना मे यहॉ धनी–निर्धन, बडे भूपति–भूमि विहीन, धार्मिक एव जातीय ऊँच–नीच जैसी सामाजिक विषमताए कम है। पारम्परिक ग्राम पचायतो, वन पचायतो एव अन्य सामुदायिक समूहो ने विकास कार्यों तथा सामाजिक न्याय सुलभ कराने मे ऐतिहासिक रूप से महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। नये राज्य मे दूर–दूर तक बिखरे छोटी–छोटी औसत जनसख्या वाले एकीकृत गॉव समूह सवैधानिक अनुज्ञा के अनुरूप त्रिस्तरीय पचायतीराज व्यवस्था के निर्माण हेतु आदर्श स्वरूप प्रदान करते है। ऐसे समरस तथा सुसगठित ग्रामीण तथा शहरी परिवेश मे गठित स्थानीय सरकारो से तुलनात्मक रूप से और अधिक कार्यकुशलता से कार्य करने की अपेक्षा की जा सकती है।[62]

अनुकुल सामाजिक, सास्कृतिक एव भौगोलिक स्थितियो से लाभ उठाते हुए प्रान्तीय सरकार को वास्तविक सत्ता के हस्तान्तरण से स्थानीय स्वशासी सरकारो का गठन कर विकास प्रक्रिया को

62 भट्ट, के0एन0 (2003), "केरल मे सशक्तिकृत स्थानीय निकाय क्या कुछ सीख सकता है उत्तराखण्ड" अप्रकाशित, गोविन्द बल्लभपन्त सामाजिक विज्ञान सस्थान, झूसी, इलाहाबाद

तृणमूल स्तर से शीघ्रातिशीघ्र प्रारम्भ कर देना चाहिए। लेकिन ऐसा करने से पूर्व राज्य सरकार को वर्तमान व्यवस्था मे क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने होगे। राज्य की विधायिका को सर्वप्रथम नया उत्तराचल राज्य पचायत अधिनियम पारित करना होगा। इस अधिनियम मे प्रान्तीय तथा त्रिस्तरीय उप–प्रान्तीय सरकारो के मध्य समस्त राजनैतिक एव आर्थिक सत्ता का वैसे ही विधि सम्मत विभाजन करना होगा जैसा सुस्पष्ट विषय विभाजन केन्द्र एव राज्यो के मध्य है। केरल के पचायत अधिनियम से नया राज्य सीख लेकर अपनी सामाजिक वास्तविकताओ के अनुरूप व्यवस्था अपना सकता है। सत्ता के व्यापक हस्तान्तरण के साथ ही तृणमूल स्तर के नियोजन मे प्रत्येक नागरिक की कार्यक्षमता मे वृद्धि हेतु एक व्यापक 'लोक नियोजन अभियान' प्रारम्भ करना होगा। योजना निर्माण के प्रत्येक तकनीकी पहलू यथा स्थानीय आवश्यकताओ का ऑकलन, वित्तीय लागत, परियोजना प्रबन्धन, कार्यान्वयन एव मूल्याकन जैसी विधाओ मे लोगो को सक्षम बनाना होगा। पचायतीतत्र की तुलना मे ग्राम सभाओ को अधिक व्यापक अधिकारो से शक्ति सम्पन्न कर आम–व्यक्ति के सूचना के अधिकार को सुनिश्चित करना होगा। ये कार्य भी उतने ही महत्वपूर्ण है जितना सत्ता का निचले स्तर पर हस्तान्तरण। तभी प्रत्येक स्थानीय व्यक्ति को अपने विकास का अधिकार प्राप्त हो सकेगा और इसी से वह अपने कर्तव्यो के समुचित निर्वाह मे सक्षम हो पायेगा।

निचले स्तर पर राजनीतिक सत्ता की भागीदारी सुनिश्चित करने के साथ ही उत्तराचल की ससाधनिक क्षमताओ को विकसित और दोहन करने के लिये, तात्कालिक आय की आशा किये बिना योजनाओ पर आवश्यक पूजी निवेश कर आधारभूत ढॉचे के निर्माण के लिये एक समयवद्ध दीर्घकालिक नियोजन नीति बनाये जाने की आवश्यकता है। तभी एक निश्चित समयावधि के पश्चात् ये ससाधन उत्तराचल की आय के मजबूत एव स्थायी आर्थिक स्रोत बन सकेगे। इसके लिये उत्तराचल की भूगोलजनित सरचना और उसमे उपलब्ध ससाधनो को दृष्टि मे रखते हुये आर्थिक नियोजन की सर्वथा नयी नीति बनानी होगी। इस आर्थिक नियोजन नीति की दिशा क्या होनी चाहिये और उत्तराचल के विकास का प्रारूप कैसा होना चाहिये इसे सक्षेप मे प्रस्तुत किया जा रहा है–

1. प्राकृतिक संसाधनों का आधार

(क) जल संसाधनों (बिजली, सिंचाई, पेयजल) का विकास और दोहन

उत्तराचल के पास जल ससाधन का क्षेत्र सर्वाधिक सम्भावनाशील आधार के रूप मे मौजूद हैं। प्राप्त जानकारी के अनुसार लगभग 22,000 मिलियन क्यूबिक मीटर से अधिक जल प्रति वर्ष उत्तराचल मे प्रवाहित होता है।[63] यदि इस ससाधनिक आधार को योजनाबद्ध रूप से विकसित किया जाय तो यह उत्तराचल का मुख्य आर्थिक स्रोत बन सकता है। विभिन्न अनुमानो के अनुसार यहा कम से कम 10,000 मेगावाट विद्युत उत्पादन की क्षमता पहचानी गयी है जबकि इस समय लगभग 1030 मेगावाट विद्युत का ही उत्पादन हो रहा है जिसमे उत्तराचल की कुल खपत 450 मेगावाट है।[64] इस प्रकार शेष विद्युत बेचकर राज्य अच्छी आय प्राप्त कर सकता है।

इसके लिये पारिस्थितिकी तन्त्र पर कोई दुष्प्रभाव न डालने वाली 'रन ऑव द रिवर सिस्टम'

63 विस्तार के लिये देखे इसी शोध ग्रन्थ के पृ0 135 पर।
64 सिह, डॉ0 दिलीप (दिसम्बर 2001) *कुरुक्षेत्र*, नई दिल्ली, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, पृ0 14 ।

पर आधारित व छोटी–छोटी पनबिजली योजनाओ की श्रृखलाये तैयार की जाय और इन्ही योजनाओ के माध्यम से छोटे–छोटे नदी–नालो मे भी पानी के बहाव को नियन्त्रित किया जाय और लघु सिचाई नहरो का निर्माण किया जाय। साथ ही इन परियोजनाओ से प्राप्त बिजली से ही सिचाई व पेयजल आपूर्ति के लिये पानी को आवश्यकतानुसार ऊचे इलाको मे चढाया जाय। यह तरीका बडी नदी धाराओ मे भी लागू किया जाय तथा एक ही अति विशाल बाध परियोजना के स्थान पर पर्यावरणीय व भूगर्भीय दृष्टि से सुरक्षित, आबादी रहित और कृषि भूमि रहित क्षेत्रो मे छोटे–छोटे बाधो की श्रृखला तैयार कर जल नियोजन किया जाय तथा इन श्रृखलाओ से ही आवश्यकतानुसार पानी मुक्त कर सिचाई के लिये मैदानी क्षेत्रो को जलापूर्ति की जाय। लघु पनबिजली परियोजना क्षेत्र की ऊर्जा आपूर्ति के पश्चात् शेष बिजली के उपयोग एव पुनर्वितरण के लिये राज्य ग्रिड का निर्माण किया जाय तथा राज्य ग्रिड से अधिक ऊर्जा आवश्यकता वाले क्षेत्र जैसे मध्यम एव बडे उद्योगो और उन क्षेत्रो, जिनमे पनबिजली परियोजनाये न पडे, को बिजली आपूर्ति करनी होगी। इसके बाद ही शेष बिजली को अन्य ग्रिडो को निर्यात किया जाये। इस तरह जहॉ एक ओर क्षेत्र के सभी गावो को पेयजल सुविधा दे पायेगे और कृषि भूमि को सिचित कर पायेगे वही देश के लिये भी ऊर्जा आपूर्ति की जा सकेगी।

इस क्षेत्र से उत्तराचल मे रोजगार सृजन की सबसे अधिक सम्भावनाये है और इस ससाधन का विकास क्षेत्र की कम से कम 8 से 10 प्रतिशत जनसख्या को सीधे–सीधे रोजगार उपलब्ध कराने मे सक्षम होगा। उत्तराचल के जल ससाधनो का दोहन सक्षेप मे, निम्न रूपो मे किया जा सकता है –

(i) बडी, मध्यम, लघु तथा सूक्ष्म पनबिजली परियोजनाये बनाकर ,
(ii) प्रमुख नदियो के उद्गम पर मिनरल वाटर प्लाटो की स्थापना ,
(iii) ठण्डे पानी की मछलियो के पालन की व्यापक कार्ययोजना बनाकर। इसके लिये यूरोपीय देशो से मत्स्य बीज आयात किया जाना चाहिये।
(iv) जल पर्यटन का विकास (पर्यटन के अन्तर्गत अलग से)

उत्तराचल के जल ससाधनो पर आधारित योजनाओ से प्राप्त होने वाली कुल वार्षिक आय का अनुमान लगा पाना भी कठिन है परन्तु यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि जल ससाधनो से उत्तराचल को सर्वाधिक आय प्राप्त होगी।

(ख) वन ससाधनो का दोहन और विकास

वन हिमालयी समाज के आचलिक, सास्कृतिक व आर्थिक जीवन का हिस्सा रहे है, इसलिये वनो की स्थिति मे क्रान्तिकारी सुधार नितान्त जरूरी है। साथ ही वन नीति और वन नियन्त्रण मे व्यापक परिवर्तन की आवश्यकता है। यह कार्य वन पचायतो को और अधिक लोकतान्त्रिक, अधिकार सम्पन्न बनाने और वनो के विकास के प्रति जनता को और अधिक प्रतिबद्ध करने से सम्भव होगा। इसके साथ ही यह सुनिश्चित किया जाना चाहिये कि भौगोलिक परिस्थितियो के अनुसार वैज्ञानिक वन तकनीक का विकास किया जाय। साथ ही विरल वनो को सघन बनाये जाने हेतु सघनीकरण कार्यक्रमो मे जनता की भागीदारी बढाते हुये जनादोलन के रूप मे विकसित किया जाय। पारिस्थितिकीय सरचना के अनुसार वृक्ष प्रजातियो का निर्धारण किया जाना चाहिये। जहॉ एक ओर बाज, बुरास, काफल, देवदार, रीठा, बास, अखरोट, दालचीनी, शीशम, खैर, साल, तुन, उतीस, विलो आदि को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये, वही दूसरी ओर यूकेलिप्टस, चीड और पॉपुलर जैसी

प्रजातियो को हतोत्साहित किया जाना चाहिये। इसके साथ ही यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिये कि हिमालयी वनो के साथ जुडी बहुमूल्य जडी–बूटियो के सरक्षण, वैज्ञानिक दोहन और इन्ही वनो से पुन उत्पादन पर कोई विपरीत प्रभाव न पडने पाये।

उत्तराचल मे इस समय 35,01,285 हेक्टेयर वन क्षेत्र है जो उत्तराचल की आय का मुख्य स्रोत भी हैं। परन्तु वन सम्पदा पर पर्याप्त पूजी निवेश की आवश्यकता है। यह नये इमारती लकडी के वन लगाने के साथ ही जडी–बूटियो के योजनाबद्ध उत्पादन कार्य पर लगाने के लिये अपेक्षित है। यदि उत्तराचल मे वन–व्यवसाय को उद्योग की तर्ज पर विकसित किया जाय तो उत्तराचल मे वनो से पूर्ण व्यवसाय रोजगार सृजन की सम्भावना है। वनो पर आधारित यह उद्योग निम्न दो रूपो में विकसित किया जाना चाहिये

(1) बडे स्तर के उद्योग जो सीधे–सीधे वन ससाधनो के आधार पर चल सकते है यथा– कागज व लुग्दी उद्योग, लीसा पर आधारित उद्योग, लकडी पर आधारित उद्योग, खेल सामाग्री बनाने का उद्योग, जडी–बूटी आधारित औषधि निर्माण उद्योग, धूपबत्ती–अगरबत्ती उद्योग, दियासलाई उद्योग। या

(11) फिर ग्राम स्तर पर जिनमे वनोत्पादन यथा–जडी बूटियो का सग्रहण, जिसे बडे उद्योगो के लिये कच्चे माल के सग्रहण के रूप मे स्थापित और सचालित किया जाये। इसके अन्तर्गत बास, रियाल व बेत पर आधारित चटाई, टोकरी एव हस्तशिल्प आधारित अन्य उपयोगी वस्तुये बनाने का उद्योग विकसित किया जाना चाहिये।

इन्हे यदि ऊपर दिये गये सुझावो के अनुरूप विकसित किया जाय तथा व्यावसायिक प्रजातियो की सघनता बढाने के साथ वन उत्पादो के व्यवसाय को माफिया तन्त्र व भ्रष्ट नौकरशाहो के चगुल से मुक्त करा वनो पर आधारित उद्योग पर्वतो मे ही स्थापित किये जाय तो क्षेत्र की गरीबी–बेकारी को दूर कर इस क्षेत्र को समृद्ध व सम्पन्न बनाया जा सकता है।

(ग) सौर तथा पवन ऊर्जा की उपलब्धता का दोहन

उत्तराचल मे पवन तथा सौर ऊर्जा की उपलब्धता को लेकर यदि एक व्यापक कार्ययोजना बनायी जाय और इन दोनो प्राकृतिक उपलब्धताओ को वैज्ञानिक रीति से दोहन किया जाय तो इन दोनो ससाधनो से उत्तराचल को इतनी विद्युत आपूर्ति हो सकती है कि इससे सम्पूर्ण उत्तराचल को रोशनी पहुचायी जा सकती है तथा जल ससाधनो से उत्पन्न विद्युत ऊर्जा को बेचा जा सकता है। इस प्रकार इसे आय के अतिरिक्त स्रोत के रूप मे विकसित किया जा सकता है। लेकिन इस पर भी पर्याप्त पूजी निवेश की आवश्यकता होगी।

2. भौगोलिक संरचना का आधार (पर्यटन का विकास)

उत्तराचल मे जल ससाधन के बाद पर्यटन महत्वपूर्ण दूसरा आधार बन सकता है। अत पर्यटन के लिये व्यापक नीति बनाकर साथ ही पर्यटन का आधारभूत ढाचा विकसित कर इसे आय का एक मजबूत और नियमित स्रोत बनाया जा सकता है। पर्यटन क्षेत्र मे जल ससाधन से अधिक रोजगार सृजन के साथ ही उस पर आधारित रोजगार के क्षेत्रो के विकसित करने की व्यापक सम्भावनाये हैं। इसके लिये उत्तराचल मे पर्यटन परिवहन निगम को स्थापित किये जाने और उत्तराचल मे वादुदूत सेवा का एक नेटवर्क स्थापित किये जाने की जरूरत भी है। उत्तराचल मे पर्यटन को निम्न दो भागो मे विभाजित कर विकसित करना होगा–

(क) घुमक्कडी, मनोरजन तथा साहसी पर्यटन रूपो का विकास जिसमे पर्वतारोहण, ट्रेकिग, रॉक, क्लाइम्बिग, स्कीइग, समर स्कीइग, रिवर राफ्टिग आदि है, की जितनी सम्भावनाये उत्तराचल मे है,

शायद ही देश के किसी अन्य भाग मे हो। गगोत्तरी घाटी मे रॉक क्लाइबिग, पिथौरागढ मे ट्रैकिग, नैनीताल, कौसानी, रानीखेत, शीतलाखेत, मसूरी, पौडी मे घुमक्कडी एव आरामतलबी का पर्यटन और औली, दयारा, आली वैदनी मे विटर स्कीइग की जबरदस्त सम्भावनाये है। औली मे आई टी बी पी के प्रयास से विटर स्कीइग की जो शुरूआत हुयी वह धीरे–धीरे फलने फूलने लगी है। जिसकी शुरूआत अन्य जगहो पर भी हो सकती है। औली मे स्कीइग शुरू करने के लिये 'इन्नर लाइन' को आगे खिसकाना पडा था। हरकीदून और बदरपुछ मे समर स्कीइग के लिये भी ऐसा ही करना पडेगा। प्रसिद्ध स्कीइग विशेषज्ञ जी0टी0 गिब्सन का कहना है कि समर स्कीइग के लिये इससे बढिया जगह दुनिया भर मे नही है। गढवाल और कुमाऊ मण्डल दोनो की ही प्राकृतिक सुषमा का कोई जवाब नही है।[65]

(ख) धार्मिक पर्यटन को आय के महत्वपूर्ण साधन के रूप मे विकसित करने के लिये अलग योजना बनाना अपेक्षित है। क्योकि बद्रीनाथ, केदारनाथ, गगोत्री, यमुनोत्री, जैसे पवित्र स्थल जहॉ प्रतिवर्ष लाखो तीर्थयात्री आते है का प्रबन्ध तन्त्र बहुत ही निराशाजनक है। इसके लिये वैष्णो देवी मे तीर्थयात्रा के प्रबन्धन और पर्यटको को मिलने वाली सुविधाओ को माडल बनाकर सुख–सुविधाये विकसित की जानी चाहिये। उत्तराचल मे कम से कम 50 महत्वपूर्ण धार्मिक तीर्थस्थल है जिनको विकसित कर अकेले इससे ही 50 करोड से ऊपर की वार्षिक आय प्राप्त की जा सकती है।

इसके लिये सडको मे सुधार और रख–रखाव तथा रज्जु मार्गों का निर्माण किया जाना और पर्यटको को उचित सुविधाये उपलब्ध कराना आवश्यक है। इसके अलावा उत्तराचल मे बहुआयामी पर्यटन विकसित करने के लिये पदयात्रा–ट्रैकिग को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये।

पदयात्रा ट्रैकिंग

जब से तीर्थ यात्रा पैदल के स्थान पर बसो, टैक्सियो या कारो से होने लगी है तब से यात्री दो तीन दिन मे ब्रदीनाथ के दर्शन कर लौट जाता है। पहले यात्री पूर्ण रूप से या आशिक रूप से पैदल चलते थे। मार्ग मे पडने वाले सभी स्थलो के लोग लाभान्वित होते थे। एक मास का समय लगता था। यात्री को भी प्राकृतिक सौन्दर्य का अधिक आनन्द प्राप्त होता था। वह पर्वतीय क्षेत्र मे अधिक धनराशि व्यय करता था। पदयात्रा के पर्यटन और तीर्थयात्रा को प्रोत्साहित किया जाय तो इसका प्रारम्भ फिर से हो सकता है। विशेषकर 1500मीटर से अधिक ऊचाई के क्षेत्रो मे युवा वर्ग ऐसी ही पदयात्रा ट्रैकिग का आनन्द लेना चाहेगा, बशर्ते मार्ग मे उन्हे ठहरने की सभी सुविधाये उपलब्ध हो। ऐसी पदयात्रा प्रोत्साहित होने से स्थानीय लोगो का व्यापार प्रगति करेगा। वे नये प्रकार के होटल उद्योग प्रारम्भ करने के लिये प्रोत्साहित होगे। पैदल मार्ग द्वारा यमुनोत्तरी से गगोत्तरी, गगोत्तरी से बूढा केदार–त्रियुगी नारायण होते हुये बद्रीनाथ और कैलाश मानसरोवर की पदयात्रा को फिर से विकसित किया जाना चाहिये। इन मार्गों से जाने से 3,000 से 4,000 मीटर की ऊचाई पर स्थित मनोहारी दृश्यो से भरपूर बुग्यालो–अल्पाइन पाश्चर से होकर जाने का सौभाग्य यात्री को प्राप्त होगा, और वह अत्यन्त रमणीक प्राकृतिक दृश्यो का अवलोकन कर सकेगा। साथ ही उसे साहसिक अभियान का भी अनुपम आनन्द प्राप्त होगा। इन पैदल मार्गों पर मार्गदर्शित (कडक्टेड एण्ड गाइडेड) यात्रा की भी व्यवस्था की जा सकती है।

इसके लिये पदयात्रा मार्गों, ट्रैकिग के रख–रखाव के लिये अच्छी व्यवस्था करनी होगी तथा प्रत्येक दस कि0मी0 की दूरी पर ठहरने की अच्छी व्यवस्था भी करनी होगी। इन कार्यो मे शासन को बहुत कम पूजी लगाकर इस क्षेत्र की आर्थिक प्रगति करने में सफलता मिल सकती है। उत्तराचल

65 धस्माना, राजेन्द्र (1994), *"पृथक राज्य हर समस्या का हल, हर सवाल का जवाब "*, नौटियाल, सुरेश सपा0, पूर्व उद्धत कृति, पृ0 88 ।

मे ऐतिहासिक, सास्कृतिक तथा धार्मिक महत्व के असख्य स्थल उपेक्षित पडे है, उनका भी जीर्णोद्धार हो जायेगा। लेकिन इस बात का अवश्य ध्यान रखा जाना चाहिये कि धार्मिक महत्व के स्थानो को धार्मिकता की भावना के अन्तर्गत ही विकसित किया जाना चाहिये जिससे इन धार्मिक स्थानो को विकसित करते समय उनका धार्मिक महत्व और प्राचीन सस्कृति नष्ट न हो।

उत्तराचल मे पर्यटन के विकास के लिये इन दिशा निर्देशो को ध्यान मे रखना जरूरी है

1 पुरातात्वीय महत्व के स्थानो तथा तीर्थ स्थानो की यात्रा के लिये सम्पूर्ण सुविधाओ का विकास।
2 हिमालय के एक क्षेत्र को दूसरे क्षेत्र से मिलाने वाली यात्रा सुविधाओ की व्यवस्था।
3 ग्लेशियरो की यात्रा करने की सुविधाये।
4 देशी पर्यटको के लिये यात्री निवासो, होटलो आदि की सस्ती व्यवस्था और अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटको के लिये ठहरने के उपयुक्त स्थानो की श्रृखला का विकास ।

3. परिवहन

उत्तराचल मे परिवहन और यातायात का मौजूदा स्वरूप कई प्रकार की असुविधाओ, आर्थिक दबाव, महगाई का कारक बन कर रह गया है। साथ ही भरपूर उद्योग की सम्भावना रखने वाले पर्यटन के विकास मे भी बाधक है। इसलिये प्राथमिक रूप से उत्तराचल की परिवहन और यातायात व्यवस्था को सरल व सुसगठित स्वरूप प्रदान करने के लिये शत–प्रतिशत सम्भावित क्षेत्रो टनकपुर–घाट–बागेश्वर, देहरादून–मालखेत (सुरकुडा सुरग)– उत्तरकाशी, ऋषिकेश–कर्ण प्रयाग–चमौली तथा रामनगर–भतरौजरवान–भिकियासैन–चौखुटिया रेल मार्ग का निर्माण करना होगा। रेल मत्रालय इसके सर्वेक्षण के लिये तैयार था किन्तु तब उत्तर प्रदेश सरकार सम्भाव्यता–सर्वेक्षण का व्यय भार उठाने के लिये तैयार नही हुयी, जो अब किया जाना चाहिये। रेल यातायात के विकास के कारण पर्वतीय परिस्थितियो के अनुरूप औद्योगिक विकास को प्रोत्साहन मिलेगा तथा पर्यटन को भी बढावा मिलेगा। पर्वतीय क्षेत्र मे जलशक्ति प्रचुरमात्रा मे है अत पर्वतीय रेल जल विद्युत से चलायी जा सकती है जिससे तेल और कोयले की भी बचत होगी। इसी प्रकार 'रोपवे' के विकास से दूरियो को कम किया जा सकता है तथा यात्रा को भी आकर्षक बनाया जा सकता है। इसके अलावा वर्तमान सडक परिवहन पर हावी अनावश्यक प्रशासनिक दबावो और व्याप्त भ्रष्टाचार को दूर करना होगा।

4. प्रकृति आधारित विकास का प्रारूप

उत्तराचल के समग्र और त्वरित आर्थिक विकास का लक्ष्य वहा की प्रकृति को आधार बनाकर ही प्राप्त किया जा सकता है। इस पर सबसे कम पूंजी निवेश होगा साथ ही सबसे अधिकतम् मानव शक्ति को इसमे भागीदार बनाया जा सकेगा और यह उत्तराचल मे रोजगार सृजन तथा पूरे क्षेत्र की आर्थिक और सामाजिक सुदृढता का सबसे अच्छा और सरल कार्यक्रम होगा। भौगोलिक सरचना के कारण उत्तराचल की प्रकृति बहुआयामी है और वहा विकास की प्राथमिकताये और सम्भावनाये सर्वथा भिन्न है। अत उत्तराचल के विकास का स्वरूप निम्न प्रकार प्रस्तावित है–

(क) सघन कृषि अभियान

वर्तमान अवैज्ञानिक, अनार्थिक, कृषि का रूपान्तरण किया जाना आवश्यक है। मौजूदा भूमि सम्बन्धो मे असन्तुलन को ठीक करना होगा, जिसके अन्तर्गत 70प्रतिशत छोटे कृषको के पास 25 प्रतिशत तथा 3 प्रतिशत बडे कृषको के पास 25 प्रतिशत भूमि है। 2,99,608 हेक्टेयर

ऊसर तथा 79,082 हेक्टेयर परती भूमि को कृषि योग्य बनाना होगा। आधारभूत सुविधाये जुटाने के साथ इस भूमि को भूमिहीनो, बेरोजगारो व स्वय काम करने के इच्छुक लोगो मे वितरित किया किया जाना चाहिये।

खेती के परम्परागत अवैज्ञानिक तौर–तरीको को आधुनिक वैज्ञानिक तकनीक मे रूपान्तरित करने की अत्यधिक आवश्यकता है। खेती के लिये प्रचलित कम उत्पादन देने वाली प्रजातियो के स्थान पर यहा की विशिष्ट पर्यावरणीय स्थितियो के अनुकूल अधिक उत्पादन देने वाली प्रजातियो का विकास करना होगा। अधिक उत्पादन देने वाली व लाभकारी फसलो, जैसे–राजमा, सोयाबीन, हल्दी, अदरक, आलू, तम्बाकू, चाय, मसाला प्रजातियो, जडी–बूटी आदि की खेती और बागवानी को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। इसके लिये व्यापक वैज्ञानिक सर्वेक्षण कर खाद्यान्न कृषि क्षेत्र, जडी–बूटी कृषि क्षेत्र, आलू मसाले आदि की खेती तथा सेब, सतरा, माल्टा व दूसरे पहाडी फलो और चाय की बागवानी के लिये क्षेत्रो की पहचान की जाय। मसलन, गरूड घाटी और पुरौला से नौगाव के बीच की कमल नदी की घाटी अन्नपूर्णा घाटिया है। यहा पर और तराई बेल्ट या सधि क्षेत्र, जो देश के उपजाऊ क्षेत्रो मे से एक है, मे सिचाई के आवश्यक साधन विकसित कर इसे जापानी पद्धति पर सघन कृषि आन्दोलन क्षेत्र के रूप मे विकसित किया जाय तो इस क्षेत्र मे न केवल उत्तराचल राज्य के लिये अपितु अन्य क्षेत्रो मे अनाज बेचने के लिये भी उत्पादन होगा। इसके अलावा हिमालय के सामने पडने वाली चार हजार फुट ऊची पहाडियो मे, जहॉ आद्रता न हो लेकिन आस–पास बारहमासा पानी के स्रोत हो, बढिया किस्म की चाय उगाई जा सकती है। अर्न्तराष्ट्रीय बाजारो मे इस चाय की कीमत सात–आठ हजार रूपये प्रति किलो है और पिछले कुछ वर्षों से यह चाय कनाडा और जापान ने भारत से खरीदी है। इसके लिये इन क्षेत्रो के कृषको को सम्बन्धित फसलो को आधुनिक तरीके से उगाने की तकनीक का प्रशिक्षण व दूसरी सुविधाये उपलब्ध की जानी चाहिये।

(ख) बागवानी एवं नकदी फसलों की बेल्टों का विकास

उत्तराचल की पर्वतीय कृषि भूमि की ऊपरी परत हर वर्षा ऋतु मे बहकर चली जाती है। इसलिये पर्वतीय क्षेत्रो मे पारम्परिक कृषि कार्य भूमि के लिये तो हानिकारक है ही, किसानो को भी कम आर्थिक लाभ देती है। यदि ऑकलन किया जाय तो उत्तराचल का कृषक जितना श्रम करता है उस अनुपात मे उसे फल प्राप्त नही होता। इसलिये पर्वतीय क्षेत्रो मे जहा सघन कृषि आन्दोलन नही चलाया जा सकता वहा नकदी फसले, फलो एव तिलहन बेल्टो का विकास कर 'कैश क्राप्स कृषि अभियान' आरम्भ किया जा सकता है और इनमे नकदी फसलो जैसे–सोयाबीन, सूरजमुखी, तम्बाकू, पपीता आदि उगाये जा सकते है। यहा की भू स्थिति को देखते हुये यहा पारम्परिक कृषि को हतोत्साहित किया जाना चाहिये और फलोद्यान पट्टिया स्थापित और विकसित की जानी चाहिये तथा प्रारम्भिक पाच वर्षों मे कम से कम 1,000 फल पट्टी क्षेत्र स्थापित करने का लक्ष्य रखा जाना चाहिये। 'कैश क्राप्स' तथा फलो का उत्पादन पारम्परिक कृषि के मुकाबले 5 गुना से भी अधिक लाभकारी है। इसके लिये उत्तराचल के बाहर से बागवानी विशेषज्ञो को आमत्रित किया जाना चाहिये क्योकि उत्तराचल के उद्यान विभाग का ज्ञान, तकनीक तथा उपलब्ध पौध घटिया है। इससे आरम्भिक पाच–सात वर्षो मे ही आय प्राप्त की जा सकती है तथा भविष्य मे जनता आर्थिक रूप से समृद्ध हो सकती है। इससे भी उत्तराचल की सकल आय मे वृद्धि होगी।

(ग) ग्राम केन्द्रित आर्थिक कार्यक्रम

उत्तराचल के समग्र विकास, जिसके केन्द्र मे गाव हो, के लक्ष्य को पाने के लिये एक स्वतन्त्र तथा पूर्ण ग्राम केन्द्रित आर्थिक कार्यक्रम बनाये जाने की आवश्यकता है। ग्राम केन्द्रित आर्थिक कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रो के ससाधनो का अधिकतम् दोहन और उपयोग करना है। इसके केन्द्र मे गाव की पहली इकाई अर्थात व्यक्ति होगा अर्थात गाव के व्यक्ति को गाव मे ही रोजगार उपलब्ध कराना ग्राम केन्द्रित कार्यक्रम का मुख्य लक्ष्य है। ग्राम केन्द्रित कार्यक्रम का लक्ष्य गाव को एक आत्मनिर्भर इकाई बनाना है। ग्राम्य–विकास के एक सुनिश्चित कार्यक्रम के साथ–साथ गाव मे कच्चे माल के उत्पादन तथा सग्रहण केन्द्र भी विकसित करने होगे जो अपना उत्पादन विभिन्न औद्योगिक केन्द्रो मे स्थित निर्माण इकाइयो को भेजेगे। ग्राम केन्द्रित आर्थिक कार्यक्रम के अन्तर्गत निम्नलिखित कार्यों को एक ढॉचे के अन्तर्गत लाकर विकसित किया जाना चाहिये (1) पशुपालन, (2) मशरूम उत्पादन, (3) लुग्दी निर्माण, (4) बकरी एव भेड पालन, (5) रेशम टसर और मधुमक्खी पालन[66], (6) लघु मत्स्य पालन परियोजनाये (नदी स्थित ग्राम क्षेत्रो मे) (7) कुक्कुट पालन, (8) ग्राम नियन्त्रित फलोद्यान, (9) स्थानीय कच्चे माल का सग्रहण कार्य एव (10) फल उत्पादन क्षेत्रो के निकट जूस, जैम, अचार बनाने के कुटीर उद्योग इत्यादि।

5. औद्योगिक विकास का प्रारूप

उत्तराचल क्षेत्र मे उद्योगो का समुचित विकास नही हुआ है। ऐसी मान्यता है कि यहा का पर्यावरण औद्योगिक विकास के लिये अनुकूल नही है। किन्तु यदि हम ऐसे ही पर्यावरण वाले स्विट्जरलैण्ड जैसे औद्योगिक दृष्टि से अत्यधिक विकसित देश का अनुकरण करे तो उत्तराचल का औद्योगिक विकास भी उसी स्तर का किया जा सकता है। इसके लिये किसी क्षेत्र विशेष के निषेध का प्रश्न खडा न किया जाकर ससाधनो की स्थानिक उपलब्धता को महत्व देना होगा। उत्तराचल मे उद्योगो का विकास निम्न तीन दृष्टियो के आधार पर किया जाना चाहिये।

(क) उत्तराचल मे जो खनिज तथा अन्य ससाधन उपलब्ध है उन पर आधारित उद्योग श्रृखला की यहा स्थापना की जा सकती है यथा–कागज उद्योग, टरपेटाइन उद्योग, औषधि उद्योग, प्लाईवुड उद्योग, फल कैनिग उद्योग, सीमेन्ट उद्योग तथा इनके अलावा यहॉ के ससाधनो पर आधारित व्यापक उद्योग श्रृखला जिसे व्यापक रूप से चिन्हित करने की आवश्यकता है।

(ख) उत्तराचल की जलवायु और पर्यावरण परिस्थितियॉ कुछ उद्योगो के बहुत ही अनुकूल है। ऐसे उद्योग प्राइवेट तथा पब्लिक दोनो ही सेक्टरो मे लगाये जाने चाहिये। इनमे लेस उद्योग, घडी उद्योग, रत्न कटिग एव घिसाई उद्योग तथा इलेक्ट्रानिक उद्योग के अलावा जलवायु और पर्यावरण के अनुकूल अन्य उद्योगो की श्रृखला जिसे व्यापक रूप से चिन्हित करने की जरूरत है।

(ग) तराई क्षेत्र का विकास उत्तराचल के औद्योगिक बेल्ट के रूप मे किया जाना चाहिये और वहा नोएडा की तर्ज पर भारी उद्योग लगाये जाने चाहिये। इन उद्योगो मे–

(i) ऐसे समस्त उद्योग जो उत्तराचल के ससाधनो पर आधारित हो,

(ii) ऐसे उद्योगो, जो उत्तराचल के ससाधनो मे प्रयुक्त की जाने वाली पूरक मशीनरी के निर्माण के लिये आवश्यक है, जैसे–पवन चक्की निर्माण, पावर हाउस सयन्त्रो का निर्माण, पर्यटन से

---

66 चीड के वनो के स्थान पर मिश्रित बाज वन लगाने से टसर कीट पालन व मधुमक्खी पालन आम आदमी का रोजगार बन सकता है। इसके लिये समुचित प्रशिक्षण व्यवस्था और वनो पर जनता के अधिकारों की गारन्टी करनी होगी साथ ही उत्पादित कच्चे माल की क्रय व्यवस्था पर आधारित उद्योगो की स्थापना सुनिश्चित की जानी चाहिये।

सम्बन्धित नावो तथा अन्य सामग्री का निर्माण, फल पैकिंग पेटियो का निर्माण आदि जिन्हे व्यापक रूप से चिन्हित किये जाने की जरूरत है।

इसके साथ ही उत्तराचल की इस प्रस्तावित औद्योगिक बेल्ट मे दस वर्षो मे कम से कम 2000 मध्यम तथा वृहत् औद्योगिक इकाइया स्थापित कराने के लिये आवश्यक आधारभूत ढाचे का निर्माण तथा सुविधाओ को उपलब्ध कराने का लक्ष्य घोषित किया जाना चाहिये।

अन्तत नवगठित उत्तराचल को कुशल प्रशासक और अनुभवी एव ईमानदार नेतृत्व की आवश्यकता है। ऐसा नेतृत्व जो उत्तराचल के सामाजिक–सास्कृतिक ससाधनो के समुचित उपयोग, सास्कृतिक नीति, शिक्षा, बेरोजगारी की समाप्ति, पलायन पर रोक, सामुदायिकता की भावना को मजबूत करने, राज्य सरकार की कुशलता बढाने, नौकरशाही को सवेदनशील बनाने और सार्वजनिक धन के सही उपयोग, समयबद्ध, सक्षम और कार्यक्रमो को कडाई से लागू करने की रणनीति तथा भ्रष्टाचार पर रोक लगाते हुये जन–प्रतिनिधियो की परिसम्पत्तियो का ब्योरा स्पष्ट करवाये। इसके साथ ही, ऐसी योजनाओ का निर्माण किया जाय कि पर्यावरण और विकास समान रूप से चलते रहे और पर्यावरण सरक्षण के लिये जन जागृति लाई जा सके। परम्परागत कृषि व्यवस्था को नई तकनीक से जोडा जाय। नकदी फसलो को प्रोत्साहित किया जाय। जनसख्या की वृद्धि पर नियन्त्रण लगाया जाय। पलायन की समस्या को रोकने के लिये रोजगार के साधन यही पर उपलब्ध करवाये जाये। वस्तुत आम आदमी तक विकास की किरण पहुच सके इसकी समुचित व्यवस्था की जानी चाहिये, तभी सामरिक और सीमान्त राज्य उत्तराचल विकास की मुख्यधारा से जुडकर जनता के सपनो का राज्य बन पायेगा। हमारे नीति–निर्माताओ व प्रशासको को यह बात नही भूलनी चाहिये कि इस क्षेत्र के पिछडेपन, अल्प विकास व सुविधाओ की कमी का परिणाम 1962 के भारत–चीन युद्ध मे राष्ट्र सैनिक पराजय के रूप मे भुगत चुका है। लेकिन यदि जनता की आशाओ के अनुरूप राज्य निर्माण के बाद भी बेरोजगारी, पलायन आदि समस्याओ की ओर ध्यान नही दिया गया और क्षेत्र मे अशाति रहती है तो यह राष्ट्र और राज्य दोनो के लिये हितकर नही होगा। अतएव पहाड के लोगो की पहाड सरीखी समस्याओ को दूर करने के लिये आवश्यक है कि 'विकास की गगा' को देहरादून से गगोत्री ले चला जाय, तभी स्थितियो मे बदलाव आएगा अन्यथा जो स्थितिया कल थी, वही आगे भी बनी रहेगी तथा नये राज्य बनने का कोई भी असर नही दिखाई देगा।

पृथक राज्य आन्दोलन– पहचान का संकट : एक आलोचनात्मक मूल्यांकन

भाषायी आधार पर राज्यो के निर्माण के इतिहास मे झाकने पर स्पष्ट होता है कि केन्द्रीय सरकार ने राष्ट्रीय अखण्डता के नाम पर पृथक राज्य के निर्माण के सन्दर्भ मे बहुत ही अक्खड़ता के साथ अपनी असन्तुष्ट भावनाओ को प्रकट किया था, जबकि भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने 1920 मे नागपुर बैठक मे यह वादा किया था कि भाषाओ के आधार पर राज्यो का विस्तृत पुनर्गठन किया जायेगा। जैसा कि ज्ञात है कि भाषायी राज्य आन्ध्र प्रदेश जो स्वतन्त्रता के बाद जनता के अत्यधिक दबाव के बावजूद भाषायी आधार पर अस्वीकृत कर दिया गया था (वैसे उडीसा पहला राज्य था जो 1912 मे बिहार से अलग किया गया), को व्यापक हिसा के बाद जिसमे बहुत सारे लोगो को, श्री रामुलु की आमरण अनशन मे मृत्यु के पश्चात् जीवन, गवाना पडा, को 1953 मे बहुभाषी राज्य से अलग किया गया। जबकि स्वतन्त्रता के बाद गठित धर आयोग तथा जे वी पी समिति दोनो ने ही भाषायी आधार पर लोक–दबाव के बावजूद राज्यो के निर्माण को अस्वीकृत कर दिया था।

भाषायी अभिजनो के हर तरीके के धर्मोपदेश को राष्ट्रीय नेतृत्व ने क्षेत्रीय अखण्डता के नाम पर नकार दिया क्योकि उनके विचार मे जिन राज्यो का भाषायी आधार पर सीमाकन किया जायेगा उनमे भाषायी देशभक्ति की भावना मजबूती से जडे जमा लेगी। आन्ध्रा के मामले मे यह मसला इस लिये रूक गया कि भा क पा ने मद्रास क्षेत्र के उत्तर तटीय जिलो मे आन्दोलन शुरू कर दिया जिसने बाद मे तीव्र गति पकड ली जिसे रोक पाना सम्भव नही था। यहॉ पर तेलगू भाषाइयो ने एक सघर्ष छेड दिया कि विशाल आन्ध्र का निर्माण किया जाय जो 1956 मे हैदराबाद स्टेट को समाप्त करने के बाद शान्त हो गया। राज्य पुनर्गठन आयोग जिसके सुझावो के आधार पर 1956 मे भारी मात्रा मे पुनर्गठन का कार्य किया गया, उन्होने बहुत बेमन से बहुत सारे भाषायी राज्यो को उसके क्षेत्राधिकार से बाहर रखा, जिनमे मुख्य महाराष्ट्र, गुजरात तथा पजाब थे। इन राज्यो का निर्माण अगले दस वर्षों मे या उसके बाद केवल उस समय हुआ जब काग्रेस ने भारी मात्रा मे इन वर्षों मे अपना लोक समर्थन वहॉ खो दिया।

यदि कोई गभीर रूप से भाषाई देशभक्ति अथवा क्षेत्रीयता के मुद्दे का परीक्षण करे तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि इन लोगो का भय इस मान्यता पर आधारित है कि भारी मात्रा मे किया गया कोई परिवर्तन भारतीय राज्यो के लिये सकट अवश्य उत्पन्न करेगा। 1920 का प्रयास जिसके द्वारा भाषावाद को भारतीय राजनीति मे जोडा गया का लक्ष्य मुख्य रूप से तथा परिणामस्वरूप राजनीति को प्रतिक्रियावादी बनाना था। जो कि, बावजूद इसके कि मिश्रित प्रयास किये गये, यह केवल कट्टरपथी लोगो के बीच मे ही सीमित रहा। अन्तर यह है कि इसी प्रकार की रणनीति आजादी के बाद के दिनो मे कुछ अपरिहार्य कारणोवश खतरनाक तथा असुविधाजनक हो गयी। 1920 तथा 30 के दशक मे भाषावाद या भाषाई क्षेत्रवाद, जिसमे ज्यादा से ज्यादा लोगो ने राष्ट्रीय आन्दोलन मे एक उपकरण के रूप मे कार्य किया वही अचानक 50वे तथा 60वे दशक मे 'राष्ट्रीय एकता की बाधा' बन

गया। फिर भी, किसी को भी दूसरी बहुत सारी कहावते भाषाओ के अलावा याद होगी जिसको दूसरे तथा तीसरे दशक मे प्रयोग किया गया था और जिसने भारी मात्रा मे लोगो मे गतिशीलता लाई थी। दूसरे प्रकार की गतिशीलता भारतीय राजनीति के धर्म निरपेक्षता के खाके मे सही नही थी। इस सम्बन्ध मे भाषा तुलनात्मक रूप से ज्यादा सही थी जिसकी अपील बहुधा लोगो ने बाद मे बौद्धिक आधार पर की।

केन्द्र ने आजादी के बाद के दशक मे जो तिरस्कारपूर्ण रवैय्या अपनाया उसने स्वाभाविक रूप से पुनर्गठन के मामलो को बेमन से किया गया बना दिया। शायद किसी भी मात्रा मे कोई ऐसा प्रयास आश्वासन वाला नही किया गया जिसमे राज्यो की भाषायी एकता को ध्यान मे रखा गया हो। यहॉ पर यह बात ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि केवल भाषा किसी बडे राज्य को छोटे राज्य मे नही बाटती है। उदाहरण के लिये–बहुत सारे छोटे–छोंटे कबीलाई राज्य जो आज भारत के उत्तर पूर्व क्षेत्र मे बिन्दु के रूप मे स्थित है का निर्माण जातीय आधार पर हुआ। इसी प्रकार उत्तर प्रदेश, बिहार तथा मध्य प्रदेश आदि राज्यो को मौजूदा भाषायी आधार पर कोई मान्यता नही मिली। यह बात कुछ ऐतिहासिक तथ्यो पर आधारित है कि कोई भाषाई सिद्धान्त जो किसी क्षेत्र मे काफी मात्रा मे पाया जाता है वो उनके सीमान्त जिलो मे मिली–जुली भाषाओ के होने के कारण एक–दूसरे पर चढने लगता है।

मौलिक रूप से भाषा एक ऐसा तत्व बन गया है जो राज्य की सीमाओ को न केवल विवेकपूर्ण बनाता है बल्कि दूसरे भाषायी समूहो को उन भाषाइयो के ऊपर दमन करने से भी रोकता है। उडिया भाषाइयो की बिहार तथा बगाल से पृथकता की माग तथा तेलगू भाषाइयो की मद्रास से पृथकता की माग इसी मुद्दे पर आधारित है। बगाली भाषाइयो तथा तमिल भाषाइयो के आर्थिक तथा सास्कृतिक प्रभुत्व ने इन दोनो क्षेत्रो के पृथकतावादियो को एक वास्तविक आधार दिया, जो प्रत्यक्ष रूप से इन राज्यो की क्षेत्रीय भाषा के मुद्दे से जुडी हुयी थी। यह भाषा ही थी जो कि एक प्रतीक बनी जिसने क्षेत्रीय भावना को एक सामूहिक रूप मे प्रकट किया।

तत्कालीन परिस्थितियो मे जब प्रजातन्त्र का विस्तार समाज के विभिन्न वर्गो मे हुआ (जो केवल शाब्दिक नही था), तब इस तरह की भावनाये केवल भाषायी परम्परावादियो तक ही सीमित नही रही, बल्कि इसमे बहुत सारी वो जनता भी शामिल हो गयी जो कि बहुत ही अल्पविकसित हिस्से थे, लेकिन इन्ही भाषायी राज्यो मे रहते है। ज्यादातार मामलो मे ये सभी अविकसित क्षेत्र जिनको अपनी भाषा का कोई साहित्यिक रूप नही पता था, उनको आन्दोलन को प्रभावशाली बनाने के लिये साधारण रूप से शामिल कर लिया गया ताकि भाषा आधारित जनसख्या का निर्माण राज्य बनाने के लिए किया जा सके। चूकि उनके खुद के परम्परावादी लोग सामाजिक तथा आर्थिक कल्याण की दृष्टि से पिछडे हुये थे और उनके राजनैतिक चेतना का स्तर कम था, इसलिये उनके पास कोई भी चुनाव नही बचा था सिवाय ईसके कि भाषा की प्रभुत्वशाली परम्पराओ के अधीन हो जाय।

इन दिनो मे एक बार फिर से यह प्रश्न उठाया गया है कि केवल राजनीतिक सीमाओ को देकर राज्य नही बनता है बल्कि एक विस्तृत पुनर्गठन होना चाहिये। वास्तव मे कुछ सालो के

अन्दर अपेक्षाकृत ज्यादा अविकसित क्षेत्रो मे यह अनुभव किया गया कि "विकासशील राज्यो का विकास हो रहा है", परिणामत ये आन्तरिक उपनिवेशवाद के स्पष्ट मामलो के रूप मे उभरकर सामने आये। इस प्रकार के कुछ मामले उत्तराचल, झारखण्ड या वनाचल, विदर्भ मराठवाडा, छत्तीसगढ तथा कोकण है।

ज्यादातर मामलो मे पुनर्गठन की माग का आधार भाषायी उतना नही था जितना कि आर्थिक। यहॉ तक कि मौलिक रूप से जो भाषायी आधार पर राज्यो की माग कर रहे थे, उस क्षेत्रवाद मे भी बाद वाला आधार (आर्थिक) अधिक था क्योकि विभिन्न बहुभाषायी समूहो के द्वारा एक भाषायी क्षेत्रो की अपेक्षा आर्थिक ससाधनो के वितरण मे हमेशा फर्क रखा गया। मौजूदा समय मे बहुत सारे ये 'उप क्षेत्र' सभी राज्यो के अन्दर है, जिनके पास एक क्षेत्र तथा जनसख्या का आकार है जिसके आधार पर प्रशासनिक तथा राजनैतिक पृथक्करण की माग की जा सकती है।

केवल उ0प्र0 और बिहार जैसे राज्य ही नही है जिनमे पुनर्गठन की आवश्यकता है तथा जिनके पुनर्गठन मे भाषायी आधारो को नजरादाज किया गया है। बल्कि, खुद ऐसे राज्य भी है जिन्हे भाषाय राज्य कहा जा सकता है जैसे—आन्ध्र प्रदेश तथा महाराष्ट्र आदि। हिन्दी भाषा—भाषी राज्य जैसे म0प्र0, उ0प्र0 तथा बिहार का दुबारा पुनर्गठन 'अर्न्तक्षेत्रीय' असन्तुलन को सावधानीपूर्वक ध्यान मे रखकर करना होगा। साथ ही साथ पूर्ण स्वरूप प्राप्त परम्परागत राज्य—बुन्देलखण्ड, रूहेलखण्ड, भोजपुर मालवा, आदि, जिनके पास व्यवहारिक लक्ष्य, स्पष्ट भाषा तथा पूर्ण विकसित साहित्यिक रूप है, बनाये जाने वाले राज्य है। ऐसे राज्यो का निर्माण इनकी परम्पराओ तथा अन्य विकास के लिये मार्ग प्रशस्त करेगा।

यदि भविष्य मे झाका जाय तो बहुत सारे मुद्दे सामने आयेगे जिनमे से कुछ को निम्नलिखित तरीके से जाना जा सकता है। सर्वप्रथम, भाषायी राज्यो के निर्माण की प्रक्रिया कुछ इस प्रकार की होनी चाहिये कि राज्य बनाने की माग को तुरन्त स्वीकार कर लिया जाय। यह वाछित नही होगा कि सघीय नीतियो के सदर्भ मे माग मे रखे गये सभी पक्षो का केवल अध्ययन किया जाय, बल्कि इनकी न्यायपूर्णता भी सघीय नीतियो के परिप्रेक्ष्य मे देखनी चाहिये। प्रशासनिक विभिन्नताये, भौगोलिक एकरूपता की समस्या, अल्पसख्यक भाषायी श्रेणियॉ जो छिपी हुई है की समस्या, नये राज्यो के बनने से होने वाली जटिलताये तथा विभिन्न रूपो मे जन्म लेने वाली नये अल्पसख्यक समूह के तथ्यो को भी ध्यान मे रखना चाहिये।

जो चीज बहुत ही महत्वपूर्ण है कि किसी भी तथ्य पर आधारित माग को तुरन्त अस्वीकृत करने की आवश्यकता नही है जैसा कि इन वर्षो मे किया गया है। बहुत कुछ पजाब के पुनर्गठन के अनुभव से सीखा जा सकता है, जिसमे केन्द्र से लम्बी तनातनी का परिणाम यह हुआ कि अकाली दल ने केद्र का रूप सिक्ख विरोधी तथा पजाब विरोधी चित्रित करके रख दिया। फिर भी जैसा कि झारखण्ड क्षेत्र के मामले मे महसूस किया गया बहुत ही दुखद था, जिसमे 18–25 जिलो को मिलाकर एक राज्य बनाने की काफी समय से चली आ रही माग का परिणाम लम्बे हिसात्मक सघर्ष के बाद ही प्राप्त हो सका। इसलिये उचित विकल्प तो यही होगा कि जहॉ पर एक लम्बे समय तक

हिसा तथा सघर्ष का आभाष हो तो उसमे राज्य का स्वरूप प्राप्त करने वाले मौजूदा गुणो का परीक्षण किया जाना चाहिये।

दूसरे स्थान पर, वे क्षेत्र अथवा उपक्षेत्र आते है जिनको पुनर्गठन की परिधि से परे रखा गया और जिनको भाषायी क्षेत्र के रूप मे कोई मान्यता नही प्रदान की गयी। बावजूद इसके ऐसे क्षेत्रो (बृज, भोजपुरी, मैथली, बुन्देलखण्डी तथा कबीलाई भाषायी क्षेत्र) मे भाषा–भाषाई शक्ति उनकी परम्पराओ के कारण दुगनी हो गयी। ऐसा नही है कि ये सभी क्षेत्र एक पृथक राजनीतिक इकाई के लिये तीव्र इच्छा नही रखते तथापि ये क्षेत्र पृथक राज्य के लिये अपने आपको सक्षम सिद्ध नही कर सके।

फिर भी जनतात्रिक प्रक्रिया का स्वरूप जो निम्न स्तर तक पहुँचकर अधिकार देता है, काफी सीमा तक परिवर्तित हो गया है। परम्पराओ पर आधारित समुदाय मूलरूप से आजकल वैसी ही शिकायते प्रस्तुत करते है जैसा कि भाषायी परम्परागत राज्यो ने भाषायी प्रभुत्वशाली समूहो के विरूद्ध बहुभाषा–भाषाई राज्यो मे की है। भाषाई ससाधनो के पुनर्वितरण तथा उनके आर्थिक विकास का तिरस्कार हमेशा एक उज्जवल कारण रहा है, जिसके आधार पर अलग भाषायी राज्य बने। झारखण्ड, उत्तराचल और छत्तीसगढ राज्य बनाये जाने के बाद आगामी वर्षो मे इन क्षेत्रो मे पृथक राजनैतिक इकाइयो– बुन्देलखण्ड, पूर्वांचल, मिथिलाचल, मालवाचल, भोजपुर, हरित प्रदेश आदि की माग बढने की सम्भावना है ताकि इन क्षेत्रो मे स्वतन्त्र राजनीतिक व्यवस्था स्थापित की जा सके। यदि इस तरह की माग बढती गयी तो इसकी तार्किक परिणति यह होगी कि पहले भाषायी पुनर्गठन (1956) के बाद एक और राज्य पुनर्गठन की माग बढ जायेगी।

तीसरी श्रेणी, दो अर्थो मे उन उप-क्षेत्रो के भाषाइयो को शामिल करती है जिनके पास न केवल अपनी एक भाषा ही है बल्कि वह दूसरी भाषाओ के समुदाय मे घुले मिले है जिन्होने 1950 मे एक भाषाई राज्य की माग की थी। ये उपक्षेत्र जैसे– विदर्भ, मराठवाडा (महाराष्ट्र), कोकण (बम्बई और गोवा के बीच के तटीय क्षेत्र), सौराष्ट्र, कच्छ (गुजरात) तथा तेलगाना (आन्ध्र प्रदेश) ने पर्याप्त विरोध अपने मुख्य सरक्षक राज्यो का किया। जिसका की बाह्य और आन्तरिक विरोध इन क्षेत्रो मे स्पष्ट रूप से अनुभव किया जा सकता है। अन्य शब्दो मे विशिष्ट विचार यह है कि यह कहानी इन क्षेत्रो मे तिरस्कार तथा आर्थिक शोषण की है जो कि विकास तथा अल्प विकास के नाम पर की जा रही है।

यह याद रखना महत्वपूर्ण होगा कि आर्थिक अल्प विकास इसके लिये पर्याप्त नही है। वास्तव मे कुछ मामलो मे यह व्यक्तिगत प्रतिष्ठा का विषय बन जाता है जिसमे राजनीतिक तथा प्रशासनिक स्वशासन के द्वारा ऐसे क्षेत्र अपनी प्रतिष्ठित सस्कृति तथा परम्पराओ की रक्षा करना चाहते हैं।

दूसरा बिन्दु जिसमे यहा जोर देने की आवश्यकता है, वो सभी क्षेत्र जो पृथक राज्य की माग करते है, आवश्यक नही है कि वह कमजोर केन्द्र का परिणाम है अथवा चाहते है। त्रासदी यह है कि उनमे बहुत इस पक्ष मे भी है कि केन्द्र का नियन्त्रण हो। वास्तव मे ये लोग विकास के लिये ज्यादा से ज्यादा सरक्षण की माग करते है। इनकी शिकायते वास्तव मे केन्द्र के खिलाफ नही है

बल्कि उस मौजूदा राज्य के प्रति है जिसके वो हिस्से है। केन्द्र वास्तव मे इन लोगो को ज्यादा बडा सरक्षक लगता है। इसलिये उत्तराखण्डी नेतृत्व ने प्रथमत इस बात का समर्थन किया कि उनके क्षेत्र को केन्द्र शासित बना दिया जाय, बाद मे तो वे लोग केवल घटनात्मक रूप से पूर्ण राज्य की कल्पना करने लगे।[1]

यहॉ तक कि वे राज्य जो वर्तमान मे है और आज स्वायत्तता की माग कर रहे है (कुछ अपवादो को छोडकर), एक कमजोर केन्द्र नही चाहते है बल्कि केन्द्र के प्रति अपने कुछ अधिकारो को भी विघटित करने को तैयार है। अन्य शब्दो मे, यह एक स्पष्ट सी माग है कि ईमानदारी का खेल हो जिससे योजना आयोग द्वारा दिये जाने वाले हिस्सो का सघटन एव राष्ट्रपति शासन को लागू करने के प्रावधानो का गलत प्रयोग न हो। यह केवल राजनैतिक अतिवादी प्रकार के लोग है जो सघवादी है (जिनमे से पजाब के कुछ अकाली है), और जो इस बात पर जोर देते है कि केन्द्र के पास केवल तीन–चार शक्तियॉ ही हो। फिर भी, ये लोग व्यापक रूप से रणनीति के द्वारा आम जनता मे गतिशीलता उत्पन्न करते है।

अकाली लोग जो कि प्रारम्भिक रूप से एक धार्मिक अल्पसख्यक है, वे चाहते है कि केन्द्र को सम्पूर्ण सघीय राज्य मे अल्पसख्यको के अधिकारो तथा उनकी सुख–सुविधाओ की रक्षा करनी चाहिये। हुकुम सिह तथा मौलाना हसरत मुहानी जो केन्द्रवाद के प्रति भारत की सविधान, सभा मे शत्रुतापूर्ण थे, ने इस बिन्दु पर यह मुद्दा उठाया कि पजाब के बाहर (हैदराबाद तथा आसाम आदि मे) जो गुरूद्वारे है उनकी रक्षा की जाय और लोगो को यह अधिकार होना चाहिये कि वे अपनी प्रारम्भिक शिक्षा अपनी मादरी जबान (उर्दू) मे, उस राज्य (जैसे उ0प्र0, म0प्र0 आदि) मे जहॉ पर यह बहुमत समुदाय के लोगो की भाषा नही है प्राप्त कर सकते है।

प्राय ऐसा होता है जैसा कि हुआ नही जिनके लिये उपमाओ का प्रयोग किया जा सकता है जैसे– 'पेडोरा के बाक्स खोलना' या 'कष्टो से भरा घोसाला बनाना' आदि प्रयोग किये गये थे, जब कभी राज्यो के पुनर्गठन की माग की गई। यह सच है कि किसी भी राज्य को यदि दो या तीन भागो मे बाटा जाता है तो वहॉ पर देश के किसी भी हिस्से मे जहॉ विभाजन हुआ है ऐसी भावनाये सगठित तथा सचालित होती है, जो कि आसानी से स्पष्ट नही किया जा सकता न केवल राजनीतिज्ञो बल्कि बुद्धिजीवियो के दिमाग मे भी ऐसा उत्पन्न करता है। अगर इस भय को महसूस करना है तो महत्वपूर्ण यह होगा कि इतिहास को आका जाय।

इसके पीछे लाभ यही है कि आसानी से समझा जा सकता है कि भाषायी क्षेत्रवाद गणतन्त्र की अविच्छिन्नता पर कोई दबाव नही डालता है। मौर्य, गुप्त तथा मुगल साम्राज्य का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि ये राज्य इतने ताकतवर केन्द्रीयकरण के कारण नही बल्कि उन नीतियो के कारण थे जिसमे राष्ट्रीय शक्तियो ने केन्द्रीयकरण के साथ–साथ समानता का प्रयोग किया था। पूर्ववर्ती साम्राज्य जो सामन्ती अथवा अर्द्ध–सामन्ती वातावरण मे पल्लवित हुये थे एक सीमा के बाद

---

1 डबराल, शिवप्रसाद (1995), *"जनता उत्तराखण्ड को केन्द्र शासित बनाने का विरोध न करे"*, दैनिक जागरण मार्च 24 एव कुमार, प्रदीप (1996), *"डिमाण्ड फॉर ए हिल स्टेशन इन यू पी न्यू रियल्टीज"*, मेनस्ट्रीम, जून 29 ।

उपयुक्त नही थे क्योकि 'शक्ति' तथा 'सत्ता' दोनो ही जनता के द्वारा प्रदर्शित नही होती थी बल्कि शासक वर्ग के हाथ मे थी। आज बडे अलकारिक भाषा मे कहॉ जाता है कि राष्ट्र की शक्ति का स्वरूप जनता है क्योकि एक जनतान्त्रिक व्यवस्था है। लेकिन काफी सीमा तक यह नेतृत्व पर निर्भर करता है जिसके ऊपर यह जिम्मेदारी है कि वह राजनीनिक मामलो मे आम जनता को सन्तुष्ट करे।

आर्थिक पिछडेपन तथा सामाजिक भेदभाव के मुद्दे को 'स्रोत की कमी' तथा 'कार्यान्वयन की समस्या' का तर्क देकर टाला जा सकता है। लेकिन विशुद्ध राजनीतिक निर्णय जिसमे कोई ज्यादा निवेश नही करना है को चुनाव तथा जन भावनाओ को ध्यान मे रखते हुए बहुत समय तक नही टाला जा सकता है। ऐसी परिस्थितियो मे राज्य के लिये लोगो के विरोध का दबाव एक सह–उत्पादन का रूप धारण कर लेता है। पजाब का मामला स्वाभाविक था जिसमे 1966 मे, पुनर्गठन मे देरी करने से अकाली लोगो को बल मिला कि वह लोगो से कह सकते थे कि केन्द्र पजाबी तथा सिक्ख लोगो के साथ खुलकर भेदभाव कर रहे है।

भारत के किसी भी राज्य मे विघटनकारी प्रवृत्तियो को भाषायी एकरूपता के आधार पर नही दर्शाया जा सकता है। वास्तव मे इस अभाव ने उस राज्य की पहचान के लिये सकट पैदा कर दिया है जैसे– आसाम मे बगाली, पजाब मे हिन्दी भाषा–भाषी तथा महाराष्ट्र मे दक्षिण भारतीय है।

सोवियत संघ के विघटन और तत्पश्चात् स्वतन्त्र सम्प्रभु राष्ट्रो के अस्तित्व की महत्वपूर्ण घटना को हम नजरान्दाज नही कर सकते। जिस समय यह घटना घटी तो बहुत सारा शोर–शराबा हुआ और भारतीय राज्यो की नीति की इससे तुलना की जाने लगी। कुछ बौद्धिक समूहो मे यह तर्क भी दिया गया कि सोवियत सघ के विघटन से भारत मे इस प्रकार की प्रवृत्तियो को प्रोत्साहन मिलेगा। क्योकि विघटनकारी प्रवृत्तियो को हमेशा एक प्रोत्साहन बल विश्व मे होने वाली घटनाओ से मिलता रहा है। लेकिन भारतीय मामलो को साधारण रूप से देखा जाय तो इसकी सोवियत सघ के मामले से तुलना नही की जा सकती है। क्योकि जारशाही साम्राज्य का विस्तार ताकत के आधार पर हुआ था और बलपूर्वक बहुत सारे क्षेत्रो को रूसी भू–भाग मे सम्मिलित कर लिया गया था। याल्टा सम्मेलन और 'लाल रक्षक' (रेड गार्डस) का राज्यो को सघ मे मिलाने का योगदान भी जारशाही की पुनरावृत्ति के रूप मे ही जाना जाता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि सोवियत सघ के विघटन का सबसे बडा कारण लोगो की प्रजातान्त्रिक भावनाओ तथा उनकी क्षेत्रीय तथा भाषायी पहचान को पूर्णत नकारना था। यद्यपि आर्थिक अभाव तथा गोर्ब्याचोब के राजनीतिक दर्शन 'पेरोस्त्राइका' तथा 'ग्लास्तनोत' ने भी राष्ट्र की इस विच्छिन्नता मे बडा योगदान दिया। यह केवल इत्तफाक ही है कि भारत के किसी भी राज्य (सिर्फ जम्मू कश्मीर को छोडकर) मे जनता ने सामान्यतया कभी विच्छिन्नता को समर्थन नही दिया और सत्य तो यह है कि देश के हर हिस्से मे जम्मू और कश्मीर के पृथक होने का खतरा एक चिन्ता का विषय बना हुआ है। जिस समय हम लोग भारतीय जनता की बात करते है तो बात केवल हिन्दी भाषी प्रभुत्व वाले क्षेत्रो की ही नही होती बल्कि उन राज्यो की भी होती है जो भाषाई मुद्दे के आधार पर केन्द्र से विरोध अथवा केन्द्र–राज्य सौदेबाजी करते है।

इसी तरह से जो सयुक्त राज्य अमेरिका के ज्यामितीय सीमाओ से प्रभावित है, वे एक ऐसे देश की जो विविधताओ से युक्त है की तुलना महाशक्ति की स्थिति वाले देश के समान समझने की भूल कर रहे है। भारतीय सघात्मक समाज की एक ऐसे समाज से तुलना करना जिसका अस्तित्व महज 500 साल पुराना हो और जो 200 साल या उससे अधिक समय से तीव्र गति से विकास तथा औद्योगीकरण के द्वारा मजबूती प्राप्त कर चुका हो, एक महान भूल होगी। क्या ऐसी तुलना तर्क पूर्ण होगी जिसमे एक कमजोर सा समाज हो दूसरी ओर सुदृढ समाज हो। हमारा समाज एक ऐसा समाज हे जिसकी हर परत स्पष्ट तथा पहचान करने योग्य है। सौभाग्य से भाषा या सस्कृति इकलौते बडे तत्व है जो वास्तव मे हमारे बहुलता वाले समाज को सघीय रूप प्रदान करते है। जाति तथा धर्म के ऊपर भाषा और सस्कृति अपने आधिक्य के द्वारा अकेले ही क्षेत्रीय सगठनो के विभेदो को नष्ट करती है। यहॉ पर सौभाग्य शब्द का प्रयोग इसलिये किया गया है कि भाषा तथा सस्कृति के बावजूद इसके कि इसमे एक नकारात्मक अतिवाद होता है, कम खतरनाक तथा बन्द धारणा है, जाति अथवा प्रजाति की पहचान की अपेक्षा।

कोई भी विघटनकारी प्रवृत्ति यदि शक्ति प्राप्त करती है तो तत्काल ही दूसरे राज्यो मे उसकी प्रतिक्रियावादी श्रृखला प्रारम्भ हो जाती है। लोगो को यह भय है कि अगर भारी मात्रा मे राज्यो का पुनर्गठन किया गया तो छोटे–छोटे 50–60 राज्य हो जायेगे। पर, छोटे राज्यो की ज्यादा सख्या वास्तव मे इस आश्वासन के रूप मे कार्य करेगी कि एक राज्य दूसरे राज्य के विरूद्ध प्रभुत्व नही जमा पायेगा। यह इस बात को भी सुनिश्चित कर देगा कि किसी भी राज्य के अन्दर यह मिथ्याभाव नही आयेगा कि उसका स्वतन्त्र अस्तित्व है जितने ज्यादा अन्तर आश्रित तथा प्रतिक्रिया पूर्ण प्रक्रिया छोटे राज्यो को जन्म देगी, उतना ही ज्यादा छोटे राज्यो को सम्मिलित भाषाओ की प्रतिक्रिया के बारे मे सोचना होगा।

यद्यपि राज्यो के पुनर्गठन के सम्बन्ध मे किसी भी प्रकार की वार्ता हम लोगो को यह विश्वास नही दिलाती कि पुनर्गठन क्षेत्रीय समस्याओ या तनावो के लिये एक मात्र सजीवनी है। पहचान का मुद्दा तथा एक शक्तिशाली समूह के द्वारा दूसरे समूह पर प्रभुत्व तब भी बने रहेगे, चाहे पुनर्गठन के लिये कितने भी दौर चला दिये जाय। उदा० के लिये छोटे से राज्य मेघालय मे भी जयन्ती, गारो तथा खासी के मध्य वास्तविक सघर्ष है। एक अन्य दूसरे छोटे राज्य मिजोरम मे मिजोरियो के ऊपर यह आरोप लगाया जाता है कि वह चकमस के ऊपर प्रभुत्व जमाये है। सिक्किम मे नेपाली भोटिया तथा लेप्चा की दया पर निर्भर है। मणिपुर मे कुकी तथा नागा के मध्य सघर्ष है। यहॉ तक कि नवनिर्वाचित राज्य झारखण्ड मे भी बहुत सारी जातियॉ राजनीतिक प्रभुत्व मे आ जायेगी जिनमे मुण्डा, सथाल, ओरॉव आदि है।

फिर भी यह सब कुछ हमको इस ओर नही ले जाता है कि हम नये राज्यो के निर्माण का विचार ही छोड दे। यह सच है कि प्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति की पृथक पहचान बनाने की भावनाओ का कोई अन्त नही है। लेकिन हम लोगो को यह नही भूलना चाहिये कि कोई एक भूमि या रेखा ऐसी नही खीची जा सकती जिसे स्थायी माना जाय। स्वाभाविक रूप से समय काल के परिवर्तन

के अनुसार यह बदलती रहती है। यह पूर्णत सम्भव है कि पृथकता के लिये छोटे राज्यो को काटना उन्हे पुन छोटे समूहो मे करना एक दिन ऐसा परिणाम दे जो सम्मिश्रण की ओर विपरीत प्रवृत्ति के रूप मे परिणति हो।

भाषाओ के आधार पर राज्यो की माग केवल छोटे राज्य की माग नही है और कम से कम आन्ध्र प्रदेश तथा महाराष्ट्र ने एक बहुत बडे क्षेत्र की माग की थी जो उनके जनक राज्यो से भी बडा था। इसी तरह का मामला मैसूर के साथ का भी था जिसमे बहुत सारे कन्नड भाषी क्षेत्र को राजवशीय राज्यो मे मिला दिया गया। वर्तमान प्रवृत्तियॉ यूरोपीय सघ मे सदियो के नफरत तथा पृथकतावाद के बाद विश्व राजनीति के परिप्रेक्ष्य मे उलटकर अधिक से अधिक यूरोपीय एकीकरण के रूप मे परिणति हो रही है। कोई भी सुझाव ऐसा नही है जो भविष्य के समाजो को अटूट बधन मे बाध सके। फिर भी, 20–30 वर्षों तक जो कदम वैध होता है उसका तीव्र गति से परिवर्तित होने वाले विश्व मे स्वागत ही किया जायेगा, वह भी वहॉ पर जहॉ सम्प्रभु राष्ट की अर्न्तराष्ट्रीय सीमा विखडित न हो रही हो।

सघीय सरकारो मे क्षेत्रीय विचारो का अध्ययन इस बात पर प्रकाश डालता है कि उसमे केन्द्र विरोधी सक्रियता पायी जाती है, जिसको एक लोक समर्पण के रूप मे 'भावनात्मक राष्ट्रीयता' कहा जाता है। इसलिये जो मामले उल्लिखित किये जाते है उन्हे क्षेत्रीय हितो को ध्यान मे रखते हुए क्षेत्रीय राष्ट्रवाद अथवा राष्ट्रवाद की मुख्य धारा मे देखना होगा। जैसा कि पूर्व मे चर्चा की गई है कि 50 वे व 60 वे दशक की भाषाई राज्यो की परिणति कमोवेश इस भाषाई/क्षेत्रीय राष्ट्रीयता का प्रदर्शन था। परिणामस्वरूप, इन सभी मामलो मे भाषा, सस्कृति, क्षेत्रीयता, धर्म तथा इतिहास आदि तत्व सबसे महत्वपूर्ण मुद्दे थे। जबकि, शायद ज्यादा दिखने वाली समस्याये जैसे–विकास को इसकी पृष्ठभूमि मे उछाला गया तथा गौण रूप से प्रदर्शित किया गया। ज्यादातर राज्य जो परिणामस्वरूप बने थे, या तो उनका केन्द्र शासित क्षेत्र का विस्तार करके स्वतन्त्र अस्तित्व दिया गया (जैसे–गोवा, मिजोरम तथा अरूणाचल प्रदेश) या भावनात्मक आधार पर उनका निर्माण किया गया (जैसे–मेघालय)। वास्तव मे उत्तर–पूर्व के ज्यादातर राज्यो का किसी भी मामले मे देखा जाय 'भाषा विरोधी' राज्यो का निर्माण किया गया, क्योकि गैर असमी भाषी जनसख्या जो वृहत आसाम के किसी भाग मे थी, वे "आसाम राजभाषा अधिनियम–1960 के द्वारा असमी भाषा तथा व्यवहारो को लोगो पर लादा जाय का विरोध कर रहे थे।

जब 80 व 90 वे के दशक मे दूसरे दौर की मागो की शुरूआत हुयी तो ये काफी बडी हो गयी। यद्यपि यह सभी तात्कालिक नही थी, वास्वत मे कुछ जैसे झारखण्ड का इतिहास अपेक्षाकृत अन्य भाषायी 50वे दशक की मागो से भी पुराना था एव इसमे भाषायी सस्कृतिवार पर जोर काफी सीमा तक गायब था। इन मागो मे से कुछ जैसे–विदर्भ, मराठवाडा, तेलगाना आदि भाषा विरोधी थे और विशेष रूप से उनके लक्ष्य का भाषायी क्रियाकलापो से कुछ लेना–देना नही था। इन क्षेत्रो की शिकायते भाषायी नही बल्कि आर्थिक थी। इसके अलावा उनके ऊपर सगठित राज्यो की परम्पराओ का लादा जाना था, जो 1950 मे बहुत अधिक सगठित और ताकतवर नही था लेकिन बाद के आने

वाले वर्षों मे असहनीय हो गया। तेलगाना और विदर्भ राज्य की माग के बावजूद इसके कि इसे राज्य पुनर्गठन आयोग द्वारा स्वीकृति मिल चुकी थी, केन्द्रीय नेतृत्व ने अस्वीकार कर दिया, जिसकी वजह से उनके आर्थिक शोषण पर राज्यो की चेतना बढ गई थी। बाद मे होने वाले विकास से यह लोगो की व्यक्तिगत विचारधारा बन गई जिसमे आर्थिक आकडे ज्यादा प्रभावशाली नही थे।

यदि पृथकता की माग की औचित्यता को हम देखना चाहे या आर्थिक सहयोग न देने वाली प्रवृत्ति की ओर ध्यान दिया जाय तो अधिक सहायता नही मिलेगी। बल्कि पृथकता की माग को उसी भाषायी राज्य मे मजबूत बनाने के लिये सरक्षक राज्य की परम्पराओ का पृथकतावादी क्षेत्रो मे लादे जाने एव उन नारो के रूप मे देखा जाना चाहिये जो आर्थिक तिरस्कार से ज्यादा उस राज्य के समृद्धता के खिलाफ बनी। स्वाभाविक रूप से राज्य के अन्दर उन क्षेत्रो मे यह भावना आ गयी थी कि, उनका प्रयोग उपनिवेशो की तरह किया जा रहा है, जिसने आन्दोलन को पर्याप्त राजनीतिक गतिशीलता प्रदान की। इस तरह आर्थिक तत्व जो राज्यो के पुनर्गठन के पहले दौर पर पिछली पृष्ठभूमि मे था 1980–90 के दशक मे भाषायी सास्कृतिक एकरूपता के साथ समानान्तर नारो का अग बन गया।

अगर यह भाषायी राज्यो की कहानी थी तो पूर्व वर्णित आभाषायी राज्यो (जैसे–उत्तर प्रदेश, बिहार तथा मध्य प्रदेश) मे उनकी सामुदायिक परम्परा के आधार पर काफी मात्रा मे उपराज्यीय गतिशीलता प्रगट होने लगी। इन मामलो मे सामुदायिक परम्परा वाली जैसे–भोजपुरी, गढवाली, कुमाऊँनी, मैथली, अवधी आदि के पास पर्याप्त कारण थे कि अपने आर्थिक पृथककरण की बात सास्कृतिक पृथक्करण के रूप मे कहे क्योकि सामुदायिक परम्परा वाली सीमाये समय के साथ स्पष्ट रूप से और लगभग आर्थिक तिरस्कार का कारण बन जाती है। स्थायी रूप से आर्थिक पथ पर बीमारू राज्यो की नीचे की ओर जाती प्रवृत्तियो ने क्षेत्रीय परम्पराओ को काफी बल दिया है। जिसमे सास्कृतिक कहावतो का प्रयोग करते हुये जनता को गतिशील बनाया जाता है। यहॉ पर हिन्दी भाषी पट्टी के गरीब क्षेत्रो ने बावजूद इसके कि उनका कुछ विकास नही हुआ, केन्द्र विरोधी आन्दोलन विकास के मुद्दे पर नही बनाया। वास्तव मे राज्यो को पृथक करने की माग क्षेत्रीय परम्पराओ के आधार पर परम्परावादी लोगो ने नही की, बल्कि उन क्षेत्रो के बाहर विद्वानो द्वारा की गयी। प्राय इन मागो का लक्ष्य उस क्षेत्र के विकास का उतना नही था जितना बडे राज्यो के रहने से बडे राज्यो की राजनीतिक कमियो का विरोध करना था। ऐसे आन्दोलनो मे गतिशीलता का अभाव इसलिये भी था क्योकि साधारण रूप से हिन्दी की सभी परम्पराओ को जो साहित्यिक रूप से बहुत समृद्ध थी, उसे कभी आम जनता ने भाषाओ के द्वारा बाधने का प्रयोग या सामुदायिक भाषाओ के द्वारा उन्हे एक सास्कृतिक ताने–बाने मे बुनने का प्रयास नही किया था। यह समुदाय अपेक्षाकृत यह सोचते हैं कि उनके अस्तित्व की वास्तविकता विशाल हिन्दी भाषी समुदायो का हिस्सा बनकर रहने मे है, जिसको उन्होने सम्भवत विशाल भारतीय राष्ट्रीयता की पहचाना माना है। इस तरह की विचारधारा के परिणामस्वरूप ही पिछले पॉच दशको मे विकास की असफलता के कारण उत्पन्न भावनाये अथवा हताशा कभी भी छोटे राज्य की माग की भावना के रूप मे अनुदित नही हुयी है।

इसलिये यह आवश्यक है कि कुछ ऐसी चेतना विकसित होनी चाहिये जो आर्थिक तिरस्कार की स्थिति मे कुछ अधिक दबाव पैदा करे जैसा कि ज्यादातर मामलो मे होता है जिसे राजनीतिक पहचान कहते है। अन्य शब्दो मे एक क्षेत्र (भाषा विरोधी कुछ मामलो मे तथा अभाषी मामलो) मे तब तक तिरस्कार की भावना लोगो को मजबूत बनाने मे सफल नही हो सकती जब तक कि वर्तमान राज्य एक क्षेत्र का रूप धारण न कर ले या जो मूल रूप से लोगो के मन मे यह विचार पैदा न करे कि भाषायी क्षेत्र भी कोई होता है, जैसा कि परम्परावादी मामलो मे माना गया है। यह एक आदेशात्मक तथ्य है कि इस क्षेत्र के राजनीतिक नेतृत्व को उद्देश्यपूर्वक ऐसा निर्माण करना होगा ताकि लोगो मे क्षेत्रीयता की पहचान हो तथा वहा पर रहने वाले समूह के मन मे आर्थिक तिरस्कार की भावना पैदा हो। तर्क के आधार पर इसे आसानी से समझा जा सकता है। आप किसी भी समूह को चाहे उसमे गतिशीलता अधिक हो या कम आर्थिक तिरस्कार की बात तब तक नही समझा सकते हैं जब तक पहले उनके अन्दर उनके एक होने की पहचान का अहसास न करा दे।

यहॉ पर ध्यान रखने वाली महत्वपूर्ण बात यह है कि ये सभी पहचाने कृतिम तौर पर बनायी गयी है यद्यपि उन्हे सफलता के लिये ऐसा दिखावा करना पडता है तथा करना चाहिये कि वह स्वाभाविक लगे। इस तरह की बाते करना एक बडा ही उलझन भरा कार्य है जो कि सभी क्षेत्र के लोग सफलतापूर्वक नही कर पाते है। परिणामस्वरूप हम पाते है कि तेलगाना, मराठवाडा या विदर्भ को उतनी अधिक राजनीतिक सफलता नही मिली जितना कि अन्य क्षेत्रो जैसे– झारखण्ड, उत्तराचल या छत्तीसगढ को मिली।

ये समूह जो उनके प्रभुत्व राज्य होते है उनके प्रभावी सास्कृतिक अहम की समस्या से ग्रसित होते है और वास्तव मे वे एक राजनीतिक स्वायत्तता चाहते है तथा उनकी सस्कृति पर होने वाले किसी भी अतिक्रमण का विरोध करना चाहते हैं। लेकिन इस तरीके के पहचान वाले क्षेत्र सिर्फ एक स्वतन्त्र प्रशासनिक ढॉचे की तलाश मे रहते है। इनकी मागे भावनात्मक राष्ट्रीयता मे योगदान नही देती है बल्कि ये प्रभावशाली राष्ट्रीय मुख्यधारा वाली सस्कृति का हिस्सा बनकर रह जाती है। यह ऐसे समूह है जो पृथक राज्य के अस्तित्व की माग अपने हितो की रक्षा हेतु चाहते है लेकिन उन समूहो के तरह नही होते जो अपनी भावनात्मक आजादी के लिये सघर्ष करते है।

एक सघीय समाज हमेशा विभिन्नताओ का समाज होता है जिसमे भारी मात्रा मे विभिन्न प्रकार की पहचाने पायी जाती है जो धर्म, भाषा, सस्कृति, कबीलाई अथवा अन्य किसी आधार पर आधारित होती है। यह सभी पहचान एक प्रजातान्त्रिक समाज मे महत्वपूर्ण है। ये केवल ऐसी पहचाने है जो क्षेत्रीय या भू–भाग के समूह पर अवधारित होती है जो कि समाज के सघीय प्रकृति के दृष्टिकोण से उपयुक्त है। यह स्वाभाविक है, क्योकि केवल क्षेत्रीय रूप से सगठित पहचान वास्तव मे राजनीतिक स्वायत्तता या किसी भी प्रकार के विकेन्द्रीकरण की माग कर सकती है। इस सदर्भ मे भारतीय सघ मे भाषायी सस्कृति की पहचान को मान्यता भी प्रदान की गयी। 1950 तथा 60 के दशक मे राज्यो के पुनर्गठन का सबसे बडा आधार भाषा था। एक बात जिसकी आवश्यकता यहॉ पर जोरे देने की है कि सभी पहचानो मे एकरूपता नही थी, जैसे कोई भी भाषायी तथा सास्कृतिक समूह उस समूह

के सभी सदस्यो के हितो के प्रतिनिधित्व का दावा नही कर सकता था और वास्तव मे ऐसा किया भी नही। उसने जो कुछ भी किया उस क्षेत्र मे जो प्रभावशाली भाग था उसके हितो का प्रतिनिधित्व किया। इस सम्बन्ध मे यह आवश्यक रूप से नही कहा जा सकता कि उसके नेताओ मे नेतृत्व की कमी थी। बल्कि, यह स्वाभाविक तथ्य है कि कोई भी क्षेत्र वास्तव मे एकरूपता का क्षेत्र हो ही नही सकता। वास्तव मे सभी क्षेत्रो मे कुछ उपक्षेत्र होते है तथा उपक्षेत्र के भी उपक्षेत्र होते है। ये उप क्षेत्र अथवा उप–उपक्षेत्र, बडे क्षेत्रो के हितो के प्रति अपनी सहमति जता भी सकते है और कभी नही भी जताते, लेकिन कभी भी इनके विरूद्ध विरोधाभाषी सम्बन्धो को लेकर खडे हो सकते है। कोई भी सिक्किम मे भोटिया तथा लेप्चा के मामलो को प्रस्तुत कर सकता है। इसी प्रकार बगाली तथा भोटिया का मसला पश्चिम बगाल के गोरखा प्रभुत्व वाले दार्जिलिग मे उठाया गया। चकमाओ ने मिजोरम मे, कूच बिहारी तथा अन्य कबीलो ने असम मे तथा हिन्दुओ ने पजाब मे इसे इसी प्रकार उठाया।

जो चीज महत्वपूर्ण है वह यह कि इन क्षेत्रो के नेतृत्व को सामान्य रूप से अपने दावो तथा मुद्दो को सम्पूर्ण क्षेत्र को आधार बनाकर रखना चाहिये। यह आवश्यक है कि ऐसी प्रवृत्तियॉ पैदा की जाय जिसमे क्षेत्र के बडे से बडे भाग का समर्थन प्राप्त हो साथ ही साथ उस क्षेत्र के लोग मागो को वैधानिकता भी प्रदान करे। जैसा कि पूर्व मे चर्चा की गयी है, पहले स्थान पर महत्वपूर्ण बात यह है कि सभी पहचाने कृतिम रूप से निर्मित होती है या उसका कृतिम निर्माण इस आशय से किया जाता है कि वो एक विशेष राजनीतिक पहचान बन जाय जो कि अध्ययन की दृष्टि से प्रासगिक होती है। यह केवल तभी होता है जब एक समुदाय अपनी पृथक तथा स्वतन्त्र पहचान के लिये सचेत (जागरूक) होता है और व्यक्तिगत क्षेत्र से मिलकर सार्वजनिक क्षेत्र मे कदम बढाता है। परिणामस्वरूप, उसका प्रवेश राजनीतिक क्षेत्र मे होता है, जो उसे एक ऐसी प्रासगिक पहचान दे देता है जो लोगो को स्वीकार्य होने लगती है। इस अर्थ मे सभी पहचाने कृतिम निर्माण के बावजूद एक राजनैतिक पहचान से जुडी रहती है।

हम सब बहुत सारी पहचानो के साथ रहते है जो कि अधिकतर हमारे साथ रहती है लेकिन उन सबके प्रति हम जागरूक नही होते है। इनमे से कुछ प्रभावशाली बनी रहती है तथा दूसरी कुछ मौको पर अपना रूप धारण करती है, जबकि बाकी कभी भी सक्रियता का रूप धारण नही करती। ये केवल उन पहचानो के लिये होता है जो सफलतापूर्वक कुछ मौको पर सक्रिय व प्रभावशाली हो जाती है, जबकि कोई राजनैतिक सगठन दूसरी पहचानो को कमजोर बनाने का प्रयास करता है, तो हम वास्तव मे इस विश्वास की ओर प्रवत्त हो जाते है कि वह प्रभुत्व वाली पहचान ही केवल वास्तविक पहचान है तथा दूसरी पहचान या तो उसके अधीन है अथवा एक प्रासगिक पहचान को बनाने के लिये गतिशील है।

जैसा कि पहले ही व्याख्या की जा चुकी है, शब्द 'राजनैतिक' का प्रयोग व्यापक रूप से 'सार्वजनिक क्षेत्र' जो 'व्यक्तिगत सत्ता' के विरूद्ध होता है के अर्थो मे किया गया है। इसके विपरीत 'कृतिम' का अर्थ एक ऐसा निर्माण है जो मानवीय हस्तक्षेप के द्वारा उत्पन्न हुआ है। चूकि कोई विशेष पहचान दूसरे अन्य लोगो के बीच मे स्थापित करना एक चेतना के चुनाव का मामला है, अत उसी

सीमा तक यह विशेष पहचान कृतिम होती है। यह एक विभेदीकरण का मामला है कि किसी भी प्रभावशाली पहचान को प्रावैधिकता अथवा अन्य पहचानो के आधीन बनाकर निर्माण किया जाता है तो वह कभी स्थायी नही हो सकता। परिणामस्वरूप, ऐसी पहचान की अवधि कितनी चलेगी इसके बारे मे तय कर पाना काफी कठिन होता है। 1947 मे एक धार्मिक पहचान (मुसलमान) इतनी ज्यादा बौद्धिक बन गयी कि उसने पाकिस्तान का निर्माण कर डाला और सारे मुस्लिम एक समुदाय मे, बावजूद इसके कि भाषायी तथा क्षेत्रीय भेदभाव एव एकरूपता का अभाव था, पिरो दिये गये। उसके फौरन बाद क्षत्रीय पहचानो ने पाकिस्तानवादी मुस्लिम पहचान को कम करना शुरू कर दिया जिसका परिणाम यह हुआ कि बगाली विचारधारा तथा पजाबी और मुहाजिरो के बीच गतिरोध उत्पन्न हुआ और अन्त मे पाकिस्तान से कटकर 1971 मे पृथक बाग्लादेश का निर्माण हुआ।

यहाँ पर यह स्पष्टीकरण देना आवश्यक है कि इस तरीके की पहचाने भले ही इनको सफलतापूर्वक बना दिया गया हो प्राय विशिष्ट बन जाती है जिसमे बहुत सारे समुदाय सीमान्तीकरण की प्रक्रिया मे इसमे शामिल हो जाते है। परिणामस्वरूप जब कभी भी यह विशिष्ट निर्मित पहचाने प्रभुत्वशाली होने का दावा करती है तब सभी अविशिष्ट पहचाने जिनके कुछ वर्ग इसमे होते है, इस तरीके की पहचानो के निर्माण के सम्बन्ध मे हमेशा प्रतिक्रियावादी होते है। इसलिये 'राष्ट्रीय मुख्यधारा' की तरह जो बहुत सारी 'अधीनस्थ' समुदायो को पृथक कर देती है उसमे पूरी राष्ट्रीयधारा को प्रभावशाली ढग से ले जाने मे कठिनाई होती है क्योकि क्षेत्रीय तथा अन्य सास्कृतिक पहचाने जो विभिन्न वर्गों को पृथक करती है या तो उससे निरन्तर जुडी होती है अथवा शत्रुतापूर्ण हो जाती है। जैसा कि असमी पहचान के मामले मे हुआ जब असमी भाषा अधिनियम के एक पैरा मे जो विधानसभा मे पढा गया था, ने बहुत सारे गैर असमी राष्ट्रयता वाले लोग जो 1960 के प्रारम्भ मे वृहत्तर असम मे रहते थे के मन मे एक भय पैदा कर दिया जिसने पृथक राजनैतिक पहचानो के लिये भागो की गतिशील बनाया और अन्त मे वे अपने लिये एक पृथक राज्य पाने मे सफल भी हो गये।

इसी तरह से मिजो पहचान मे चकमाओ ने मिजोरम मे भागीदारी नही की। भूटिया तथा लेप्चा गोरखाणी पहचान से गोरखालैण्ड मे जुडे रहे तथा सिक्कमी और नेपाली सिक्किम की पहचान से जुडे रहे। जब मणिपुरी को 1980 मे 18वी राजकीय भाषा के रूप मे सविधान की आठवी अनुसूची मे जोडा गया तो कुछ जातियो ने, जो वहाँ के ऊचे पठारो मे रहती थी ने इस निर्णय का विरोध किया। क्योकि मणिपुरी मुख्य रूप से नीतियो की भाषा थी या मेटीज या हिन्दुओ की भाषा थी। कोई भी इस उदाहरण के द्वारा कह सकता है कि पजाब मे बावजूद इसके कि परिस्थितियाँ इसके विपरीत थी पजाबी पहचान को वहाँ के हिन्दुओ के द्वारा बडे जोश के साथ स्वीकार नही किया गया था। झारखण्ड मे झारखण्डी पहचान को गैर कबीलाई लोगो तथा सभी कबीलो के द्वारा पूर्ण समर्थन प्राप्त नही था।

इस तरह की कृतिम निर्मित काल्पनिक, राजनैतिक पहचानो की सफलता का परीक्षण यह है कि जिस समय ये कृतिम तथा विशिष्ट होती है, उस समय यह उनके मानने वालो को 'स्वाभाविक'

तथा 'सर्व अविशिष्ट' लगनी चाहिये। एक बार यह सफलतापूर्वक हो जाता है तो वह पहचान एक विक्रय का उत्पाद बन जाता है। यह केवल क्षेत्रीय पहचानो के लिये ही सही नही है जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है बल्कि सामाजिक पहचानो के लिये भी लागू होता है जैसे – अन्य पिछडा वर्ग, दलित आदि। यह कहना आवश्यक नही है कि यह निर्माण पूर्णत 'कार्यात्मक' होता है जिसमे एक सगठित तथा केन्द्रित समूह एक ऐसा दबाव उत्पन्न करता है जो चुनावी प्रजातन्त्र मे राजनैतिक निर्णयो को प्रभावित करता हे। इस प्रकार 'समावेशन' पृथक्करण से ज्यादा स्वाभाविक पहचान बनाने वाला परिणाम देता है।

यह एक नई निर्मित तथा सगठित बडी पहचान होती है जो ज्यादा से ज्यादा 'कृतिम' तथा 'काल्पनिक' होती है अपेक्षाकृत मौलिक छोटी पहचान के जो अपने समूहो के करीब होती है उनके अन्दर एक अनुभूति पैदा करती है। लेकिन कृतिम निर्मित पहचान राजनैतिक गतिशीलता तथा स्पष्टीकरण मे प्रासगिक हो जाती है। इस तरीके से पश्चात् वाले समूह के ज्यादातर सदस्य धीरे–धीरे बडी पहचान वाले समूह से लाभ उठाना शुरू कर देते है और अपनी पहचान उसी समूह के सदस्य के रूप मे बनाने लगते है। इसका बहुत ही मनोरजक उदाहरण यादविस्तान के मामले का है। बिहार तथा उ0प्र0 मे जहॉ कही भी अहीर,अभीर,भूसीवाला, दूधिया, ग्वाल, गोप, मण्डल थे, सभी आपस मे सगठित हो गये और इन लोगो ने अपनी पैतृक पहचान 'यादवो' के रूप मे बना ली। इसलिये इन राज्यो मे यादवो का प्रतिशत काफी सीमा तक बढ गया। इसी प्रकार हिन्दी पट्टी मे भाषायी पहचान के मामले लिये जाय तो बहुत सारे भाषायी समुदाय के लोगो ने वर्षो के अन्तराल मे अपनी पहचान एक हिन्दी भाषा बोलने वाले के हिस्से के रूप मे बना ली। इस प्रकार बृज, अवधी, मैथिली, भोजपुरी तथा राजस्थानी जिनको इतिहास मे भाषाओ का पूर्ण अस्तित्व प्राप्त था, वर्षो के बाद मात्र हिन्दी की पारपरिक बोली बन गया। 1961 के अन्तिम समय तक राजस्थानी भाषायी जनगणना मे एक स्वतन्त्र भाषा थी। फिर भी, जहॉ तक हिन्दी पहचान का मामला है यह बहुत ज्यादा मात्रा मे राष्ट्रीय आन्दोलन मे सक्रिय रही है और राष्ट्रीय सास्कृति मुख्य धारा की पहचान बनाने मे इतनी गतिशील थी कि इसे हिन्दी पहचान का नाम दे दिया गया। हालाकि इसमे कुछ कमिया थी।

झारखण्ड तथा उत्तराचल का मसला उससे भी ज्यादा मनोरजक है। झारखण्ड मे चूँकि झारखण्डियो के पास गणितीय बहुलता थी इसलिये उन्होने अपने स्वायत्त कबीलो पर इस बात के लिये दबाव डाला कि वो सामान्य तथा विस्तृत झारखण्डी पहचान मे विलीन हो जाय। इसीलिये मुण्डा, ओराव, होरो, सथाल तथा बहुत सारे दूसरे छोटे कबीले वर्षो के बाद सम्पूर्ण झारखण्डी पहचान मे सम्मिलित हो गये। केवल इतना ही नही बहुत सारे इस प्रकार के कबीलाई निवासीगण जो सदान समुदाय के थे, को भी झारखण्डी पहचान मे जोड दिया गया ताकि समूह की गणितीय शक्ति बढ जाय।

पिछले कुछ दशको मे उत्तराचल की पहाडियो मे ऐसा ही विकास प्रारम्भ हुआ। यद्यपि एक पृथक पहाडी राज्य की माग स्वतन्त्रता से बहुत पहले रखी गयी थी और बाद मे कामरेड पी0सी0 जोशी ने 1950 के दशक मे यह माग रखी। तब से अभी तक पहाड के रहने वाले लोगो

की पहचान एक गढवाली, कुमाऊनी तथा जौनसारी आदि के रूप मे होती है, जिसमे से शुरू के दो अपने इतिहास परपराओ तथा व्यक्तिगत विचारधाराओ के आधार पर बिल्कुल अलग है। फिर भी, एक एकाकी सघर्ष पिछले डेढ दशको मे छेडा गया जिसने इन सभी पहचानो को सामान्य उत्तराखण्डी पहचान के रूप मे परिवर्तित कर दिया। कोई भी गढवाली तथा कुमाऊॅनी भेदभाव की बात नही करता है बल्कि पूरा जोर इस बात पर दिया जाता है कि मैदानो मे रहने वाले लोगो के खिलाफ तथा तुलना मे इन लोगो की सहभागीदारी के पीछे जो आपसी विरोधाभाष अथवा वर्षो से चली आने वाली राजनीतिक प्रतिद्वदिता थी उसे एक ओर रख दिया गया और बडी ही आसानी से उसे नकार दिया गया।

ऐसी क्या बात थी जिसने क्षेत्रीय पहचान के निर्माण के लिये एक शक्तिशाली व्यवहार को सभव बनाया ? इसके विपरीत ऐसी क्या बात थी जिसने दूसरे समूहो को ऐसी पहचानो को टालना मुश्किल कर दिया और अन्त मे विभिन्न प्रकार के सामाजिक, भाषायी, सास्कृतिक तथा आर्थिक तत्वो का इस तरह की पहचान बनाने मे या न बनाने मे क्या योगदान रहा ?

लगभग तीन दशक पहले एक राजनीतिक वैज्ञानिक इकबाल नरायण[2] ने यह तर्क दिया था कि क्षेत्रवाद को बढाने मे जाति, भाषा, धर्म, भूगोल, इतिहास आदि महत्वपूर्ण योगदान करते है। उन्होने पुन जोडा–सारी आर्थिक नाराजगी का एक कारक तत्व होता है जो एक धारा (प्रवाह) का सचार करता है। विभिन्न प्रकार के पहचाने जाने वाले तत्वो के योगदान को समझने पर जिनका गुप्त रूप से फायदा मिलता है, ऐसा लगता है कि आर्थिक तत्व एक आवश्यक तत्व है लेकिन पर्याप्त तत्व नही है। यह अकेला क्षेत्रीय पहचान को सफलतापूर्वक बनाने मे कभी सफल नही हो सकता है। इसीलिये विभिन्न स्तरो पर क्षेत्रीय पहचान की व्याख्या या वर्णन मे 50वे, 60वे तथा बाद मे 80 व 90वो के दशक मे जाति, धर्म तथा भाषा जैसे तत्व काफी प्रभावशाली रहे है। लेकिन साथ ही साथ बहुभाषी राज्यो मे इनकी पृष्ठभूमि मे आर्थिक अलगाव के आरोप की विचारधारा भी थी। इसमे पुन जोर दिया जा सकता है कि यहॉ पर 'विचारधारा' एक व्यक्तिगत चेतना है न कि 'वस्तुपरक वास्तविकता' जो कि क्षेत्रीय पहचान को बनाने मे महत्वपूर्ण है। यह वही व्यक्तिगत विचारधारा है जो गतिशील समूहो के अन्दर राजनीति मे आवाज बनाने का अहसास कराती है।

यह सत्य है कि वस्तुगत दशाये किसी भी व्यक्तिगत विचारधारा के विकास के लिये हमेशा महत्वपूर्ण होती है। यह वस्तुपरकता काफी सीमा तक वस्तुगत स्थितियो के मामले मे व्यक्तिगत विचार विस्तृत करती है। यह इन अर्थो मे है जैसा कि हमने पहले ही स्थापित किया है कि सभी पहचाने कृतिम रूप से निर्मित होती है और वो राजनैतिक भी होती है। इसको दूसरे शब्दो मे कहा जा सकता है कि यह एक विशेष सीमाओ के अन्दर रहने वाले (जिसके सम्बन्ध मे विभेद रहता है) समूह का राजनीतिकरण है जो इस समूह के सदस्यो को काफी सक्रिया बना देता है और इस तरह यह सभव कर देता है कि वो इस तरीके से कार्य करे कि वे सार्वजनिक क्षेत्र मे अपने खुद का अधिकार (कब्जा) बनाने के लिये व बढाने के लिये सघर्ष करे।

2 नारायन, इकबाल (1976), *'कल्चरल प्लूयरिज्म, नेशनल इन्टीग्रेशन एण्ड डेमोक्रेसी इन इण्डिया"*, एशियन सर्वे, अक्टूबर।

इस क्रम मे सक्षेप मे, यह भी चर्चा करनी होगी कि इन पहचानो को बढाने मे राजनीतिज्ञो का यदा–कदा क्या योगदान होता है, जबकि राजनीति अपने सकीर्ण अर्थों मे इसको कमजोर बनाने का काम करती है और राजनीतिज्ञ इस तरह की पहचानो का लाभ राजनैतिक पूजी के रूप मे उठाते है। लेकिन इनका योगदान इस अस्पष्ट सीमाओ वाली पहचानो को तेज तथा विशुद्व बनाने से ज्यादा कुछ नही होता है। वास्तव मे राजनीतिज्ञ प्राय एक सहायक अनुसरणकर्ता का सा योगदान करते है जो राजनैतिक रणनीति को लागू करता है। जो पहले से ही क्षेत्रीय जुनून के द्वारा बनायी जा चुकी है। बाद मे यह केवल सगठित शक्तिशाली तथा उपलब्ध राजनैतिक दलो के उपकरणो द्वारा श्रृखलावद्ध हो जाती है लेकिन यह जुनून तथा भावनाये आवश्यक नही है कि आरम्भ मे इन राजनीतिक दलो के द्वारा आरम्भ की गई हो।

कोई भी भाषायी राज्यो की पुरानी कहानिया देख सकता है जो भारत की आजादी के तुरन्त के बाद के वर्षों मे हुयी। केन्द्रीय नेतृत्व को न केवल इन भाषायी राज्यो के निर्माण मे अरूचि थी बल्कि यहॉ तक कि वास्तव मे इनके प्रति काफी शत्रुतापूर्ण (कठोर) थे। उनके विचारो मे इस तरीके की क्रियाये विघटनकारी प्रवृत्तियो को प्रान्तो के अन्दर प्रोत्साहित करेगी जो राष्ट्रीय अविच्छिन्नता के लिये विरोधी होगा। यह तो राजनैतिक भावनाओ का भयकर दबाव था जो क्षेत्रीय राजनैतिक परम्पराओ के द्वारा श्रृखलाबद्ध तथा सग्रहीत हुआ था जिसकी वजह से केन्द्रीय नेताओ को इस दबाव के आगे झुकना पडा। जैसा कि महाराष्ट्र के मामले मे हुआ जहॉ काग्रेस की हार ने अन्त मे काग्रेसी नेतृत्व पर नई दिल्ली मे दबाव डाला कि वह सयुक्त महाराष्ट्र की माग पर ध्यान दे। पजाब के मसले को भी जवाहर लाल नेहरू की मृत्यु के बाद तक ध्यान नही दिया गया। लेकिन काग्रेस पजाब मे द्विभाषी राज्य की नीति काफी समय तक नही चला पायी।

इन सभी मामलो मे काग्रेस का केन्द्रीय नेतृत्व हमेशा उदासीनता दिखाता रहा। भाषायी राज्यो के निर्माण की प्रक्रिया मे स्थानीय राजनीतिक नेतृत्व जो कि ज्यादातर मामलो मे (सिर्फ पजाब को छोडकर जहॉ पर अकालियो ने पजाबी सूबे की भावना का सचार किया था) 1950 तथा 60 के दशक मे काग्रेस दल से आया था उसने केन्द्र पर केवल इसलिये दबाव डाला क्योकि नेतृत्व स्वय कठोर राजनैतिक दबाव मे था जो उसके गहराइयो से जमे कार्यकर्ताओ द्वारा दिया गया था।

उत्तराचल, झारखण्ड, विदर्भ या छत्तीसगढ और भी ज्यादा रहस्य खोलने वाले मसले है एक दल जैसे भाजपा जो एक मजबूत केन्द्रीय दल के रूप मे उभरी और जो शुरू मे छोटे राज्यो के निर्माण का हमेशा विरोध करती रही ने अपना दृष्टिकोण बदल दिया और इन राज्यो के निर्माण के समर्थन मे तर्क देने लगी। उत्तराचल के मामले मे सभी राजनीतिक दलो को आरम्भ से ही पृथक राज्य के आन्दोलन से दूर रखा गया था। यह बात दूसरी है कि बात मे राजनैतिक दलो ने इस आन्दोलन की औचित्यता को लेकर एक दूसरे के ऊपर आरोप लगाना शुरू कर दिया।

भारत मे क्षेत्रीय पहचान का निर्माण दो स्तरो मे हुआ पहला स्तर जो 1966 मे पजाब सूबे के निर्माण तक चली कि विशेषता यह थी कि इसमे क्षेत्रीय राष्ट्रवाद की राष्ट्र की मुख्य धारा के साथ राजनीतिक क्षेत्र के लिये वार्ताये हुयी। एक तरीके से ये क्षेत्रीय पहचान सामाजिक, सास्कृतिक तथा

भाषायी तत्वो की सक्रियता का परिणाम थी, जो पृष्ठभूमि मे कार्य करते थे। लेकिन साथ ही साथ राष्ट्रीयता की मुख्य धारा भी थी जो केन्द्र मे सघीय सरकार के अन्दर काफी जोश के साथ राष्ट्रवाद की मुख्य धारा मे काम कर रही थी। इसके विपरीत क्षेत्रीय मागो का दूसरा स्तर 'पृथक राजनीतिक इकाई के लिये माग' को देश मे 1980 के दशक मे महसूस किया और अभी भी पूर्णत अलग तरीके से अनुभव कर रहा है, जहाँ पर केन्द्र ने अनचाहे रूप मे सास्कृतिक क्षेत्र के लिये सघर्ष करने वाली एकता देखी है। इसके विपरीत कुछ मामलो मे जैसा कि उत्तराचल मे था जहाँ साथ ही साथ एक मजबूत भावना इस बात पर भी जोर दे रही थी कि उसे केन्द्र शासित क्षेत्र बना दिया जाय। इसे पूर्णत आर्थिक अलगाव के दृष्टिकोण से समझा जा सकता है जिसमे कोई आरोप सामाजिक या भाषायी भेदभाव का नही था जिन्हे पहचान बनाने वाला उत्प्रेरक तत्व माना जाता।

गैर भाषायी राज्यो के निर्माण का इतिहास जो बिना उनकी स्वय की क्षेत्रीय पहचान के आधार पर किया गया का परिणाम यह हुआ कि ये इतने बडे हो गये थे कि वह सघीय सन्तुलन नही निर्मित कर सके थे। इसलिये कई बार विद्वानो ने इस बात की आवश्यकता पर चर्चा की कि उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्य प्रदेश जैसे बडे राज्यो से छोटे राज्यो को काटकर अलग कर दिया जाय। रशीदुदीन खान जो भारतीय सघवाद के बहुत ही जाने माने विद्वान है, ने समय–समय पर तर्क दिया और कहा कि इसमे से कुछ राज्य जैसे– उत्तर प्रदेश तथा बिहार की कोई क्षेत्रीय पहचान नही है, वास्तव मे यह अग्रेजी साम्राज्यवादी नीतियो का उपहार है जिसमे भू–भागो को जीतकर धीरे–धीरे जोडा गया था।[3] उन्होने उत्तर प्रदेश के बारे मे तर्क दिया कि इसका इतना बडा अकार है कि यह लोकसभा तथा राज्यसभा मे अपनी उपस्थिति से एक जोश भर देता है। इसे सास्कृतिक आधार पर छोटी–छोटी इकाइयो मे बाट दिया जाना चाहिये। भारत के 28 राज्यो मे से कम जनसख्या वाले 14 राज्यो को अगर एक साथ मिला दिया जाय तो जितनी उनकी जनसख्या है उतनी केवल उत्तर प्रदेश की जनसख्या है।

अत इस सन्तुलन को पुर्नस्थापित करने के लिये यह तर्क दिया गया कि राज्य को बाट दिया जाय। हालाकि रशीदुद्दीन खान का यह तर्क कोई नया नही है। यहाँ तक कि अपने अस्वीकृत पत्र मे श्री राजगोपालाचार्य (1956), के0एम0पणिक्कर ने भी मुख्य रूप मे इसी आधार पर उत्तर प्रदेश के बटवारे को प्रस्तावित किया था। इन बडे राज्यो मे पुनर्गठन के लिये प्राय इसलिये सलाह दी गई ताकि इन पिछडे हुये राज्यो की आर्थिक विकास की गति मे तेजी आये और इसके लिये प्रशासन को ज्यादा से ज्यादा जिम्मेदार बनाया जाय।

वास्तव मे उत्तर प्रदेश तथा कुछ अन्य दूसरे हिन्दी राज्यो के पुनर्गठन की माग उनके राज्य से नही आयी थी, बल्कि इन राज्यो के बाहर से कुछ बुद्धिजीवियो तथा राजनीतिक नेताओ ने की और शायद यह मुख्य रूप से वास्तव मे इन कारणो पर आधारित थी कि यहा पर कोई अलग भाषा वाली परम्परा की पहचान बनाने वाली व्यक्तिगत विचारधारा इन विभिन्न प्रकार के सास्कृतिक क्षेत्रो वाले राज्यो मे न थी और न ही ऐसी किसी पहचान से वास्तव मे फर्क पडता था। जैसा कि पहले

---

3 खान, रशीदुद्दीन सपा0 (1992), *रेटिंग इण्डियन फेडरलिज्म*, शिमला, इडियन इस्टीट्यूट ऑफ एडवास स्टडी, पृ0 253–263 ।

भी तर्क दिया जा चुका है कि कोई पहचान केवल वस्तुपरक स्थितियो से नही बनती है बल्कि उसके चारो ओर मौजूद जनसख्या की राजनैतिक गतिशीलता से बनती है और यही पहचान बनाने वाली विशिष्ट इकाई की सीमाओ का रेखाकन करती है।

हिन्दी पट्टियो की एक मजबूत केन्द्रीकृत राजनैतिक सस्कृति ने सामान्यतया इस तरीके की चीजो का कार्य करना बहुत कठिन बना दिया। केवल उत्तराचल का मामला इस सम्बन्ध मे ऐसा है जिसने काफी देर बाद सफलता पायी। यह याद रखना होगा कि राज्य चाहे छोटा हो या बडा भारत मे इसका निर्माण किसी ऐसी बौद्धिकता के आधार पर नही हुआ है जिसमे प्रशासनिक उत्तरदायित्व को अथवा आर्थिक विकास को ज्यादा से ज्यादा गतिशील बनाने के लिये जोर दिया गया हो। पहचान की बात अन्य तत्वो की अपेक्षा इन निर्माणो के पीछे एक महत्वपूर्ण कारक होता है। कभी–कभी इसे अन्यथा ले लिया जाता है। वास्तव मे पजाब तथा हरियाणा की कहानी ने आर्थिक मुद्दे पर तथा बाद मे केरल ने सामाजिक मुद्दे पर सफलता पायी इसलिये यह फैशन सा बन गया है कि विद्वान छोटे राज्य के बारे मे ऐसी बाते उछालने लगे।

तर्क मे कुछ कमिया है क्योकि इन राज्यो की सफलता पूरी की पूरी उनके आकार के छोटेपन पर नही थी, बल्कि काफी मात्रा मे पजाब और हरियाणा ने हरित क्रान्ति की सफलता के कारण अर्जित की थी जिनके तथ्य उनके निर्माण मे ही एक दूसरे से मेल खाते थे तथा केरल के मामले मे राजनैतिक तथा ऐतिहासिक तत्व जैसे महाराजा ट्रावनकोर की राजनैतिक वादे की ऐतिहासिक परम्परा और कोचीन मे साक्षरता का विकास जिसमे ईसाई मिशनरियो का सहयोग था जिसके लिये सागर का मार्ग महत्वपूर्ण ढग से खोला गया था। किसी मामले मे उनका छोटा अकार कभी भी जान–बूझकर विकास की सुविधाओ का आधार नही था। यही कारण था जब उनकी सफलताओ की कहानियॉ बुद्धिजीवियो तथा मध्यवर्गी पढे–लिखे लोगो के बीच पहुँची तो 'छोटा सुन्दर होता है' का तर्क बहुतो ने गहराई से नही लिया। यह एक गलत विश्वास है कि प्रशासनिक क्षमताये लोकप्रियता बढाती है जैसा कि कुछ विद्वानो ने विरोधाभाषी तरीके से छोटे राज्यो का विरोध प्रस्तुत किया है[4] क्योकि उनके मत मे छोटे राज्य अपने विकास की समस्याओ को हल नही कर पाये है।

उत्तर प्रदेश मे क्षेत्रीय देशभक्ति और क्षेत्रीय गर्व की भावना के अभाव होने के कारण (वह पिछड गया) जनता के बीच मे किसी भी प्रकार की गतिशीलता सम्भव नही है। यहॉ तक कि हरियाणा तथा हिमाचल प्रदेश मे पृथक राज्य बनने के परिणामस्वरूप उनमे एक क्षेत्रीय गर्व की भावना पैदा हुयी और उन्होने अपेक्षाकृत बहुत तेजी से विकास किया। वास्तव मे क्षेत्रीय गर्व लोगो को मनोवैज्ञानिक जजीरो से तथा हीन भावना की पकड से मुक्त करता है जो कि सदियो के आर्थिक पिछडेपन के कारण उत्पन्न होती है।

ज्यादातर उत्तर प्रदेश के इन क्षेत्रो का इतिहास, सस्कृति तथा साहित्य नेताओ के अभाव मे कमजोर सा बना रहा। उन्होने कभी भी लोगो को अपने क्षेत्र के बारे मे गर्व से नही बताया ताकि वे उस पर गर्व महसूस कर सके। पजाबी या हरियाणवी किसान यह महसूस करते है कि वह देश

---

4 दत्ता, प्रभात (1995), *"अनस्टडी स्टेट्स एण्ड स्माल थ्योरीज"*, द टेलीग्राफ, दिसम्बर 4 ।

को भोजन दे रहा है'। उ0प्र0 का मजदूर जो इन राज्यो मे खेत मे काम करता है उसे केवल भलामानुष के रूप मे जाना जाता है के कार्य को कोई प्रतिष्ठा अथवा मान्यता नही दी जाती है।[5]

यह आशा की जाती है कि एक पहचान बन जाने से कोई भी क्षेत्र हीन भावना या पागलपन से मुक्ति पा जाता है। यह सही विश्वास है कि "पहचान सामाजिक श्रेणियो की एक सीमाये प्रदान करती है और एक परिचालक के रूप मे उत्प्रेरक भावनाओ को श्रेणीबद्ध करके गतिशीलता के तथ्य मे बदलती है।"[6] पहचाने कोई मानसिक नही होती है जो पहले से निश्चित अविवेकपूर्ण तथा मूलभूत आधारो पर आधारित हो। बल्कि यह अजीबो–गरीब प्रकार का पारम्परिक समाज होता है, जो कभी–कभी मध्यम वर्ग के उत्थान से बनने वाली गतिशील परम्पराओ के कारण उत्पन्न होता है। इसके विपरीत पहचानो का निर्माण समाज मे एक विशेष चीज होती है जो तेजी से होने वाले विकास की गति मे एक और भी अच्छे क्षेत्र को पाने के लिये कार्य करती है। अन्य शब्दो मे, यह एक ऐसा उपकरण है जो लोगो को अस्तित्व रक्षा तथा अस्तित्व जैसे मुद्दो पर जोश सचार करता है।

---

5 शाह, राजीव लोचन (1997), *"उत्तराखण्डी भलामानुस होता है"*, नैनीताल समाचार, नवम्बर 1 ।

6 डीमरी, आलोक ए (1997), *उत्तराखण्ड मूवमेन्ट एण्ड द इश्यूज ऑफ मोबलाइजेशन*, एम फिल डिजरटेशन, अप्रकाशित, नई दिल्ली, जे एन यू, पृ 22।
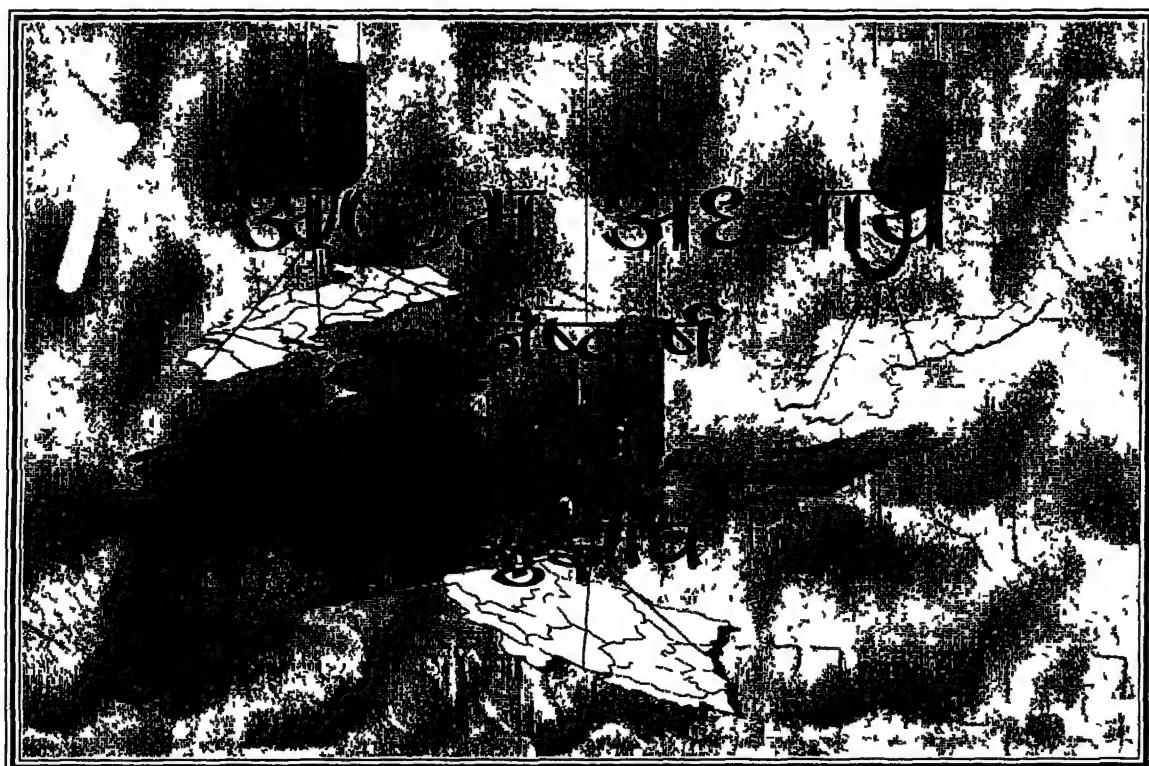
निष्कर्ष एवं सुझाव

जन्मभूमि से प्रेम अथवा किसी जगह या क्षेत्र या राज्य, उसकी भाषा और सस्कृति के प्रति प्रेम या लगाव का अर्थ पृथकतावाद नही है और न ही राष्ट्र के लिये वह खतरनाक होता है। वह राष्ट्र भक्ति और राष्ट्र प्रेम के साथ सुसगत होता है। अपने राज्य अथवा क्षेत्र के प्रति गौरव महसूस करना भी पृथकतावाद नही है। एक व्यक्ति अपनी अलग क्षेत्रीय पहचान के प्रति सचेत और गौरवान्वित हो सकता है। अपने तमिल या पजाबी या बगाली या गुजराती होने का गर्व भी बिना किसी दूसरे क्षेत्र के लोगो के प्रति अनादर अथवा शत्रुता की भावना के और अपने भारतीय होने पर उतना ही गौरव महसूस करते हुए भी हो सकता है। यह बात 1909 मे गाधी जी द्वारा स्पष्ट तौर पर कही गई थी "भारतीय के रूप मे मेरे गौरव के आधार स्वरूप मुझे अपने गुजराती होने पर भी उतना ही गर्व होना चाहिये। नही तो हम लोग बिना किसी जड के रह जायेगे"।

भारत जैसे विशाल और विभिन्नता वाले देश मे राजनीतिक पहचान और निष्ठा कई स्तरो पर काम कर सकती है और लगातार अपने दायरे का विस्तार कर सकती है। जैसा कि गाधी जी ने कहा था, "व्यक्ति को परिवार के लिये मरना पडता है, परिवार को गाव के लिये मरना पडता है, गाव को जिला के लिये, जिला को राज्य के लिये और राज्य को देश के लिये मरना पडता है।" गाधी जी इससे भी आगे चले गये और उन्होने कहा कि एक देश "यदि आवश्यकता पडे तो दुनिया के फायदे के लिये मर सकता है।"

इसी तरह अपने क्षेत्र अथवा राज्य को विकसित करने के लिये विशेष प्रयास करने या गरीबी दूर करने, सामाजिक न्याय दिलाने की कोशिश को पृथकतावाद के रूप मे परिभाषित नही किया जा सकता। यहा तक कि इस प्रकार के सकारात्मक लक्ष्यो की प्राप्ति पर आधारित थोडी अतर्क्षेत्रीय प्रतियोगिता काफी स्वस्थ चीज हो सकती है। वास्तव मे हम लोगो मे यह जितनी होनी चाहिये उससे काफी कम ही है। मातृभूमि से प्रेम लोगो को जाति या धार्मिक समुदायो के प्रति खतरनाक लगाव से अलग हटाकर एक सकारात्मक भूमिका भी निभा सकता है।

सविधान की सघीय विशिष्टताओ की हिफाजत करने को भी उग्र क्षेत्रीयतावाद के रूप मे नही देखा जाना चाहिये। भारत सघ के अन्दर एक अलग राज्य की माग अथवा किसी मौजूदा राज्य के अन्दर स्वायत्त क्षेत्र की माग अथवा नीचे राज्य स्तर तक सत्ता और शक्ति का विकेन्द्रीकरण, आदि का विरोध कई व्यावहारिक परेशानियो के आधार पर किया जा सकता है परन्तु इसे तब तक पृथकतावादी नही माना जा सकता जब तक कि इसे राज्य की शेष जनता के विरूद्ध शत्रुताभाव से सामने नही रखा जाता। पृथकतावाद का मामला तब हमारे सामने आता है जब एक राज्य अथवा क्षेत्र के हितो को पूरे देश अथवा दूसरे क्षेत्रो या राज्यो के विरूद्ध प्रस्तुत करने की कोशिश की जाती है और ऐसे तथाकथित हितो के आधार पर सघर्ष को प्रोत्साहित करने की कोशिश की जाती है।

पार्थक्यवादी विचारधारा भारत मे तभी फल–फूल सकती थी, जब किसी क्षेत्र अथवा राज्य को यह महसूस होता है कि उसके ऊपर सास्कृतिक वर्चस्व या भेदभाव आरोपित करने की कोशिश की

जा रही है। सेलिग हैरिसन नामक अमरीकी विद्वान और पत्रकार ने 1960 मे अपनी प्रसिद्ध कृति 'इडिया–द मोस्ट डेजरस डीकेड्स' मे भारतीय एकता पर बहुत बडे खतरे की बात कही, क्योकि उनके अनुसार राष्ट्रीय सरकार और क्षेत्रो के बीच सघर्ष का एक वास्तविक खतरा क्षेत्रो द्वारा अपनी अलग सास्कृतिक पहचान के लिये दबाव डालने के कारण पैदा हो रहा था। परन्तु नेहरू के शब्दो मे दरअसल भारत देश भारतीय सास्कृतिक विभिन्नता को न केवल अपने अदर समाहित करने बल्कि उन्हे गौरव की वस्तु बनाने मे काफी सफल रहा है। भारत के विभिन्न सास्कृतिक क्षेत्रो की अपनी पूर्ण सास्कृतिक स्वायत्तता रही है और अपनी सास्कृतिक महत्वाकाक्षाओ की सतुष्टि पूरी तरह उनके अधिकारो के अन्तर्गत ही है। भारत का भाषाई पुनर्गठन और राजभाषा विवाद के समुचित समाधान ने इस मामले मे बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है , इसने इनके सास्कृतिक ह्रास या सास्कृतिक वर्चस्व की भावना को समाप्त कर अतर्क्षेत्रीय सघर्षों के एक बहुत बडे कारण का उन्मूलन कर दिया।

निश्चय ही कई क्षेत्रीय विवाद अभी बने हुए है और ये राज्यो के बीच शत्रुतापूर्ण भावना को हवा देने की क्षमता भी रखते है। नदी जल बटवारे को लेकर कई राज्यो के बीच तीखे विवाद पनप चुके है। जैसे–तमिलनाडु और कर्नाटक, कर्नाटक और आन्ध्र, पजाब– हरियाणा और राजस्थान आदि राज्यो के बीच झगडे इसके उदाहरण है। भाषाई राज्यो के निर्माण के फलस्वरूप कई राज्यो के बीच सीमा विवाद पैदा हुए है , जैसे–बेलगाम और चण्डीगढ सम्बन्धी विवाद। बिजली एव सिचाई के लिये बडे बाधो का निर्माण भी राज्यो के बीच विवाद और सघर्ष की परिस्थितिया पैदा करता है। परन्तु जहॉ एक तरफ ये सघर्ष लम्बे समय तक बने रहते हैं और समय–समय पर उत्तेजना पैदा करते है, वही दूसरी तरफ सम्पूर्ण रूप से देखा जाय तो सकीर्ण और यहा तक कि स्वीकार्य सीमाओ मे निहित रहे है और अधिकाशत केन्द्र सरकार ऐसे विवादो मे मध्यस्थ की भूमिका निभाने मे सफल रही है। हालाकि इसके कारण कभी–कभी एक या दूसरे पक्ष का कोपभाजन भी इसे बनना पडा है, फिर भी तीखे अतर्क्षेत्रीय सघर्षों को रोकने मे इसे सफलता मिली है।

राष्ट्रीय एकता और समन्वय की दृष्टि से कही ज्यादा गम्भीर समस्या राज्यो और क्षेत्रो के बीच आर्थिक असमानता की समस्या रही है। पर असतोष उत्पन्न करने और राजनीतिक व्यवस्था पर भारी दबाव पैदा करने के बावजूद इस समस्या ने सामान्यतया अब तक किसी क्षेत्र मे पृथकतावाद की भावना उत्पन्न नही की है।

अखिल भारतीय स्तर पर क्षेत्रीय विषमताओ का दूर न हो पाने का मुख्य कारण आर्थिक विकास की निम्न दर रही है। विषमता उन्मूलन प्रभाव के लिये राष्ट्रीय विकास की उच्च दर एव उसके वितरण मे सामानता स्थापित करने की आवश्यकता होती है ताकि विशाल राजस्व इकट्ठा किया जा सके और उसे पिछडे क्षेत्रो के विकास पर बिना राष्ट्रीय विकास की दर को प्रभावित किये बढाया जा सके। जनसख्या की उच्च विकास दर के कारण भी देश की आर्थिक वृद्धि दर कमतर होती चली गयी। मात्र पिछले कुछ वर्षो मे ही यह सम्भव हो पाया है कि अर्थव्यवस्था की विकास दर 7 प्रतिशत तक पहुच गयी, जबकि जनसख्या वृद्धि की रफ्तार धीमी होने लगी है। अन्यथा यह 1970 के दशक तक 3 5 प्रतिशत और 1980 के दशक मे 5 प्रतिशत के करीब रही है। इसलिये हो

सकता है कि आने वाले दिनो मे हमे आर्थिक असमानता मे गिरावट देखने को मिले, बशर्ते क्षेत्रीय विकास के लिये सही नीतियो का पालन जारी रखा जाय। हम यह भी महसूस कर सकते है कि कुछ राज्यो के पिछडेपन का कारण बहुत हद तक उनके अपने आतरिक सामाजिक–आर्थिक और राजनीतिक सगठनो की निम्न कार्यकुशलता हो सकती है। इस स्थिति के लिये जिम्मेदार एक अन्य कारण कुछ पिछडे राज्यो मे राजनीतिक और प्रशासनिक तन्त्र का असफल हो जाना भी देखा जा सकता है।

विकास की असमान गति के कारण उत्पन्न क्षेत्रीय विषमता प्रत्येक राज्य के अन्दर भी विभिन्न जिलो के बीच दिखाई देती है। कई सदर्भों मे यह असमानता तनाव का स्रोत भी बन गयी है और उप क्षेत्रो मे भारतीय सघ के अन्दर अलग राज्य की माग को लेकर या उसी राज्य के अन्दर स्वायत्त क्षेत्र की स्थापना के लिये उसने भारी आन्दोलनो को भी जन्म दिया है। कई बार सिर्फ विशेष सहायता, रोजगार और शिक्षा के मामले मे विशेष सुरक्षा तथा अधिक वित्तीय ससाधनो के लिये भी आन्दोलन हुए है। इन उप–क्षेत्रीय भावनाओ का उदाहरण आन्ध्र प्रदेश मे तेलगाना, महाराष्ट्र मे विदर्भ, गुजरात मे सौराष्ट्र, मध्य प्रदेश मे छत्तीसगढ, उत्तर प्रदेश मे उत्तराचल और बुन्देलखण्ड, पश्चिम बगाल मे दार्जिलिग क्षेत्र या गोरखालैण्ड, आसाम मे बोडोलैण्ड तथा उडीसा मे पुराने रजवाडो के इलाके मे देखे जा सकते हैं।

मोटे तौर पर भारतीय सघ के अन्दर जनजातीय लोग अपने को सुरक्षित महसूस करते है जिसमे उनकी सास्कृतिक और आर्थिक स्वायत्तता बनी हुई है। हालाकि छोटे–मोटे अलगाववादी और विद्रोही आन्दोलन अभी चल ही रहे है और मध्य–पूर्व भारत की जनजातिया उतनी बढिया स्थिति मे नही है जितना कि पूर्वोत्तर भारत की जनजातिया है। यह गौर करना भी जरूरी है कि हर गुजरते हुए दिन के साथ जनजातीय लोगो की राजनीतिक शक्तिया और स्वय जनजातीय समूह पहले से ज्यादा सशक्त होते जा रहे है।

जैसा कि पहले प्रस्तुत किया जा चुका है, स्वभावत भाषा क्षेत्र और जनजातियो से सम्बन्धित सभी समस्याये अभी तक पूरी तरह सुलझी नही है। अन्य देशो के साथ हमारे अपने ऐतिहासिक अनुभव ने यह साबित कर रखा है कि तीव्र सामाजिक परिवर्तन लगातार बढते आपसी सघर्षों को जन्म देता है, क्योकि अक्सर ऐसे परिवर्तन असमान होते है और विभिन्न सामाजिक समूहो, क्षेत्रो और राज्यो को असमान रूप से प्रभावित करते हैं। यहा तक कि भाषा समस्या भी आने वाले सभी समयो के लिये नही सुलझायी जा सकी है और भविष्य मे भाषाई अहकारवाद एक गम्भीर खतरे के रूप मे सिर उठाने की क्षमता रखता है। प्रवासियो की समस्या, राज्य के प्रमुख भाषाई समूहो द्वारा भाषाई अल्पसख्यको को भेदभावपूर्ण व्यवहार करने तथा 'धरती के बेटे' दर्शन मे अब भी काफी विस्फोटक सम्भावनाये बची हुई है। क्षेत्रीय विषमता भी इस मामले मे कोई कम नही है।

भारतीय नेतृत्व ने यह बात साफ कर दी थी कि वे किसी भी प्रकार के अलगाववादी आन्दोलन को बर्दाश्त नही करेगे और देश के किसी हिस्से को अलग नही होने देगे। आवश्यक होने पर यथोचित शक्ति के साथ ऐसे आन्दोलनो को कुचल डालेगे। उसी समय यह भी कहा गया कि

कोई भी उचित माग, जो सविधान के मूल ढॉचे के अन्दर और विशाल आबादी द्वारा समर्थित हो, जिसके समर्थन की पुष्टि चुनावो और अहिसक आन्दोलनो द्वारा की जा चुकी हो, उस पर सहानुभूतिपूर्वक विचार किया जायेगा और जहा तक सम्भव हो, उसे मान लिया जाएगा।

भारतीय नेतृत्व द्वारा यह महसूस किया जाना भी महत्वपूर्ण है कि भारतीय एकता को प्रोत्साहित और सुरक्षित रखने के लिये मजबूत और शक्तिशाली राज्य एव केन्द्रीय सरकार आवश्यक है। एक शक्तिशाली केन्द्र ही राज्यो का भाषाई आधार पर पुनर्गठन कर सकता था जबकि राज्यो मे शामिल किये जाने वाले इलाको के ऊपर भारी विवाद चल रहा था। सिर्फ मजबूत राष्ट्रीय सरकार ही भारत की सास्कृतिक बहुलता को बनाये रख सकती है और सास्कृतिक, जनजातीय, भाषायी एव अन्य अल्पसख्यक तथा आतरिक प्रवासियो को राज्य के वर्चस्वकारी सामाजिक समूह तथा राज्य सरकारो के भेदभावपूर्ण व्यवहार से बचा सकती है, साथ ही भारतीय नागरिको के देश के विभिन्न भागो मे जाने–आने की गारन्टी दे सकती है।

एक मजबूत राष्ट्रीय सरकार ही क्षेत्रीय विषमताओ को दूर करने के लिये आर्थिक एव अन्य कदम उठा सकती है, खासकर जबकि इनमे केन्द्रीय ससाधनो और निवेशो के आवटन, उद्योगो के स्थान निर्धारण तथा निजी क्षेत्रो द्वारा निवेश के लिये निर्देशो और प्रलोभनो का प्रश्न जुडा हुआ हो। पिछडे राज्यो मे आर्थिक विकास की दर तीव्र करने, समृद्ध राज्यो से गरीब राज्यो को ससाधनो के हस्तान्तरण और श्रमिको की बहुलता तथा गरीब इलाको से श्रमिको के अभाव वाले क्षेत्रो की तरफ प्रवाह को प्रोत्साहित करना शक्तिशाली केन्द्रीय हस्तक्षेप के बिना सम्भव नही है। जनजातियो को समाप्त होने से बचाने, समाज के गैर जनजातीय तबकों द्वारा उनको शोषण से बचाने तथा जनजातीय लोगो को अपने तरीको और रफ्तार से विकसित होने देने के लिये भी मजबूत राष्ट्रीय सरकार अनिवार्य है। सिर्फ शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार ही ससाधनो के लिये युद्ध तत्पर राज्यो के बीच मध्यस्थता के योग्य हो सकती है।

इस मामले मे गलतफहमियो को दूर करने के लिये यह समझ लेना बहुत जरूरी है कि शक्तिशाली राज्य का अर्थ निरकुश राज्य नही होता है। न ही शक्तिशाली राष्ट्रीय सरकार का अर्थ कमजोर राज्य स्तरीय सरकारे होती है जो सविधान के सघीय प्रावधानो को ताक पर रखकर काम करे। सघवाद का अर्थ कमजोर राष्ट्रीय सरकार नही होता। इसका अर्थ होता है, हावी न होने वाली ऐसी राष्ट्रीय सरकार जो राजनीति के सघीय ढॉचे की अवहेलना न करे। यह राज्यो के मजबूत बनने की प्रक्रिया को राष्ट्रीय सरकार के लिये समर्थन के रूप मे देखे। इसलिये एक विकासशील देश मे एक राष्ट्रीय जनसत्ता के लिये जनवादी परन्तु शक्तिशाली सरकार, जिसमे सघीय विशिष्टताये हो, बहुत आवश्यक है।

यही कारण था कि स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान हमारे समाज ने एक ऐसी राजव्यवस्था की स्थापना का सपना देखा था जिस पर जनता का अकुश होगा तथा जिसकी रचना एव सचालन मे जनता की अधिकतम् सहभागिता होगी। इसीलिये भारतीय जनता ने सुदूर लदन मे स्थापित बिट्रिश ससद एव अतिनिकट स्थित देशी राजवशो को समान रूप से अस्वीकार किया। एक मे आधुनिक

अन्यायो की बहुलता थी और दूसरे मे पम्परागत स्वच्छन्दता का दोष था। स्वाधीनोत्तर सविधान ने प्रत्येक वयस्क भारतीय की राजनीतिक समानता तथा मौलिक अधिकारो की गारन्टी की बुनियाद पर गतिशील सघात्मक ससदीय जनतन्त्र की स्थापना की शुरूआत की, लेकिन विगत दिनो मे हुए आर्थिक–राजनीतिक परिवर्तनो से इस स्वरूप की कई कमिया सामने आ चुकी है। अत भारतीय गणतन्त्र की शासन व्यवस्था को स्वाधीनता आन्दोलन के सकल्पो तथा एक प्रगतिशील जनतन्त्र के सिद्धान्तो के अनुकूल बनाने के लिये पुनर्गठित करना आवश्यक हो गया है। क्योकि क्षेत्रीय विफलता तथा सास्कृतिक अस्मिता की सयुक्त चेतना से भारतीय राष्ट्र की अब तक की केन्द्रोन्मुख परिभाषा को सीमात प्रदेशो, तटीय प्रदेशो तथा मध्य देश के क्षेत्रो मे आत्मसात् नही किया जा सका है। अत केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति को त्यागते हुये एक विकेन्द्रित राज्य सरचना की तरफ कदम उठाने की जरूरत है। भारतीय राष्ट्रीयता की नयी जरूरतो के अनुकूल हमारी प्रशासनिक व्यवस्था के पुनर्गठन के प्रति उन्नत नयी राष्ट्रीय सहमति को क्रियान्वित किये बिना हम राष्ट्र निर्माण की दिशा मे उत्पन्न अवरोधो का निराकरण नही कर सकते।

वर्तमान मे उन अनेक क्षेत्रो मे जो पुनर्गठन के वक्त अपने मूल राज्यो से जुडे थे, वहॉ अलग राज्य की माग हो रही है। दरअसल देखा जाय तो इसके कारण, राज्यो के निर्माण और उसकी विकास नीति के गर्भ मे ही मौजूद रहे है। 1956 मे भाषा के आधार पर राज्यो का पुनर्गठन कर इसे समस्या का इति श्री मान लिया गया। बाद मे यह भाषाई पुनर्गठन पर्याप्त साबित नही हुआ और इसकी सीमाये उजागर होने लगी। क्षेत्रीय विषमता से प्रभावित समूहो का असन्तोष और उपभाषा (बोली) का प्रभाव उजागर होने लगा। इसका मुख्य कारण अग्रेजी राज के बाद भी उसी शैली पर देश मे शासन एव विकास की प्रक्रिया को स्थापित करना रहा है।

असतोष का दूसरा कारण अदूरदर्शितापूर्ण गठित राज्यो मे आन्तरिक समरसता का अभाव है। क्योकि इनमे स्थानीय अस्मिता और परम्परा अलग–अलग प्रकार की रही है। यही कारण है कि भाषायी आधार पर राज्यो का गठन हो जाने के बावजूद छत्तीसगढ, उत्तराखण्ड और झारखण्ड की जनता भोपाल, लखनऊ और पटना से मानसिक तौर पर जुड नही सकी। यही उप–सास्कृतिक भिन्नता अति लघु राज्य बन जाने के बाद भी पूर्वोत्तर के राज्यो मे है। यहॉ भिन्नता छोटे कबीलो के स्तर पर है, जहॉ सात राज्य बन जाने के बावजूद इन लघु इकाइयो के अन्दर और भी मौजूद उपध ााराये, जो वर्तमान केन्द्रीकृत शासन की नीति मे अपने आपको समायोजित नही कर सकी है, मे और छोटे स्तर के क्षेत्रीय हित समूह समय पाकर अपने को अलग करने का आन्दोलन चलाते रहे हैं।

इसके साथ ही आकार की दृष्टि से भी देखा जाय, तो छोटे और बडे राज्यो मे गहरी असमानता है। क्षेत्रफल की दृष्टि से देश के तीन सबसे छोटे राज्य गोवा, सिक्किम और त्रिपुरा है जिनका क्षेत्रफल क्रमश 3702 वर्ग किमी0, 7096 वर्ग किमी0 और 10486 वर्ग किमी0 है। जनसख्या की दृष्टि से सबसे कम आबादी वाले राज्य सिक्किम, मिजोरम और अरूणाचल प्रदेश है जिनकी आबादी क्रमश 5 4 लाख, 8 9 लाख और 10 9 लाख है। दूसरी ओर क्षेत्रफल की दृष्टि से बडे आकार वाले तीन राज्य राजस्थान, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र है जिनका क्षेत्रफल क्रमश 3 42,239 किमी0^2,

3,08,000 किमी0^2 और 3,07,713 किमी0^2 है तथा जनसख्या की दृष्टि से तीन सबसे बडे राज्य उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र और पश्चिम बगाल है जिनकी आबादी क्रमश 16 6 करोड, 9 68 करोड और 8 2 करोड है।

स्पष्ट है कि इस बहुकोणीय समस्या से निबटने के लिये ऐसी नीति अपनाये जाने की आवश्यकता है, जो लोकतन्त्र और सघीय सरकार को मजबूत करने के साथ समस्या का स्थाई निराकरण प्रदान करे तथा हर क्षेत्र के असन्तोष को दूर कर सके। इसके लिये एक बहुआयामी प्रक्रिया अपनाने की जरूरत है– तृणमूल स्तर पर सत्ता के हस्तान्तरण से विकास की दिशा बदलना, केन्द्र राज्य सम्बन्धो की व्यापक दृष्टिकोण से समीक्षा करना तथा आवश्यकता पडने पर राज्यो के विभाजन पर पुनर्विचार करना शामिल है।

स्वत्तन्त्रता का अर्थ पिछले लगभग 55 वर्षों मे आम आदमी के पक्ष मे कितना रहा है इसे देश मे सुरसा के मुह सी बढती हुई बेरोजगारी और भ्रष्टाचार से होते हुये पजाब, असम, बोडो, झारखण्ड, कश्मीर और पृथक राज्य आन्दोलनो के रूप मे समझा जा सकता है। देश भर मे हो रहे विभिन्न आन्दोलनो के अभिप्रेत मे बदहाल साधारणजन की आत्मा का विद्रोह ही परिलक्षित होता है। यहा उल्लेखनीय है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद 1956 मे राज्य पुनर्गठन आयोग ने भाषा को आधार बनाकर राज्यो के पुनर्गठन की जो व्यवस्था दी, उससे भविष्य मे भाषावार प्रान्त बनाने की माग को लेकर हिसात्मक आन्दोलनो की भूमिका तैयार हो गई। गोरखालैण्ड, बोडोलैण्ड, झारखण्ड व हाल ही मे उत्तराचल आन्दोलन (राज्य गठन के पूर्व) खूनी सघर्ष के जिस दौर मे पहुचे, उसके पीछे राजनेताओ द्वारा इन क्षेत्रो के निवासियो की निरन्तर उपेक्षा ही प्रमुख कारण रहा है। इन आन्दोलनो को बिना इनकी पृष्ठभूमि मे निहित तथ्यो के विश्लेषण किये ही पृथकतावादी या अलगाववादी कह देना अनुचित होगा। उचित तो यह है कि इन आन्दोलनो की रोशनी मे केन्द्र व सम्बन्धित राज्य सरकारो के बुनियादी चरित्र को पूरे राष्ट्र के परिप्रेक्ष्य मे देखा जाय, आज उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, असम, नागालैण्ड, मणिपुर, मिजोरम आदि सरीखे विभिन्न राज्यो के लोग किसी न किसी रूप मे अपने को आहत महसूस करते हुये ही आन्दोलित है। पूर्वोत्तर राज्यो के कुछ आन्दोलनो पर तो उग्रवादियो की पकड मजबूत हो रही है। नेशनलिस्ट सोशलिस्ट काउन्सिल ऑफ नागालैण्ड के प्रशिक्षण केन्द्र वर्मा व बॉग्लादेश मे है। मिजो नेशनल फ्रण्ट, त्रिपुरा वालेण्टियर फोर्स, यूनाइटेड लिबरेशन फ्रण्ट ऑफ असम (उल्फा) व बोडो सिक्योरिटी फोर्स काफी सगठित व उग्रवादी सगठन है। बाग्लादेश मे बढ रही गरीबी और अकाल के कारण बडी सख्या मे लोग पूर्वोत्तर राज्यो मे आ रहे है। स्थानीय लोगो मे इन विदेशी लोगो के खिलाफ भारी आक्रोश है। विदेशी के सवाल को लेकर 'आसू' ने लम्बे समय तक आन्दोलन चलाया था। अब इस आदोलन की डोर उल्फा व बोडो सिक्योरिटी फोर्स के हाथो मे है। बेरोजगार युवको को इन उग्रवादी सगठनो मे प्रमुखता से आश्रय मिलता है। सरकार का ढुलमुल रवैया व लचर नीति किसी भी मामले को सर से पानी गुजर जाने की हद तक पहुचाने की रही है। इस समय जिस दार्जिलिग स्वायत्त परिषद की स्थापना के बाद क्षेत्र मे शान्ति की आशा की जा रही थी, वही पुन अब पृथक गोरखालैण्ड की माग उठाने लगी है।

इसी प्रकार बोडो स्वायत्त सगठन का निर्माण जल्दबाजी मे कर दिया गया है, लेकिन उसका सीमाकन नही हुआ है। समर्पण करने वाले उग्रवादी पुन हथियार उठाने लगे है। इन लोगो को आसानी से विदेशी मदद व फिरौती मे देशी पैसा सहज ही मिल जाता है। इस प्रकार जहॉ पूर्वोत्तर राज्यो मे उग्रवाद की समस्या से निबटने के लिये आर्थिक विकास के दीर्घकालीन कार्यक्रमो की नितान्त आवश्यकता है, वही दूसरी ओर यह भी उतना ही विचारणीय है कि देश के अन्य राज्यो मे पृथक राज्य की माग कर रहे आन्दोलन कही उग्रवादियो के हाथो मे पहुचकर अलगाववादी रूख अख्तियार न कर ले।

देश के सविधान के भीतर नये राज्य की सकल्पना उत्तराचलवासियो या इसी प्रकार के अन्य पृथक राज्य के आन्दोलनकारियो के दिमाग की उपज मात्र नही है। इण्डियन स्टेच्युटरी कमीशन ने 1930 मे कहा था कि जो लोग एक ही भाषा बोलते है वे यदि ऐसा स्वावलम्बी क्षेत्र बना ले कि वह अपनी स्थिति और साधनो के बल पर पृथक प्रान्त की स्थिति को स्थिर रख सके तो इसमे सदेह नही कि एक भाषा का प्रयोग प्रान्तीय पृथकता का प्रबल और स्वाभाविक आधार माना जायेगा। अविभाजित कम्युनिष्ट पार्टी ने 1952 मे अपने घोषणा पत्र मे कहा कि राज्यो के पर्याप्त अधिकार होने चाहिये और उनके आत्मनिर्णय के अधिकार को भी उनमे शामिल किया जाना चाहिये। स्वय काग्रेस पार्टी ने 1953 मे कहा कि राज्यो के पुनर्गठन पर विचार करते हुये भारत की एकता, राष्ट्र की सुरक्षा और प्रतिरक्षा, सस्कृति एव भाषा, प्रशासनिक सुविधा, वित्तीय समस्याओ, आर्थिक समुन्नति इत्यादि सभी बातो को ध्यान मे रखा जाना चाहिये। यहॉ सवाल खडा होता है कि काग्रेस पार्टी अपनी इस राय और 1956 मे राज्य पुनर्गठन आयोग के सदस्य के0एम0पणिक्कर की उत्तर प्रदेश के विभाजन के पक्ष मे सोलह पृष्ठ की टिप्पणी लिखे जाने के बाद भी इस विषय पर मौन क्यो रही। यही नही, 1918 मे माण्टेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट मे साफ–साफ लिखा है कि यदि शासन की इकाइया छोटी और एकरूप होगी तो शासन का कार्य सम्पादित करना निश्चय ही सरल हो जायेगा।

यह स्वाभाविक ही है कि क्षेत्र विशेष की राष्ट्र से और राष्ट्र विशेष की विश्व भर से तकरार बनी ही रहती है। इस नजर से देखे तो क्षेत्रीय आन्दोलनो की पृष्ठभूमि मे एक कारण तो सदैव दिखाई देगा, वह है पहचान की लडाई। यह ऐसा प्राथमिक सवाल है जो कभी–कभी और सम्भवत सदैव भावनाओ को उद्वेलित करता है और तब यह सवाल और भी अहम् हो जाता है जब जनता की पहचान की लडाई के साथ आर्थिक स्वावलबन के सवाल भी हो।

इतिहास सदैव साक्षी रहा है कि दुनिया मे कुछ भी ऐसा नही है जो चिरस्थाई हो। गावो की, क्षेत्रो की, प्रान्तो की और यहा तक कि देशो की सीमाये बनती बिगडती रही है। विशाल एव शक्ति सम्पन्न सोवियत सघ का ताजा उदाहरण हमारे सामने है। अन्तरिक्ष से पृथ्वी हमेशा एक इकाई लगती है क्योकि वह समग्र रूप मे दिखाई देती है। लेकिन इसमे रहते हुये इसे अनुभव करेगे तो पता चलेगा कि इसमे गम्भीर अन्तर्विरोध पैदा करने वाले तत्व है। एक क्षेत्र का आदमी दूसरे क्षेत्र के आदमी के खिलाफ मुस्तैद है। शक्तिशाली राष्ट्र सदैव इस तिकडम मे है कि दूसरे देशो को कैसे पगु एव आश्रित बनाये रखा जा सके। इसके अलावा समय–समय पर राजनीतिक सीमाये और

परिभाषाये बदलने के लिये सदैव दबाव बना रहता है। तब यह प्रश्न विचारणीय हो जाता है कि क्या सविधान के दायरे मे रहकर पृथक राज्य की माग करना गलत है। शरीर मे भी असख्य अलग–अलग इकाइया है लेकिन इसके बावजूद शरीर एक है। इन अगो का एक दूसरे से सीधा सम्बन्ध है और एक का स्वस्थ्य होना दूसरे के स्वास्थ्य की गारन्टी भी है। देश के किसी भी क्षेत्र को अस्वस्थ्य बनाये रखकर क्या भारत की समग्र स्वस्थ्यता की कामना की जा सकती है ? विभिन्न क्षेत्रो मे अस्तित्व मे आये सामाजिक एव राजनीतिक परिवर्तनो के तहत नये दबाव और विरोधाभास भी उभरकर सामने आ रहे है। इन दबावो की तीक्ष्णता इतनी सवेदनशील है कि स्थानीय जनता के मन मे सवाल उभरने स्वाभाविक है। पूरे देश मे ऐसे सवाल पैदा हो रहे है लेकिन कुछ विशेष इलाको मे इसकी चुभन अधिक है।

विकास के लिये परिवर्तन आवश्यक है। बदलती हुयी परिस्थितियो मे यह महसूस किया जा रहा है कि विकास के लिये स्थानीय सस्थाओ को सशक्तीकृत कर प्रत्यक्ष लोकतन्त्र स्थापित किया जाये और यदि आवश्यक हो तो बडे राज्यो का आकार छोटा किया जाय। अलग राज्य मागना और देश से अलग होने की माग मे जमीन–आसमान का अन्तर है। राज्यो का प्रथम पुनर्गठन भी आजादी के बाद ही हुआ है। प्रशासन की जटिलताएँ बढने, आबादी की रफ्तार तेज होने जैसे कारणो के चलते आने वाले समय मे प्रशासनिक इकाइयो के स्वरूप भी बदलने पड सकते है। मुख्य धारा से जुडे लोगो को भी चाहिये कि वे जन–आकाक्षाओ पर आधारित ऐसे आन्दोलनो को अछूत की तरह न देखे। ऐसे क्षेत्रो और वहा रहने वालो की समस्याओ को समझे। उत्तराचल, वनाचल, छत्तीसगढ की स्थापना के बाद तेलगाना, विदर्भ, बुन्देलखण्ड, पूर्वांचल, उदयाचल, हरित प्रदेश और लद्दाख और इन्ही जैसे कुछ और नामो से चल रहे आन्दोलनो की पृष्ठभूमि मे विद्यमान तथ्यो को गहराई से समझने की आवश्यकता है। देश के सविधान के तहत मौजूदा राज्यो की सख्या बढायी भी जा सकती है। देश के सविधान के प्रति सम्मान के साथ अलग राज्य की उचित माग की जाती है तो राष्ट्रीय स्तर के राजनैतिक दलो द्वारा प्रथम दृष्ट्या इन्हे विघटन, विखण्डन और अलगाव के रूप मे परिभाषित नही करना चाहिए। इन पार्टियो को समझना चाहिये कि प्रवाह बने रहने मात्र का नाम अलगाव अथवा विखण्डन नही होता। झारखण्डी नेता शिबु सोरेन ने एक बार कहा भी था कि समय रहते सरकार नही चेती तो इन क्षेत्रो मे स्थिति पजाब या कश्मीर से भी अधिक गम्भीर हो सकती है। यह सच भी है , विश्व इतिहास साक्षी है कि अति दमन, शोषण और निरकुशता ने ही बडी–बडी क्रान्तियो और विद्रोहो को जन्म दिया है। हमारे कुछ राज्यो का क्षेत्र दर्जनो देशो से भी बडा है और उनकी आबादी तो उन्हे दुनिया के कई देशो से भी आगे रखती है। बडे राज्यो पर शासन करना एक जटिल कार्य होता है। उत्तर प्रदेश जैसे राज्य मे राजनीतिक माहौल सम्भवतया इसीलिये सदा डॉवाडोल रहा है। प्रदेश के रूहेलखण्ड और बुन्देलखण्ड आन्दोलन भी उत्तराचल आन्दोलन जैसे ही है। तेलगाना का आन्दोलन भी इससे हटकर नही है। इन आन्दोलनो को अफसरशाही एव भ्रष्टाचार के खिलाफ स्थानीय जनता की अभिव्यक्ति के अलावा और किसी रूप मे नही देखा जाना चाहिए।

हमारी राज्य व्यवस्था को राजनीतिक, आर्थिक एव प्रशासनिक के साथ ही सास्कृतिक धरातल की जरूरत है। स्वाधीन शासन मे सस्कृति की सक्रिय भूमिका से परस्पर सहमति की आधारशिला बनती है। राज्यो मे गाव पचायत, क्षेत्र पचायत तथा ।जेला इकाई को ज्यादा सशक्त बनाये बिना ससदीय जनतन्त्र की मौजूदा विकृतियो का कोई समाधान नही हो सकता। इसलिये विराट राज्यो वाले बहुत बोझिल केन्द्र के बजाय जीवत सास्कृतिक आधार पर राज्यो के विकास की योजना बनाना एक सवेदनशील राजसत्ता की स्थापना मे योगदान करेगा। इससे आतरिक उपनिवेशवाद की आशाकाये भी निर्मूल की जा सकती है और क्षेत्रीय विषमता तथा सास्कृतिक अस्मिता से जुडे प्रश्नो का भी सतोषजनक उत्तर ढूढा जा सकता है।

दूसरे शब्दो मे, हमारी राष्ट्र निर्माण प्रक्रिया का केन्द्रोभिमुख विकास पर्याप्त मात्रा मे हो चुका है जिसे अब विकेन्द्रीकरण की दिशा मे परिवर्तन करना चाहिये। इसके लिये राजनीतिक सत्ता तथा आर्थिक शक्ति को राज्यो के जरिये गावो एव जिलो तक पहुचाना होगा। लोगो की सक्रियता, हिस्सेदारी और परस्पर सहयोग का माहौल बनाने के लिये कोई और रास्ता नही हो सकता। इससे विमुख होना भारतीय राष्ट्रीयता को विखण्डित करने के लिये जरूरी उदासीनता, अलगाव और परस्पर तनाव को बढावा देना ही सिद्ध हो रहा है।

देश मे अनेक वर्तमान राज्य बहुत बडे हैं और इनका समुचित प्रबन्ध नही हो पाया है। वे अपने जातीय–सास्कृतिक समुदायो की आकाक्षाये पूरी नहीं कर पाए है। उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश और कर्नाटक जैसे राज्यो मे तो यह बात खासतौर से लागू होती है। इनमे कई राज्यो मे बडी सख्या मे जनजातीय लोग रहते है। अगर राज्य मे एक ही भाषा बोली जाती हो तो भी कृषि–जलवायु क्षेत्र अलग–अलग हो सकते हैं। इनका बेहतर प्रबन्ध विकेन्द्रीकरण से ही हो सकता है। ऐतिहासिक कारणो से इन क्षेत्रो का असमान विकास हुआ है। आजादी के बाद ये असन्तुलन बरकरार रहे है और कही–कही तो बढे भी हैं। इनकी वजह है गलत आर्थिक नीतिया और विघटनकारी मुद्दो का नाजायज फायदा उठाने की राजनीतिक दलो की प्रवृत्ति। इन सभी कारणो से देश भर मे अनेक आन्दोलन पनपे हैं। तृणमूल स्तर से प्रत्यक्ष जनतात्रिक व्यवस्था के सुदृढीकरण तथा सविधान की व्यवस्था मे रहते हुए विकास की आवश्यकतानुसार छोटे राज्यो के निर्माण से कई लाभ की आशा की जा सकती है। यथा– विकास की क्षेत्रीय जरूरतो पर आवश्यकतानुरूप तुरन्त निर्णय लेकर लागू किया जा सकता है, लोगो को अपना विकास स्वय करने का अधिकार प्राप्त होने से स्थानीय सभ्रान्त जन, अपने विकास की राजनीति मे ज्यादा महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकेगे, ऐसा करने से प्रशासन बेहतर हो सकेगा, एक ही भाषा–भाषी राज्यो की सख्या ज्यादा होने पर भाषा के आधार पर तोडने की राजनीति का असर घटेगा।

मुख्य बात है कि राज्यो के पुनर्गठन मात्र से नये राज्यो की स्वायत्तता बढ नही सकेगी और निश्चित रूप से, यह तो नही कहा जा सकता कि बिना ज्यादा स्वायत्तता के छोटे राज्य बनाने की खास सार्थकता होगी। पूर्वोत्तर राज्य इस बात के स्पष्ट उदाहरण है। अत प्रथमत हमे राज्यो की ज्यादा स्वायत्तता पर बल देना चाहिये। वास्तव मे स्वायत्तता तो मात्र राज्य तक भी सीमित नही रहनी

चाहिये। इसे आगे बढाकर जिला परिषदो, प्रखण्ड मण्डल, पचायत और ग्राम सभाओ तक पहुचाया जाना चाहिये। यहा हमे उस मानसिक पूर्वाग्रह के प्रति भी सजग रहना जरूरी है जिसके तहत हम देश की राजनीतिक सरचना को राज्यो, जिला परिषदो, प्रखण्ड पचायतो और ग्राम सभाओ के रूप मे देखते है।

स्वदेशी की अवधारणा के आधार पर गाधी जी ने केन्द्रित वृत्तो वाली ऐसी राजनीतिक प्रणाली की कल्पना की थी जिसके केन्द्र मे व्यक्ति हो, इसके बाद पहला वृत्त परिवार और दूसरा गाव हो। इसके बाद के वृत्त जिला, राज्य और राष्ट्र है। यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि सकेन्द्रित वृत्तो वाली इस प्रणाली मे ऊँचाई का कोई आयाम ही नही है। इस तरह इसमे बडे–छोटे का पद–क्रम नही है। साथ ही, हर सकेन्द्रित वृत्त अपने आप मे स्वायत्त इकाई है। सम्भवत· ज्यादा स्वायत्तता के मुद्दे पर बहस सकेन्द्रित वृत्तो वाली इस व्यवस्था की कल्पना से शुरू की जा सकती है।

स्पष्ट है कि ऐसी प्रत्येक सरचना के अपने व्यापक और सुनिर्धारित स्वायत्त अधिकार होगे। स्पष्ट रूप से निर्धारित ऐसे अधिकार न होने पर यह खतरा बना रहेगा कि बडी राजनीतिक सरचनाये, कुछ समय बाद, छोटी सरचना के अधिकार हडप ले। आजादी के बाद केन्द्र–राज्य तथा राज्य–स्थानीय निकाय सम्बन्धो के विकास मे यह प्रवृत्ति चिन्ताजनक रूप से उभरी है। अत भविष्य मे पुनर्गठन के किसी भी प्रयास मे ऐसी कारगर सवैधानिक व्यवस्था होनी चाहिये, जिससे छोटी राजनीतिक सस्था शिखर सस्था से जारी विकास राशि की वाहक मात्र बनकर न रह जाये। हर छोटी सस्था के पास पर्याप्त वित्तीय ससाधन होना चाहिये ताकि वह नयी व्यवस्था मे मिली स्वायत्त शक्तियो का पूरी तरह उपभोग कर सके। क्योकि स्वायत्तता सभी जीवन पद्धतियो का मूलमन्त्र है। यह मूल मन्त्र अर्थव्यवस्था, राजनीतिक प्रणाली तथा समाज को सगठित करने के दिशा निर्देशक की भूमिका निभाता है और वस्तुत यही सिद्धान्त सभी मानवीय सिद्धान्तो का पथ–प्रदर्शक भी है। जब ऐसा नही होता तब सामाजिक जीवन बिखर जाता है, अर्थव्यवस्था शोषक के रूप मे सामने आती है और राजनीति हिसाजनक बन जाती है। मौजूदा भारतीय समाज मे यही सब देखने को मिल रहा है, बल्कि हालात इससे भी बदतर हो चले है। अब यह पूरी तरह स्पष्ट हो चुका है कि इसका समाधान केवल स्वायत्त व्यवस्था मे ही है।

क्षेत्रीय आधार पर स्वदेशी समाज की एकता कायम करना ही शायद सबसे अधिक सच्चा और व्यावहारिक लक्ष्य है। स्वायत्तता के ताने बाने मे गूथकर इस तरह की एकता नि सदेह ही कायम की जा सकती है। इस व्यवहारिकता के मायने अलग–अलग क्षेत्रो मे अलग–अलग हो सकते है। उदाहरण स्वरूप, राजनीतिक स्वायत्तता के मायने पचायतो को विधायी अधिकार सौपे जाने से लेकर नये राज्य की स्थापना तक भी हो सकते हैं। इसी तरह आर्थिक स्वायत्तता का अर्थ पचायतो को राजस्व वसूली अधिकार देने या मौजूदा राज्यो को अधिक वित्तीय स्वायत्तता प्रदान करना भी हो सकता है। यह भी सम्भव है कि स्वायत्तता के मायने इनमे से कुछ भी न हो या कुछ ऐसे हो जो इन सबसे अलग हो, जिनकी अब तक कल्पना भी न की गयी हो। स्वायत्तता का अर्थ व्यक्तियो या क्षेत्रो द्वारा अपने–अपने जीवन को सवारने के वास्ते अधिकार तथा आजादी को भोगने से है। इसमे

सभी कुछ अर्थात विज्ञान, धर्म, राजनीति, प्रोद्योगिकी, अर्थव्यवस्था इत्यादि शामिल है। स्वायत्तता तथा अन्य समकालीन आदर्शो एव विचारधाराओ मे सबसे प्रमुख अन्तर यह है कि स्वायत्तता की अवधारणा वस्तुत ताकत के इस्तेमाल को कम करने और अन्त मे इसे खत्म करने का प्रयास करती है।

राजनीति का क्षेत्रीयकरण निश्चित रूप से इस बात का सकेत है कि एकता की अवधारणा को आवश्यक रूप से पुन परिभाषित किया जाना चाहिये। सभी तरह की शक्तियो के केन्द्रीयकरण को तुरन्त समाप्त किया जाना चाहिये तथा राजनीतिक एकता को नया आधार प्रदान करने के लिये क्षेत्रीय अधिकारो को भी दोबारा परिभाषित किया जाना चाहिए। बहरहाल, यह स्वीकार करना ही होगा कि राजनीतिक सत्ता का सवाल चाहे कितना ही बडा नजर आता हो लेकिन वस्तुत यह एक बहुत बडी समस्या का छोटा सा पहलू है। सच तो यह है कि राष्ट्र के सम्पूर्ण जीवन के नये सिरे से निर्माण की आवश्यकता है।

ऐसे मे हमे विकेन्द्रीकृत व्यवस्था को सुदृढ करने की दिशा मे गहन विचार करना होगा। वास्तविकता तो यह है कि 1956 के पुनर्गठन मे जिन राज्यो को किसी वैज्ञानिक आधार पर मिलाया गया या अलग किया गया, उनमे विकास की गति अपेक्षाकृत उन राज्यो से अधिक रही है, जिन्हे यथावत रहने दिया गया था या जिनके पुनर्गठन के पीछे कोई वैज्ञानिक आधार नही था। भाषायी आधार पर बने चार राज्यो तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक व आन्ध्र प्रदेश ने हर क्षेत्र मे अपार उन्नति की है। पजाब के विभाजन द्वारा बने हिमाचल प्रदेश व हरियाणा का विकास राज्यो के पुनर्गठन को एक पुख्ता आधार प्रदान करता है। दूसरी ओर, जनसख्या व क्षेत्रफल मे बडे राज्यो उत्तर प्रदेश व मध्य प्रदेश की ओर देखे तो हर क्षेत्र मे पिछडेपन के ही दर्शन होते है। उत्तर प्रदेश को ही ले तो यहा पहले 52 जिले थे अब 83 (उत्तराचल के गठन के बाद 70) हो गये है तथा कुछ और जनपदो की बारी है। बिहार मे पहले कुल 17 जिले थे अब 50 से अधिक हो गये हैं। जनपदो का गठन प्रशासनिक व्यवस्था के नाम पर किया जा रहा है। आबादी और मुख्यालय से दूरी इसका मुख्य कारण बताया जा रहा है, लेकिन यह सब चुनावी वादे के नाम पर हो रहा है। इन परिस्थितियो मे सत्ता को लोगो के समीप ले जाने जैसे महत्वपूर्ण राजनैतिक एव आर्थिक मुद्दे को कब तक लटकाये रखा जा सकता है।

यह सयोग मात्र नही है कि पृथक राज्यो के लिये आन्दोलन बडे प्रान्तो मे ही चल रहे हैं और यह भी मात्र सयोग नही है कि देश के सबसे कम विकसित प्रदेश मे ये बडे प्रदेश प्रमुख है। हमे यह सच्चाई स्वीकार करनी पडेगी कि बडे प्रदेश सुचारू रूप से शासित नही किये जा सके है। शासन का अर्थ केवल कानून–व्यवस्था की स्थिति बनाये रखना नही है। यह जरूर है कि शासन के लिये ऐसा होना आवश्यक है। लेकिन यहा पर हमारा अर्थ प्रशासनिक कार्यकुशलता से है। राज्य के सभी क्षेत्रो मे पर्याप्त और एक जैसा विकास भी इसमे आ जाता है। उत्तर प्रदेश इसका सबसे ज्वलत उदाहरण है। उत्तर प्रदेश यदि एक अलग देश भी होता तो दुनिया का नौवॉ सबसे बडा देश होता। उत्तर प्रदेश ही क्यो ? देश के बडे राज्यो मे से सबसे छोटा राज्य भी करीब 100 देशो से बडा है। हमारे बडे प्रदेशो मे पृथक राज्य की स्थापना के आन्दोलन सम्भवतया इन प्रदेशो के विशाल

आकार का नतीजा है। इन राज्यो मे अधिसख्य लोग अलग राज्य चाहते हैं। इसीलिये यह तथ्य विचारणीय हो जाता है कि क्या आज के सदर्भ मे हमे राज्यो के पुनर्गठन की एक और आवश्यकता है?

इस कार्य के लिये निश्चित रूप से दूरदर्शी विचारवान और विवेकशील व्यक्तियो के समूह की जरूरत है, जो देश के राज्यो का कारगर पुनर्गठन तय कर सके। अध्ययन करके यह तय किया जा सकता है कि किन राज्यो के विभाजन की वास्तविक आवश्यकता है। ऐसा करते समय इस तथ्य पर ईमानदारी से विचार किया जाना चाहिये कि छोटे राज्यो का सचालन ठीक–ठाक ढग से चलाने की हम क्या नई व्यवस्था करेगे।

पूर्वोत्तर के लघु राज्यो मे जहॉ कबीलाई स्तर पर अत्यन्त छोटी अस्मिताये विद्यमान है, पूर्ण स्वायत्तशाषी निकायो का गठन करके वहॉ के लोगो को अपने क्षेत्र के विकास के बारे मे फैसला लेने का अधिकार दिया जाना चाहिये। यदि इस प्रकार की अस्मिताये अन्य राज्यो मे मौजूद हो तो स्वायत्तशाषी निकायो की स्थापना वहा भी होनी चाहिये एव सविधान मे वर्णित प्रावधानो (इन कबीलाई स्तर पर उनकी सस्कृति से सम्बन्धित अनुसूची पॉच एव छ) को पूर्ण ईमानदारी के साथ लागू किया जाना चाहिये। इसके साथ ही इस सन्दर्भ मे सरकारी नीतियो के लिये कुछ व्यापक मार्गदर्शक सिद्धान्तो की स्थापना की जानी चाहिये। इनमे से कुछ सिद्धान्त निम्न हो सकते है –

(i) जनजातीय लोगो को अपनी बुद्धि और चेतना के अनुरूप विकास करने देना चाहिये, बाहर से कोई दबाव या जबरदस्ती नही की जानी चाहिये। गैर–जनजातीय लोगो को उनके पास श्रेष्ठता का अभियान लेकर नही जाना चाहिये। बल्कि यह समझ रखनी चाहिये कि देश की साझा सस्कृति और सामाजिक एव राजनीतिक जीवन के उदय मे जनजातियो की भी बराबर की हिस्सेदारी होनी चाहिये।

(ii) भूमि और वन पर जनजातीय अधिकारो का सम्मान किया जाना चाहिये और उनकी कबीलाई जमीनो को बाहरी लोगो के अधिकार मे किसी भी हालात मे नही पहुचने देना चाहिये। आमतौर पर जनजातीय क्षेत्रो मे बाजार की शक्तियो के हस्तक्षेप को कडाई से नियन्त्रित करना चाहिये।

(iii) जनजातीय भाषाओ को प्रोत्साहन देने के लिये हर प्रकार से सम्भव समर्थन देना चाहिये और उन परिस्थितियो की सुरक्षा करनी चाहिये जिनमे उनका विकास हो सके।

(iv) प्रशासन की जिम्मेदारी स्वय जनजातीय लोगो को देना चाहिये इसलिये प्रशासको की भर्ती उन्ही लोगो के बीच से कर, उन्हे प्रशिक्षित किया जाना चाहिये। जहॉ तक सम्भव हो सके कम से कम बाहरी लोगो को जनजातीय क्षेत्रो मे प्रशासक के रूप मे भेजा जाना चाहिये और यदि भेजा भी जाए तो उनका चुनाव बहुत सावधानी से किया जाना चाहिये।

(v) जनजातीय क्षेत्रो पर अति प्रशासन नही होना चाहिये और यह प्रयास होना चाहिये कि उन पर प्रशासन और उनका विकास जनजातीय सामाजिक और सास्कृतिक विचारो एव सस्थानो के माध्यम से ही ज्यादा से ज्यादा हो।

जो लोग छोटे राज्य के विचार का विरोध करते है वे आमतौर पर चार तर्क देते है राज्यो की सख्या बढाने से देश के विखण्डन की आशका बढेगी। यदि छोटे राज्य होगे तो केन्द्र सर्वशक्तिमान और तानाशाह हो सकता है। अधिक राज्यो के होने का मतलब होगा अधिक अतर्राज्यीय विवादो की उत्पत्ति और प्रशासनिक खर्चों मे वृद्धि होने से आम जनता पर ज्यादा बोझ।

भावना से ऊपर उठकर अगर इन तर्कों का विश्लेषण करे तो पता लगेगा कि ये तर्क न तो तथ्यो पर आधारित नही जान पडते। पुराना असम–नेफा आज सात राज्यो मे विभाजित है पर उस पर कोई बोझ नही बढा है। आज का पजाब मूल पजाब का एक तिहाई हिस्सा मात्र है। देश के प्रगतिशील राज्यो मे से पजाब के एक हिस्से को अलग करके जब हरियाणा बनाया गया तब यह धारणा बनी थी कि यह राज्य आर्थिक रूप से टिकाऊ साबित नही होगा, नतीजतन टूट जायेगा। आज हरियाणा खुशहाल है।

यह तर्क भी समझ से परे लगता है कि अगर वर्तमान 25 या 28 राज्यो के बदले देश मे चालीस या पचास राज्य हो तो केन्द्र खतरनाक रूप से शक्तिशाली हो जायेगा। सच तो यह है कि छोटे राज्यो मे सत्ता का अधिक विकेन्द्रीकरण हो सकेगा, अधिक लोकतन्त्र होगा और जनता की भागीदारी से प्रशासन पर अकुश भी लगा रहेगा।

जहॉ तक अन्तर्राज्यीय विवादो का सवाल है यह अतिरजित भय है। यानी मतलब यह हुआ कि कम राज्यो के होने से अन्तर्राज्यीय विवाद नही होगे। यदि इसी दृष्टि से देखा जाय तो कावेरी जल–विवाद को सुलझाने का एकमात्र रास्ता कर्नाटक और तमिलनाडू का विलय करने से होगा। ऐसा समाधान सम्भवतया किसी को भी आज की परिस्थितियो मे स्वीकार्य नही होगा। वस्तुत अतर्राज्यीय विवादो को निपटाने के लिये जरूरत है सविधान प्रदत्त अतर्राज्यीय परिषद को अधिक सक्रिय और शक्तिशाली बनाने की, ताकि यह परिषद ऐसे विवादो को हल करने मे सक्षम हो।

जहॉ तक प्रशासनिक खर्चों की बात है, उनमे वृद्धि स्वाभाविक है। यदि पुनर्गठन के साथ–साथ दीर्घगामी सुधार कार्यक्रम लागू किये जाय तो इसकी प्रतिपूर्ति की जा सकती है। खर्चें को कम करने के लिये दीर्घगामी सुधार योजना के तहत मन्त्रिमण्डल के आकार को छोटा रखने का सवैधानिक प्रावधान किया जाना चाहिए। विधान परिषद जैसी सफेद हाथी सस्थाओ तथा राज्यपाल के पद को वर्तमान स्वरूप मे भी समाप्त कर दिया जाना चाहिये। क्योकि राज्यपाल का पद एक अलकृत पद मात्र है और इसका दुरूपयोग भी तो हो रहा है। प्रत्येक राज्य मे एक राज्यपाल की अपेक्षा उत्तरी, दक्षिणी, पूर्वी, पश्चिमी क्षेत्रीय परिषदे गठित की जा सकती है। प्रत्येक परिषद का प्रमुख राज्यपाल को बनाया जा सकता है। इससे राजभवनो पर होने वाले खर्चों मे कमी की जा सकती है। यदि मात्र ये तीन सुधार लागू किये जाते है तो इनसे होने वाली बचत 20 नये राज्यो के बनने पर होने वाले खर्चें निकाल सकती है। उल्लेखनीय है कि क्षेत्र अध्ययन के अन्तर्गत किए गये एक प्रश्न के उत्तर मे 97% लोगो ने यह मत व्यक्त किया कि मत्रिमण्डल का आकार छोटा रखने का सवैधानिक प्राविधान होना चाहिए। 81% लोगो का मानना है कि वर्तमान स्वरूप वाले राज्यपाल का पद समाप्त करते हुए, क्षेत्रीय परिषदो का गठन कर उसका प्रभुख राज्यपाल को बनाया जाना

चाहिए। विधान परिषद समाप्त करने के सम्बन्ध मे पक्ष और विपक्ष का मत बराबर रहा है (परिशिष्ट 'च' का प्रश्न–9)।

छोटे राज्य बनने से बढने वाले खर्चों की अपेक्षा उससे होने वाले लाभ कही अधिक लगते है। छोटा राज्य होने से लोगो तक प्रशासन की पहुच सुविधाजनक ढग से होती है तथा सरकार द्वारा समय–समय पर जारी किये जाने वाले नियमो व कानूनो को आसानी से लागू किया जा सकता है। वैसे भी यदि किसी क्षेत्र मे अपने विकास, उन्नति व प्रगति की अपार उत्कठा है, तो उसे इसका अवसर मिलना भी चाहिये। किसी भी स्थान विशेष को स्वायत्त परिषद बनाने के बजाय उतने क्षेत्र विशेष को स्वायत्त राज्य का दर्जा देने मे कोई हानि नही है। देश की आजादी के बाद विभिन्न रियासतो के भारतीय सघ मे विलीन होने के फलस्वरूप जिस प्रशासनिक सुविधा को ध्यान मे रखकर राज्यो के पुनर्गठन का विचार किया गया था, उसी नीयत से राज्यो को व्यवस्थित करने और तार्किक परिणति तक पहुचाने के लिये भाषा, क्षेत्रीय अस्मिता, स्वायत्तता, क्षेत्रीय असन्तुलन, जन इच्छा, विकास की स्थिति, जनसख्या, क्षेत्रफल, प्रशासकीय सुविधा आदि को ध्यान मे रखकर तथा इन बिन्दुओ पर व्यापक परिप्रेक्ष्य मे उदारता से विचार कर अपनी अनुससा देने के लिये दूसरे राज्य पुनर्गठन आयोग को नियुक्त किया जाना चाहिये। तथापि, किसी भी प्रशासनिक इकाई के गठन के तीन मुख्य आधार होने चाहिये– (i) प्रशासनिक सुविधा, (ii) आर्थिक सक्षमता और (iii) भौगोलिक परिस्थितिया जिसकी पुष्टि क्षेत्र अध्ययन के अन्तर्गत किए गये प्रश्न–7 के सबध मे उत्तरदाताओ के द्वारा दिये गये उत्तर से होती है (परिशिष्ट 'च')। इसके अतिरिक्त यदि किसी भी अन्य मुद्दे को इसका मुख्य आधार बनाया जाता है तो वह पुनर्गठन नही विभाजन होगा, जो अब तक होता रहा है और जिसकी भूख बढती जा रही है। अत इस विभाजन को रोकने के लिये पुनर्गठन जरूरी है।

इस प्रकार क्षेत्रीयतावाद की भावना यदि सकारात्मक है तो वह देश के विकास के लिये लाभदायक है। साथ ही जब इसमे सकीर्णता या नकारात्मक भावना घुस आती है तो यह अपने पीछे अनेक दुष्परिणाम छोड जाती है जो राष्ट्रीय एकता के लिये घातक है। ऐसी स्थिति मे व्यक्ति क्षेत्रीय उन्नति के स्वार्थी दृष्टिकोण की ओर अधिक झुक जाता है और राष्ट्रीय उन्नति उसके लिये गौण वस्तु हो जाती है। जब एक क्षेत्र दूसरे क्षेत्र की तुलना मे अपने को खडा करने हेतु अपने क्षेत्र के निहित स्वार्थों के लिये सघर्ष करता है तो उससे उसकी अन्य क्षेत्रो से प्रतिस्पर्धा ही नही होती वरन् उससे तनाव भी बढ जाता है। जब प्रत्येक क्षेत्र इस बात को महत्व प्रदान करने लगता है कि उसका सम्पूर्ण कार्य उसकी क्षेत्रीय भाषा मे ही हो तो इससे राष्ट्रीय भाषा की प्रगति और विकास स्वत रूक जाता है। इस प्रकार की प्रवृत्ति अब सभी क्षेत्रो मे व्याप्त होने लगी है। इससे राज्य और केन्द्र सम्बन्ध ाे पर भी प्रभाव पडता है और उनके मध्य तनाव उत्पन्न होते है।

नकारात्मक क्षेत्रीयता जो पृथकतावाद का प्रथम चरण है, देश की एकता के लिए बडी चुनौती है। किन्तु, सकारात्मक क्षेत्रीयता स्वागत योग्य है, क्योकि यह समान भाषा क्षेत्र या ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य पर आधारित भाईचारा व एकता का प्रतीक है। यह अपने क्षेत्र, सस्कृति, भाषा आदि के प्रति प्रेम से सबद्ध राजनीतिक विशेषता है जो उनकी स्वतन्त्र पहचान बनाये रखने के लिये आवश्यक है।

अगर भौगोलिक, प्रशासनिक तथा विकास की दृष्टि से किसी क्षेत्र का स्वतन्त्र गठन आवश्यक हो तो इसमे किसी को कोई आपत्ति नही हो सकती। पुनर्गठन का यह कार्य वैज्ञानिक आधार पर, जहॉ पृथक राज्य की माग उचित हो वहॉ उनकी स्थापना प्रशासनिक कार्यकुशलता, क्षेत्रीय, सास्कृतिक और आर्थिक समरूपता के आधार पर करके लगभग सम–क्षेत्रीय आकार के राज्यो का गठन हो सकता है। इससे जहॉ उच्च सदन (राज्य सभा) मे लगभग सम प्रतिनिधित्व होने के कारण सघीय भावना को बल मिलेगा वही लोगो की उचित आकाक्षाओ की पूर्ति कर उग्र क्षेत्रीयतावाद के दुष्परिणामो से भी बचा जा सकेगा। इससे देश के सभी क्षेत्रो को विकास का समुचित अवसर उपलब्ध हो सकेगा। इसके साथ ही भविष्य मे क्षेत्रीयतावाद की नकारात्मक भावना का प्रसार न होने पाये इसके लिये विचारधारा के स्तर पर सघर्ष की जरूरत है। अत विचारधारा के स्तर पर क्षेत्रीयतावाद की भावना को कम करने के लिये निम्नलिखित उपायो का सहारा लिया जाना चाहिये।

1 स्थानीय सस्थाओ को सशक्तीकृत कर प्रत्यक्ष लोकतत्र स्थापित किया जाये। इसके लिये पचायती तत्र की तुलना मे ग्राम सभाओ को अधिक व्यापक अधिकारो से शक्ति सम्पन्न कर प्रत्येक स्थानीय व्यक्ति को अपने विकास का अधिकार दिया जाना चाहिए।

2 स्थानीय स्वशासी सरकारो को सत्ता का वास्तविक हस्तान्तरण किया जाना चाहिए। इसके लिये प्रान्तो तथा त्रिस्तरीय उप–प्रान्तीय सरकारो के मध्य समस्त राजनैतिक एव आर्थिक सत्ता का वैसा ही विधिसम्मत विभाजन किया जाना चाहिए जैसा सुस्पष्ट विभाजन केन्द्र एव राज्यो के मध्य है।

3 सरकार को अपनी आर्थिक नीतियो मे इस प्रकार परिवर्तन करना चाहिये कि सभी क्षेत्रो का विकास समरूप ढग से हो सके। सरकार का यह कर्तब्य है कि देश के सभी क्षेत्रो को चाहे वह छोटे हो अथवा बडे, उनके सामाजिक, आर्थिक विकास के लिये समान योजना एव समान सहायता के सिद्धान्त को अपनाये। ताकि किसी भी क्षेत्र के व्यक्तियो मे आर्थिक, सामाजिक एव राजनैतिक दृष्टिकोण से हीनता की भावना पैदा न हो।

4 राज्य सरकारे व योजना आयोग को आर्थिक क्षेत्र मे कुछ राज्यो या क्षेत्रो द्वारा किये गये खराब प्रदर्शन की जॉच करनी चाहिए और उचित निराकरण के लिए सुझाव देना चाहिए। इसके लिए योजना आयोग द्वारा स्पष्ट मानदण्ड निर्धारित किए जाने चाहिए, जिन्हे सारे देश मे समानता से अनुप्रयुक्त किया जा सके।

5 आर्थिक असन्तुलनो को दूर करने के लिए उन राज्यो के प्रशासनिक तन्त्र को सुदृढ किया जाए जिनमे ऐसे पिछडे क्षेत्र हो। कार्मिक व प्रशासनिक सुधारो के विभाग को ऐसे राज्यो के सगठनात्मक सरचनाओ की दुर्बलताओ का विशेष अध्ययन करना चाहिए और उनके सुधार हेतु मूर्त सुझाव देने चाहिए।

6 पिछडे क्षेत्रो के आर्थिक सुधार हेतु क्षेत्र विशेष के पर्यावरण एव ससाधनो और उनकी आवश्यकताओ के आधार पर विशेष परियोजनाए और कार्यक्रम बनाये जाने चाहिए, न कि पूरे देश के लिए एक योजना।

7 सभी क्षेत्रो के भाषा के विकास के लिये समुचित प्रबन्ध किया जाय, किसी भी भाषा को दूसरे भाषायी क्षेत्रो पर जबर्दस्ती लादा न जाय, बल्कि ऐसी पद्धति अपनायी जाय जिससे वह स्वय दूसरे क्षेत्र की भाषा को पढने और सीखने मे रुचि लेने लगे।

8 एक राज्य के विद्यार्थी को दूसरे राज्य की भाषा सीखने के लिये अधिक प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये।

9 विभिन्न क्षेत्रो की पुस्तको का अनुवाद दूसरी क्षेत्रीय भाषाओ मे होना चाहिये इससे क्षेत्रो के मध्य सद्‌भावना बढेगी।

10 राष्ट्रीय साहित्य का निर्माण इस दृष्टिकोण से किया जाय जिससे व्यक्तियो मे सद्‌भावना और प्रेम बढे। उन समस्त पुस्तको को जब्त कर लेना चाहिये जो देश मे साम्प्रदायिकता की भावना को बढाती है।

11 अल्पसख्यको के ऊपर हमे विशेष ध्यान देना चाहिये, क्योकि उनके अन्दर यह भावना उत्पन्न नही होनी चाहिये कि हम अल्पसख्यक है। इस प्रकार की भावना ही साम्प्रदायिकता की भावना उत्पन्न करती है।

12 अल्पसख्यको को दी जाने वाली विशेष सुविधाओ को समाप्त कर दिया जाना चाहिये, क्योकि सरकार जब अल्पसख्यको की आवश्यकता से अधिक सुविधाये प्रदान करना प्रारम्भ कर देती है तो, अन्य जातियो के अन्दर स्वत तनाव की भावना उत्पन्न होने लगती है। इसलिये अल्पसख्यको को विशेष सुविधाये नही प्रदान की जानी चाहिये बल्कि समान सुविधाये प्राप्त होनी चाहिये।

13 जातिवाद के आधार पर जो सस्थाये चल रही है उन्हे बन्द कर देना चाहिये। इस तरह के सगठनो पर प्रतिबन्ध लगाने से सक्रिय सगठन समाप्त हो जायेगे जो जातिवाद का विष समाज मे फैलाते ही नही है वरन् विभिन्न जातीय सगठनो मे लडाई–झगडे भी कराते है। इस वाद के आधार पर जो पक्षपात किया जाता है उसे समाप्त करने के लिये आवश्यक है कि दोषी व्यक्तियो को कडी सजा दी जाय।

14 व्यक्तियो मे बौद्धिक दृष्टिकोण का विकास करे जिससे कि विभिन्न समूहो के मध्य एकता स्थापित हो सके, क्योकि सवेग अधिक टिकाऊ नही होते। इसलिये बौद्धिक विकास का महत्व सवेगात्मक एकता से कही अधिक है।

15 विभिन्न क्षेत्रो/राज्यो के मध्य एकता स्थापित करने के लिये सास्कृतिक कार्यक्रमो का आदान–प्रदान किया जाना चाहिये। इससे परस्पर प्रेम की भावना बढेगी और क्षेत्रीय कटुता कम होगी।

16 केन्द्र तथा राज्यो की सरकारो मे ऐसे प्रबन्ध होना चाहिये कि अधिक से अधिक क्षेत्रो का प्रतिनिधित्व हो सके। इससे सरकार को अधिक से अधिक क्षेत्रो की समस्याओ का ज्ञान होता रहेगा।

17 सरकार इस बात का भी प्रयत्न करे कि अधिकारियो का तबादला एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्रो मे होता रहे। इससे किसी अमुख क्षेत्र से ही व्यक्ति का लगाव न हो सकेगा और इससे उसमे राष्ट्रीय भावना का जन्म होगा।

18 सरकार को चाहिये कि वह सम्पूर्ण देश के नागरिको के लिये एक सामान्य रहन–सहन का स्तर निश्चित करे ओर उसी को ध्यान मे रखकर प्रत्येक क्षेत्र को विकसित करने का प्रयत्न करे जिससे वहॉ के व्यक्ति उस निश्चित रहन–सहन के स्तर तक पहुच सके। इससे देश के सभी क्षेत्रो के नागरिको मे समानता की भावना का प्रसार होगा।

19 उत्तर–पूर्वी राज्यो मे जो विदेशी लोग अवैध ढग से घुस रहे है, उन्हे रोकने हेतु प्रभावी कार्यवाही की जानी चाहिये और जो लोग पहले ही अन्दर आ चुके हैं उनकी पहचान करनी चाहिये तथा उन्हे जब तक वैध रूप से भारत की नागरिकता प्रदान नही कर दी जाती तब तक मतदाता सूची मे से उनके नाम हटा दिये जाने चाहिये। जिन विदेशियो को वैध रूप से नागरिकता नही प्रदान की जाती उन्हे देश से निकाल देना चाहिये।

20 हिसक गतिविधियो के केन्द्र बने उन आर्थिक व सामाजिक रूप से पिछडे क्षेत्रो के विकास को गतिशील बनाने हेतु विशेष कदम उठाये जाने चाहिए।

21 उग्रवादी प्रवृत्तियो पर व्यवस्थित रूप से रोक लगाई जानी चाहिए तथा सभी उपलब्ध सचार–साधनो द्वारा एकता पर विशेष बल दिया जाना चाहिए।

22 जिस प्रकार से रीजनल इजीनियरिंग कालेजो मे 50 प्रतिशत स्थान अन्य राज्यो के विद्यार्थियो के लिये आरक्षित होते है और जिस प्रकार से उच्च न्यायालयो के एक तिहाई न्यायाधीश राज्य के बाहर के होते है, उसी प्रकार से राज्यो की सेवाओ और शिक्षा सस्थाओ मे भी पारस्परिक आधार पर कुछ प्रतिशत स्थान अन्य राज्यो मे रहने वाले व्यक्तियो के लिये आरक्षित होने चाहिये। इस प्रकार से भर्ती किये गये पदाधिकारियो तथा दाखिल किये गये विद्यार्थियो को नौकरी लेने या दाखिला लेने के पश्चात् उस राज्य की भाषा सीखनी चाहिये। इसके अतिरिक्त निजी उद्योगो मे भी अनेक सामाजिक वर्गों के विरूद्ध भेदभाव नही किया जाना चाहिये तथा निम्न स्तर की नौकरियो के लिये जहॉ तक सम्भव हो स्थानीय लोगो को ही लिया जाना चाहिये। सब नौकरियो को भी किसी एक समुदाय के वर्ग तक सीमित नही रखा जाना चाहिये।

23 बेरोजगारी की समस्या, विशेषकर पढे–लिखे लोगो की बेरोजगारी की समस्या का समाधान तुरन्त किया जाना चाहिये क्योकि 'भूमिपुत्र सिद्धान्त' का आन्दोलन चलाने के लिये स्वार्थी राजनीतिज्ञ तथा साम्प्रदायिक तत्व साधारणतया विद्यार्थियो का ही प्रयोग करते है।

24 कबायली क्षेत्रो मे कबायलियो को राज्य सरकार की आज्ञा के बिना उनकी भूमि से उन्हे वचित नही किया जाना चाहिये। साथ ही उनके सरक्षण एव बेहतरी हेतु किये गये सवैधानिक प्रावधानो को प्रभावी रूप से तुरन्त लागू किया जाना चाहिये।

25 पार्थक्यवादी भावना के प्रसार को रोककर राष्ट्रीय भावना के प्रसार और प्रचार करने का प्रयत्न करना चाहिये।

26 समाज मे ऐसी सस्थाओ एव सगठनो को स्थापित करना चाहिये जो विभिन्न क्षेत्रो मे राष्ट्रीय भावना का प्रसार करे और क्षेत्रीयतावाद का खण्डन करे।

27 सरकार ऐसे राजनीतिक दलो पर अकुश लगाये जो क्षेत्रीयतावाद की भावना को प्रोत्साहित एव प्रेरित करते है।

क्षेत्रीयतावाद के जन्म के कारण निश्चय ही महत्वपूर्ण है किन्तु क्षेत्रीयतावाद का महत्व केवल विघटनकारी शक्ति के रूप मे ही नही है। क्षेत्रीयतावाद यदि सतुलित विकास के सदर्भ मे है तो यह न्यायोचित है किन्तु, अगर यह देश से अलग होने का प्रयास है तो वह विघटनकारी साबित होता है। क्षेत्रीयतावाद का सकारात्मक रूप राष्ट्रीय एकीकरण का विरोधी नहीं है। क्षेत्रीय स्वायत्ता क्षेत्र के सन्तुलित एव सम्पूर्ण विकास के लिये सहयोगी तथा आवश्यक है। ऐसी क्षेत्रीय स्वायत्तता को सकारात्मक क्षेत्रीयतावाद कह सकते है। इसका विकास पर सकारात्मक प्रभाव पडता है। सकारात्मक क्षेत्रीयतावाद या क्षेत्रीय स्वायत्तता की भावना क्षेत्र के विकास पर जोर देती है और राष्ट्रीय एकीकरण पूरे राष्ट्र के विकास पर जोर देता है। यदि हम क्षेत्रीयतावाद और राष्ट्रीय एकीकरण के प्रतिद्वन्दी दावो का समाधान चाहते हैं तो देश की राजनीतिक प्रणाली को सघीय और प्रजातान्त्रिक ही बना रहना चाहिये। यह कहना असत्य है कि क्षेत्रीयतावाद के सभी रूप देश की एकता को भग करते हैं। वस्तुत दोनो देश की एकता तथा सकारात्मक क्षेत्रीयतावाद परस्पर पूरक हैं और उनका एक साथ अस्तित्व बना रह सकता है। इसलिए राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय हितो की सतुलित वृद्धि का प्रयास किया जाना चाहिए।

इसे (सकारात्मक क्षेत्रीयतावाद को) देश विरोधी समझकर राजशक्ति द्वारा दमित किया जाना गलत है, बल्कि इसके विपरीत इसके द्वारा एकता की खोज का समर्थन किया जाना चाहिए तथा इसमे अन्तर्निहित लोगो की महत्वाकाक्षाओ का आदर किया जाना चाहिए और इसे राष्ट्रीय एकता अर्थात् 'विभिन्नता मे एकता' के रूप मे देखा जाना चाहिए। देश का राजनीतिक विकास करने के लिए क्षेत्रीय स्वायत्तता की भावना को रोग न समझकर उसे रोग का निदान समझना चाहिए। स्वायत्तता की भावना इस दृष्टि से भी उपयोगी है कि इससे क्षेत्र के अधिकाधिक लोगो को निर्णय–निर्माण प्रक्रिया मे सहभागिता करने का अवसर मिलता है। इसके लिये ग्राम सभाओ को अधिक व्यापक अधिकारो से शक्ति सम्पन्न कर आम व्यक्ति के सूचना के अधिकार को सुनिश्चित करना होगा। इस प्रकार क्षेत्रीय स्वायत्तता अति क्रेन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति पर भी रोक लगाता है और इससे प्रशासन मे कुशलता आती है।

इसके अतिरिक्त यह भी समझना गलत होगा कि क्षेत्रीय दलो की सख्या बढने से देश की जनता को खतरा है। क्षेत्रीय दल मूलत पृथकतावादी नही होते, बल्कि वे केवल क्षेत्रीय आशाओ व महत्वाकाक्षाओ को अभिव्यक्त करते है और यह सोचना भी गलत होगा कि क्षेत्र से लगाव होना व स्थानीय हितो के लिए सघर्ष करना देश की एकता मे बाधक होगा। व्यावहारिक दृष्टिकोण से देखने पर ज्ञात होगा कि क्षेत्रीय दल केन्द्रीय सत्ता के लिए खतरा नही है। स्थानीय नेताओ को अपने क्षेत्र के लिए विभिन्न योजनाओ व कार्यक्रमो हेतु केन्द्रीय आर्थिक सहायता की माग करनी पडती है किन्तु वे अपनी मागो को राष्ट्रीय हितो के अनुकूल बना लेते हैं।

क्षेत्रीय स्वायत्तता की भावना राष्ट्रीय एकात्मकता का विघटन नही करती। बल्कि राष्ट्रीय एकात्मकता के लिये यह महत्वपूर्ण शर्त है कि राष्ट्रवाद विभिन्न प्रकार की क्षेत्रीय उप–राष्ट्रीयताओ पर अपना नियन्त्रण रख सके। आज का युग सहकारी सघवाद का युग है जो अधिकतम् क्षेत्रीय

स्वायत्तता पर आधारित होता है। यह स्वाभाविक है कि क्षेत्रीय समुदाय जो अपनी विशिष्ट सस्कृति के प्रति सचेत है, उन्हे सघीय सरकार के साथ अधिक समान साझेदारी के आधार पर व्यवहार करना चाहिए। इससे राष्ट्र मे केन्द्रित प्रवृत्तियॉ कम होगी और सत्ता केन्द्र से प्रदेशो की तरफ हस्तान्तरित हो जायेगी। क्षेत्रीयता की भावना विभिन्न वर्ग के लोगो की सामूहिक इच्छा की अभिव्यक्ति है और उनकी आवश्यकताओ व महत्वाकाक्षाओ को व्यक्त करती है। इस दृष्टि से क्षेत्रीय स्वायत्तता की भावना सत्ता के अति केन्द्रीयकरण के दोषो को दूर करती है। किसी भी रूप मे देखा जाय तो स्थानीय स्तर पर स्वायत्तता को सुनिश्चित किये बिना विकास की क्षेत्रीय विषमताओ के कारण उपज रहे असन्तोष को दूर नही किया जा सकता। इसीलिये भारत जैसे विशाल सघ मे जिसकी सस्कृति के मूल मे सदैव ही स्वशासन रहा हो, वहॉ स्थानीय स्वायत्तता प्रदान करना हमारी राष्ट्रीय प्राथमिकता होनी चाहिये। यह प्राथमिकता सत्ता के स्थानीय निकायो के स्तर पर विकेन्द्रीकरण से सुनिश्चित की जानी चाहिये , जहॉ पर यदि आवश्यक हो तो इसके (सघ मे सम्पूर्ण और सतुलित विकास के) लिये राज्यो के निर्माण एव उनके और अधिक सशक्तीकरण से बचना नही चाहिये।

परशिष्ट "क"
उत्तरांचल आन्दोलन : तिथिगत अवलोकन

1897

जून– अल्मोडा के राजकीय हाईस्कूल मे हुयी बैठक मे लिये गये निर्णय के बाद महारानी विक्टोरिया को भेजे पत्र से पर्वतीय क्षेत्र की पृथक 'राजनैतिक व सास्कृतिक पहचान को मान्यता दिलाने का पहला प्रयास हुआ।

1923

27 नवम्बर– धार्मिक, सास्कृतिक, ऐतिहासिक और राजनैतिक आधार पर उत्तराखण्ड को सयुक्त प्रान्त से अलग करवाने की मशा से दो दर्जन से अधिक लोगो के प्रतिनिधि मण्डल द्वारा सयुक्त प्रान्त के गर्वनर को सौपे ज्ञापन मे कहा गया कि 'सरकार को चाहिये कि कुमाऊ को शेष भारत से पृथक करने के लिये जल्द कदम उठाये'।

1928

– पहाड के लोगो ने उत्तराखण्ड को विशेष दर्जा दिये जाने की माग के आशय से "कुमाऊ एक पृथक प्रान्त" शीर्षक से लिखा स्मृति पत्र (आगरा अवध के) गवर्नर के मार्फत ब्रिटिश सरकार को दिया।

1929

– पहाड के कुछ प्रबुद्ध लोगो ने गर्वनर से भेट कर कुमाऊ के लिये अलग से प्रशासनिक व्यवस्था निर्धारण के कार्य हेतु एक ससदीय समिति के गठन की माग के साथ ज्ञापन दिया।

1938

5–6मई– श्रीनगर (गढवाल) मे आयोजित काग्रेस के विशेष सम्मेलन मे प0 जवाहर लाल नेहरू ने कहा कि "पर्वतीय अचल को अपनी विशेष परिस्थितियो के अनुरूप निर्णय लेने तथा अपनी सस्कृति सभ्यता और पहचान को समृद्ध करने का अवसर और अधिकार मिलना चाहिये।" परन्तु इस बयान के विरूद्ध प0 गोविन्द वल्लभ पत सहित अन्य प्रमुख नेता थे।

1946

– हल्द्वानी मे बद्रीदत्त पाण्डेय की अध्यक्षता मे आयोजित सम्मेलन मे उत्तर प्रदेश के पर्वतीय क्षेत्र के लिये अलग प्रशासनिक इकाई बनाने की माग की गई।

1947

– प0 हरगोविन्द पन्त ने ससद मे उत्तराखण्ड पृथक राज्य का प्रस्ताव रखा, किन्तु सयुक्त प्रान्त के प्रीमियर एव प्रभावशाली नेता प0 गोविन्द बल्लभ पन्त के इसका विरोधी होने के कारण उन्हे यह प्रस्ताव वापस लेना पडा।

1948

– बद्रीदत्त पाण्डे ने उत्तराखण्ड राज्य की माग को विचार के लिये राज्य पुनर्गठन आयोग के समक्ष रखा।

1950

– दिल्ली मे गठित पर्वतीय जन विकास समिति ने कागडा से लेकर अल्मोडा तक एक वृहद हिमाचल राज्य की माग की।

1952

– भारतीय कम्युनिष्ट पार्टी के महासचिव कामरेड पी0सी0 जोशी ने पृथक पर्वतीय राज्य के सिलसिले मे भारत सरकार को ज्ञापन दिया।

– पेशावर काड के नायक वीर चन्द्र सिह गढवाली ने प्रधानमत्री जवाहर लाल नेहरू के सम्मुख राज्य की योजना का प्रारूप प्रस्तुत किया।

1955

22 मई– दिल्ली मे सम्पन्न पर्वतीय जन विकास समिति की आम सभा मे उत्तराखण्ड को प्रस्तावित हिमाचल प्रदेश मे मिलाकर वृहद हिमाचल प्रदेश बनाने की माग की गई।

– कामरेड पी0सी0जोशी ने स्वायत्तशासी पर्वतीय राज्य की माग पर बल देते हुये सर्वदलीय सघर्ष समिति की स्थापना की लेकिन इसे विशेष सफलता नही मिली।

1956

– राज्य पुर्नगठन आयोग ने अपनी रिपोर्ट पृथक उत्तराखण्ड राज्य की स्थापना पर विचार तो किया किन्तु शीर्ष राजनीतिक दबाव की वजह से उत्तराखण्ड की सीमाओ को छुआ तक नही। आयोग के एक सदस्य के0एम0पणिक्कर ने अपनी 16 पृष्टीय टिप्पणी मे उत्तर प्रदेश के पुनर्गठन की बात की इसमे उत्तराखण्ड का अलग राज्य भी सम्मिलित था।

1957

– मानवेन्द्र शाह और द्वारिका प्रसाद उनियाल ने राज्य आन्दोलन को पुन उठाया।

19 नवम्बर– उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश एव पजाब के ससद सदस्यो ने योजना आयोग के अन्तर्गत एक पहाडी योजना समिति का सुझाव पहाडी क्षेत्र को विकासशील बनाने की वजह से दिया था , जिसे अस्वीकार कर दिया गया।

1960

– चमोली, उत्तरकाशी और पिथौरागढ जिलो को सरकारी गजट मे उत्तराखण्ड के रूप मे मान्यता मिली।

1966

अगस्त– रामनगर (नैनीताल) मे आयोजित गोष्ठी के बाद उ0प्र0 के पर्वतीय क्षेत्र की जनता की ओर से मानवेन्द्र शाह ने प्रधानमत्री को ज्ञापन दिया।

1967

10–11 जून– चन्द्रभान गुप्त की अध्यक्षता मे आयोजित काग्रेस के रामनगर सम्मेलन मे पृथक प्रशासनिक इकाई के लिये प्रस्ताव पारित कर उसकी रिपोर्ट सरकार को सौपी।

24–25 जून– दयाकृष्ण पाण्डे की अध्यक्षता मे आयोजित रामनगर सम्मेलन मे पर्वतीय राज्य परिषद का गठन कर पूर्ण राज्य हेतु ठोस शुरूआत की गई।

14–15 अक्टूबर– दिल्ली मे आयोजित 'उत्तराखण्ड विकास सगोष्ठी', मे केन्द्रीय मत्री अशोक मेहता की मौजूदगी मे मानवेन्द्र शाह ने उत्तराखण्ड की उपेक्षा का सवाल उठाकर केन्द्र शासित राज्य का दर्जा देने की बात उठायी। जिसे अशोक मेहता ने अस्वीकार कर दिया।

1968

– प्रधानमत्री ने पर्वतीय क्षेत्र के लिये पृथक नियोजन की बात स्वीकार की।

– अलग पर्वतीय राज्य की माग को लेकर ऋषिवल्लभ सुन्दरियाल के नेतृत्व मे प्रवासी सगठनो ने वोट क्लब पर प्रदर्शन कर गिरफ्तारी दी।

15 दिसम्बर– दिल्ली मे आयोजित पर्वतीय जन सममेलन मे उत्तराखण्ड राज्य की माग उठायी गयी।

1970

3 अक्टूबर– पी0सी0जोशी ने कुमाऊ राष्ट्रीय मोर्चा का गठन कर पृथक राज्य की माग को पुन उठाने के प्रयास किये।

1971

– उत्तराखण्ड राज्य परिषद का पुनर्गठन किया गया एव वोट क्लब पर सामूहिक धरने का आयोजन कर प्रधानमत्री को ज्ञापन प्रेषित किया गया।

1972

13–15 फरवरी– दिल्ली मे उत्तराचल राज्य के मुद्दे पर पृथक पर्वतीय राज्य परिषद का सम्मेलन हुआ।

7 जून– नैनीताल मे गठित उत्तराखण्ड परिषद के प्रस्ताव मे कहा गया कि पृथक पर्वतीय राज्य होने से ही इन आठ जिलो का सर्वांगीण विकास हो सकता है। एडवोकेट हरीशचन्द्र ढौढियाल ने उत्तराचल राज्य क्यो और कैसे ? नामक पुस्तिका भी प्रकाशित की।

– पृथक राज्य की माग को लेकर पूरन सिह डगवाल की अध्यक्षता व ऋषिवल्लभ सुन्दरियाल के नेतृत्व मे कार्यकर्ताओ ने वोट क्लब पर गिरफ्तारी दी।

1973

– पर्वतीय राज्य परिषद का पुनर्गठन हुआ। इन्द्रमणि बडोनी द्वारा पृथक पर्वतीय राज्य नामक पुस्तिका का प्रकाशन किया गया।

– दिल्ली सम्मेलन मे पर्वतीय राज्य परिषद का नाम बदलकर उत्तराखण्ड पर्वतीय राज्य परिषद किया गया। पृथक राज्य के लिये रैली का आयोजन कर 'दिल्ली चलो' का नारा भी दिया।

1974

– कोटद्वार की एक जनसभा मे सासद प्रताप सिह नेगी ने उत्तराखण्ड राज्य का सकल्प लिया और ससद मे प्रस्ताव पेश किया।

1979

31 जनवरी–दिल्ली मे सासद त्रेपन सिह नेगी के नेतृत्व मे 15 हजार से अधिक लोगो ने जुलूस निकालकर प्रधानमत्री को ज्ञापन दिया।

– मसूरी के अनुपम होटल मे उत्तराखण्ड क्रान्तिदल का गठन किया गया। डी0डी0 पत इसके अध्यक्ष चुने गये।

– द्वारिका प्रसाद उनियाल ने उत्तराखण्ड क्रान्ति दल क्यो ? नामक पुस्तिका प्रकाशित की।

1980

– उत्तराखण्ड मे 'वन अधिनियम' लागू , जिससे शून्य प्रदूषण क्षेत्र घोषित हुआ फलस्वरूप पेड कटाई और वृहत् उद्योग लगाने पर रोक लगी। बेरोजगारो की सख्या मे वृद्धि हुयी, लोगो का अन्य नगरो की ओर पलायन। इस अधिनियम का व्यापक विरोध।

– द्वारिका प्रसाद उनियाल, डी0डी0पत तथा नित्यानद भट्ट ने उ0प्र0 के पर्वतीय क्षेत्र की स्वायत्तता को लेकर 3 दिन सजय गाधी से बातचीत की। इस बातचीत मे बूटा सिह भी उपस्थित थे। नारायण दत्त तिवारी को भी इसमे बुलाया गया था किन्तु उनकी उपस्थिति मे उक्त नेताओ द्वारा वार्ता करने से इकार करने पर तिवारी जी वापस चले गये। सजय गाधी ने लोकसभा मे उक्राद को दो सीटे देने की पेशकश की और काग्रेस के चुनाव जीतने पर इस क्षेत्र को अलग राज्य का दर्जा देने की बात स्वीकार कर ली किन्तु उनके आकस्मिक निधन से यह बात वही समाप्त हो गयी।

1981

1 मई– उक्राद ने उत्तराखण्ड राज्य के सम्बन्ध मे प्रधानमत्री को ज्ञापन दिया।

1982

21 मार्च– उत्तराखण्ड राज्य निर्माण परिषद ने दिल्ली मे पृथक राज्य की माग दोहरायी और आन्दोलन को जुझारू बनाने का सकल्प लिया।

1983

सितम्बर– अक्टूबर मे छात्र सगठन आल इण्डिया स्टूडेट फेडरेशन ने पर्वतीय राज्य की माग को लेकर गढवाल मण्डल म 900 कि0मी0 साइकिल यात्रा की।

1985

23 अप्रैल– प्रधानमत्री राजीव गाधी के नैनीताल आगमन पर उक्राद ने उत्तराखण्ड राज्य के सिलसिले मे ज्ञापन दिया और पृथक राज्य के समर्थन मे प्रदर्शन भी किया।

10 नवम्बर– उक्राद ने नैनीताल कमिश्नरी पर जबर्दस्त प्रदर्शन कर मण्डलायुक्त के माध्यम से राष्ट्रपति को ज्ञापन भेजा।

1987

9 मार्च– उक्राद ने पौडी कमिश्नरी पर प्रदर्शन कर राष्ट्रपति को ज्ञापन भेजा।

अप्रैल– आल इण्डिया फेडरेशन द्वारा पृथक राज्य के लिये घोषणा पत्र जारी किया गया।

मई– भा क पा के ऋषिकेश सम्मेलन मे उत्तराखण्ड आन्दोलन चलाने के लिये एक क्षेत्रीय समिति का गठन किया गया।

जुलाई– आल इण्डिया स्टूडैट फेडरेशन ने उत्तरकाशी के जिलाधिकारी के माध्यम से राष्ट्रपति को ज्ञापन दिया।

9 अगस्त– वोट क्लब पर उक्राद ने साकेतिक भूख हडताल कर प्रधानमत्री को ज्ञापन दिया।

23 नवम्बर– पूरन सिह डगवाल के सयोजन मे वोट क्लब पर विशाल रैली का आयोजन कर उक्राद ने राष्ट्रपति को ज्ञापन दिया। जिसमे हरिद्वार जिले को भी उत्तराखण्ड मे शामिल करने की माग की गई।

– धीरेन्द्र प्रताप भदोल व त्रिवेन्द्र पवार द्वारा उत्तराखण्ड राज्य के निर्माण की माग को लेकर लोकसभा दर्शक दीर्घा से नारेबाजी करने पर पुलिस ने उन्हे गिरफ्तार करने के बाद चेतावनी देकर छोडा।

– भाजपा की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक मे लालकृष्ण आडवाणी की अध्यक्षता मे फैसला लिया गया कि भाजपा छोटे राज्यो की पक्षधर है तथा यह उत्तराचल और वनाचल के गठन के लिये सघर्षरत रहेगी।

1988

23 जनवरी– उक्राद ने असहयोग आन्दोलन के अन्तर्गत पूरे उत्तराखण्ड मे गिरफ्तारिया दी।

12–13 सितम्बर– उक्राद ने राज्य के समर्थन मे 36 घण्टे का बद व चक्का जाम किया।

12–13 अक्टूबर– उत्तराखण्ड सघर्ष वाहिनी ने 'नये भारत के लिये नया उत्तराखण्ड' का नारा बुलन्द कर उत्तराखण्ड आन्दोलन चलाने की घोषणा की ।

17 नवम्बर– जसवन्त सिह बिष्ट एव इन्द्रमणि बडोनी के नेतृत्व मे उक्राद ने नरायण आश्रम तवाघाट से देहरादून तक की 2 हजार कि0मी0 लम्बी पदयात्रा कर उत्तराखण्ड राज्य आन्दोलन के लिये जनचेतना जगायी।

– भाजपा ने अपने विजयवाडा अधिवेशन मे पर्वतीय राज्य की माग को अगीकृत कर उत्तराखण्ड के स्थान पर उत्तराचल शब्द को अपनाया।

1989

25 मई– उत्तराखण्ड राज्य की माग की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित करने के लिये हल्द्वानी व देहरादून मे किये गये रेल रोको आन्दोलन मे कई आन्दोलनकारी गिरफ्तार कर लिये गये।

– भारतीय कम्युनिष्ट पार्टी मार्क्सवादी लेनिनवादी ने उत्तराखण्ड राज्य की माग को जायज बताते हुये अलग प्रदेश की माग की।

2 अक्टूबर– उत्तराखण्ड राज्य के समर्थन मे उक्राद द्वारा बद एव चक्का जाम किया गया।

नवम्बर– भाकपा द्वारा पर्वतीय राज्य की माग के समर्थन मे उत्तरकाशी मे प्रदर्शन।

1990

10 अप्रैल– उत्तराचल प्रदेश सघर्ष समिति ने पृथक राज्य के समर्थन मे 'दिल्ली चलो' का आह्वान कर वोट क्लब मे रैली की।

1 सितम्बर– दिल्ली मे सघीय मोर्चा के सम्मेलन मे पारित प्रस्ताव मे उत्तराखण्ड सहित अनेक आन्दोलनो की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित किया गया।

1991

23–24फरवरी– उत्तराखण्ड क्रान्तिदल ने सफल उत्तराखण्ड बद व चक्का जाम किया।

– अप्रैल से जून के मध्य हुये चुनावो मे पृथक राज्य के नारे का खुलकर प्रयोग किया गया। भाजपा ने अपने केन्द्रीय घोषणा पत्र मे उत्तराचल राज्य की माग को सही मानते हुए इसके प्रति अपनी कटिबद्धता जाहिर की।

12 अगस्त– उत्तर प्रदेश विधान सभा मे पहली बार पृथक उत्तराचल राज्य के गठन का प्रस्ताव पारित हुआ।

26 सितम्बर– डॉ0 अम्बार रिजवी ने देहरादून मे यह बात स्वीकारी कि पर्वतीय क्षेत्र की उपेक्षा और पिछडेपन के कारण ही उत्तराखण्ड राज्य की माग उठी है। उन्होने स्पष्ट किया कि काग्रेस उत्तराखण्ड राज्य की विरोधी नही है।

दिसम्बर– उत्तराचल राज्य के सम्बन्ध मे भाजपा ने वोट क्लब दिल्ली मे धरना दिया। ससद मे शून्यकाल के दौरान सासद भुवन चन्द्र खण्डूरी ने उत्तराचल पर बहस किये जाने का मामला उठाया।

– ईस्टर्न कूरियर नामक साप्ताहिक अखबार ने 29 सितम्बर–5 अक्टूबर के अपने प्रवेशाक मे खबर छापी की वृहद् नेपाल का सपना देखने वाले हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, सिक्किम, दार्जिलिग, दक्षिणी भूटान और असम के पर्वतीय क्षेत्रो को वृहत्तर नेपाल बनाकर उसमे मिलाने की साजिशे रच रहे हैं।

7–8 अक्टूबर– दिल्ली मे सघीय मोर्चे का स्थापना सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमे पृथक राज्यो की माग कर रहे कई सगठनो ने भाग लिया। सम्मेलन मे उत्तराखण्ड, झारखण्ड, छत्तीसगढ, विदर्भ और तेलगाना जैसे छोटे राज्यो के गठन की वकालत की गई।

दिसम्बर– गृहमत्री शकर राव चाह्वाण ने ससद मे कहा कि उत्तराचल सरकार के विषय मे उनकी सरकार के पास कोई प्रस्ताव नही आया है।

1992

20 फरवरी– उत्तराखण्ड मुक्ति मोर्चा और आल इण्डिया एक्स सोल्जर्स एक्सन कमेटी ने वोट क्लब दिल्ली मे प्रदर्शन कर प्रधानमत्री को सयुक्त ज्ञापन दिया। पूर्व सैनिको ने घोषणा की कि वे उत्तराखण्ड आन्दोलन मे सहयोग देगे।

21–24 फरवरी– विजयवाडा (आन्ध्र प्रदेश) मे आयोजित इण्डियन पीपुल्स फ्रन्ट ने अपने चौथे राष्ट्रीय सम्मेलन मे उत्तराखण्ड के समर्थन मे प्रस्ताव पारित कर कहा कि यह सम्मेलन सघीय, लोकतान्त्रिक और सयुक्त भारत के ढॉचे के भीतर उत्तराखण्ड के लोगो की, पूर्ण आत्मनिर्भर राज्य की माग का पूरा समर्थन करता है।

5 मार्च– उत्तर प्रदेश की भाजपा सरकार ने उत्तराचल राज्य के सम्बन्ध मे पूरा ब्यौरा केन्द्र सरकार को भेजा।

— मार्च प्रथम सप्ताह मे भाजपा नेता भुवन चन्द्र खण्डूरी ने लोक सभा मे और सुषमा स्वराज ने राज्य सभा मे पृथक उत्तराचल राज्य की माग उठायी। भाजपा नेता लालकृष्ण आडवाणी ने भी कहा कि इस माग पर केन्द्र सरकार को निष्पक्षता से विचार करना चाहिये।

24–25 अप्रैल— दिल्ली मे नेशनल मूमेन्ट फार स्टेट्स री आर्गेनाइजेशन द्वारा "स्टेट री आर्गेनाइजेशन कमेटी" की स्थापना के लिये आयोजित बैठक की समाप्ति पर 25 अप्रैल को सासद डॉ0 जयती रोगपी ने प्रेस को वक्तव्य दिया कि राज्य की सत्ता, लघु राष्ट्रीयताओ तक कभी नही पहुचने दी गई। इन छोटे और कमजोर समूहो को राजनैतिक सत्ता मे भागीदार बनाने का काम कभी पूरा नही किया गया तथा सविधान की पॉचवी अनुसूची का तो मजाक ही उडाया गया। 1954 मे गठित प्रथम राज्य पुनर्गठन आयोग ने प्रभावी भाषायी क्षेत्रीय गुटो को राज्य का दर्जा देने की सिफारिशे तो की लेकिन पिछडे इलाको और दलित राष्ट्रीयताओ की उपेक्षा कर दी।

— इस वर्ष गठित योजना आयोग की एक विशेषज्ञ समिति की रिपोर्ट मे कहा गया कि उत्तर प्रदेश के पर्वतीय जिलो मे बेरोजगारी की समस्या प्रमुख है। जिस वजह से युवा विभिन्न शहरो की ओर पलायन कर रहे है। इस स्थिति से निपटने के लिये अन्य हिमालयी राज्यो की भाति इस क्षेत्र को भी अपनी समस्याओ के समाधान की दिशा मे प्राथमिकता देनी होगी।

नवम्बर— कल्याण सिह सरकार ने केन्द्र को याद दिलाया कि उत्तराचल राज्य की माग स्वीकार न किये जाने के कारण पर्वतीय क्षेत्र की जनता मे दार्जिलिग की तरह असतोष पनपने से अलगाववाद की भावना घर करती जा रही है।

1993

27 फरवरी— उत्तराखण्ड मुक्ति मोर्चा ने उत्तराखण्ड बद का आयोजन किया।

30 अप्रैल— उत्तराखण्ड प्रदेश सघर्ष समिति ने जतर–मतर से रैली निकाली। इसी दिन भाजपा ससदीय दल ने लोकसभा मे पृथक राज्य का सकल्प प्रस्तुत किया।

4 मार्च— दिल्ली मे यूनाइटेड फ्रण्ट फार स्मालर स्टेट द्वारा सुबोधकान्त सहाय के सयोजन मे उत्तराखण्ड एव अन्य राज्यो के सवाल पर एक दिवसीय विचार गोष्ठी शिबू सोरेन की अध्यक्षता मे हुई। गोष्ठी मे पूर्व राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिह, पूर्व मत्री बूटा सिह, सुबोध कात सहाय, शिबू सोरेन, सूरज मडल, साइमन मराडी, शैलेन्द्र महतो, हरीश अवस्थी, डॉ0 रमेश (छत्तीसगढ) हरीश रावत, प्रताप राव (तेलगाना) एन0के0तिरपुडे (विदर्भ) आदि ने हिस्सा लिया।

6 मई— दिल्ली मे उत्तराखण्ड के सम्बन्ध मे उत्तराखण्ड राज्य सयुक्त सघर्ष मच ने पहली बार सर्वदलीय गोष्ठी का आयोजन किया। गोष्ठी मे सभी लोगो द्वारा की गई पृथक राज्य की वकालत का हरीश रावत ने विरोध कर परिषद के गठन पर जोर दिया।

5 से 14 जून— हिमालय मे सक्रिय सामाजिक हस्तक्षेप के लिये प्रतिबद्ध सगठन 'धाद' ने उत्तराखण्ड मे रचनात्मक आन्दोलन की सकल्पना के साथ मजडूगढी से लेकर चादपुर तक पदयात्रा की।

5 अगस्त– लोकसभा मे सरकार ने उत्तराचल राज्य के पक्ष मे मत विभाजन कराया लेकिन इस प्रस्ताव के पक्ष मे मात्र 98 सदस्यो के मत पडने से यह ससद मे पास नही हो पाया।

1994

12 जनवरी– अलग राज्य के सघर्ष को निर्णायक मोड देने के लिये उक्राद नेता रतनमणी भट्ट, विशनपाल सिह परमार, प्रेमदत्त नौटियाल तथा दौलतराम ने जखोली विकासखण्ड मुख्यालय (टिहरी जनपद) पर आमरण अनशन की शुरूआत की।

– उ0प्र0 सरकार ने पृथक राज्य निर्माण के सिलसिले मे रमाशकर कौशिक की अध्यक्षता मे मत्रिमण्डल समिति का गठन किया। इस समिति ने अल्मोडा, पौडी और काशीपुर मे बैठक करने के बाद विशेष केन्द्रीय सहायता देते हुये पृथक राज्य के पक्ष मे सरकार को अपनी सिफारिश सौपी।

3 अप्रैल– दिल्ली के पूर्व आयुक्त बहादुर राम टम्टा ने सयुक्त उत्तराखण्ड राज्य मोर्चा की स्थापना कर गढवाल भवन दिल्ली मे एक गोष्ठी का आयोजन किया।

7 मई– पर्वतीय परिषद एव अखिल भारतीय गढवाल सभा द्वारा सयुक्त रूप से तालकटोरा स्टेडियम नई दिल्ली मे आयोजित एक कार्यक्रम मे, उत्तराखण्ड की प्रवासी जनता ने काग्रेस (इ) के पर्वतीय परिषद के प्रस्ताव को भारी विरोध से ठुकरा दिया।

2 जून– एक महत्वपूर्ण राजनीतिक निर्णय के तहत उत्तर प्रदेश के मुख्यमत्री मुलायम सिह यादव ने उत्तराखण्ड के लिये अतिरिक्त मुख्य सचिव नियुक्त किये जाने की घोषणा की।

11 जुलाई– ग्राम सभाओ का स्वरूप यथावत् रखने, बाहरी नियुक्तियो पर रोक लगाने, पर्वतीय क्षेत्र को 27 प्रतिशत आरक्षण की परिधि मे लेने और उत्तराखण्ड राज्य की माग को लेकर उक्राद के फील्ड मार्शल दिवाकर भट्ट के नेतृत्व मे आन्दोलनकारियो ने पौडी मे प्रदर्शन किया। 751 लोगो ने गिरफ्तारिया दी।

2 अगस्त– उपरोक्त चार मागो को लेकर उक्राद नेता इन्द्रमणि बडोनी, रतनमणि भट्ट, वासुवानद पुरोहित, प्रेमदत्त नौटियाल, पान सिह रावत, दौलतराम पोखरियाल, बिशनपाल परमार तथा विष्णुदत्त बिन्जोला पौडी मे आमरण अनशन पर बैठे।

2–3 अगस्त–आरक्षण के विरोध मे पूरे कुमाऊ मण्डल मे छात्रो द्वारा उग्र प्रदर्शन किये गये। छात्रो ने मण्डल के 17 महाविद्यालयो मे विरोध स्वरूप तालाबदी कर दी।

13 अगस्त– उ0प्र0 विधान परिषद के सभापति नित्यानद स्वामी ने उत्तराखण्ड की गम्भीर स्थिति को देखते हुये सर्वदलीय बैठक बुलाने की माग की। कुमाऊ मण्डल मे आरक्षण विरोध के चलते उग्र छात्रो ने स्कूल–कालेज बद कर व्यापक तोड–फोड की।

17 अगस्त– उ0प्र0 के मुख्यमत्री मुलायम सिह यादव के बयान 'मेरे एक इशारे पर मैदान के लोग पहाडी लोगो को भगा सकते है' की तीखी प्रतिक्रिया स्वरूप आन्दोलन उग्र हो गया।

18 अगस्त– ऊखीमठ के प्रदर्शनकारी छात्रो पर पुलिस लाठी चार्ज व फायरिंग से कई छात्र घायल हो गये।

22 अगस्त– भारी वर्षा के मध्य लगभग दस हजार की भीड ने नैनीताल कमिश्नरी का घेराव कर उत्तराखण्ड राज्य के समर्थन व आरक्षण विरोध मे नारेबाजी की।

23 अगस्त– उक्राद के आह्वान पर पूरे उत्तराखण्ड मे बद व चक्का जाम रहा। ससद मार्ग, नई दिल्ली मे रैली पर पुलिस ने लाठी चार्ज किया जिसमे लाठी चार्ज से 150 लोग घायल हुये। काशी सिह ऐरी ने विधानसभा सदस्यता से इस्तीफा दिया, जो स्वीकार नही हुआ।

24 अगस्त– उ0प्र0 की सपा–बसपा सरकार ने उत्तराखण्ड राज्य निर्माण का प्रस्ताव विधान सभा मे पारित किया (यह प्रस्ताव 7 सितम्बर को केन्द्र सरकार के पास भेजा गया)।

25 अगस्त– ससद ने शून्यकाल के दौरान भाजपा नेता मानवेन्द्र शाह द्वारा उत्तराचल का प्रश्न उठाये जाने पर भाजपा के अटल बिहारी बाजपेयी, जनता दल के शरद यादव, चन्द्रजीत यादव ने इस माग का समर्थन किया।

31 अगस्त– पृथक राज्य की माग के समर्थन मे जतर–मतर से ससद की ओर बढ रहे आदोलनकारियो को रोकने के लिये पुलिस द्वारा लाठी चार्ज।

1 सितम्बर– खटीमा काण्ड , 27 प्रतिशत ओ0बी0सी0 आरक्षण का विरोध करते हुए पृथक राज्य के समर्थन मे जुलूस निकाल रहे खटीमा के आन्दोलनकारियो पर पुलिस बल द्वारा गोली चलाने से आठ उत्तराखण्ड आन्दोलनकारियो की मृत्यु हुयी।

2 सितम्बर– मसूरी काण्ड , इस घटना मे भी पुलिस की गोली से आठ उत्तराखण्ड आन्दोलनकारियो की मृत्यु हो गयी।

3 से 8 सितम्बर– मसूरी व खटीमा गोलीकाण्ड के विरोध मे अनेक सरकारी कार्यालयो मे तोडफोड हुयी, राजकीय कर्मचारियो व छात्रो ने जुलूस निकालकर उग्र प्रदर्शन किया। 7 सितम्बर से पर्वतीय क्षेत्र मे 48 घण्टे का बद व चक्का जाम रहा।

10 सितम्बर– कुमाऊ मण्डल के छात्रो ने समानान्तर सरकार की घोषणा कर निर्मल पडित को मुख्यमत्री घोषित कर दिया। कई जगह प्रशासनिक मशीनरी ठप्प कर अपने तहसीलदार, पटवारी, अमीन व थानाध्यक्षो की नियुक्ति की। गढवाल मण्डल मे भी कई स्थानो पर समानान्तर सरकार की घोषणा की गई।

14 सितम्बर– आन्दोलन के समर्थन मे विद्युत कर्मचारियो द्वारा किये गये ब्लैक आउट के कारण पूरा पहाड अधेरे मे डूबा रहा।

20 सितम्बर– पृथक राज्य के समर्थन मे पर्वतीय कर्मचारी शिक्षक सगठन द्वारा बेमियादी हडताल पर चले जाने से प्रशासनिक कार्य ठप्प पड गये। (यह हडताल 21 दिसम्बर को 93 दिन बाद समाप्त हो गयी)।

25 सितम्बर– उत्तराखण्ड मे लालटेन जुलूस निकाले गये। स्वनिर्मित हथियारो के धमाको के साथ प्रदर्शन करने वाले उत्तराखण्ड क्रान्ति सेना के कमाण्डर इन चीफ चन्द्रशेखर मुण्डेपी ने कहा कि हिसा के बिना राज्य प्राप्ति सम्भव नही है।

30 सितम्बर– उत्तराखण्ड सयुक्त सघर्ष समिति के आह्वान पर अल्मोडा मे आयोजित ऐतिहासिक रैली मे 70 हजार लोगो ने भाग लिया।

2 अक्टूबर– मुजफ्फरनगर काण्ड , महात्मा गाधी की जयन्ती पर मुजफ्फर नगर मे रामपुरा तिराहा और सिसौना गाव के बीच उ0प्र0 पुलिस व पी0ए0सी0 ने अधाधुध गोली चलायी जिसमे 6 लोग मारे गये। रैली मे जा रही 6 उत्तराखण्ड समर्थक महिलाओ के साथ पुलिय ने दुराचार किया।

– नेतृत्व के अभाव व अव्यवस्था के कारण दिल्ली रैली जिसमे 15 लाख लोग शामिल हुये थे, मे अभूतपूर्व हिसा हुयी। पुलिस के लाठी चार्ज से 10 हजार लोग घायल हुए तथा दो सौ बीस लोग जेल भेजे गये।

7 अक्टूबर– इलाहाबाद हाइकोर्ट ने देहरादून, खटीमा, मसूरी व मुजफ्फरनगर मे उत्तराखण्ड आन्दोलनकारियो पर हुयी पुलिस फायरिंग की सी0बी0आई0जॉच के आदेश दिये।

– कालाढूगी के पूर्व फौजियो ने शिव मन्दिर मे बैठक कर उत्तराखण्ड प्रदेश के लिये पुलिस के हथियार छीनकर पुलिस से ही लडाई लडने का सकल्प किया।

2–23 दिसम्बर– जेल भरो आन्दोलन के अन्तर्गत 4,612 लोगो ने गिरफ्तारिया दी।

7 दिसम्बर– उत्तराचल की माग को लेकर भाजपा ने दिल्ली मे विशाल रैली का आयोजन कर भारत के राष्ट्रपति, प्रधानमत्री व लोकसभा अध्यक्ष को ज्ञापन दिया।

1995

19 से 22 जनवरी– केन्द्रीय गृह मत्रालय द्वारा पृथक राज्य समर्थक आन्दोलनकारियो को बुलाकर वार्ता की गई।

23 मार्च– पूर्व उप थल सेनाध्यक्ष ले0 जनरल गजेन्द्र सिह रावत व कई पूर्व सैनिको सहित आन्दोलनकारियो ने फिरोजशाह कोटला मैदान से ससद तक रैली निकाली।

24 अगस्त– 10 वर्ष से कम उम्र के सैकडो बच्चो ने पृथक राज्य की माग के समर्थन मे ससद के सामने प्रदर्शन कर राष्ट्रपति को ज्ञापन दिया।

15 दिसम्बर– पूर्व मेजर जनरल शैलेन्द्र राज बहुगुणा के नेतृत्व मे ससद का घेराव किया गया।

1997

17 मार्च– केन्द्रीय रेल राज्यमत्री सतपाल महाराज के नेतृत्व मे प्रधानमत्री एच0डी0देवगौडा से मिलने गये प्रतिनिधि मण्डल ने उत्तराखण्ड राज्य के शीघ्र गठन के लिये ज्ञापन दिया।

24 अप्रैल– उ0प्र0 विधान मण्डल के दोनो सदनो मे पृथक उत्तराचल राज्य सम्बन्धी प्रस्ताव पारित।

19 मई– मार्क्सवादी कम्युनिष्ट पार्टी के महासचिव हरकिशन सिह सुरजीत ने कहा कि माकपा किसी राज्य के विभाजन के पक्ष मे नही है और उत्तराखण्ड को अलग राज्य का दर्जा प्रदान करने के मसले पर भी हमारे रूख मे कोई परिवर्तन नही आया है।

– केन्द्रीय गृहमत्री इन्द्रजीत गुप्त ने कहा कि केन्द्र सरकार उत्तराखण्ड के निर्माण के प्रति अडिग है। उन्होने दावा किया कि जल्द ही उत्तराखण्ड राज्य बन जायेगा।

2 अक्टूबर– मुजफ्फरनगर काण्ड , महात्मा गाधी की जयन्ती पर मुजफ्फर नगर मे रामपुरा तिराहा और सिसौना गाव के बीच उ0प्र0 पुलिस व पी0ए0सी0 ने अधाधुध गोली चलायी जिसमे 6 लोग मारे गये। रैली मे जा रही 6 उत्तराखण्ड समर्थक महिलाओ के साथ पुलिय ने दुराचार किया।

– नेतृत्व के अभाव व अव्यवस्था के कारण दिल्ली रैली जिसमे 15 लाख लोग शामिल हुये थे, मे अभूतपूर्व हिसा हुयी। पुलिस के लाठी चार्ज से 10 हजार लोग घायल हुए तथा दो सौ बीस लोग जेल भेजे गये।

7 अक्टूबर– इलाहाबाद हाइकोर्ट ने देहरादून, खटीमा, मसूरी व मुजफ्फरनगर मे उत्तराखण्ड आन्दोलनकारियो पर हुयी पुलिस फायरिंग की सी0बी0आई0जॉच के आदेश दिये।

– कालाढूगी के पूर्व फौजियो ने शिव मन्दिर मे बैठक कर उत्तराखण्ड प्रदेश के लिये पुलिस के हथियार छीनकर पुलिस से ही लडाई लडने का सकल्प किया।

2–23 दिसम्बर– जेल भरो आन्दोलन के अन्तर्गत 4,612 लोगो ने गिरफ्तारिया दी।

7 दिसम्बर– उत्तराचल की माग को लेकर भाजपा ने दिल्ली मे विशाल रैली का आयोजन कर भारत के राष्ट्रपति, प्रधानमत्री व लोकसभा अध्यक्ष को ज्ञापन दिया।

1995

19 से 22 जनवरी– केन्द्रीय गृह मत्रालय द्वारा पृथक राज्य समर्थक आन्दोलनकारियो को बुलाकर वार्ता की गई।

23 मार्च– पूर्व उप थल सेनाध्यक्ष ले0 जनरल गजेन्द्र सिह रावत व कई पूर्व सैनिको सहित आन्दोलनकारियो ने फिरोजशाह कोटला मैदान से ससद तक रैली निकाली।

24 अगस्त– 10 वर्ष से कम उम्र के सैकडो बच्चो ने पृथक राज्य की माग के समर्थन मे ससद के सामने प्रदर्शन कर राष्ट्रपति को ज्ञापन दिया।

15 दिसम्बर– पूर्व मेजर जनरल शैलेन्द्र राज बहुगुणा के नेतृत्व मे ससद का घेराव किया गया।

1997

17 मार्च– केन्द्रीय रेल राज्यमत्री सतपाल महाराज के नेतृत्व मे प्रधानमत्री एच0डी0देवगौडा से मिलने गये प्रतिनिधि मण्डल ने उत्तराखण्ड राज्य के शीघ्र गठन के लिये ज्ञापन दिया।

24 अप्रैल– उ0प्र0 विधान मण्डल के दोनो सदनो मे पृथक उत्तराचल राज्य सम्बन्धी प्रस्ताव पारित।

19 मई– मार्क्सवादी कम्युनिष्ट पार्टी के महासचिव हरकिशन सिह सुरजीत ने कहा कि माकपा किसी राज्य के विभाजन के पक्ष मे नही है और उत्तराखण्ड को अलग राज्य का दर्जा प्रदान करने के मसले पर भी हमारे रूख मे कोई परिवर्तन नही आया है।

– केन्द्रीय गृहमत्री इन्द्रजीत गुप्त ने कहा कि केन्द्र सरकार उत्तराखण्ड के निर्माण के प्रति अडिग है। उन्होने दावा किया कि जल्द ही उत्तराखण्ड राज्य बन जायेगा।

13 अगस्त– केन्द्रीय गृहमत्री मो0 मकबूल दर ने अपने पत्र स0 16013/27/97 एस0आर0 दिनाक 13 08 1997 द्वारा राज्यसभा सदस्य मनोहर कान्त ध्यानी को सूचित किया कि उत्तराखण्ड राज्य विधेयक का मसौदा तैयार किया जा रहा है, लेकिन प्रशासनिक जटिलताओ को ध्यान मे रखते हुए यह नही कहा जा सकता कि विधेयक को ससद के वर्तमान सत्र मे प्रस्तुत किया जायेगा या नही।

11 सितम्बर– चम्पावत, बागेश्वर और रूद्रप्रयाग नामक तीन नये जिलो का गठन।

11 नवम्बर– पृथक राज्य के गठन के लिये केन्द्र सरकार पर दबाव बनाने के लिये उक्राद के फील्ड मार्शल दिवाकर भट्ट एव अध्यक्ष पूरन सिह डगवाल की पहल पर पूरे देश मे अलग राज्य की माग कर रहे दलो द्वारा गठित नेशनल फ्रट फार स्मालर स्टेट के नेताओ ने हरिद्वार मे बैठक कर ससद मे उत्तराखण्ड के गठन सम्बन्धी बिल न लाने पर ससद पर धरना देने की घोषणा की। बैठक मे तेलगाना, विदर्भ, पाचाल प्रदेश के प्रतिनिधियो के साथ–साथ मानवाधिकार सरक्षण समिति के अध्यक्ष और प्रतिनिधियो ने हिस्सा लिया। बैठक मे पाचाल प्रदेश (पश्चिमी उत्तर प्रदेश) की माग कर रहे आन्दोलन के अध्यक्ष आर0के0 तोमर ने घोषणा की कि उत्तराखण्ड के जनपद ऊधम सिह नगर व हरिद्वार (जनपद के कुभ क्षेत्र) किसी पर उनका कोई दावा नही है।

1998

30 मार्च– प्रधानमत्री अटल बिहारी बाजपेयी ने कहा कि उत्तराचल, वनाचल व छत्तीसगढ राज्यो के गठन की वैधानिक प्रक्रिया शुरू कर दी गयी है और इन राज्यो के पुनर्गठन के लिये आयोग बनाने का कोई इरादा नही है।

25 मई– भारतीय किसान कामगार पार्टी के प्रवक्ता धीरेन्द्र प्रताप ने केन्द्र से छोटे राज्यो के गठन मे एक समान नीति अपनाने की माग की।

29 जून– भाजपा नेतृत्व वाली केन्द्रीय सरकार ने पृथक उत्तराचल राज्य बनाने के प्रस्ताव को मजूरी दी।

3 अगस्त– झारखण्ड व छत्तीसगढ सहित पृथक उत्तराखण्ड राज्य के निर्माण सम्बन्धी विधेयक के प्रारूप को केन्द्रीय मत्रीमण्डल ने मजूरी दी।

4 अगस्त– 11 अकाली सासदो ने हस्ताक्षरयुक्त ज्ञापन राष्ट्रपति को भेजकर ऊधम सिह नगर को उत्तराचल मे मिलाने का विरोध किया।

20 अगस्त– राष्ट्रपति ने उत्तराचल, वनाचल एव छत्तीसगढ राज्यो के निर्माण सम्बन्धी विधेयको को अपनी मजूरी देने के दौरान कहा कि तीनो राज्य 28 सितम्बर से पहले केन्द्र को अपनी टिप्पणियो के साथ लौटा दे।

21 सितम्बर– उत्तराचल राज्य के गठन हेतु उत्तर प्रदेश के पुनर्गठन विधेयक 1998 उ0प्र0 विध ाान सभा के दोनो सदनो मे पेश किया गया।

23 सितम्बर– उ0प्र0 विधान मण्डल ने 26 सशोधनो सहित हरिद्वार विहीन उत्तराखण्ड राज्य के गठन को स्वीकृति प्रदान की।

2 दिसम्बर– काग्रेस ने पृथक राज्यो के गठन हेतु आन्दोलन छेडने का ऐलान किया।

16 दिसम्बर– केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल ने उत्तराचल राज्य के गठन का विधेयक बिना किसी परिवर्तन के ससद के इसी सत्र मे पेश करने का निर्णय लिया।

1999

17 अप्रैल– प्रधानमत्री अटल बिहारी बाजपेयी के नेतृत्व वाली गठबन्धन सरकार के गिरने से उत्तराखण्ड राज्य के गठन का मामला लम्बे समय के लिये टल गया।

7 दिसम्बर– केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल द्वारा नये सशोधन के साथ उत्तराचल (उत्तराखण्ड) राज्य के गठन के प्रस्ताव को मजूरी दी गई। प्रस्ताव के तहत केन्द्र सरकार ने राष्ट्रपति से अनुरोध किया कि वह सशोधित प्रस्ताव के मुताबिक राज्य के पुनर्गठन के लिये राज्य सरकार को अनुशसा करे।

13 दिसम्बर– उत्तराखण्ड विधेयक ससद मे पेश न हो पाने से नाराज उत्तराखण्डियो ने ससद के इसी सत्र मे ही उत्तराखण्ड राज्य के गठन सम्बन्धी विधेयक को पेश करने की माग करते हुये धरना दिया।

2000

29 जनवरी– सरकार द्वारा पृथक राज्य के गठन की प्रक्रिया मे विलम्ब करने से नाराज उक्राद ने देहरादून मे विशाल रैली का आयोजन कर जिलाधिकारी के माध्यम से प्रधानमत्री व राष्ट्रपति को ज्ञापन देकर उत्तराखण्ड के शीघ्र निर्माण की माग दोहराई।

23 फरवरी– राष्ट्रपति के0आर0 नारायणन ने बजट सत्र के पहले दिन ससद के सयुक्त अधिवेशन मे दिये अपने अभिभाषण मे पृथक उत्तराचल, वनाचल और छत्तीसगढ राज्यो के गठन की सरकारी प्रतिबद्धता को दोहराया।

16 मार्च– लोकदल के राष्ट्रीय अध्यक्ष चौ0 अजीत सिह ने उत्तर प्रदेश के विभाजन के लिये आयोग गठित करने की माग की।

30 मार्च– उ0प्र0 सरकार ने हरिद्वार रहित उत्तराचल राज्य का गठन सम्बन्धी सकल्प 29 सशोधनो के साथ विधानसभा मे पेश किया।

3 अप्रैल– उ0प्र0 विधानमण्डल मे समाजवादी पार्टी, भाकपा और काग्रेस के वाक आउट के बाद उत्तराचल राज्य बनाने सम्बन्धी सकल्प ध्वनिमत से पारित हुआ।

18 अप्रैल– इसी सत्र मे उत्तराखण्ड बिल पारित कराने पर जोर देते हुये नये राज्य के विकास के लिये 50 हजार करोड रूपये की आर्थिक सहायता की माग के साथ उक्राद ने जतर मतर पर बेमियादी धरना शुरू कर पहले दिन राष्ट्रपति व प्रधानमत्री को ज्ञापन सौपे।

जुलाई– ससद मे अलग उत्तराचल राज्य के गठन से सम्बन्धित विधेयक पेश।

अगस्त– ससद मे उत्तर प्रदेश राज्य पुनर्गठन विधेयक, 2000 पारित। अलग उत्तराचल राज्य के गठन का मार्ग प्रशस्त।

9 नवम्बर– उत्तराचल राज्य अस्तित्व मे आया। श्री सुरजीत सिह बरनाला राज्य के प्रथम राज्यपाल एव श्री नित्यानन्द स्वामी (भाजपा) प्रथम मुख्यमत्री बने।

परशिष्ट "ख"

राज्यों के पुनर्गठन को लेकर गठित विभिन्न आयोग और उनकी अनुशंसायें

आयोग/व्यक्ति	वर्ष	प्रतिवेदन/अनुशसा
सर हार्वर्ट रिसले (भारत सरकार के गृह सचिव)	1903	बगाल सरकार को लिखे गये प्रत्र मे भाषायी आधार पर बगाल के विभाजन का सुझाव दिया।
लार्ड हार्डिग (वायसराय)	1911	बगाल विभाजन को निरस्त करने के लिये राज्य सचिव को पत्र लिखा जिसमे भाषा के मुद्दे को प्रमुखता दी गयी थी।
मोन्टेग्यू–चेम्सफोर्ड रिपोर्ट (भारतीय सवैधानिक सुधारो पर रिपोर्ट)	1918	प्रतिवेदन मे राज्यो के गठन हेतु भाषायी तथा दक्षिण जातीय आधार की अवधारणा को अस्वीकार कर दिया गया। परन्तु छोटे–छोटे राज्यो के गठन पर विशेष बल दिया गया।
मोती लाल नेहरू रिपोर्ट (नेहरू रिपोर्ट)	1928	भाषा, जनेच्छा, जनसख्या, भौगोलिक, आर्थिक तथा वित्तीय स्थिति के आधार पर राज्यो की पुनर्गठन की सिफारिश की गयी।
भारतीय स्टेच्युरी कमीशन	1930	जाति, धर्म, आर्थिक हित, भौगोलिक एकरूपता, गावो शहरो मे साम्य की स्थिति इत्यादि को राज्य के गठन का आधार माना है (किसी भी एक मुद्दे को न मानकर अनेक मुद्दो को गठन का आधार माना) लेकिन गठन के फलस्वरूप प्रभावित क्षेत्रो की आपसी सहमति को गठन हेतु आवश्यक माना। भाषायी आधार को सशर्त स्वीकृति दी।
ओडोनील आयोग	1931	भारतीय स्टेच्युरी आयोग की सिफारिशो का समर्थन किया।
भारतीय सवैधानिक सुधार संयुक्त समिति	1936	साम्प्रदायिक आधार पर सिन्धु प्रान्त के गठन की अनुशसा की थी और उसी को स्वीकार कर सिन्धु प्रान्त का साम्प्रदायिक आधार पर गठन भी किया गया।
डार आयोग	1948	इसने तात्कालिक परिस्थितियो मे भाषाई आधार पर राज्यो के पुनर्गठन का विरोध किया एव प्रशासनिक सुविधा, इतिहास एव भौगोलिक, सास्कृतिक तथा आर्थिक आधार पर राज्यो के पुनर्गठन की वकालत की।

जे0वी0पी0आयोग (जवाहर लाल नेहरू, बल्लभ भाई पटेल, पट्टाभि सीतारमैय्या)	1948	प्रभावित जनता की आपसी सहमति, आर्थिक, वित्तीय एव प्रशासनिक व्यवहार्यता पर जोर दिया एव इन सबको ध्यान मे रखते हुए भाषा को आधार बनाये जाने की सम्भावना से इन्कार नही किया। भाषा के आधार पर बने आन्ध्र प्रदेश का गठन इस रिपोर्ट के बाद ही 1953 मे हुआ।
फजल अली आयोग (राज्य पुनर्गठन आयोग) अन्य सदस्य–के0एम0पणिक्कर एव हृदय नाथ कुजरू	1955	राष्ट्रीय एकता, प्रशासनिक, आर्थिक, वित्तीय व्यवहार्यता एव आर्थिक विकास, अल्पसख्यक हितो की रक्षा को पुनर्गठन का आधार माना। सरकार ने इस आयोग की अनुशसाओ को कुछ सशोधनो के साथ स्वीकार किया एव इसी अनुशसा के आधार पर राज्य पुनर्गठन अधिनियम 1956 पारित किया।

परशिष्ट "ग"
राज्यों के पुनर्गठन की संवैधानिक प्रक्रिया

भारतीय सविधान के उपबन्धो के अधीन रहते हुये ससद विधि द्वारा नये राज्यो का गठन, क्षेत्र परिवर्तन आदि के लिये प्राधिकृत है। सविधान के अनु0–2 एव 3 राज्यो के पुनर्गठन से सम्बन्धित ससद के अधिकार सम्बन्धी विनियमो से व्यवहृत होते है। अनुच्छेद–2 के अनुसार– ससद, विधि द्वारा, ऐसे निबन्धनो और शर्तों पर, जो वह वह ठीक समझे, सघ मे नये राज्य का प्रवेश या उनकी स्थापना कर सकेगी। इस प्रकार अनुच्छेद–2 के अधीन ससद को दो प्रकार की शक्तिया प्राप्त है।

1 नये राज्यो को सघ मे शामिल करने की शक्ति एव

2 नये राज्यो को स्थापित करने की शक्ति।

पहले का सम्बन्ध उन राज्यो से है जो पहले से स्थापित या विद्यमान है। जबकि दूसरे का सम्बन्ध उन राज्यो से है भविष्य मे स्थापित या अर्जित किये जा सकते है। किसी नये राज्य की स्थापना अथवा वर्तमान राज्य अथवा राज्यो की सीमाओ मे परिवर्तन अनुच्छेद–3 मे निर्दिष्ट सीमाओ के अधीन होगा। अनुच्छेद–3 के अनुसार ससद विधि द्वारा–

(क) किसी राज्य से उसका राज्य क्षेत्र अलग करके अथवा दो या दो से अधिक राज्यो को या राज्यो के भागो को मिलाकर अथवा किसी राज्य क्षेत्र को किसी राज्य के भाग के साथ मिलाकर नये राज्य का निर्माण कर सकेगी ,

(ख) किसी राज्य का क्षेत्र बढा सकेगी ,

(ग) किसी राज्य का क्षेत्र कम कर सकेगी ,

(घ) किसी राज्य की सीमाओ मे परिवर्तन कर सकेगी ,

(ङ) किसी राज्य के नाम मे परिवर्तन कर सकेगी।

परन्तु इस प्रयोजन के लिये कोई विधेयक राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना और जहा विधेयक मे अर्न्तविष्ट प्रस्तावना का प्रभाव राज्यो मे से किसी के क्षेत्र, सीमाओ पर या नाम पर पडता है। वहा जब तक उस राज्य के विधान मण्डल द्वारा उस पर अपने विचार, ऐसी अवधि के भीतर जो निर्देश मे विनिर्दिष्ट की जाय या ऐसी अतिरिक्त अवधि के भीतर जो राष्ट्रपति द्वारा अनुज्ञात की जाय, प्रकट किये जाने के लिये वह विधेयक राष्ट्रपति द्वारा उसे निर्देशित नही कर दिया गया है और इस प्रकार विनिर्दिष्ट या अनुज्ञात अवधि समाप्त नही हो गयी है, ससद के किसी सदन मे पुन स्थापित नही किया जायेगा।

यद्यपि, उक्त विधेयक पर सम्बन्धित राज्य के विधानमण्डल की स्वीकृति आवश्यक है। परन्तु उनकी स्वीकृति अथवा अस्वीकृति से ससद बाध्य नही है। जिसका आशय है कि ससद की इच्छा सर्वोपरि है और राज्य ससद की इच्छा का विरोध नही कर सकते। ससद इस अनुच्छेद के अन्तर्गत राज्यो का निर्माण, उनका पुनर्गठन तथा उनकी सीमाओ मे परिवर्तन साधारण बहुमत द्वारा करती है

और इस क्रम मे पारित की गयी कोई भी विधि अनुच्छेद 368 के प्रयोजन के लिये सविधान का सशोधन नही मानी जायेगी।

राज्यो के क्षेत्र सीमा तथा निर्माण के सम्बन्ध मे ससद को दी गयी शक्ति से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय सविधान राज्यो के क्षेत्र की अपरिवर्तनशीलता की गारन्टी नही देता जैसा कि स0रा0 अमेरिका मे है। भारतीय सघ मे शामिल किये गये राज्य उस अर्थ मे प्रभुता सम्पन्न नही है जिस अर्थ मे अमेरिकी राज्य भारतीय सविधान के सघीय लक्षणो के विपरीत यह असघीय व्यवस्था है। जिसे सविधान निर्माताओ ने अपनाया। यह नमनशील व्यवस्था ही भारतीय सविधान की अनुपम विशेषता है, जो अन्य देशो के सविधान मे नही प्राप्त होती।

परशिष्ट "घ"
राज्यों के पुनर्गठन हेतु बनाये गये अधिनियम

1. असम सीमा परिवर्तन अधिनियम 1951 के द्वारा असम की सीमा मे परिवर्तन किया गया तथा कुछ क्षेत्र भूटान को दिया गया।
2. आन्ध्र राज्य अधिनियम, 1953 द्वारा मद्रास राज्य के कुछ क्षेत्र को मिलाकर आन्ध्र प्रदेश का गठन किया गया।
3. हिमाचल प्रदेश और विलासपुर (नया राज्य) अधिनियम, 1954 द्वारा दोनो राज्यो को मिलाकर हिमाचल प्रदेश का गठन किया गया।
4. बिहार एव पश्चिम बगाल राज्य क्षेत्र अतरण अधिनियम 1956 द्वारा बिहार के कुछ क्षेत्र पश्चिम बगाल को अभ्यर्पित किये गये।
5. राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 द्वारा मध्य भारत, पेप्सू, सौराष्ट्र, ट्रावनकोर– कोचीन, अजमेर, भोपाल कोडागू, कच्छ और विन्ध्य प्रदेश की रियासतो को उनसे लगे हुये राज्यो मे विलय कर दिया गया। साथ मे केरल नामक नये राज्य का गठन किया गया।
6. राजस्थान एव मध्य प्रदेश (राज्य क्षेत्र अन्तरण) अधिनियम, 1956 द्वारा राजस्थान के कुछ क्षेत्र मध्य प्रदेश को अभ्यर्पित किये गये।
7. आन्ध्र प्रदेश और मद्रास (सीमा परिवर्तन) अधिनियम, 1959 द्वारा दोनो राज्यो की सीमाओ मे परिवर्तन किया गया।
8. बम्बई पुनर्गठन अधिनियम, 1960 द्वारा बम्बई राज्य को विभाजित कर महाराष्ट्र एव गुजरात का गठन किया गया।
9. अर्जित राज्य क्षेत्र (विलयन) अधिनियम 1960 द्वारा भारत और पाकिस्तान के मध्य हुयी सधि का कार्यन्वयन किया गया तथा पश्चिम बगाल एव असम के कुछ क्षेत्र पाकिस्तान को अभ्यर्पित किये गये। इसके कार्यान्वयन के लिये सविधान मे नवॉ सशोधन किया गया क्योकि सविधान के अनुच्छेद 2 एव 3 के अन्तर्गत ससद को किसी विदेशी राज्य को भारतीय राज्य क्षेत्र अभ्यर्पित करने का अधिकार नही प्राप्त है।
10. नागालैण्ड राज्य अधिनियम, 1962 द्वारा असम राज्य के अधीन स्थित नागा पहाडी एव ल्युएनसाग क्षेत्र को मिलाकर नागालैण्ड का गठन किया गया।
11. पजाब पुनर्गठन अधिनियम 1966 के द्वारा पूर्ववर्ती पजाब राज्य को विभाजित कर पजाब और हरियाणा बनाया गया।
12. आन्ध्र प्रदेश और मैसूर (राज्य क्षेत्र अन्तरण) अधिनियम द्वारा राज्य क्षेत्र का अन्तरण किया गया।

13 बिहार एव उत्तर प्रदेश (सीमा परिवर्तन) अधिनियम, 1968।

14 असम पुनर्गठन (मेघालय) अधिनियम, 1969 द्वारा असम राज्य क्षेत्र मे मेघालय नामक स्वशासी उप राज्य बनाया गया ।

15 हिमाचल प्रदेश राज्य अधिनियम, 1970 द्वारा हिमाचल प्रदेश (सघ राज्य) को राज्य का स्तर प्रदान किया गया।

16 पूर्वोत्तर क्षेत्र (पुनर्गठन) अधिनियम, 1971 द्वारा मणिपुर, त्रिपुरा और मेघालय को राज्य का स्तर प्रदान किया गया तथा मिजोरम और अरूणाचल प्रदेश को सघ राज्य क्षेत्र बनाया गया।

17 35 वे सविधान सशोधन अधिनियम द्वारा (1975) सिक्किम को सहयुक्त राज्य का दर्जा दिया गया।

18 36 वे सविधान सशोधन अधिनियम द्वारा (1975) द्वारा सिक्किम को पूर्ण राज्य का दर्जा दिया गया।

19 हरियाणा, उत्तर प्रदेश सीमा परिवर्तन अधिनियम, 1979।

20 मिजोरम राज्य अधिनियम, 1986 द्वारा मिजोरम को राज्य बनाया गया।

21 अरूणाचल प्रदेश राज्य अधिनियम, 1986 द्वारा अरूणाचल प्रदेश को राज्य बनाया गया।

22 गोवा दमन दीव पुनर्गठन अधिनियम, 1987 द्वारा गोवा को दमन दीव से अलग करके नया राज्य बनाया गया।

23 69 वे सशोधन 1991 द्वारा दिल्ली को राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र का दर्जा प्रदान किया गया।

24 मध्य प्रदेश पुनर्गठन विधेयक 2000 द्वारा छत्तीसगढ राज्य का गठन किया गया।

25 उत्तर प्रदेश पुनर्गठन विधेयक 2000 द्वारा उत्तराचल राज्य का गठन किया गया।

26 बिहार पुनर्गठन विधेयक 2000 द्वारा वनाचल (झारखण्ड) राज्य का गठन किया गया।

परशिष्ट "ड."

भारत का राज्यक्षेत्र

(क) मूल संविधान मे (1949 मे) राज्य

सघ

भाग क राज्य	भाग ख राज्य	भाग ग राज्य	भाग घ राज्यक्षेत्र
1 असम	1 हैदराबाद	1 अजमेर	1 अडमान और निकोबार द्वीप
2 बिहार	2 जम्मू–कश्मीर	2 भोपाल	2 अर्जित राज्यक्षेत्र (यदि कोई हो)
3 मुबई	3 मध्य भारत	3 बिलासपुर	
4 मध्य प्रदेश	4 मैसूर	4 कूच–बिहार	
5 मद्रास	5 पटियाला और पूर्वी पजाब	5 कोडगू	
6 उडीसा			
7 पजाब			
8 सयुक्त प्रात			
9 पश्चिमी बगाल			

(ख) राज्य पुनर्गठन अधिनियम (नवम्बर 1956) के पूर्व भारत के राज्य–

सघ

भाग क राज्य	भाग ख राज्य	भाग ग राज्य	भाग घ राज्यक्षेत्र
1 आन्ध्र प्रदेश	1 हैदराबाद	1 अजमेर	1 अडमान और निकोबार द्वीप
2 असम	2 जम्मू–कश्मीर	2 भोपाल	2 अर्जित राज्यक्षेत्र करायकल,माहे, और यनाम सहित (पाण्डिचेरी की फ्रासीसी बस्ती)
3 बिहार	3 मध्य भारत	3 बिलासपुर	
4 मुबई	4 मैसूर	4 कुर्ग	
5 मध्य प्रदेश	5 पेप्सू	5 दिल्ली	
6 मद्रास	6 राजस्थान	6 हिमाचल प्रदेश	
7 उडीसा	7 सौराष्ट्र	7 कच्छ	
8 पजाब	8 ट्रावनकोर–कोचीन	8 मणिपुर	
9 उ0प्र0		9 त्रिपुरा	
10 पश्चिमी बगाल		10 विन्ध्य प्रदेश	

(ग) राज्य पुनर्गठन अधिनियम (नवम्बर 1956) के अन्तर्गत गठित राज्य–

सघ

राज्य	सघ राज्य क्षेत्र	अन्य राज्यक्षेत्र जो अर्जित किये जाए
1 आन्ध्र प्रदेश	1 दिल्ली	1 करायकल,माहे, और यनाम सहित (पाण्डिचेरी की फ्रासीसी बस्ती)
2 असम	2 मणिपुर	
3 मुबई	3 त्रिपुरा	
4 बिहार	4 हिमाचल प्रदेश	
5 जम्मू कश्मीर	5 अडमान निकोबार द्वीप समूह	
6 केरल	6 लक्षद्वीप, मिनिकाय एव अमीनीदीव	
7 मध्य प्रदेश		
8 मद्रास		
9 मैसूर		
10 उडीसा		
11 उत्तर प्रदेश		
12 पजाब		
13 राजस्थान		
14 पश्चिम बगाल		

(घ) वर्तमान मे भारत के राज्य एव सघ शासित क्षेत्र–

सघ

राज्य	सघ राज्य क्षेत्र	अन्य राज्यक्षेत्र जो अर्जित किये जाए
1 आन्ध्र प्रदेश	1 दिल्ली	
2 असम	2 अडमान निकोबार द्वीप समूह	
3 बिहार	3 लक्षद्वीप	
4 गुजरात	4 दादरा और नागर हवेली	
5 केरल	5 दमण और दीव	
6 मध्य प्रदेश	6 पाण्डिचेरी[2]	
7 तमिलनाडू	7 चण्डीगढ	
8 महाराष्ट्र		
9 कर्नाटक		
10 उडीसा		
11 पजाब		
12 राजस्थान		
13 उत्तर प्रदेश		
14 पश्चिम बगाल		
15 जम्मू–कश्मीर		
16 नागालैण्ड		
17 हरियाणा		
18 हिमाचल प्रदेश		
19 मणिपुर		
20 त्रिपुरा		
21 मेघालय		
22 सिक्किम[1]		
23 मिजोरम		
24 अरूणाचल प्रदेश		
25 गोवा		
26 छत्तीसगढ		
27 उत्तराचल		
28 झारखण्ड		

---

1 सिक्किम स्वतन्त्रता से लेकर 28 02 1975 तक चोग्याल शासको के अधीन भारत द्वारा आरक्षित राज्य था। सविधान (35वॉ सशोधन) अधिनियम 1975 द्वारा सिक्किम को सयुक्त राज्य (01 03 1975 से 25 04 1975तक) का दर्जा दिया गया और सविधान (36वॉ सशोधन) अधिनियम 1975 द्वारा 26 अप्रैल 1975 से सिक्किम को सघ मे 22वे राज्य के रूप मे सम्मिलित किया गया।

2 पाण्डिचेरी की फ्रासीसी बस्ती (करायल, माहे और यनाम सहित) जिसे 1954 मे फ्रासीसी सरकार ने अध्यर्पित किया था, 1962 तक "अर्जित राज्य क्षेत्र" के रूप मे प्रशासित किया जा रहा था क्योकि अध्यर्पण की सधि को फ्रासीसी ससद ने अनुमोदित नहीं किया था। अनुमोदन के पश्चात् फ्रासीसी बस्तियो का यह राज्य क्षेत्र सविधान (14वॉ सशोधन) अधिनियम 1962 द्वारा 28 दिसम्बर 1962 मे सघ राज्य क्षेत्र बन गया।

परशिष्ट "च"

उत्तरदाता का सामान्य विवरण

नाम–

(कृपया सही का निशान लगाये)

जाति–अनु0जाति/अनु0जनजाति/अन्य पिछडा वर्ग/सामान्य

धर्म– हिन्दू/मुस्लिम/सिक्ख/अन्य

परिवेश– शहरी/ग्रामीण

आयु वर्ग– 18–40/40–60/60 से अधिक

शैक्षिक स्तर– मैट्रिक/अण्डर ग्रेजुएट/पोस्ट ग्रेजुएट

आर्थिक स्थिति– निम्न एव निम्न–मध्यम आय वर्ग/मध्यम आय वर्ग/मध्यम–उच्च एव उच्च आय वर्ग

साक्षात्कार अनुसूची

1 क्षेत्रीय स्वायत्तता की भावना को पृथक राज्य की माग मे तब्दील करने की दृष्टि से किसका योगदान रहा है?

A पुरानी राज्य क्षेत्रीय सीमा के प्रति निष्ठा– हॉ/नही

B विभेदकारी आर्थिक नीतियो का अनुपालन– हॉ/नही

C क्षेत्रीय दलो का अभ्युदय एव उनके द्वारा सत्ता प्राप्ति हेतु क्षेत्रीय भावना को उभारना – हॉ/नही

2 आपके मत मे पृथक राज्य आन्दोलन की माग के पीछे कौन–कौन से प्रमुख कारण सहायक रहे है?

A राजनीतिक लाभ की पूर्ति हेतु धर्म का प्रयोग– हॉ/नही

B जातीय पहचान– हॉ/नही

C भाषावाद का प्रभाव– हॉ/नही

D आर्थिक विषमता (तिरस्कार) एव पिछडापन– हॉ/नही

E क्षेत्र की सार्वभौमिकता या क्षेत्रीय पहचान– हॉ/नही

F ऐतिहासिक एव सामाजिक–सास्कृतिक पृष्ठभूमि– हॉ/नही

G रोजगार और शैक्षणिक अवसरो तथा सम्भावनाओ को हथियाने के लिये भूमिपुत्र सिद्धान्त का प्रयोग– हॉ/नही

3 क्या और प्रान्तो (राज्यो) की स्थापना राष्ट्रीय एकता के दृष्टिकोण से उचित है? हॉ/नही

4 लगातार नये राज्यो का बनना और नये राज्यो के निर्माण की माग होना क्या प्रथम राज्य पुनर्गठन आयोग की असफलता को प्रदर्शित करता है? हॉ/नही

5 यदि हॉ तो इसके प्रमुख कारण थे–

A क्षेत्रीय विषमता से प्रभावित समूहो का असन्तोष– हॉ/नही

B गठित राज्यो मे आन्तरिक एकरसता का अभाव– हॉ/नहीं

C उपभाषा (बोली) का प्रभाव और राज्यो के आकार मे गहरी असमानता– हॉ/नही

D उन आयामो को पहचानने मे नाकामी जिनके कारण अलग–अलग क्षेत्रीय आन्दोलन पैदा हुये। हॉ/नही

6 देश मे चल रहे पृथक राज्यो की माग की औचित्यता को परखने के लिये क्या एक और राज्य पुनर्गठन आयोग का गठन किया जाना चाहिये? हॉ/नही

7 यदि हॉ तो आपके मत मे नये राज्यो के पुनर्गठन का आधार क्या–क्या होना चाहिये?

A आर्थिक सक्षमता– हॉ/नही

B प्रशासनिक कार्यकुशलता– हॉ/नही

C उचित समरूप जनसख्या– हॉ/नही

D उचित समरूप क्षेत्रफल– हॉ/नही

E सामाजिक–सास्कृतिक भिन्नता– हॉ/नही

F भौगोलिक अवस्थिति– हॉ/नही

G भाषायी आधार हॉ/नही

H जातीय आधार हॉ/नही

I धार्मिक आधार हॉ/नही

8 प्रशासनिक कार्यकुशलता की दृष्टि से किसी राज्य के निर्माण का आधार यदि जनसख्या को बनाया जाता है तो किसी राज्य की जनसख्या होनी चाहिये (वर्ष 2001की जनगणनानुसार)

A. तीन करोड से अधिक नही,

B पॉच करोड से अधिक नही

C दस करोड से अधिक नही,

D कितनी भी

9 प्रशासनिक कार्यकुशलता की दृष्टि से किसी राज्य के निर्माण का आधार यदि क्षेत्रफल को बनाया जाता है तो किसी राज्य का क्षेत्रफल होना चाहिये–

A 98600 वर्ग किमी0 या देश के क्षेत्रफल के 3% से अधिक नही,

B 164400 वर्ग किमी0 या देश के क्षेत्रफल का 5% से अधिक नही

C. 328700 वर्ग किमी0 या देश के क्षेत्रफल के 10% से अधिक नही

D कितना भी।

10 नये राज्यो की स्थापना से पडने वाले प्रशासनिक और वित्तीय बोझ की प्रतिपूर्ति हेतु क्या निम्न दीर्घगामी सुधार कार्यक्रम लागू किये जाने चाहिये–

A राज्यपाल का पद जो कि अलकृत पदमात्र है की नियुक्ति प्रत्येक राज्य मे करने के स्थान पर उत्तरी, दक्षिणी, पूर्वी, पश्चिमी और मध्य भारत की क्षेत्रीय परिषदे गठित कर उसका सवैधानिक प्रमुख राज्यपाल को बनाया जाना चाहिये जो राज्यपाल के वर्तमान कर्तव्यो का निर्वहन करे। हॉ/नही

B विधान परिषद जैसी सस्थाओ को समाप्त किया जाना चाहिये। हॉ/नही

C मन्त्रिमण्डल का आकार छोटा रखने हेतु सवैधानिक प्रावधान किया जाना चाहिये। हॉ/नही

11 राज्य की योजनाओ और नौकरियो मे वहॉ के स्थानीय नागरिको को आरक्षण देने के सन्दर्भ मे आपका क्या मत हैं?

A जनसख्या के समानुपात मे आरक्षण दिया जाना चाहिये।

B जनसख्या के समानुपात से अधिक आरक्षण दिया जाना चाहिये।

C. जनसख्या के समानुपात से कम आरक्षण दिया जाना चाहिये।

D आरक्षण नही दिया जाना चाहिये।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

संदर्भ ग्रन्थ सूची

सरकारी प्रकाशन एवं रिपोर्ट–

1 *भारत 2002,* नई दिल्ली, प्रकाशन विभाग भारत सरकार।

2 *डिबेट्स, कान्स्टीट्यूशन असेम्बली ऑफ इण्डिया (1946–1949),* नई दिल्ली, भारत सरकार।

3 *गजेटियर ऑफ इण्डिया (1973),* खण्ड–द्वितीय।

4 *इडियन एनुअल रजिस्टर (1926),* कलकत्ता, खण्ड–द्वितीय।

5 *कौशिक कमेटी रिपोर्ट (1994),* लखनऊ, उ0प्र0 सरकार, प्रकाशन विभाग।

6 *लेटर्स टू चीफ मिनिस्टर्स, 1947–1964,* नई दिल्ली, भारत सरकार, खण्ड–1 ।

7 *लेटर्स टू चीफ मिनिस्टर्स, 1947–1964,* नई दिल्ली, भारत सरकार, खण्ड–2 ।

8 *पजाब विद्रोह पर श्वेत पत्र,* नई दिल्ली, भारत सरकार।

9 उत्तर प्रदेश शासन (1992), उत्तराचल विकास विभाग, लखनऊ का अ0शा0प0स0–409 बी0एस0पी0/एच0डी0/92 दिनाक फरवरी 7 ।

पुस्तके–

1 अग्रवाल, जे0सी0 और एस0पी0अग्रवाल (1995), *उत्तराखण्ड पास्ट, प्रेजेन्ट एण्ड फ्यूचर,* नई दिल्ली, कान्सेप्ट पब्लिसिग कम्पनी।

2 अग्रवाल, आर0सी0 (2000), *भारतीय सविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आन्दोलन,* नई दिल्ली, एस0चन्द एण्ड कम्पनी।

3 अली, मुहम्मद (1944), *सिलेक्टेड राइटिग्स स्पीचेज,* सपा० इकबाल अफजल, लाहौर।

4 अमोली, एन0पी0 सपा0 (1999), *स्मारिका–99,* चण्डीगढ, उत्तराखण्ड युवा मच।

5 अटल, योगेश (1981), *बिल्डिग ए नेशन, एस्से आन इडिया,* नई दिल्ली, अभिनव पब्लिकेशन।

6 अटकिन्शन, एडविन टी० (1974), *कुमाऊ हिल्स इट्स हिस्ट्री, ज्योग्राफी एण्ड एन्थ्रोपालॉजी विद रिफ्रेन्स टू गढवाल एण्ड नेपाल* (ऑफ प्रिन्ट फ्राम दि हिमालयन गजेटियर, खण्ड–2), देलही, कास्मो।

7 आजम, कौसर सपा0 (1998), *फेडरलिज्म एण्ड गुड गर्वनेन्स,* दिल्ली, साउथ एशिया।

8 बहुगुणा, मनीराम (1995), *गृह राज्य शासन की यादे,* टेहरी, कुसुमलता प्रकाशन।

9 बहुगुणा, राजा (1992), *उत्तराखण्ड आन्दोलन पर एक नजर,* नैनीताल इण्डियन पीपुल्स फ्रण्ट।

10 बहुगुणा, शम्भु प्रसाद (1951), *विराट हृदय,* लखनऊ।

11 बसु, डी0डी0 (1973), *कमेन्ट्री ऑन दि कान्सटीट्यूसन ऑफ इण्डिया,* 6वॉं (सिल्वर जुबली) सस्करण, कलकत्ता, एस0सी0शेखर एण्ड सन्स।

12 बसु, डी0डी0 (1985), *कान्सटीट्यूनल आस्पेक्टस ऑफ सिक्ख सेपरटिज्म,* नई दिल्ली, प्रेन्टिस हाल ऑफ इण्डिया।

13. बसु, डी0डी0 (1994), *भारत का सविधान एक परिचय,* नई दिल्ली, प्रेन्टिस हाल ऑफ इण्डिया।

14 भट्ट, के0एन0 (1997), *उत्तराखण्ड इकोलॉजी, इकोनॉमी एण्ड सोसायटी,* इलाहाबाद, होरीजन पब्लिसर्श।

15 भट्ट, एल०एस० (1982), *रीजनल इनइक्वल्टीज इन इण्डिया एन इण्टर स्टेट एण्ड इन्टरा स्टेट एनालिसिस,* नई दिल्ली, एस०एस०आर०डी०।

16 भट्ट, त्रिलोक चन्द्र (2000), *उत्तराखण्ड आन्दोलन,* नई दिल्ली, तक्षशिला प्रकाशन।

17 विष्ट,नारायण सिह (1981), *उत्तराखण्ड हिमालय की अर्थव्यवस्था,* टिहरी गढवाल, भागीरथी प्रकाशन गृह।

18 बोरा, आर0एस0 (1996), *हिमालयन माइग्रेशन ए स्टडी ऑफ दि हिल रीजन ऑफ उत्तर प्रदेश,* दिल्ली, साझा पब्लिकेशन।

19 बोस, निर्मल कुमार (1967), *प्राब्लम्स ऑफ नेशनल इन्टीग्रेशन,* शिमला, इडियन इस्टीट्यूट ऑफ एडवास्ड स्टडी।

20 ब्राज, पाऊल आर0 (1992), *द पॉलिटिक्स ऑफ इण्डिया सिन्स इडिपेडेस,* कैम्ब्रिज यूनिव0 प्रेस।

21 बुरकोटी, पदमेश सपा0 (1995), *उत्तराखण्ड आन्दोलन का दस्तावेज (1994–95),* हिमालय धरोहर आन्दोलन केन्द्र।

22 चमौली, शिवानन्द (1995), *उत्तराखण्ड राज्य आन्दोलन सघर्षपूर्ण चार महीने का दस्तावेज,* देहरादून।

23 चन्द्र, विपिन (1996), *आधुनिक भारत मे साम्प्रदायिकता,* दिल्ली विश्वविद्यालय, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय।

24 चन्द्र, विपिन, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी (2002), *आजादी के बाद का भारत, 1947–2000* दिल्ली विश्वविद्यालय, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय।

25 चातक, गोविन्द (1990), *भारतीय लोक सस्कृति का सदर्भ मध्य हिमालय,* नई दिल्ली, तक्षशिला प्रकाशन।

26 डबराल, शिवप्रसाद "चरन" (n d), *उत्तराखड का राजनैतिक व सास्कृतिक इतिहास,* खण्ड–1 से 12, डोगड्डा, वीरगाथा प्रकाशन।

27 दस्तूर, ए0के0 (1970), *दि पैटर्न ऑफ महाराष्ट्र पोलिटिक्स,* इकबाल नारायण (स0), 'स्टेट पोलिटिक्स इन इडिया', मेरठ।

28 देसाई, ए0आर0 (1981), *सोशल बैकग्राउन्ड ऑफ इडियन नेशलिज्म,* बम्बई, पापुलर प्रकाशन।

29 ढौढियाल, नवीनचन्द्र, विजय ढौढियाल एव सजीव कुमार शर्मा सपा0 (1993), *पृथक पर्वतीय राज्य,* खण्ड–प्रथम, अल्मोडा, श्री अल्मोडा बुक डिपो।

30 डीमरी, आलोक ए0 (1997), *उत्तराखण्ड मूवमेन्ट एण्ड द इश्यूज ऑफ मोबलाइजेशन,* एम0फिल0 लघु शोध प्रबन्ध, अप्रकाशित, नई दिल्ली, जे0एन0यू0।

31 दीक्षित, प्रभा (1974), *कम्युनलिज्म, अ स्ट्रगल फॉर पावर,* नई दिल्ली।

32 दर्ज, जीन एव अर्मत्य सेन सपा0 (1999), *इडियन डेवलपमेन्ट सेलेक्टेड रीजनल पर्सपेक्टिव,* दिल्ली, ऑक्स्फोर्ड।

33 ड्यूमा, लुई (1970), *रिलीजन , पॉलिटिक्स एण्ड हिस्टरी इन इडिया,* इन हिज कलेक्टेड पेपर्स इन इण्डियन सोशियोलॉजी, पेरिस।

34 गडकर, गजेन्द्र (1967), *ए प्ली टू कसीडर प्राब्लम रेसनली डिसाइड वाइजली एण्ड हेसेन स्लोली,* कन्वोकेशन भाषड, अक्टूबर, बडौदा एव मीडियम ऑफ एजूकेशन, सितम्बर 14, बम्बई यूनिव0।

35 गिल, के0पी0एस0 (1997), *द नाइट ऑफ फाल्सहुड,* नई दिल्ली।

36 गोलवलकर, एम0एस0 (1980), *बच ऑफ थॉट,* बगलौर, जागरण प्रकाशन।

37 गुप्ता, एन0एल0 सपा0 (1965), *नेहरू आन कम्यूनलिज्म,* नई दिल्ली।

38 गुडल, मेरिल आर0 (1959), *"आर्गनाइजेशन ऑफ एडमिनिस्ट्रेटिव लीडरशिप इन द फाइव ईयर प्लैन्स",* पार्क रिचर्ड एल0और ईरेन टिकर द्वारा सपा0 *लीडरशिप एण्ड पोलिटिकल इस्टीट्यूशन्स इन इडिया,* प्रिस्टन यूनिव0 प्रेस।

39 हैन्सन, ए0एच0 (1966), *द प्रोसेस ऑफ प्लानिग,* लदन।

40 हार्डग्रेव, रार्बट एल0 (1965), *द द्रविडियन मूवमेन्ट,* बम्बई।

41 हेरीसन, सेलिग एम0 (1960), *इडिया दि मोस्ट डेजरस डिकेट्स,* प्रिस्टन यूनिव0 प्रेस।

42 *आई0ई0एस0एस0 (1972),* डेविड, प्रथम सिलस (सपा0) नई दिल्ली, मेकमिलन।

44 जोन्स, मौरिस (1967), *गवर्नमेन्ट एण्ड पोलिटिक्स,* लदन, हचिसन एण्ड क0।

45 जोन्स, डब्ल्यू0एच0मौरिस (1970), *भारतीय शासन एव राजनीति,* दिल्ली, सुरजीत पब्लिकेशस।

46 जोशी, महेश्वर पी0 (1990), *उत्तराचल (कुमाऊ–गढवाल) हिमालया एन एस्से इन हिस्टोरिकल एन्थ्रोपोलोजी,* अल्मोडा, श्री अल्मोडा बुक डिपो।

47 जोशी, महेश्वर पी०, एलन सी० फैन्जर & चार्ल्स डब्ल्यू० ब्राऊन सपा० (1990), *हिमालय पास्ट एण्ड प्रेजेन्ट,* अल्मोडा, श्री अल्मोडा बुक डिपो।

48 जोशी, पी0सी0 (1995), *उत्तराखण्ड इश्यूज एण्ड चैलेन्ज,* नई दिल्ली, हर आनन्द पल्किेशन।

49 ज्यूरर्स, एडम प्रेजवस्की (1976), *द प्रोसेस ऑफ क्लास फोर्मेशन फ्राम कार्ल कौटस्कीज स्ट्रगल टू रिसैट काटोवर्सीज मीमियोग्राफी,* यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो।

50 खडगवाल, एस०सी० (1993), *फिजिको–कल्चरल इन्वायरमेन्ट एण्ड डवलपमेन्ट इन यू०पी० हिमालय,* कोटद्वारा नूतन पब्लिशर्स।

51 खान, रशीद्दुदीन (1970), *"सेल्फ व्यू ऑफ मिनॉरिटीज द मुसलिम्स इन इडिया",* इटरनेशनल सेटर, नई दिल्ली द्वारा आयोजित सेमिनार (मार्च–अप्रैल), *'मिनॉरिटीज इन नेशन बिल्डिग'* मे प्रस्तुत मीमियोग्राफ, नई दिल्ली।

52 खान, रशीदुद्दीन सपा0 (1997), *रेटिग इण्डियन फेडरलिज्म,* शिमला, इडियन इस्टीट्यूट ऑफ एडवास्ड स्टडी।

53 खान, जियाद्दुदीन (1983), *नेशनल इन्टीग्रेशन इन इण्डिया—इश्यूज एण्ड डायमेन्शनस,* नई दिल्ली, एशोसियेटेड पब्लिशिग हाऊस।

54 केदूरी, एली (1985), *नेशनलिज्म,* लदन, हचिसन एण्ड क0।

55 कीर, डी0 (1966), *वीर सावरकर,* बम्बई, पापुलर प्रकशन।

56 किशोर, सत्येन्द्र (1987), *नेशनल इटिग्रेशन इन इण्डिया,* नई दिल्ली, स्टर्लिग पब्लि0।

57 कोठारी, रजनी (1970), *कास्ट इन इडियन पोलिटिक्स,* नई दिल्ली, ओरियट लाग्मैन लि0।

58 कोठारी, रजनी (1990), *भारत मे राजनीति,* नई दिल्ली, ओरियट लॉग्मैन लि0।

59 कोश्यिारी, भगत सिह (1988), *उत्तराचल प्रदेश क्यो,* अल्मोडा, उत्तराचल उत्थान परिषद।

60 कोश्यिारी, भगत सिह (1993), *उत्तराचल प्रदेश,* पिथौरागढ, उत्तराचल प्रकाशन।

61 कृष्णा, के0बी0 (1939), *द प्रॉब्लम ऑफ माईनॉरिटीज,* लदन।

62 कुमार, प्रदीप (1996), *इडियन फेडरलिज्म इश्यूज एण्ड चैलेन्ज इन दि कान्टेक्सट ऑफ डिमाण्ड फॉर न्यू स्टेटस",* आजम कौशर सपा० ।

63 कुमार, प्रदीप (2000), *द उत्तराखण्ड मूवमेन्ट कान्सट्रक्शन ऑफ ए रीजनल आईडेन्टी,* नई दिल्ली, कनिष्क पब्लि0।

64 मजीद, ए0 (1984), *रीजनलिज्म डिवलेपमेन्टल टेशन्स इन इडिया,* नई दिल्ली कॉस्मो पब्लिकेशन।

65 माथुर, पी0सी0 (1990), *"रीजनलिज्म इन इडिया एन एस्से इन डायमेशन्लाइजेशन ऑफ स्टेट पोलिटिक्स इन इडिया",* वीरेन्द्र ग्रोवर सपा0, *सोशियोलिजिकल एस्पेक्ट्स ऑफ इडियन पोलिटिकल सिस्टम,* नई दिल्ली, दीप एव दीप पब्लि0।

66 मेहरोत्रा, आर0सी0 एव एम0एन0जोशी (1982), *एनवायरमेटल डी ग्रेडेशन इन हिमालयन रीजन ड्यू टू एक्सप्लयोइटेशन ऑफ मिनरल्स,* नेशनल सेमिनार आन मिनरल्स एण्ड इकोलॉजी।

67 मेहता, जी0एस0 (1996), *उत्तराखण्ड प्रासपेक्ट्स ऑफ डवलेपमेन्ट,* नई दिल्ली, इन्डुस पब्लिशिग कम्पनी।

68 मेहता, टू ए0 और पटवर्धन ए0 (1942), *द कम्यूनल ट्रायगल इन इडिया,* इलाहाबाद।

69 नागमणि, एच० (1981), *नेशन बिल्डिग एण्ड रीजनल डवलपमेन्ट,* जापान, यूनाइटेड नेशन सेन्टर फॉर रीजनल डवलपमेन्ट।

70 नारग, ए0एस0 (1995), *एथनिक आइडेन्टीज एण्ड फेडरलिज्म,* शिमला, इडियन इस्टीट्यूट ऑफ एडवास्ड स्टडी।

71 नायक, आर०जी० (1981), *रीजनल डिसपॉयरटीज इन इण्डिया,* नई दिल्ली, अगरिका पब्लिकेशन।

72 नायर, बलदेव राज (1966), *सिख सेपरेटिज्म इन पजाब, इन साउथ एशियन पालिटिक्स एण्ड रिलिजन,* डोनाल्ड इ स्मिथ द्वारा सम्पादित, प्रिस्टन यूनिव0 प्रेस।

73 नेहरू, जवाहर लाल (1962), *एन ऑटो बायोग्राफी*, नई दिल्ली।

74 नेहरू, जे0 (1972), *सिलेक्टेड वर्क्स ऑफ जवाहर लाल नेहरू*, एस0गोपाल द्वारा सपादित, नई दिल्ली ओरियट लाग्मैन लि0।

75 नौटियाल, आर०आर० & अन्नपूर्णा नौटियाल सपा० (1996), *उत्तराखण्ड इन तुरमाइल*, नई दिल्ली, एम०डी०पब्लिकेशन।

76 नौटियाल, शिवानन्द (1991), *गढवाल दर्शन*, लखनऊ।

77 नौटियाल, सुरेश सपा0 (1984), *उत्तराखण्ड एक अध्ययन, आकलन और प्रस्ताव*, नई दिल्ली, अभिकथन पब्लिकेशन्स।

78 नेगी, धीरज सिह सपा० (n d), *उत्तराखण्ड आन्दोलन*, देहरादून, गढवाल सभा।

79 नेगी, सतान सिह (1988), *मध्य हिमालय का राजनैतिक एव सास्कृतिक इतिहास*, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन।

80 नेगी, एस०एस० (1993), *कुमाऊँ द लैण्ड एण्ड पीपुल*, और (1994), *गढवाल द लैण्ड एण्ड पीपुल*, देलही, इड्स पब्लिशिग कम्पनी।

81 पाण्डे, बद्रीदत्त (1990), *कुमाऊँ का इतिहास*, अल्मोडा, श्री अल्मोडा बुक डिपो, प्रथम प्रकाशन 1937।

82 पाडे, जी0सी0 (1977), *उत्तराखण्ड की अर्थव्यवस्था*, नैनीताल, कसल पब्लिकेशन।

83 पाठक, एच0जे0 (1983), *"वाटर रिसोर्स ऑफ द यू0पी0 हिमालय–दियर यूज एण्ड पोट्यन्शियल्स"* ओ0पी0 सिह द्वारा सम्पादित, *हिमालय नेचर मैन एण्ड कल्चर*, नई दिल्ली, राजेश पब्लिकेशन्स।

84 पाठक, एस0 (1987), *उत्तराखण्ड मे कुली बेगार प्रथा*, नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन।

85 प्रकाश, इन्द्र (1938), *ए रिव्यू ऑफ दि हिस्टरी एण्ड वर्क ऑफ दि हिन्दू महासभा एण्ड हिन्दू सगठन मूवमेन्ट*, नई दिल्ली।

86 पतिराम, राय बहादुर (1992), *गढवाल एन्सिएन्ट एण्ड मार्डन*, देलही, विन्टेज बुक।

87 रतूडी, हरिकृष्ण (1995), *गढवाल का इतिहास*, टेहरी, भागीरथी प्रकाशन, (प्रथम प्रकाशन 1928)।

88 रावत, अजय एस० (1983), *गढवाल हिमालय ए हिस्टोरिकल सर्वे (1815–1947)*, देलही, इस्टर्न बुक लिकर्स।

89 रावत, शीला सपा0, *उत्तराखण्ड, दृष्टि, दशा और दिशा*, श्री नगर, गढवाल अलकनन्दा किनारे पब्लिकेशन।

90 राविन्सन, फ्रासिस (1975), *सेपरेटिज्म अमग इडियन मुसलिम्स , द पॉलिटिक्स आफ द यूनाइटेड प्रॉविन्सेज मुस्लिम, 1860–1923*, दिल्ली।

91 राय, हेमलता (1984), *रीजनल डिसपॉयरटीज एण्ड डेवलपमेन्ट इन इण्डिया*, नई दिल्ली, आशीष पब्लिकेशन।

92 राय, लाला लाजपत (1966), *राइटिग एण्ड स्पीचेज*, खण्ड–2, सपा0 बी0सी0जोशी, दिल्ली।

93 राय, बी०के० (1985), *नेशनल इटीग्रेशन सम अनसाल्वड इश्यूज,* बाम्बे, भारतीय विद्या भवन।

94 सईद, एस0एम0 (1998), *भारतीय राजनीतिक व्यवस्था,* लखनऊ, सुलभ प्रकाशन।

95 सरोलिया, शकर (1987), *इडियन पुलिस इश्यूज एण्ड पर्सपेक्टिव,* जयपुर, गौरव पब्लिशर्स।

96 शाह, जी0आर0 (1996), *उत्तराखण्ड ए ब्लू प्रिन्ट फॉर डवलेपमेन्ट,* नई दिल्ली, कॉस्मो पब्लिकेशन।

97 शाह, शकर लाल (1995), *पृथक उत्तराखण्ड राज्य का औचित्य* , अल्मोडा, श्री अल्मोडा बुक डिपो।

98 शकीर, मोईन (1970), *खिलाफत टू पार्टीशन,* नई दिल्ली।

99 सिह, भजनसिह (1986), *आर्यों का आदि निवास , मध्य हिमालय,* टेहरी भागीरथी प्रकाशन।

100 सिह, एल०आर० (1994), *नेशन बिल्डिग एण्ड डवलपमेन्ट प्रॉसेज,* जयपुर, रावत पब्लिकेशन।

101 सिन्हा, ए0के0 ए0 आर0ए0के0 श्रीवास्तव (1979), *कुमाऊँ की खनिज सम्पदा उपलब्धियाँ तथा सम्भावनाये,* सुरेश पत द्वारा सम्पादित 'उत्तरीय', नई दिल्ली, कूर्माचल परिषद।

102 सिवाच, जे0आर0 (1990), *डायनामिक्स ऑफ इण्डियन गर्वनमेट एण्ड पॉलिटिक्स।*

103 सिवाच, जे0आर0 (1992), *भारत की राजनीतिक व्यवस्था,* चण्डीगढ, हरियाणा साहित्य अकादमी।

104 सुकुमारन, अनूप (1996), *पॉलिटिक्स ऑफ दि उत्तराखण्ड मूवमेन्ट,* (एम0फिल0,लघु शोध प्रबन्ध, अप्रकाशित) नई दिल्ली, जे0एन0यू0।

105 थाम्पसन, ई0पी0 (1978), *द मेकिग ऑफ द इग्लिस वर्किंग क्लास,* पेग्विन बुक्स (पुर्नमुद्रित)।

106 थ्रिस्क, जे0 (1990), *द बिल्डिग ऑफ द कन्ट्रासाइड*, सपा0 एम0डब्ल्यू0 वारले, कैम्ब्रिज यूनिव0 प्रेस।

107 तिवारी, लल्लन (2000), *इश्यूज इन इडियन पॉलिटिक्स,* नई दिल्ली, मित्तल पब्लिकेशन।

108 त्रिवेदी, वी0आर0 (1995), *ऑटोनमी ऑफ उत्तराखण्ड,* नई दिल्ली, मोहित पब्लिकेशन।

109 वाघवा, कमलेश (1975), *मॉइनरिटीज सेफ गार्डस इन इडिया,* नई दिल्ली, थामसन प्रेस इडिया।

110 वाल्दिया, के0 एस0 सपा0 (1996), *उत्तराखण्ड टूडे उत्तराखण्ड आज,* अल्मोडा, श्री अल्मोडा बुक डिपो।

111 विद्यार्थी, एल०पी० & माखन झा सपा० (1986), *इकोलॉजी, इकोनॉमी एण्ड रिलीजन ऑफ हिमालयाज,* देलही, ओरियन्ट।

112 यादव, सोमनाथ सपा0 (2000), *छत्तीसगढ समग्र,* विलासपुर, बिलासा कला मच प्रेस क्लब।

113 जैदी, एस०ए०एच० & रेहाना जैदी (1985), *गढवाल मुगल सबध (1526–1707),* पौडी, हिमालया न्यूज एजेन्सी।

समाचार पत्र एवं पत्रिकाओं में प्रकाशित लेख–

1 आगा, जफर (1998), *"क्षेत्रीय नेताओ का बढता दबदबा"*, दैनिक जागरण, अक्टूबर 12 ।

2 बका, पीयूष, सजय सिह और कुमार हर्ष (1998), *''ठोस अनिवार्यताओ और तार्किक मागो से भरा एक भावुक आन्दोलन''* राष्ट्रीय सहारा, सितम्बर 26 ।

3 भारद्वाज, नरेन्द्र (1993), *"बोडो समझौता शान्ति का सूर्योदय"* सिविल सर्विसेज क्रानिकल, जून।

4 भारद्वाज, नरेन्द्र (1996), *"पृथक राज्य आन्दोलन निरन्तर उपेक्षा से उठता ज्वार"* सिविल सर्विसेज क्रानिकल, फरवरी।

5 भाम्भरी, सी०पी० (1997), *"इण्डियाज इण्टरनल हारमोनी"*, द हिन्दुस्तान टाइम्स, सितम्बर 14।

6 बिष्ट, पूरन (1998), *"तब प्रयोगशाला नही होगा उत्तराखण्ड"* नैनीताल समाचार, सितम्बर 1 ।

7 चन्दोला, हरीश (1994अ), *"उत्तराखण्ड विद वायलेन्स"* मेनस्ट्रीम, अक्टूबर 8 ।

8 चन्दोला, हरीश (1994ब), *"व्हाई उत्तराखण्ड"* मेनस्ट्रीम, अक्टूबर 15 ।

9 चन्दोला, हरीश (1994स), *"ए लैण्ड ऑफ फोर्टीफिक्शन"*, मेनस्ट्रीम, अक्टूबर 22 ।

10 चन्दोला, हरीश (1995), *"व्हाट काइन्ड ऑफ उत्तराखण्ड"* मेनस्ट्रीम, अक्टूबर 14 ।

11 चतुर्वेदी, राजीव (1998), *"छोटे प्रान्तो का बडा सवाल"* दैनिक जागरण, अक्टूबर 10 ।

12 डबराल, शिव प्रसाद (1995), *"जनता उत्तराखण्ड को केन्द्र शासित बनाने का विरोध न करे"* दैनिक जागरण, मार्च 24 ।

13 दत्ता, प्रभात (1995), *"अनस्टडी स्टेटस एण्ड स्माल थ्योरीज़"* द टेलीग्राफ, दिसम्बर 4 ।

14 द्विवेदी, अजीत कुमार, (2001), *"बादल खेल रहे है खतरनाक खेल"*, दैनिक जागरण, जुलाई 6।

15 द्विवेदी, अनिल कुमार (1996), *"पृथक राज्य आन्दोलन उत्प्रेरक बना उत्तराखण्ड"*, सिविल सर्विसेज क्रानिकल, नवम्बर ।

16 दीक्षित, सजय (2001), *"न ढॉचा न विरासत– कोरे बयान है उत्तराचल मे"*, जागरण उदय, नवम्बर 6।

17 डोगरा, भरत (1994), *"उत्तराखण्ड पवन्स इन एचेस गेम"*, इकोनॉमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, दिसम्बर 10।

18 डोनोवन, आर्थर जे0 (1967), *"सेफ्टोटिस्ट, टेडेसीज इन ईर्स्टन इण्डिया"*, एशियन सर्वे, सातवॉ सस्करण, खण्ड 10, अक्टूबर ।

19 *"झारखण्ड विकास की रणनीति"*, (2001), योजना, नवम्बर ।

20 जोशी, नवीन (1998), *"भावी उत्तराचल राज्य"* नैनीताल समाचार, सितम्बर 15 ।

21 कामत, ए0आर0 (1964), *"नेशनल इटीग्रेसन एण्ड सब नेशनल लॉयल्टीज"* मेनस्ट्रीम।

22 कश्यप, सुभाष (1999), *"नये राज्यो के गठन का सवाल"*, राष्ट्रीय सहारा।

23 कुमार, प्रदीप (1991अ), *"सब नेशनलिज्म इन इडियन पोलिटिक्स फार्मेशन ऑफ ए हरियाणवी आईडेन्टीफाई"*, इडियन जर्नल ऑफ पोलिटिकल साइस, जनवरी–मार्च ।

24 कुमार, प्रदीप (1991ब), *"रीजनलिज्म एण्ड रीजनल पार्टीज इन द कॉटेक्सट् ऑफ स्टेट पोलिटिक्स"*, इडियन जर्नल ऑफ पोलिटिकल साइस, अक्टूबर–दिसम्बर।

25 कुमार, प्रदीप (1992), *"सेकेण्ड राउण्ड ऑफ स्ट्रेटस' रि आर्गेनाइजेशन इश्यूज एण्ड प्रॉब्लम्स"*, मेनस्ट्रीम, अक्टूबर 31 ।

26 कुमार, प्रदीप, (1995अ), *"डिमान्ड फॉर उत्तराखण्ड वाइडर डायमेशन"*, मेनस्ट्रीम, अगस्त 19।

27 कुमार, प्रदीप (1995ब), *"'जेनेसेज ऑफ उत्तराखण्ड क्राइसिस"*, मेनस्ट्रीम, अक्टूबर 14।

28 कुमार, प्रदीप, (1996), *"डिमान्ड फॉर ए हिल स्टेट इन यू0पी0 न्यू रियल्टीज"* मेनस्ट्रीम, जून 29।

29 कुमार, प्रदीप, (1999), *"शिफ्टिग पोलिटिकल लायल्टीज इन उत्तराखण्ड"*, इकोनोमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, अगस्त 21 एव 28 ।

30 लाल, नन्द (1993), *"भारत मे राष्ट्रीय एकीकरण स्वरूप, समस्याएँ एव सम्भावनाएँ"*, प्रतियोगिता दर्पण, जून ।

31 लाल, नन्द (1995अ), *"साम्प्रदायिकता, समाज और भारतीय राजनीति"*, प्रतियोगिता दर्पण, मार्च।

32 लाल, नन्द (1995ब), *"भारतीय राजनीति मे जाति की भूमिका"*, प्रतियोगिता दर्पण, जून ।

33 लाल, नन्द (1995स), *"भारतीय राजनीति मे क्षेत्रवाद"*, प्रतियोगिता दर्पण, नवम्बर ।

34 लाल, नन्द (1996), *"भाषावाद और भारतीय राजनीति"*, प्रतियोगिता दर्पण, मार्च ।

35 मटियानी, शैलेश (2000), *"उत्तराचल का स्वप्न"*, दैनिक जागरण, दिसम्बर 10 ।

36 मिश्र, अमरेश (1994), *"न्यू फोर्स इन उत्तराखण्ड"*, इकोनोमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, नवम्बर 19 ।

37 मिश्र, चतुरानन (2000), *"बिहार विभाजन अभिशाप या वरदान"*, दैनिक जागरण, अगस्त 24 ।

38 मोहन, सुरेन्द्र (2000), *"किस राह चलेगे नए राज्य"*, दैनिक जागरण, अगस्त 14 ।

39 नाग, सजल (1993), *"मल्टीप्लीकेशन ऑफ नेशन्स ? पोलिटिकल इकोनॉमी ऑफ सब–नेशनलिज्म इन इडिया"*, इकोनोमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, नवम्बर 19 ।

40 नैयर, कुलदीप (2000), *"सत्ता के खेल मे छेडा मधुमक्खियो का छत्ता"*, दैनिक जागरण, सितम्बर 13 ।

41 नारायन, इकबाल (1976), "*कल्चरल प्लूयरिज्म, नेशनल इन्टीग्रेशन एण्ड डेमोक्रेसी इन इण्डिया* ", एशियन सर्वे, अक्टूबर।

42 *'नये राज्य, पुराना भूगोल–नयी राजनीति' (2000)*, विशेष परिशिष्ट (हस्तक्षेप) राष्ट्रीय सहारा, अगस्त 19 ।

43 पालीवाल, नारायण दत्त (1998अ), *'उत्तराखण्ड सुखद घोषणा के दुखद पहलू"*, दैनिक जागरण, जुलाई 28 ।

44 पालीवाल, नारायण दत्त (1998ब), *"उत्तर प्रदेश के ऑचल मे उत्तराखण्ड"*, दैनिक जागरण, अक्टूबर 8 ।

45 पालीवाल, नारायण दत्त (2000), *"नई जिम्मेदारियो के द्वार पर उत्तराचल"*, दैनिक जागरण, सितम्बर 29 ।

46 पाण्डे, बी0डी0 (1995), *"व्हाई उत्तराखण्ड"* मेनस्ट्रीम, फरवरी 18 ।

47 पाण्डे, मृणाल (1994), *"बिहाईन्ड ट्रैपिग्स ऑफ सोशल जस्टिस"*, मेनस्ट्रीम, सितम्बर 24 , *"स्टार्म इन द माउन्टेन्स"*, मेनस्ट्रीम, सितम्बर 17 ।

48 पाण्डे, मृणाल (1994), *"स्टार्म इन द माउन्टेन्स"*, मेनस्ट्रीम, सितम्बर 17 ।

49 पकज, घनश्याम (1997), *"छोटे क्षेत्रीय दलो की बडी केन्द्रीय भूमिका"*, राष्ट्रीय सहारा, अप्रैल 20।

50 पत, हरीश चन्द्र (2000), *"उत्तराखण्ड के विकास के आवश्यक तत्व"*, दैनिक जागरण, दिसम्बर 5 ।

51 पाठक, अविजित (1994), *"मीनिग ऑफ उत्तराखण्ड नीड टू गो बेयान्ड द पालिटिक्स ऑफ मॉडर्निटी"*, मेनस्ट्रीम, अक्टूबर 22 ।

52 पाठक, शेखर & रामचन्द्र गुहा (1996), *"राष्ट्रीय इतिहास मे उत्तराखण्ड स्थानीय इतिहास, जन इतिहास या राष्ट्रीय इतिहास"*, नैनीताल, पहाड।

53 पुरी, रक्षत (2000अ), *"नागालैण्ड मे अलगाववाद के बीज"*, दैनिक जागरण, जुलाई 3 ।

54 पुरी, रक्षत (2000ब), *"राजनीति का मोहरा बनती क्षेत्रीय भाषाये"*, दैनिक जागरण, सितम्बर 16।

55 राजकिशोर (2000), *"तीन नये राज्यो मे आखिर नया क्या होगा ?"* अमर उजाला, अगस्त 22।

56 राय, अजीत (1994), *"उत्तराखण्ड एण्ड द लेफ्ट इर्रेलेवान्स"*, इकोनॉमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, अक्टूबर 1।

57 शाह, राजीव लोचन (1998), *"उत्तराखण्ड उत्तराचल राजधानी मगर ?"* नैनीताल समाचार अप्रैल 15 ।

50 शुक्ल, भानुप्रताप (1998), *"राष्ट्रवादी दृष्टिकोण से ही सम्भव है राष्ट्र निर्माण"*, दैनिक जागरण, मई 4 ।

51 शुक्ल, भानुप्रताप (2000), *"असम को अलग करने का षडयन्त्र"*, दैनिक जागरण, अक्टूबर 16।

52 सिह, महीप (2000), *"आवश्यकता नये राज्य पुनर्गठन आयोग की"*, दैनिक जागरण, नवम्बर 23।

53 थपलियाल, मोहन (1997), *"उत्तराखण्ड को एक खास लेस से देखने की जरूरत"*, राष्ट्रीय सहारा, मई 13 ।

54 वर्मा, ए0के0 (1998), *"छोटे राज्यो की बडी सवेदनाएँ"*, दैनिक जागरण, अगस्त 14।

55 विष्ट, नारायण सिह (1978), *"क्या पर्वतीय जिलो के लिये क्षेत्रीय नियोजन आवश्यक है"* हिमालय वर्ष–2, अक–1 ।